श्रीभास्कराचार्य

विरचित,

सिद्धान्तशिरोमणि ।

(वासनाभाष्य सहित)

गोलाध्याय

ज्यौतिषाचार्य-

पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी.

कृत

प्रभा-भाषाभाष्य-उपपत्ति आदि सहित.

'तुष्यन्तु सुजना बुद्ध्वा विशेषान् मदुदीरितान् ।
अबोधेन हसन्तो मा तोषमेष्यन्ति दुर्जना ॥'

भास्कराचार्य ।

प्रथमवार.

लखनऊ.

सुपरिण्टेण्डेण्ट बाबू मनोहर लाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से

नवलकिशोर (सी. आई. ई.,) के यन्त्रालय मे मुद्रित हुआ ।

सन् १९११ ई०

PREFACE.

Bhaskaracharya's Siddhant Siromani with his own exposition called Vasanabhashya, is looked upon as the best authority on Indian astronomy. It is most usually learned and widely circulated among the Pathasalas There are many theories, very simply and lucidly embodied in it, which are not to be found among the ancient treatises in those of Aryabhat, Sripati and Lallacharya. Besides, Bhaskar has illustrated and fully criticised the theories of his predecessors properly and without any prejudice, and has declared his own opinions with necessary explanations and examples. All this has made the work very popular.

The Vasanabhashya is an excellent and intelligible commentary. It is, however, in every way sufficient to meet with the requirements of a student. Although there are commentaries on it like Ganitatatwachintamani Marichi and Vasanavartika, but they are neither published nor generally used.

For the present, Siddhant Siromani edited and appended with exhaustive notes by Pandit Bapudeva Sastri, C. I. E., is the best of its kind.

Astronomical subjects are very obstruse and intricate, their proper study deserves the best attention and practice. For this reason I have thought it necessary to prepare a full Hindi translation of the said important work so that, it may be, beneficial to students, consequently I have composed a concise Sanskrit annotation called "Prabha" wherin difficult verses and words have been clearly explained. In the Bhashabhashya, full translations of the verses, the proof of each theory as well as the figures and calculations have particularly been made.

In some places, I have introduced new astronomical discoveries made by Europeans, which are entirely extraordinary and worthy of considerations, as for instance—Gravitation, Earth's rotations on its axis, Kepler's Laws, Refraction and Equation of time, etc.

In conclusion, I have tried my best to make useful the present volume of Goladhyaya, not only to those for whose use it is principally prepared but to the general public interested in this science.

PANDITPURI,
Ayodhya:
The 25th January 1911.

GIRIJA PRASAD DVIVEDI.

भूमिका।

भारतवर्ष के जिन स्थानों में और पाठशालाओं में ज्योतिःशास्त्र के पठन पाठन का प्रचार है, वहां श्रीभास्कराचार्य कृत सिद्धान्तशिरोमणि को मुख्य ग्रन्थ मानकर प्रायः सभी पढ़ते और पढाते हैं। सिद्धान्तशिरोमणि एक ऐसा उपयोगी ग्रन्थ है, जिसमें आर्यभट से लेकर सब प्राचीन आचार्यों के सिद्धान्तग्रन्थों की अपेक्षा विशेष विषय, निर्मल और सरल रीति से, पूर्वाचार्यों के मतों की अलोचना पूर्वक लिखे हैं। इसी कारण सिद्धान्तशिरोमणि का बहुत प्रचार हुआ। दूसरे सिद्धान्त ग्रन्थों का पठन पाठन लुप्तसा होगया। और भास्कराचार्य का यश देश विदेश सर्वत्र फैलगया।

सिद्धान्तशिरोमणि पर आचार्य ने स्वयं 'वासनाभाष्य' नामक व्याख्या भी लिखी है, जो मूल ग्रन्थ ही माना जाता है। उसमें सरल रीति से सब उपपत्ति आदि विषयों का निरूपण है। यद्यपि गणिततत्त्वचिन्तामणि, मरीचि और वासनावार्तिक प्राचीन टीका तथा उदाहरण ग्रन्थ भी इसपर बने हैं, तौभी आजतक न कोई प्रकाशित हुए न किसी प्रयोजन में ही आये। वासनाभाष्य से ही सब प्रयोजन सिद्ध होता आया है।

सांप्रतमें सिद्धान्तशिरोमणि का उत्तम संस्करण महामहोपाध्याय श्रीबापूदेव शास्त्री, सी, आई, ई का किया प्रसिद्ध है। शास्त्रीजी ने प्राचीन पुस्तकों से मूलग्रन्थ को भलीभांति शुद्ध करके अपनी नवीन टिप्पणियों से भूषित किया है।

ज्योतिषविद्याके विचार बहुतही गहन और सूक्ष्म हैं। उन के वास्तव ज्ञान में कठिन श्रम और मनोनियोग का बहुत आवश्यक है। आचार्य ने जो विषय सरल भी लिखे हैं, प्रायः उनको भी समझने में क्लेश हुआ करता है। इस कारण भाषानुवाद करने की इच्छा प्रकट हुई, जिससे विशेष करके पढ़नेवालों को विषय ज्ञान में सहायता मिले। दूसरे, आचार्य के मुख्य ग्रन्थों में लीलावती और बीजगणित का उत्तम अनुवाद एक, या दो होगया है, पर सिद्धान्तशिरोमणिके अनुवाद का आजतक किसी ने साहस नहीं किया। यह भी

एक भारी अभाव था। इस अभाव को मिटाने और छात्रों की सहायता के अभिप्राय से यह गोलाध्याय का अनुवाद किया गया है।

इस अनुवाद में 'प्रभा' नामक संस्कृत टिप्पण लिखा है। उस में केवल कठिन श्लोकों की और कहीं कठिन शब्दमात्रकी व्याख्या लिखी है। फिर 'भाषाभाष्य' में श्लोकों का अर्थ और 'उपपत्ति' में सब विषयोंका क्षेत्रदेकर उपपत्ति और गणित, सविस्तर सरलरीति से लिखा है।'टिप्पण' में बहुत से आवश्यक विषयोंका समावेश किया गयाहै।

सांप्रत में जो पाश्चात्य विद्वानों ने सिद्धान्त विषयक नवीन-विषयों का आविष्कार किया है, जो कि बहुतही अपूर्व और प्रत्येक ज्योतिषविद्याप्रेमियों के मनोनियोग और अध्ययन के लायक हैं, उनका इस अनुवाद में प्रसंग से कहीं कुछ विचार किया गया है। क्योंकि सब विषयों के प्रतिपादन में स्वतन्त्र ग्रन्थकी अपेक्षा है। अनुवाद ग्रन्थों में परिचयमात्र ही होसकता है इसलिए यथास्थान आकर्षण (Gravitation) केपलर के सिद्धान्त (Kepler's three laws), भूभ्रमण (Earth's rotation) किरण वक्रीभवन (Refraction) कालसमीकरण (Equation of time) आदि विषयों का विचार, आज कल के नवीन सिद्धान्तियों के कौतुकार्थ और उनकी बुद्धि आकृष्ट करने के लिये दिखलाया है।

इस प्रकार, सिद्धान्तशिरोमणि के अनुवाद को यथाशक्ति उपयोगी करने में कोई कमी नहीं की गई। जहांतक ज्ञात है, ऐसा अनुवाद कोई नहीं प्रकाशित हुआ। आशा है, प्राचीन और नवीन सब रीति, नीति के सिद्धान्तप्रेमीगण, इसको प्रीतिपूर्वक स्वीकार करेंगे और उपयोग में लाकर मेरा उद्देश्य सफल करेंगे।

यह गोलाध्याय का अनुवाद है। गणिताध्याय का भी, यथा सम्भव शीघ्र होगा। और उसकी भूमिका में प्राचीन सिद्धान्त और आचार्यों के विषय में विशेष बातों का विचार किया जायगा

अन्त में, विज्ञ महानुभावों से प्रार्थनाहै कि दोषों को क्षमा करेंगे

स्थान-पण्डितपुरी. अयोध्या-पश्चिमप्रान्त. २५।१।१९११	ज्योतिषाचार्य, गिरिजाप्रसाद द्विवेदी।

प्रकरण सूची ।

श्रीगणेशाय नमः

सिद्धान्तशिरोमणिः ।

वासनाभाष्यसहितः

गोलाध्यायः ।

अथ गोलाध्यायो व्याख्यायते ।

गोलाध्याये निजे या या अपूर्वा विषमोक्तयः ।
तास्ता बालावबोधाय संक्षेपाद्विवृणोम्यहम् ॥

गोलग्रन्थो हि सविस्तरतया प्राञ्जलः । किन्तु अत्र या या अपूर्वा नान्यैरुक्ता उक्तयो विषमास्तास्ताः संक्षेपाद्विवृणोमि । अत्र या या इति प्रथमान्तं पदं तास्ता इति द्वितीयान्तं पदं बुद्धिमता व्याख्येयम् ।

तत्रादौ तावदभीष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं गोलं ब्रवीमीत्याह—

सिद्धिं साध्यमुपैति यत्स्मरणतः क्षिप्रं प्रसादात्तथा
यस्याश्चित्रपदा स्वलङ्कृतिरलं लालित्यलीलावती ।
नृत्यन्ती मुखरङ्गगेव कृतिनां स्याद्भारती भारती
तं तां च प्रणिपत्य गोलममलं बालावबोधं ब्रुवे ॥ १ ॥

ब्रुवे वच्मि । कः । कर्ताहं भास्करः । किम् । गोलं गोलाध्यायम् । किं विशिष्टम् । अमलं निर्दूषणम् । पुनः किंभूतम् ।

बालावबोधम् । अविषममित्यर्थः । किं कृत्वा । प्रणिपत्य । प्रणिपातपूर्वकं नमस्कृत्य । कम् । तम् । न केवलं तम् । तां च । स कः । सा च का । तदाह । यस्य देवस्य स्मरणात् पुंसां साध्यमभीष्टं क्षिप्रं शीघ्रं सिध्यति । सोऽर्थाद्विघ्नराजः । तथा यस्या देव्याः प्रसादात् कृतिनां विदुषां भारती वाणी नृत्यन्ती भारतीव स्यात् । भारती नर्तकस्त्री च । कथंभूता वाणी नर्तकी च । चित्रपदा विचित्रपदविन्यासा । स्वलंकृतिः शोभनालङ्कारमुद्राङ्किता । लालित्यलीलावती माधुर्यगुणसंपन्ना । कथं वाङ् नृत्यन्तीति चेत् । स्रवदमृतबिन्दुसन्दोहसदृशसुरससुकोमलोक्तिगुणा गद्यपद्यमयी चतुरजनमनश्चमत्कारकारिणी वाणी नृत्यन्तीव भाति । किं विशिष्टा भारती । मुखरङ्गगा । मुखमेव रङ्गो मुखरङ्गः । रङ्गो नृत्यस्थानम् । यस्याः प्रसादात् कृतिनां मुखेष्वेवंविधा भारती स्यात् । सार्थात् सरस्वती । तां च प्रणिपत्येति । मङ्गलादीनि मङ्गलान्तानि च शास्त्राण्यलङ्कारकृतां मतान्यतः सिद्धिवृद्धिशब्दावाद्यन्तयोर्निक्षिप्तौ ।

ॐ नमःशिवाय ।

प्रभा ।

या प्रत्यग्रघनाभापि स्वान्तध्वान्तविनाशिनी ।
तां परेशीं परानन्दकन्दलीं समुपास्महे ॥ १ ॥
सारभूतार्थविन्यासविकाशितकलेवरा ।
शिरोमणिप्रभा भातु विदुषां हृदये सदा ॥ २ ॥

अथाचार्यः प्रत्यूहव्यूहोपशमनाय स्वाभीष्टदेवतां नमस्कृत्य प्रतिपाद्यं प्रतिजानीते । सिद्धिं साध्यमित्यादि । प्रथमं भगवतो विनायकस्य

ततश्च सरस्वत्याः स्तवनम् । लालित्यलीलावती । ललितस्य मञ्जुलस्य भावो लालित्यम् । गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि चेत्यनेन ष्यञ् । तस्य लीला विलासो विद्यते यस्याः सा । 'लीलाविलासक्रिययोः ।' इत्यमरः । वस्तुतस्तु नर्तकीपक्षे ललितशब्देन हावविशेषो विवक्षितः । तल्लक्षणं यथा धनञ्जयकृते दशरूपके 'सुकुमाराङ्गविन्यासो मसृणो ललितं भवेत्' इति ।

मुखरङ्गगा । रज्यतेऽस्मिन्निति रङ्गः नाट्यशाला । मुखमेव रङ्गो मुखरङ्गस्तद्गता । भारती वाणी भारतीव नटीव स्यात् । बिभर्ति स्वाङ्गमिति भरत इत्यत्रौणादिकोऽतच् । ततः स्त्रीत्वविवक्षायां ङीप् । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

श्रीगणेशाय नमः ।

भाषाभाष्य ।

आदिशक्ति का करके ध्यान,
यह उपपत्ति समेत महान ।
भाषाभाष्य किया जाता है,
जिससे संशय मिट जाताहै ॥

जिसके स्मरणसे शीघ्र कर्तव्यकर्म पूर्ण होते हैं । उन गणेश भगवान् को प्रणाम है । और जिसकी कृपासे अनेक भूषणों से सुशोभित, बहुविध चरणों की गति (नाच में) करनेवाली और मनोहर लीलावाली नटी के भांति वाणी विद्वानों के मुखरूपी नृत्यस्थान में नाचकरती है, उस सरस्वती भगवती को प्रणाम करके सरल, शुद्ध, गोलविषय को कहताहूं ॥ १ ॥

अथ गोलप्रथनकारणमाह—

मध्याद्यं द्युसदां यदत्र गणितं तस्योपपत्तिं विना
प्रौढिं प्रौढसभासु नैति गणको निःसंशयो न स्वयम् ।
गोले सा विमला करामलकवत्प्रत्यक्षतो दृश्यते
तस्मादस्म्युपपत्तिबोधविधये गोलप्रबन्धोद्यतः ॥ २ ॥

स्पष्टार्थम् ।

प्रभा।

दिवि आकाशे सीदन्ति यान्ति ते द्युसदो ग्रहास्तेषां यन्मध्यादिस्पष्ट-ग्रहणोदयास्तशृङ्गोन्नत्यादिगणितं, तस्योपपत्तिं विना वासनामन्तरा, गणकः स्वयं न निःसंशयो भवति प्रौढसभासु प्रौढिं प्रगल्भतां नैति। सा वासना गोले विमला निर्दूषणा, करे आमलकइव प्रत्यक्षतो निर्बाधं दृश्यते। तस्मात् उपपत्तिबोधविषये मध्यादि समस्तगणितवासनावगमननिमित्तं गोलप्रबन्ध उद्यतो गोलग्रन्थनिर्माणबद्धपरिकरोऽस्मीत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

ग्रहों के मध्य, स्पष्ट, ग्रहण, उदयास्त आदि गणितों की उपपत्ति बिना जाने ज्योतिषी निःसन्देह नहीं होता और अच्छे विद्वानों की सभा में योग्य नहीं गिना जाता। वे उपपत्तियां गोलमें, हाथ में रक्खे हुए आमले की भांति साफ दीखती हैं, इसलिये गोलविषय कहने को उद्यत हूं॥ २॥

इदानीं गोलप्रशंसया गोलानभिज्ञगणकोपहासं श्लोकद्वयेनाह—

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं
राज्यं यथा राजविवर्जितं च।
सभा न भातीव सुवक्तृहीना
गोलानभिज्ञो गणकस्तथात्र॥ ३॥

वादी व्याकरणं विनैव विदुषां धृष्टः प्रविष्टः सभां
जल्पन्नल्पमतिः स्मयात्पटुवटुभ्रूभङ्गवक्रोक्तिभिः।
ह्रीणः सन्नुपहासमेति गणको गोलानभिज्ञस्तथा
ज्योतिर्वित्सदसि प्रगल्भगणकप्रश्नप्रपञ्चोक्तिभिः॥ ४॥

स्पष्टार्थम्।

प्रभा।

भोज्यमित्यादि स्फुटम्। उपजातिवृत्तम्। स्मयात् गर्वात्। पटुवटुभ्रूभङ्गवक्रोक्तिभिः। पटवश्च ते वटवश्च तेषां या भ्रूभङ्गवक्रोक्तयस्ता-

भिः। ह्रीणो लज्जितः। प्रगल्भगणकप्रश्नप्रपञ्चोक्तिभिः। प्रगल्भाः सदसद्विवेककुशला ये गणकास्तेषां याः प्रश्नप्रपञ्चोक्तयस्ताभिः।

भाषाभाष्य।

जिसप्रकार विना घृत के नानारसका भोजन, राजा के विना राज्य, और विना अच्छे वक्ताके सभा नहीं शोभित होती, इसीप्रकार गोल न जाननेवाला ज्योतिषी शोभा को नहीं पाता।

जैसे व्याकरण पढे बिना कोई निडर छात्र वाद करने को सभामें जाय और उसकी अयोग्यतापर अच्छे छात्रगण भ्रूभङ्ग करके वक्र प्रश्न करें तो लज्जित होकर हँसी को पहुँचता है, ऐसेही विज्ञज्योतिषियों की सभा मे गोलसे अपरिचित ज्योतिषी की दशा होती है॥ ३। ४॥

अथ गोलस्वरूपमाह—

दृष्टान्त एवावनिभग्रहाणां
संस्थानमानप्रतिपादनार्थम्।
गोलः स्मृतः क्षेत्रविशेष एष
प्राज्ञैरतः स्याद्गणितेन गम्यः॥ ५॥

स्पष्टार्थम्।

प्रभा।

अवनिश्च भं च ग्रहाश्च तेषां यानि सस्थानानि स्वस्वाकाशगोलेऽवस्थितयोःतथा मानानि च तेषां प्रतिपादनार्थं विशिष्याभिधानाय दृष्टान्त एव। एष गोलः प्राज्ञैर्विज्ञगणकैः क्षेत्रविशेषः स्मृतोऽभिहितः। वैशिष्ट्यं च सरल-चापक्षेत्राभ्याम्। अतो गणितेन गम्यो विज्ञेयः स्यादित्यर्थः। इन्द्रवज्रावृत्तम्।

भाषाभाष्य।

पृथिवी, ग्रह और नक्षत्रों के परिमाण और स्थिति बतलाने के लिये दृष्टान्तरूप यह गोल क्षेत्रविशेष है। इसलिये विद्वान लोग इसको गणितद्वारा जान सकेंगे॥५॥

इदानीं गणितप्रशंसामाह—

ज्योतिःशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते
नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत्स्पष्टखेटाश्रयम् ।
ते गोलाश्रयिणोऽन्तरेण गणितं गोलोऽपि न ज्ञायते
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति ॥ ६ ॥

स्पष्टार्थम् ।

प्रभा ।

गणयति ग्रहसंस्थानवशेन शुभाशुभफलं निरूपयतीति गणकः । गण संख्याने, कर्त्तरि ण्वुल् । पुराणाश्च ते गणकाश्च तैः । ज्योतिःशास्त्रफलमादेशः, आङ्पूर्वकादिशधातोर्भावे घञ्, शुभाशुभकीर्तनमिति कथ्यते । स प्राक्तनशुभाशुभादेशः लग्नबलाश्रितः । लग्नबलादिकं फलितभागोक्तमत्रावसेयम् । लग्नबलादि च स्पष्टखेटाश्रयम् । खेटाश्च गोलाश्रयिणः गोलशास्त्रावलम्बिनः । तथा गोलज्ञानं गणितैकगम्यं तस्माद्योजनः गणितं न जानाति स गोलं विज्ञातुं नालङ्कर्मीणो भवतीति तत्त्वार्थः । अत्र लग्नबलादि यत्स्पष्टखेटाश्रयमित्युक्तं तत्रेदमनुसन्धेयम् । दृष्टादृष्टभेदेन गणितस्य द्वैविध्यं तावच्चतुरस्रम् । तत्र 'अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं यथार्कयुक्तितः कुरु । गणितं यदि दृष्टार्थं तद्दृष्ट्युद्भवतः सदा' ॥ तथा 'अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं निर्बीजार्कोक्तमेव हि ।' इति तत्त्वविवेकीयकमलाकरोक्त्या महर्षिदर्शितपथानुसारिण एव स्फुटाः खेटाः फलादेशायोपयुज्यन्ते ननु सांप्रतिकोपलब्धसंस्कारसंस्कृताः । निर्बीजार्कोक्तमित्युक्तयातन्निरासात् । फलविषयेऽनार्षगणिताङ्गीकारे बहुत्र श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानसमयादिषु विप्लवः संजायते । तस्माद्धर्माभिमानिभिः सुधीभिः सकलं परीक्ष्य निष्कण्टकः पन्था अनुसरणीयः ।

तत्तत्संस्कारोत्पन्नाः खेटास्तु केवलं ग्रहणोदयास्तादिदृष्टगणित एवोपयुज्यन्ते। दृष्टगणिताभिमानिनोऽदृष्टगणितोन्मूलनाय बहुधा विवदन्ते। परमुभयोः स्वीकारेणैव निर्वाहो नत्वन्यतरस्याङ्गीकारेणेत्यन्यत्र विस्तरः।

भाषाभाष्य।

प्राचीन ज्योतिषीलोग ज्योतिःशास्त्र का फल शुभाशुभ का आदेश कहते हैं। अर्थात् शुभ अशुभ बतलाना ही उसका मुख्य प्रयोजन है। वह आदेश लग्न और ग्रह बलके अधीन है। और ये दोनों स्पष्ट ग्रह के आधार पर हैं, स्पष्ट ग्रह + गोल

+ दृष्ट और अदृष्ट के भेद से गणित दो प्रकार का है। दृष्ट जो आंखों से देखाजाय, जैसे ग्रहण, उदयास्त, युति और शृङ्गोन्नति आदि। और अदृष्ट जो देखने में न आवे, जैसे तिथि, योग आदि। ग्रहण आदि के देखने से ही उसका फल होता है और व्रत उपवास आदिका फल विना देखेही होता है। फलका आदेश केवल ऋषियों के अनुभव सिद्ध वाक्यों से होता है। जो कुछ ग्रहों की स्थिति के अनुसार फल लिखा उपलब्ध होगा, मनुष्य वही जान सकेगा। इस फल की कल्पना ऋषियों के सिवाय कोई नहीं कर और जान सकता।

आर्ष ग्रन्थों में जो ग्रह स्पष्ट बनाने की रीति है उसी रीति से स्पष्ट किये ग्रह फलादेश में उपयुक्त हैं। क्योंकि इन्हीं स्पष्ट ग्रहों के आधारपर श्रौत और स्मार्त कर्मों के समय कहे हैं। इसलिये उसी गणित से जो तिथि आदि सिद्धहों उन्हीं से धर्मव्यवस्था और उसका आचरण करना उचित है।

सांप्रत में युरोप के विद्वानोंने सूक्ष्म वेधद्वारा बहुत से नवीन संस्कार निश्चित किये हैं और उनका ग्रहों में उपयोग लाकर सूक्ष्म-स्पष्ट ग्रह सिद्ध करते हैं। इस स्पष्ट रीति को लेकर अंग्रेज़ी गणित विशारद आजकल कई एक पञ्चाङ्गों में ग्रह स्पष्ट सिद्ध करके उनसे तिथि आदि का साधन करते हैं और उसी के अनुसार धर्म-व्यवस्था करते हैं। परन्तु यह सर्वथा अनुचित और धर्म में बाधा डालना है। क्योंकि आर्षगणित के अनुसार जब एकादशी आदि का उपवास आदि सिद्ध होगा उस काल में इस नवीन सूक्ष्म गणित से उसका सिद्ध होना असम्भव होगा। इसप्रकार ऋषियों के वचन में बाधा पड़ने से धर्म का विप्लव होगा। ऋषियों के वाक्य उन्हीं की रीति पर चलने से घट सकेंगे। इससे स्पष्ट है कि धर्मव्यवस्था के लिये ऋषिप्रोक्त गणित काही आश्रय उचित है।

नवीन वेधसिद्ध संस्कारों को ही प्राचीन ग्रन्थों में 'बीज' नाम से लिखा है। और वेधसे प्राचीनोंने इसका साधन भी किया है। परन्तु इस बीज को ग्रहणादि दृष्ट गणित के ठीक समयज्ञान के लिये उपयुक्त किया है। अदृष्ट गणित में, आजकलकी तरह, नहीं घुसाया। इसलिये आजकल के युरोप के नये संस्कार केवल दृष्ट गणित में उपयुक्त हैं। उसमें इनका उपयोग लेने से कोई बाधा नहीं है। क्योंकि इसकी व्यवस्थाही इसीप्रकार से आचार्योंने की है। जैसा --

'अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं निर्बीजार्कमतादि।
गणितं यदि दृष्टार्थं तद्दृष्ट्युद्भवात् सदा॥'

अर्थात् अदृष्ट गणित के लिये केवल निर्बीज, सूर्यार्क, सूर्यसिद्धान्त के गणित का आदर करना चाहिये और दृष्ट गणित के लिये जिससे ठीक आकाश और गणित का संवाद हो उसी से सदा गणित करना चाहिये।

इसप्रकार निष्पक्षपात और धर्मबुद्धि से यह सिद्ध है कि प्रत्येक विचारशील पुरुषों को, दृष्ट और अदृष्ट गणित उक्त नियमों के अनुसार मानना चाहिये। केवल दृष्टमात्र को ही आर्षों की तरह सत्य मानना महापातक और धर्म का अपचार करना है।

के आश्रित हैं। और गोलविषय गणित के विना नहीं जाना जाता। इसलिये जो गणित नहीं जानते वे गोलको कैसे जानेंगे? ॥ ६ ॥

इदानीं ज्योतिः शास्त्रश्रवणाधिकारिलक्षणमाह—

दिविधगणितमुक्तं व्यक्तमव्यक्तयुक्तं
तदवगमननिष्ठः शब्दशास्त्रे पटिष्ठः।
यदि भवति तदेदं ज्योतिषं भूरिभेदं
प्रपठितुमधिकारी सोऽन्यथा नामधारी ॥ ७ ॥

स्पष्टार्थम्।

प्रभा।

अव्यक्तयुक्तं व्यक्तमुक्तं पाटी, बीजं चेत्यर्थः। तयोरुभयोर्यदवगमनं विज्ञानं तन्निष्ठः समारूढः तथा शब्दशास्त्रे पटिष्ठः, अतिशयेन पटुः पटिष्ठः। 'अतिशायने तमविष्ठनौ' इति इष्ठन्। निष्णात इत्यर्थः। यदि एवंविधो भवति तदा स इदं ज्योतिषं भूरिभेदं, भूरयो भेदाः यस्मिन्। प्रपठितुमध्येतुमधिकारी समर्थो भवति, अन्यथा 'अयं ज्योतिषमधीते' इति नामधारी भवति नतु वस्तुतोऽध्ययनक्षमो भवतीति तात्पर्यम्। मालिनीछन्दः।

भाषाभाष्य।

जो व्यक्त और अव्यक्त (अर्थात् लीलावती, बीजगणित) इन दो प्रकार के गणितों को जानताहो और व्याकरण में दक्ष हो, वह इस अनेक भेदयुक्त ज्योतिष को पढ़ने का अधिकारी है। नहीं तो केवल नामधारी ही है ॥ ७ ॥

अथ व्याकरणवर्णनमाह—

यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यग्
ब्राह्मयाः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम्।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य धीमान्
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी ॥ ८ ॥

स्पष्टार्थम्।

प्रभा।

यः ब्राह्मयाः सरस्वत्याः सदनं स्थानं वेदवदनं वेदानां वदनमिव वदनं व्याकरणशास्त्रं 'शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी' इत्यादिगणिताध्याये प्रतिपादनात्। सम्यगशेषतः वेद वेत्ति स वेदमपि 'विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धर्मादिपुरुषार्था इति वेदाः' 'प्रत्यक्षानुमानागमेषु (प्रमाणेषु) अन्तिमो वेदः' 'समयबलेन सम्यक्परोक्षानुभवसाधनं वेदः' 'अपौरुषेयवाक्यं वेदः' इत्यादिविविधलक्षणनिर्वाच्यं वेद, किमन्यशास्त्रम्। समस्तवाङ्मयाधारभूतस्यापौरुषेयस्य वेदस्य ज्ञानकृते प्रथमं व्याकरणमेवाध्येतव्यम्। एवं व्याकरणज्ञानेनैतादृशस्यमहतोऽगम्यस्य वेदस्यापि ज्ञानं भवति, का कथा पुनस्तत्र तदुपजीव्यस्य शास्त्रान्तरस्येति। 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति सवेदः' इत्येकेनैव वाक्येन कृष्णयजुर्भाष्यभूमिकायां सायणेन वेदस्यव्युत्पादनलक्षणे ह्युक्ते। तत्र प्रमाणत्वेन च—

'प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥' इति

वचनं चोपन्यस्तम्। किंच 'मन्त्रब्राह्मणमित्याहुः' इति बौधायनीयं तथा 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' इत्यापस्तम्बोक्तं विमृश्य 'मन्त्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेद' इति विविधपक्षोपन्यासान्ते ऋग्भाष्यभूमिकायां सायणेन सिद्धान्तितम्। तस्मात्सर्व एव सायणमतानुगामिनो मन्त्राणां ब्राह्मणानां च वेदत्वं मन्यन्ते इति स्फुटं प्रतिफलति।

भाषाभाष्य।

जो सरस्वती का स्थानभूत व्याकरणशास्त्र को भलीभांति जानता है वह वेदों

हो जानसकता है, और शास्त्रों की तो बातही क्या है। इसलिये बुद्धिमान् लोग पहिले व्याकरण पढ़लेवें तो शास्त्रान्तर को सुनने लायक होते हैं ॥ ८ ॥

अथात्मनो गोलग्रन्थस्य प्रवृत्त्यर्थमन्योक्तिप्रकारेणाह—
गोलं श्रोतुं यदि तव मतिर्भास्करीयं शृणु त्वं
नो संक्षिप्तो न च बहुवृथाविस्तरः शास्त्रतत्त्वम् ।
लीलागम्यः सुललितपदः प्रश्नरम्यः स यस्माद्
विद्वन् ! विद्वत्सदसि पठतां पण्डितोक्तिं व्यनक्ति ॥ ९ ॥

स्पष्टार्थम् ।

इति गोलप्रशंसा ।

प्रभा ।

अनेनाचार्यः स्वगोलग्रन्थस्यान्योक्त्या प्रशंसातिशयं प्रकटयति । लीलागम्यः लीलया अनायासेन गम्यो बोध्यः । सुललितानि रमणीयानि पदानि यस्मिन् सः । विद्वत्सदसि पठतामुच्चरतां जनानां विशिष्टवैदुष्यं व्यञ्जयतीत्यर्थः । मन्दाक्रान्ता छन्दः ।

इति प्रभायां गोलप्रशंसा ।

भाषाभाष्य ।

हे पण्डित ! यदि तुम्हारी इच्छा गोलविषय सुनने की है तो भास्कराचार्यकृत सुनो । वह नतो संक्षिप्त है और न व्यर्थ विस्तारही है और शास्त्र का तत्त्वभूत है । इसमें अच्छे पद और प्रश्न हैं । वह सहज में आसकता है । और पण्डितों की सभा में पढ़ने से पण्डिताई प्रकट करता है * ॥ ९ ॥

गोलप्रशंसाध्याय समाप्त हुआ ।

---

* इस श्लोक में भास्कराचार्य ने [illegible] है।

अथ भूसंस्थानप्रश्नं श्लोकद्वयेनाह—

भ्रमद्भचक्रचक्रान्तर्गगने गगनेचरैः।
वृता धृता धरा केन येन नेयमियादधः॥ १॥
किमाकारा कियन्माना नानाशास्त्रविचारणात्।
कीदृग्द्वीपकुलाद्रीन्द्रसमुद्रैर्मुदितोच्यताम्॥ २॥

इयं भूर्गगनेचरैः खेचरैर्वृता केन धृता सती गगने परितो वर्त्तमानेऽधोनेयान्न गच्छेत्। कथमियं गगने स्थितेत्यवगतम्। यतो भ्रमद्भचक्रचक्रान्तर्वर्तते। भानां चक्रं समूहः भचक्रमेव चक्रं भचक्रचक्रम्। यदि भूमेर्मूर्त्ताधारपरम्पराङ्गीक्रियते तदा समन्ताद्वर्तमानघनभचक्रस्याधारे स्खलितस्य भ्रमणं नोपपद्यत इत्यर्थः। तथा च सा भूः किमाकारा कियन्माना द्वीपानां कुलाचलेन्द्राणां च कीदृगवस्थानमिति सर्वं नानाशास्त्रविचारणात्। बौद्धादिप्रतिवादिपक्षमधरीकृत्योच्यतामित्यर्थः।

प्रभा।

न इयात्। इण् गताविति धातोः कर्तरि लिङ्। न गच्छेदिति। तथाच किमाकारा, किम् आकारो यस्याः सा। कीदृशाकारवती। एवं कियन्माना, किं परिमाणमस्येति कियत् 'किमिदंभ्यां वो घः' इति वतुप्, किमः क्यादेशः। इति नानाशास्त्रविचारणात्, तत्तद्वादिमतनिरूपण परीक्षणपुरःसरमुच्यताम्। तथा द्वीपैर्वक्ष्यमाणजम्बूप्रभृतिभिः कुलाद्रीन्द्रैः कुलपर्वतैः समुद्रैश्च कीदृक् क इवेति विग्रहे क्विन् प्रत्यये 'इदं किमोरीश्की, इति क्यादेशे सिद्धम्। मुदिता विहितैरुच्यतामिति प्रश्नः। एते प्रश्ना आचार्येणोच्चरिताः तेऽग्रे स्फुटीभविष्यन्ति। अनुष्टुप्छन्दः।

भाषाभाष्य ।

यह पृथ्वी ग्रह नक्षत्रों से वेष्टित, भ्रमण करतेहुए राशिचक्र के भीतर, आकाश में कैसे ठहरी है जिससे नीचे नहीं गिरसक्ती ? इसका स्वरूप और मान क्या है ? इसपर द्वीप, पर्वत, समुद्र किस प्रकार स्थित हैं ? यह विविध शास्त्रों के विचारपूर्वक कहो ।

इन प्रश्नों के उत्तर आगे आचार्यने स्वयं लिखे हैं ॥ १ । २ ॥

इदानीं ग्रहस्फुटीकरणोपपत्तिप्रश्नान् श्लोकद्वयेनाह—

संसिद्धाद् द्युगणाद्युगादिभगणैःखेटोऽनुपातेन यः
स्यात् तस्यास्फुटता कथं कथमथ स्पष्टीकृतिर्नैकधा ।
किं देशान्तरमुद्गमान्तरमहो बाह्वन्तरं किं चरं
किं चोच्चं मृदु चञ्चलं च तदिदं कस्तात पातः स्मृतः ॥ ३ ॥
किं केन्द्रं किमुकेन्द्रजं किमु चलं किंवाचलं तत्फलं
कस्मात्तत्सहितः कुतश्च रहितः खेटः स्फुटो जायते ।
किं दृक्कर्म तथोदयास्तसमये द्वेधा विदध्युर्बुधाः
सर्वं मे विमलं वदामलमलं गोलं विजानासि चेत् ॥ ४ ॥

अत्र किं देशान्तरमुद्गमान्तरमित्यादि यत्पृष्टं तत्सर्वं मे विमलं यथा भवति तथा वद । यद्यमलं ब्रह्मादिशुकविरचितं गोलमलमत्यर्थं विजानासि । शेषं स्पष्टम् ।

भाषाभाष्य ।

युगभगणों से अहर्गण बनाकर अनुपातद्वारा जो ग्रह सिद्ध किए जाते हैं वे अस्फुट क्यों होते हैं ? और स्पष्टीकरण एकविध क्यों नहीं है ? देशान्तर, उदयान्तर, भुजान्तर, चर, मन्दोच्च, शीघ्रोच्च और पात किसे कहते हैं ? केन्द्र क्या है ? मन्दकेन्द्र और शीघ्रकेन्द्रफल क्या है ? ग्रहमें इनको क्यों जोड़ते, घटाते हैं जिससे स्पष्ट होजाते हैं ? और उदय किंवा अस्तकाल में आयन और आक्षभेद से दृक्कर्म दो प्रकारका क्यों पण्डितों ने कहा है ? यदि तुम भलीभांति गोल जानते हो तो यह सब हमको कहो । इन सब प्रश्नों के उत्तर आगे लिखे हैं ॥ ३ । ४ ॥

अथ त्रिप्रश्ने दिनमानभेदप्रश्नं श्लोकद्वयेनाह—

महदहः किमहो रजनीतनु—
दिनमणौ गणकोत्तरगोलगे ।
ननु तनुर्दिवसो महती निशा
वद विचक्षण दक्षिणदिग्गते ॥ ५ ॥
भवति किं द्युनिशं द्युनिवासिनां
द्युमणिवर्षमितं च सुरद्विषाम् ।
पितृषु किं शशिमासमितं तथा
युगसहस्रयुगं द्रुहिणस्य किम् ॥ ६ ॥

स्पष्टम् ।

प्रभा ।

अहो गणक ! उत्तरगोलगे मेषादिराशिषट्के वर्तमाने दिनमणौ दिनस्य मणिरिव दिनमणिः सूर्यस्तस्मिन् । महदहः दीर्घं दिनं, तनुः स्वल्पा रजनी किम् ? कथं भवतीत्यर्थः । हे विचक्षण ! विशेषेण चष्टे इति । दक्षिणदिग्गते तुलादिराशिषट्के स्थिते दिनमणौ दिवसस्तनुः महती च निशा कथं भवतीति वद कथय । द्युनिवासिनां दिवि निवसन्ति ते द्युनिवासिनस्तेषाममराणां, सुरद्विषां, सुरान् द्विषन्ति सुरद्विषः क्विप्, तेषां द्युनिशमहोरात्रं द्युमणिवर्षमितं सौरसमामितं किं भवति । तथा पितृषु तद्देशेषु शशिमासमितं चान्द्रमासप्रमाणकं द्युनिशं किं कथं जायते । द्रुहिणस्य ब्रह्मणः युगसहस्रयुगं द्विसहस्रयुगमितं द्युनिशं किमिति सर्वं वद । द्रुतविलम्बितं छन्दः ।

भाषाभाष्य ।

हे गणक ! जब रवि उत्तरगोल में रहताहै तब दिनबड़ा और रात्रिछोटी क्यों

होताहै ? और दक्षिणगोल में छोटादिन, बड़ीरात्रि क्यों होती है ? देवता और दैत्यों का अहोरात्र सौरवर्ष के तुल्य और पितरों का चान्द्रमासके तुल्य क्यों होताहै ? और ब्रह्माका दिव्य दोहजार युगोंका अहोरात्र क्यों होताहै ?

इन प्रश्नों के उत्तर आगे त्रिप्रश्नवासना में लिखे हैं ॥ ५ । ६ ॥

अथ राश्युदयभेदप्रश्नमाह—

भवलयस्य किलार्कलवाः समाः
किमसमैः समयैः खलु राशयः ।
समुपयान्त्युदयं किमु गोलविन्
न विषयेष्वखिलेष्वपि ते समाः ॥ ७ ॥

स्पष्टम् ।

प्रभा ।

भानां राशीनां वलयं मण्डलं भवलयं क्रान्तिवृत्तमित्यर्थः । तस्य समा द्वादशभागा राशयोऽन्नासमयैरतुल्यैः समयैः किमु उदयं समुपयान्ति प्राप्नुवन्ति । हे गोलवित् ! ते राशयः अखिलेष्वपि विषयेषु सकलदेशेषु समा न भवन्ति । किमत्र कारणमिति प्रश्नः ।

भाषाभाष्य ।

हे गोलज्ञ ! क्रान्तिवृत्तके समान बारह हिस्से द्वादशराशिरूप तुल्यकालमें क्यों नहीं उदय होते ? और वे उदय सबदेशों में समान क्यों नहीं होते ?

उत्तर त्रिप्रश्नवासना में लिखे हैं ॥ ७ ॥

इदानीं द्युज्याकुज्यादिसंस्थानप्रश्नं वृत्तार्धेनाह—

द्युज्याकुज्यापमसमनराग्राक्षलम्बादिकानां
विद्वन् गोले वियति हि यथा दर्शय क्षेत्रसंस्थाम् ॥

स्पष्टार्थम् ।

भाषाभाष्य ।

द्युज्या, कुज्या, क्रान्ति, समशङ्कु, अग्रा, अक्षांश और लम्बांश इनकी आकाश में जैसी स्थिति है वैसीही गोलमें क्षेत्र स्थिति कहो ।

यह सब अन्तचेत्र के अवयवभूत हैं इनका प्रतिपादन त्रिप्रश्नवासना में कियाजायगा ॥

इदानीं चन्द्रार्कग्रहणयोर्दिक्कालभेदाद्युपपत्तिप्रश्नान् सार्धश्लोकेनाह.

तिथ्यन्ते चेद्ग्रह उडुपतेः किं न भानोस्तदानी-
मिन्दोः प्राच्यां भवति तरणेः प्रग्रहः किं प्रतीच्याम् ॥ ८ ॥
लम्बनं वत किं का च नतिर्मतिमतांवर।
तत्संस्कृतिस्तिथौ वाणे किं ते सिद्धे कुतः कुतः ॥ ९ ॥

अत्र किल प्रष्टुरयमभिप्रायः । चन्द्रग्रहणे भूभाग्रहणकर्त्री। पौर्णमास्यन्ते भूभेन्दोस्तुल्यत्वाद्युतिर्भवितुमर्हति । एवं सूर्यग्रहे चन्द्रश्छादकः। दर्शान्ते तयोस्तुल्यत्वाद्योगेन भवितव्यम् । अत उक्तम् । तिथ्यन्ते चेद्ग्रह उडुपतेः किं न भानोस्तदानीमिति । वत अहो गणक लम्बनं नाम किं नतिश्च का। तत्संस्कृतिस्तिथौ वाणे च किम् । लम्बनेन तिथिः संस्क्रियते नत्या किं वाणश्च । तथान्यः प्रश्नः। ते सिद्धे कुतः कुतः इति। ते लम्बनावनती कुतो हेतोः कुतः पृथिव्याः साधिते। भूव्यासार्धेन साधितेत्यर्थः। तथेन्दोः प्राच्यां दिशि स्पर्शः। किं रवेः प्रतीच्यामित्यादि सर्वं वद।

प्रभा।

तिथिः सूर्याचन्द्रमसोर्द्वादशांशान्तरभवः कालः। वा, तनोति विस्तारयति चन्द्रकलामिति तिथिः, बाहुलकादिथिन् कृते सिद्धम्। शुक्लपक्षादितः पूर्णान्तं यावच्चान्द्रमसी,कलाप्रतिदिनमेककलावृद्ध्योपचिता जायते। अत एव ' अमादिपौर्णमास्यन्ता या एव शशिनः कलाः। तिथयस्ताः समाख्याताः ' इति तन्त्रोक्तं तिथिलक्षणं संगच्छते । एवं द्वितीया-तृतीयादितिथिनाम कलावृद्धिक्रमेणैव व्यवहृतं कलायास्तिथेश्च पर्यायवाचकत्वात् । पूर्णान्तं यावत्कलावृद्ध्या तिथ्यन्तश्च स

एवोदीर्यते। तस्मिन् तिथ्यन्ते उडुपतेः उडूनांपतिश्चन्द्रस्तस्य ग्रहणं भवति तदा भानो रवेः किं कस्मान्न जायते? चन्द्रग्रहणं पूर्वतः प्रारभ्यते रवेश्च पश्चिमतः किमिति? किं तावल्लम्बनं का च नतिः? लम्बनसंस्कारस्तिथौ नतेश्च शरे किमिति विधीयते? किंच ते लम्बनावनती कुतो भूमेः कुतः कस्मात् सिद्धे इति प्रश्नः। मन्दाक्रान्ता छन्दः।

भाषाभाष्य।

+ पूर्णा को चन्द्रग्रहण तो होताहै पर सूर्यग्रहण क्यों नहीं होता? चन्द्रग्रहणमें पूर्वदिशा में और सूर्यग्रहण में पश्चिमदिशा में स्पर्श क्यों होता है? लम्बन और नति किसे कहते हैं? तिथि में लम्बन और शर में नति का संस्कार क्यों कियाजाता है? लम्बन और नति भूव्यासार्ध से क्यों सिद्ध किए गए हैं? यह सब बतलाओ॥ ८। ९॥

अथ शृङ्गोन्नतौ चन्द्रशुक्लस्य क्षयवृद्धिप्रश्नमाह—

शुक्लस्य द्विजराज एष महसो हान्या कुवृत्तः कुतः
सद्वृत्तत्वगतोऽप्यहो भ्रमभवाद्दोषातिसङ्गादिव॥
संप्राप्याथ पुनस्त्रयीतनुमतस्तस्याश्रयेणैव किं
शुक्लस्य क्रमशस्तथैव महसो वृद्ध्येति सद्वृत्तताम्॥१०॥

अहो गणक एष द्विजराजश्चन्द्रः सद्वृत्तत्वं गतोऽपि पौर्णमास्यां सुवर्तुलतां प्राप्तोऽपि कुतो हेतोः कुवृत्तः कुवर्तुलो भवति। भ्रमभवाद्दोषातिसङ्गादिव। दोषा रात्रिः। तथा पौर्णमास्यां सकलया सकलस्यापि चन्द्रस्य यः सङ्गः सोऽतिसङ्गः। तत्सङ्गानन्तरं शुक्लस्य तेजसो हानिं याति तथा हान्या कुवृत्तः कुत्सितवृत्तः स्यादितीव प्रतिभाति। यथा द्विजराजो ब्राह्मणोपि सद्वृत्तत्वं सदा

+ चन्द्रग्रहण हमेशा [illegible] नहीं होता। कभी इधर उधर भी होजायाकरता है। यह बात 'दर्शे [illegible] –' इस श्लोक के वासनाभाष्य से स्पष्ट है। अर्थात् [illegible] [illegible] से होता है।

त्वारत्वं गतोऽपि भ्रमभवाच्चित्तचलनसंभवाद्दोपातिसङ्गात् पापातिसङ्गाच्छुक्लस्य शुद्धस्य तेजसो हानिं याति । तस्मा कुत्सितवृत्तः स्यात् । अथ पुनस्त्रयीतनुमादित्यं प्राप्य ततोऽनन्तरं शुक्लस्य तेजसो वृद्ध्या तथैव सद्वृत्ततां सुवर्तुलतां प्राप्नोति । तस्य भगवतस्त्रयीतनोराश्रयेणैव । यथा कुवृत्तो ब्राह्मणस्त्रयीतनुं त्रैविद्यं पर्षत्त्रैविद्यमेववेति स्मृत्युक्तं पर्षद्रूपमन्यं ब्राह्मणं प्राप्य तेन कृतानुग्रहस्तेजोवृद्धिं तथा पुनः सुवृत्ततामेतीत्यर्थान्तरम् ।

इति सिद्धान्तशिरोमणिवासनाभाष्ये मिताक्षरे गोलाध्याये
गोलस्वरूपप्रश्नाध्यायः ।

प्रभा ।

अहो गणक एष द्विजराजः द्विजानां राजा द्विजराजः । राजाहःसखिभ्यष्टजिति समासान्तष्टच् । चन्द्रः सद्वृत्तत्वगतोऽपि पूर्णिमायां पूर्णवर्तुलोऽपि महसः शुक्लस्य तेजसः हान्या क्षयेण भ्रमभवाद्दोपातिसङ्गादिव, भ्रमोऽप्रमात्मकज्ञानसहकृतः कामाद्यनेकविधश्चित्तविक्षेपस्तदुद्भवो यो दोषायाः रात्रेरतिसङ्गः समागमस्तस्मादिव कुतः कस्माद्धेतोः कुवृत्तो विषमवृत्तः संजात इत्यर्थः । पूर्णानन्तरं प्रतिदिनं चन्द्रमसः शुक्लस्यापचयदर्शनात्पूर्णिमासङ्गजनितदोषादिव चन्द्रशुक्लक्षय इत्युत्प्रेक्षा । अथ पुनस्त्रयीतनुं, त्रयी वेदा एव तनुः शरीरं यस्य सः । त्रयीविद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्त इति भागवताच्चथा 'त्रयीमयोऽयं भगवान्' इत्यादिसूर्यसिद्धान्तोक्तेश्च सूर्य एव त्रयीतनुरिति स्फुटम् । तं सूर्यं प्राप्य महसः शुक्लस्य क्रमशः वृद्ध्या,दर्शे सूर्याचन्द्रमसोर्योगो भवति दर्शान्तानन्तरं च शुक्लस्य क्रमशो

वृद्धिर्भवति । तस्य त्रयीतनोराश्रयेणैव सद्वृत्ततां पूर्णवर्तुलाकारतां किं कथमेति प्राप्नोति । एवं द्विजराजो ब्राह्मणोऽपि सद्वृत्तत्वं ... रत्वं गतोऽपि प्राप्तोऽपि भगमवः प्रमादजो यो दोषस्य पापस्यातिसङ्गः समागमस्तेन महसः शुक्रस्य ब्रह्मतेजसो हान्या न्यूनीभावेन कुवृत्तः नीचाचारः सन् भगवन्तं त्रयीतनुं दिवाकरमाराध्य तन्महिम्ना महसः शुक्रस्य तेजसो वृद्ध्योपचयेन पुनः सद्वृत्ततां सुदशामेतीत्यर्थः । एवं पक्षद्वयेऽपि स्फुटोऽर्थः ।

इति प्रभायां गोलस्वरूपप्रश्नाध्यायः ।

भाषाभाष्य ।

हे गणक ! यह चन्द्र पूर्णबिम्ब (पूर्णा को) होकर भी निज शुक्लता की हानिसे, मानो चित्तकी चञ्चलता से रात्रिसङ्गमसे ही, कैसे क्षीण होगया ? और फिर सूर्य को (अमा को) पाकर मालूम होता है उसीके आश्रय सेही क्रमसे निज शुक्लता की वृद्धिमे पूर्णबिम्ब होजाता है । यह क्या बातहै ?

ऐसे द्विजराज, ब्राह्मण सदाचारी होकरभी नानाविध दोषों के सङ्गसे अपने ब्रह्मतेज की हानिसे कुदशाको पहुँचता है । और फिर सूर्यदेव की आराधना से क्रमसे निज ब्रह्मतेज को पाकर सदाचारी कहलाताहै । यह प्रश्नशृङ्गोन्नतिका है ॥१०॥

गोलस्वरूपप्रश्नाध्याय समाप्त हुआ ।

अथ प्रथमप्रश्नस्य पृथ्वीसंस्थानस्योपपत्तेरुत्तरं विवक्षुरादिसर्गे पृथिव्यादीनां तत्त्वानामादितत्त्वं निखिलजगज्जननैकबीजं परं ब्रह्म मनसा प्रणिपत्यादौ तावत् तज्जयमाह—

यस्मात्क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां महानस्य गर्भे-
ऽहंकारोऽभूत् खकशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च ।
ब्रह्माण्डं यज्जठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद्विरञ्चे-
र्विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्म तत्तत्त्वमाद्यम् ॥ १ ॥

जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । किं तत् । परं ब्रह्म । आदि तत्त्वं यत् । किं विशिष्टम् । यस्मात् क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां सकाशान्महानभूत् । महतोगर्भेऽहंकारोभूदित्यादि । अत्रैतदुक्तं भवति । सांख्यादियोगशास्त्रेषु श्रुतिपुराणेषु चादिसर्गे यथोदितं तदत्रोच्यते। तत्र प्रकृतिर्नामाव्यक्तमव्याकृतं गुणसाम्यं कारणमित्यादयः प्रकृतेः पर्यायाः । तस्याः प्रकृतेरन्तर्भगवान् सर्वव्यापकः पुरुषोऽस्ति । सत्त्वं रजस्तम इति सर्वे गुणास्तुल्या एव सन्ति । अतएव तद्गुणसाम्यम् । तथा प्राकृतिके पूर्वे प्रलये लीनस्तत्राव्यक्तो व्यापकः कालोऽप्यस्ति । यदा स भगवान् वासुदेवः परब्रह्माख्यः सिसृक्षुर्भवति तदा तस्मात् संकर्षणाख्योंऽशो निर्गत्य प्रकृतिपुरुषयोः सन्निधिस्थयोः क्षोभं जनयति । ताभ्यां क्षुब्धाभ्यां महानभूत् । महान् वै बुद्धिलक्षण इति । तन्महत्तत्त्वं बुद्धितत्त्वं चोच्यते । यन्महत्तत्त्वं स प्रद्युम्ननामा भगवतोंऽशः तस्य महत्तत्त्वस्य विकुर्वाणस्य गर्भेऽहंकारोऽभूत् । सोऽनिरुद्धनामा । त एते वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धा इति मूर्तिभेदा वैष्णवागमे विशेषतः प्रसिद्धाः । सोऽहंकारो गुणवशेन त्रिधाऽभवत् । यः सात्त्विकः स वैकारिकः । यो राजसः स तैजसः । यस्तामसः स भूतादिः । यथोक्तं विष्णुपुराणे—

'वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ।
त्रिविधोऽयमहंकारो महत्तत्त्वादजायत ॥ '

तत्र यस्तामसोऽहंकारः स भूतादिः । तस्मात् पञ्चमहाभूतान्यभवन् । कानि तानि भूतानि । खकशिखिजलोर्व्यः । खमाकाशम् ।

को वायुः । शिखी अग्निः । जलमुदकम् । उर्वी पृथ्वी । एतानि भूतानि स्वस्वगुणपूर्वकाण्यभूवन् । शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा इत्याकाशादीनां मुख्यगुणाः । तत्राहंकाराच्छब्दतन्मात्रम् । गुणस्यातिसूक्ष्मरूपावस्थानं तन्मात्रशब्देनोच्यते । शब्दतन्मात्रादाकाशम् । आकाशात्स्पर्शतन्मात्रम् । तस्माद्वायुः वायोरूपतन्मात्रम् । तस्मात् तेजः । तेजसो रसतन्मात्रम् । तस्माज्जलम् । जलाद्गन्धतन्मात्रम् । ततः पृथ्वी । एवमाकाशादीन्येकोत्तरगुणान्यभवन् । अथ च तेषां गुणानां शब्दादीनां ग्राहकाणीन्द्रियाणि । श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चेति पञ्चबुद्धीन्द्रियाणि । वाक्पाणिपादगुदमेढ्राणीति पञ्च कर्मेन्द्रियाणि । उभयात्मकं मनः । नहीन्द्रियैः स्वातन्त्र्येण गुणग्रहणं कर्तुं शक्यते । अतस्तदधिष्ठातारो देवाः ।

'दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ।'

इति श्रोत्रेन्द्रियस्य दिशः । त्वचो वायुः । चक्षुषोऽर्कः । जिह्वाया वरुणः । नासिकयोरश्विनौ । तथा वाचोऽग्निः । पाणेरिन्द्रः । पादयोर्विष्णुः । गुदस्य मित्रः । मेढ्रस्य प्रजापतिः । मनसश्चन्द्रः । इतीन्द्रियाधिष्ठातारः । तत्र बाह्येन्द्रियाणि तानि तैजसादहंकारात् । ये देवास्ते वैकारिकादभवन् । यथोक्तं विष्णुपुराणे—

'तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ।
एकादशं मनश्चात्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ॥'

इति । [illegible] । एवमुत्पन्नानां तत्त्वानां [illegible] जलमध्ये बुद्बुदा-

कारं ब्रह्माण्डमभवत् तज्जठरे पद्माकारा मही। तत्र कर्णिकाकारो मेरुस्तत्पृष्ठनिष्ठश्चतुर्वेदनः कमलोद्भवस्तस्मात् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं विश्वमभवत्। यस्मादाद्यतत्त्वात् परब्रह्मणः क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां महदादिपरंपरासमुदायोत्पादितब्रह्माण्डजठरगतजगतीजलजजनिताद्विरञ्चेरिदं विश्वमभवत्। शश्वदनवरतम्। तस्य ब्रह्मणोऽवसानेऽन्यो ब्रह्मान्यज्जगदित्यर्थः। अतस्तदाद्यं तत्त्वं जयति।

प्रभा।

तदाद्यं तत्त्वं परमं ब्रह्म जयति। यस्मात् क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां, क्षुब्धौ संक्षोभमधिगतौ यौ प्रकृतिपुरुषौ ताभ्याम्। प्रकृतिः, प्रकर्षेण सृष्ट्यादिकं करोतीति विग्रहे प्रपूर्वकात्कृधातोः कर्तरि क्तिच्। 'सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम्। साम्यावस्थितिरेतेषां प्रकृतिः परिकीर्तिता।' इति लक्षणविशिष्टा सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थितिरूपा भगवतो मायाख्या शक्तिः। साहि 'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याःप्रकृतिविकृतयः सप्तेति श्रीमदीश्वरकृष्णोक्तसांख्यकारिकावचनेन विकाररहिता सृष्टिनिदानभूता जडजगद्रूपा च। अनया पुरुषस्य जीवात्मरूपस्य संक्षोभेण महत्तत्त्वं बुद्धितत्त्वमभूत्। ततोऽहंकारः समुत्पन्नः। तस्मात् खकशिखिजलोर्व्यः आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवीति क्रमेण गुणस्यैकोपचयेन, शब्दगुणसहितमाकाशं, शब्दस्पर्शगुणद्वयसमेतो वायुः, शब्दस्पर्शरूपात्मकगुणत्रयसमेतोऽग्निरित्थं पञ्चमहाभूतान्युत्पन्नानि। ततः संहतेश्च आकाशादितत्त्वानांसमुदायाद् ब्रह्माण्डं ब्रह्मणो जगत्स्रष्टुरण्डमभवत्। यस्य जठरगता मही, तस्याः पृष्ठनिष्ठो विरञ्चिर्विधाता वर्तते। यतः विश्वं स्थावरजङ्गमात्मकमभवत्।

एवंविधः परमं ब्रह्म शश्वदनवरतं जयति सर्वातिशयेन वरीवर्तेत इत्यर्थः। सूर्यसिद्धान्तानुरूपोऽयं सृष्टिक्रमः।

भाषाभाष्य।

वह आदितत्त्व परब्रह्म सदा सर्वोपरि है। जिसके द्वारा प्रकृति और पुरुष मे क्षोभ होनेसे महत्तत्त्व की उत्पत्ति है। और महत्तत्त्व से अहङ्कार और उससे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति है + और इन सबों से ब्रह्माण्ड की उत्पत्तिहै, जिसके भीतर पृथ्वी के पृष्ठपर ब्रह्मा विराजते हैं, जो कि विश्व के कर्त्ता हैं॥ १॥

इदानीं भूमेः स्वरूपमाह—

भूमेः पिण्डः शशाङ्कज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा—
वृत्तैर्वृत्तो वृतः सन्मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम्।
नान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे
निष्ठं विश्वं च शश्वत्सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात्॥२॥
सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः।
कदम्बकुसुमग्रन्थिः केसरप्रसरैरिव॥ ३॥

योऽयं मृदनिलसलिलव्योमतेजोमय इति पाञ्चभौतिको भूमेः पिण्डो वर्तुलाकारस्तद्बहिस्थैः शशाङ्कादिकक्षावृत्तैरावृतः सन्नन्याधारः स्वशक्त्यैव नियतं निश्चितं वियत्याकाशे तिष्ठति। तत्पृष्ठनिष्ठं च जगत्। सदनुजमनुजादित्यदैत्यम्। दनुजा दानवाः। मनुजा मानवाः। आदित्या देवाः। दैत्या असुराः। तैः समेतं समन्तात् तिष्ठति। शेषं स्पष्टार्थम्।

+ प्रकृति उसे कहते हैं जहां सत्त्व रज और तम ये तीनों गुण समानरूपसे वर्तमान हों। वह प्रकृति विकाररहित और जड जगत्‌रूप है। उससे पुरुष (जीवात्मा) का संयोग होने से, क्रमसे महत्, अहङ्कार, एकादश इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्र (जो गुण सूक्ष्मरूपसे वर्तमान रहताहै उसे 'तन्मात्र' शब्दसे व्यवहार करतेहैं, वह सम्यक् समझतेहैं) और पञ्चमहाभूत की सृष्टि हुई है। यहां आचार्यने सृष्टिक्रम सांख्यदर्शन और योगविषयको के अनुसार लिखाहै।

प्रभा ।

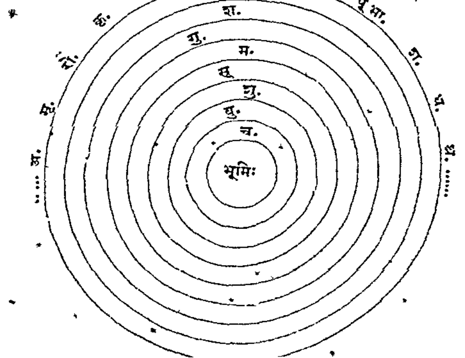
न विद्यते अन्यः आधारो यस्य सः । स्वशक्त्यैव वियति नियतं निश्चितं तिष्ठति । सर्वतः परितः । चैत्यं यज्ञायतनभेदः । एतेषां चयैः समुदायैश्चितो व्याप्तः । केसरप्रसरैः किंजल्कैः कदम्बकुसुमग्रन्थिरिव वर्तते । एतदुक्तं भवति । यथा कदम्बकुसुमग्रन्थिः केसरैः परितो व्याप्तो भवति तथैव भूरपि समन्तात्पर्वतादिभिश्चितास्तीति । भूमेः पिण्ड इति स्रग्धरा छन्दः ।

भाषाभाष्य ।

यह भूपिण्ड, चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, मङ्गल, बृहस्पति, शनि और नक्षत्र कक्षाओं से आवृत है + यह मृत्तिका, अग्नि, जल, आकाश और तेजमय है । इसका कोई आधार नहीं है केवल अपनी शक्ति से स्थित है । इसके पृष्ठपर सदा असुर, मनुष्य, देव और दैत्य आदि के सहित विश्व स्थित है ।

कदम्ब पुष्प की ग्रन्थि जैसे केसरों से व्याप्त रहती है वैसे ही पृथ्वी चारों तरफ से पर्वत, बगीचा, ग्राम, यज्ञशाला आदि से व्याप्त है ॥ २—३ ॥

+ भूमिको केन्द्र मानकर नीचे लिखे क्रमसे ग्रह और नक्षत्रों की कक्षा वृत्ताकार मानीगई है ॥



इदानीं पुराणेषु भूमेराधारपरंपरा या पठिता तां निराकुर्वन्नाह—

मूर्तो धर्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्य—
स्तस्याप्यन्योऽस्यैवमत्रानवस्था ।
अन्ते कल्प्या चेत्स्वशक्तिः किमाद्ये
किं नो भूमेः साष्टमूर्तेश्च मूर्तिः ॥ ४ ॥

स्पष्टम् ।

प्रभा ।

पुराणेषु शेषकूर्मवाराहादयो ये हि भुवोधारकत्वेन प्रदिष्टास्तत्रान-वस्थादोषं लक्ष्यीकृत्याचार्यस्तन्निरूपणपूर्वकं स्वमतमादिशति । चेद्ध-रित्र्याः पृथिव्याः मूर्तः साकारो धर्ता कल्प्येत तदास्यधर्तुरप्यन्याधा-रस्तस्याप्यन्य एवं परंपराकल्पनयानवस्थितिः स्यात् । चेदन्ते स्वशक्तिः कल्प्या यदियं नान्याधारा किन्तु स्वशक्त्यैवस्थितास्ति तदा प्रथममेव किमिति न निराधारा कल्प्यते । किं सा अष्टमूर्तेः शिवस्यैका मूर्तिः नो ? अपितु अस्त्येव । एवं निराधारकल्पनायां को दोष इति फलितम् । किंच सूर्यसिद्धान्ताद्यार्षनिबन्धेषु—

मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नितिष्ठति ।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥

परन्तु आजकल में यूरोपियन मत से कक्षाक्रम भिन्न है । उन लोगों के मत में पृथ्वी चल और सूर्य स्थिर है । पृथ्वी आदि का सूर्यकेन्द्रक (Heliocentric) भ्रमण होता है । जो सूर्यकेन्द्रक भ्रमण करते हैं वे ग्रह हैं और जो भूकेन्द्रक (Geocentric) भ्रमण करते हैं वे उपग्रह हैं जैसे चन्द्रमा । और प्रायः सब ग्रहों की कक्षा दीर्घवृत्ताकार है । उन में वे सब ग्रह भ्रमण करते हैं । कक्षाओं के दीर्घवृत्ताकार होने में कारण आकर्षण शक्ति है । उसका वर्णन आगे "आकृष्टशक्तिविचार" इस प्रकरण की उपपत्ति में किया जायगा । इस प्रकार ग्रहों का कक्षाक्रम नीचे लिखे समान है —

(७) शनि (६) गुरु (५) मङ्गल (४) पृथ्वी (३) शुक्र
(२) बुध (१) सूर्य

इति लेखेनापि ब्रह्माण्डमध्ये केन्द्ररूपाकाशे ब्रह्मणः परमां शक्ति निराधाराविरस्थानरूपां धारयन् भूगोलस्तिष्ठतीति सिध्यति । एवं स्वशक्तिरेव भुवः स्थितौ निदानमिति निश्चितं सांप्रतिकसर्वेषादिसंमतम् । शालिनी छन्दः ।

भाषाभाष्य ।

यदि भूमि किसी साकारवस्तु के आधारपर स्थित है तो उस आधार का भी कोई आधार होना सम्भव है । यों एक वस्तु का दूसरा आधार कल्पना करते जायँ तो अनवस्थिति होजायगी यदि अन्त मे निजशक्ति की कल्पना की जाय तो वह पहिले से ही क्यों न मानी जाय ? क्या भूमि अष्टमूर्ति शिवकी एकमूर्ति में से नहीं है ? इसप्रकार स्वशक्ति से ही पृथ्वी स्थित है । पुराणों मे जो शेष, कूर्म आदि आधार कल्पना किया है वह दोषग्रस्त है ।

सूर्यसिद्धान्त आदि आर्षग्रन्थों में भी स्वशक्ति से ही भूमि का ठहरना माना है। जैसा

'मध्येसमन्ताद्दण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥' ॥ ४ ॥

इदानीं कथमियं भूमेः स्वशक्तिरित्याशङ्कां परिहरन्नाह—

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता
विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि ।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो
यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तयः ॥ ५ ॥
आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत्
खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या ।
आकृष्यते तत्पततीव भाति
समे समन्तात् क पतत्वियं खे ॥ ६ ॥

पूर्वश्लोकः सुगमः । आकृष्टशक्तिश्च महीत्यनेन भूमेरधः पतनं तत्तिर्यगधःस्थितानां चाधःपतनशङ्का निरस्ता ।

प्रभा।

यथा अर्कानलयोरुष्णता, विधौ शीतता, के जले द्रुतिर्द्रवत्वं, अश्मनि पाषाणे कठिनत्वं, 'मरुद्वायुश्चलः तथा स्वभावतः, स्वरूपेण भूरचला यतो वस्तुशक्तयो विचित्रा' सन्ति। स्वत एवैतेषां वस्तुनामिय शक्तिरस्ति।

मही धरा आकृष्टशक्तिराकर्षणशक्तिवती तया खस्थं गुरु वस्तु स्वशक्त्या स्वाभिमुखमाकृष्यते तद्वस्तु समे पततीव भाति। इयं भूः खे समन्तात्क्व पततु? न क्वापीति भावः।

भाषाभाष्य।

जैसे सूर्य और अग्निमें उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता, जल में द्रवत्व (बहना पाषाण में कठोरता, वायु में चचलता, वैसे ही पृथ्वी मे स्थिरत्व स्वभाव से ही है इन कारणों से ज्ञात होताहै कि वस्तुकी शक्तिया विचित्र हैं। इससे पृथ्वी में ज ठहरनेकी शक्तिहै वहभी स्वभाव सेही है। पृथ्वीमें आकर्षणशक्ति है, उस से आका मे फेंकी हुई भारी वस्तुओं को अपनी तरफ खींचती है और यह भारी वस्तु गिरत हुई दृष्टिमें आतीहै। परन्तु पृथिवी कहीं नहीं गिर सकती। क्योंकि आकाश सबतर समान है और भूगोल के ऊपर सब दिशाओं में मनुष्य आदि निवास करते हैं। फि यदि यह पृथिवी नीचे जातीहुई मानें तो यह कहा पडेगी? + यह मत बौद्ध का है, आचार्य ने आगे इसका खण्डन किया है।

+ बौद्धलोगों का मत है कि पृथिवी निराधार तो है परन्तु यह नीचे को [illegible] चली जाती है। क्योंकि आ- काश में कोई गुरुपदार्थ ठहर नहीं सकता यों पृथ्वी भी नहीं ठहरेगी। इसलिए यह नित्य नीचे को च- ली जाती है। इसी भ्रम को दूर करने के लिए आचार्य ने 'समं समन्तात्'- इत्यादि लिखा है। [illegible] जाती है। [illegible] पूछनेवाले कहेंगे कि सिद्धपुर के तरफ आकाशवक्षा पर यह पृथ्वी पड़ी। और सिद्धपुरनिवासी कहेंगे [illegible] तरफ आकाशवक्षा पर गिरा पड़ेगा। इसप्रकार यमकपत्तन और रोमकपत्तननिवासी भी आपसमें कहेंगे परन्तु आकाश तो सब तरफ समान है, फिर यह कहां जाती है तो कहा पड़ेगी? इसप्रकार युक्तियों से बौद्धोंका ज्ञान भ्रममूलक है। [illegible]

उपपत्ति ।

(आकर्षणशक्ति)

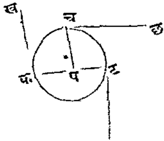
शक्ति अनिनश्वर पदार्थ है । इस शक्ति के प्रभावसे सारा विश्व बद्ध होरहा है । किसी वस्तुमें शक्तिका प्रयोग करदेने के बाद जबतक उसमें बाधकशक्तिका संयोग न होगा, वह पदार्थ शक्ति के अधीन रहेगा । शक्तिका परिचय चुम्बकसे सहज में होजाताहै । इस चुम्बक का प्रभाव बहुत कम है, पर आकर्षणशक्ति का प्रभाव व्यापक है । इसका विचार अंग्रेजी गोलग्रन्थो मे खूब है ।

यहा पृथिवी के आकर्षणशक्ति का प्रभाव दिखलाना है । पृथिवी में जो आकर्षणशक्ति है उससे वह अपने आसपासके पदार्थों को खींचा करती है । पृथिवी के समीप में आकर्षणशक्ति बहुत अधिक होती है और जिसप्रकार दूरी बढ़ती जाती है, वैसे ही वह घटती जाती है ।

किसी स्थान से भारी और हलकी वस्तु पृथ्वीपर छोडीजायँ तो दोनो समान कालमें पृथ्वीपर गिरेंगी, यह न होगा कि भारी वस्तु पहिले गिरे, परन्तु दूरी समान होनी चाहिए । कभी कभी वायु आदि बाधक शक्तियो से हलकी चीजों के पतनकालमें अन्तर पडा करता है । इन बातों की परीक्षा जल, स्थल, पर्वत जहा चाहे होसकती है, फलमें कोई अन्तर नहीं पडता । परन्तु जितनेही ऊंचे पर परीक्षा की जायगी आकर्षणशक्ति में उतनीही कमी होगी । परीक्षा के लिए न्यूटनने चन्द्रमा का उपयोग किया है । चन्द्र पृथ्वी से करीब अढ़ाई लाख मीलकी दूरीपर है । वहां के पदार्थों को भी पृथ्वी अपनी तरफ खीचती है । पर दूरसे गिरनेवाले पदार्थों का वेग उतना नहीं होता जितना कि पृथ्वी के पास से गिरनेवालों का हुआ करता है, क्योंकि आकर्षणशक्ति का प्रभाव समीप में अधिक रहताहै ।

जैसे दूरी बढती जायगी वैसेही पृथ्वीका आकर्षण कम होता जायगा । यह बात सहज है जैसे दीपकसे कोई दूर हटता जाय तो उसको मालूम पड़ता है कि प्रकाश कम होता जाता है, यों ही गुरुत्वाकर्षण का नियम समझना चाहिए । गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में प्रकाश की भांति दूरी के वर्गका विपरीत विकार होताहै । पृथ्वीका धरातल केन्द्र से ४००० मीलकी दूरीपर है । यदि कोई पदार्थ धरातलसे ४००० मीलपर रक्खा जाय तो उसकी दूरी केन्द्र से दूरी अर्थात् ८००० मील होने के कारण भारचौथा भाग होगा ।

मार्गका व्यासार्धरूप है । पर वास्तव में यों नहीं होता, अन्तर पडता है । अन्तर भी प्रत्येक ग्रहमें न्यूनाधिक होता है । जबतक केन्द्र न बदलैगा, तबतक व्यासार्ध की दूरी कैसे बढ़ घट सक्ती है ? इन्हीं कारणों को सोचकर केपलर ने बडे परिश्रमसे ग्रहोंके मार्ग अण्डाकार वा दीर्घवृत्ताकार सिद्ध करके नियम कायम किए हैं । ये अण्डाकार + मार्ग आकर्षणशक्ति के प्रभावसे उत्पन्न होते है । यह नीचे लिखे क्षेत्र में मालूम होसक्ता है ।

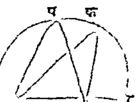


'सू' सूर्यचिह्न है । इसके चारों तरफ वृत्ताकाररेखा पृथ्वी के सूर्य प्रदक्षिणाका मार्ग है । पृथिवी जब 'क' चिह्नपर भ्रमणकरतीहुई पहुँची और 'ख' सरलरेखा के तरफ चलने लगी उसी समय सूर्यकी केन्द्राकर्षणशक्ति से 'कच' वृत्ताकार मार्गमे जापडी जोकि वास्तव मे दीर्घवृत्ताकार है । इसीप्रकार 'च' चिह्नपर पहुँचकर 'चट' मार्गमें आकृष्ट होती है । यों आगेभी समझना चाहिये । यों सूर्य के आकर्षण

+ अण्डाकारको दीर्घवृत्त कहते हैं । इसमें दो नियत बिन्दु होते हैं, उनको फोकस (Focus) कहते हैं । उनकी दूरी वृत्तकी परिधि के किसी बिन्दुसे नियत होती है ।

इस दीर्घवृत्तक्षेत्रमें फ, फ' नियतबिन्दु या फोकस हैं । इसलिए फप+फ'प=फर+फ'र ।

इस क्षेत्र के विशेष नियमादि शङ्कुच्छेद (Conic section) नामक ग्रन्थमें हैं ।



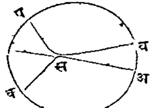
और निज निज केन्द्रशक्ति के प्रभावसे ग्रहगण सूर्यकी क्रमसे प्रदक्षिणा कियाकरते हैं। और पृथ्वी के चारों तरफ चन्द्रमा भ्रमण किया करता है।

जब आकर्षणशक्ति सिद्धहुई तो उसकी दिशाभी अवश्य होगी। रस्सी से किसी चीज को खींचनेसे रस्सी खिंचावकी दिशामें होती है। इसीप्रकार मान लिया जाय कि ग्रह भी किसी अदृश्य रस्सी से खिंचे जाते हैं। केपलर साहबका मतहै कि ग्रह तुल्य क्षेत्रफल तुल्य समय में चलते हैं। इसी मतसे न्यूटन ने लिखा है कि इस अदृश्यरस्सी (आकर्षणशक्ति) का खिंचाव सूर्यकी तरफ है। अर्थात् आकर्षण-शक्ति की दिशा ग्रहों से सूर्य की तरफ है। जब ग्रह अपने मार्ग में भिन्न भिन्न स्थानों में होते हैं तब इस शक्ति में न्यूनाधिक्यता होती है। यह बात केपलर के प्रथम सिद्धांत से सिद्ध होसकती है, जो कि अभी लिखा जायगा। अब, जब कि ग्रहोंका मार्ग दीर्घवृत्ताकार है, आकर्षणशक्ति की दिशा सूर्य की तरफ है, और सूर्य-दीर्घवृत्त के किसी एक केन्द्र में वर्तमान है, तो यह मानना पड़ैगा कि आकर्ष-णशक्ति उसी हिसावसे घटै बढ़ैगी जिस नियमसे ग्रहकी सूर्य से दूरीके विपरीत वर्ग में कमी वेशी होती है। यह सिद्ध है कि आकर्षणशक्ति ग्रहोंको सूर्यकी तरफ खींचती है और आकर्षणकी न्यूनाधिक्यता में दूरीके विपरीत वर्ग का प्रभाव होताहै

केपलर ने ग्रहों के विषय में प्रथम तीन नियम निकाले थे, जिनको 'केपलरके नियम' वा (Kepler's three Laws) कहते हैं। जो आकर्षणशक्ति के नियम हम लिखचुके हैं वे इन नियमों केही आधारपर स्थित हैं। इन्हीं के बलसे न्यूटनने अपनी 'प्रिंसीपिया' नामकग्रन्थ में उसशक्ति के विषयमें विचारशक्ति को बढ़ाया है। सबग्रह सूर्य के चारों तरफ दीर्घवृत्त में भ्रमण करते हैं, यों सूर्य दीर्घवृत्तके भीतर सिद्ध हुआ। केपलर कहते हैं कि सूर्य दीर्घवृत्त के दो केन्द्र वा फोकसों में से (नोट मे पीछे हम नियतबिन्दु या फोकस दिखला चुके हैं) किसी एक पर रहता है इसप्रकार प्रथम नियम सिद्ध हुआ कि—

(१) हरएक ग्रह दीर्घवृत्त में सूर्य के आसपास भ्रमण करते हैं। और सूर्य

गति और दूरी मे कम होती है । सामान्य दूरी पर मध्यममान से गति होती है ऐसेही ग्रहों की भी गति है ।



इस क्षेत्र मे 'स' सूर्यका स्थान है । अव, कप दो विन्दु वा तुल्यभाग हैं । अब यदि अवस, अपक क्षेत्रफल तुल्य है तो वअ, पक दूरी चलने में तुल्य काल लगैगा । यदि कोई क्षेत्रफल वड़ा है तो गति में क्षेत्रफल के अनुसार घटी वढ़ी होगी इसप्रकार संक्षेपरूप से क्षेत्रस्थिति का विचार करने से केपलरका दूसरा सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि—

(२) प्रत्येक ग्रह सूर्य के पासवाले विन्दुपर ऐसे वेग से भ्रमण करते हैं कि यदि उस विन्दु से सूर्यतक सरलरेखा खींची जाय तो तुल्य क्षेत्रफल तुल्यकाल में चलैगी ।

केपलर ने लिखा है कि प्रत्येक ग्रहों के वर्ष भिन्न भिन्न होते हैं । निज कक्षा मे भ्रमण करतेहुए ग्रह कभी सूर्य के पास कभी दूर हुआ करते है । अधिक और निकट दूरीका आधा मध्यममान से दूरी होती है । ग्रहोंका सूर्य प्रदक्षिणाकाल उनका वार्षिक समय कहाजाता है मध्यममान से दूरी और वार्षिककाल में सम्बन्ध है । जिनकी सूर्य से मध्यममान की दूरी अधिक होती है उन ग्रहों के वर्ष भी वढ़े होते हैं । इन सव विचारो से सिद्ध हुआ कि—

(३) किसी ग्रह के वार्षिक समय के वर्ग का, उसकी मध्यममान की दूरी के घनके साथ सम्बन्ध होता है ।

यही केपलरका तीसरा सिद्धान्त है । अव यह विषय समाप्त कियाजाता है इसका विचार बहुत सूक्ष्म और वड़ा है । यहां सव लिखना कठिनहै ॥ ५ । ६ ॥

इदानीं बौद्धादियुक्तिमाह—

भपञ्जरस्य भ्रमणावलोका-
दाधारशून्या कुरिति प्रतीतिः ।
खस्थं न दृष्टं च गुरु क्षमातः
खेऽधः प्रयातीति वदन्ति बौद्धाः ॥ ७ ॥

द्वौ द्वौ रवीन्दू भगणौ च तद्व-
देकान्तरौ तावुदयं व्रजेताम् ।
यदब्रुवन्नेवमनम्बराद्या
ब्रवीम्यतस्तान् प्रति युक्तियुक्तम् ॥ ८ ॥

भूमेः समन्ताद्वर्त्तमानस्य भपञ्जरस्य भ्रमणान्यथानुपपत्त्या निराधाराभूरिति तेषां प्रतीतिरभूत् । तथाकाशस्थं गुरु वस्तु किमपि न दृष्टम् । अतो भूरधो यातीति बौद्धा वदन्ति । यथा नौस्थो नावं गच्छन्तीमपि न वेत्ति तथा भूस्थो जनो न वेत्तीति । तथा द्वौ सूर्यौ । द्वौ चन्द्रमसौ । चतुष्पञ्चाशन्नक्षत्राणि । चतुर्भुजस्तम्भनिभो मेरुः । एकान्तरकोणस्थौ सूर्यौ मेरुकोणवशेनैकान्तरौ तावुदयं गच्छत इति जैनाश्चाब्रुवन् ।

प्रभा ।

अत्राचार्येणैव बौद्धानां जैनानां च मते स्फुटं व्याख्यातम् । किं वृथा लेखगौरवेण । 'अर्हत्प्रोक्तेऽर्के द्वे द्वौ द्वावेकान्तरोदयौ किल तौ । यद्येवमर्कसूत्रात्किं ध्रुवचिह्नंभ्रमत्यह्ना ॥' इतिपञ्चसिद्धान्तिकायामाचार्य वाराहमिहिरोऽपि ।

भाषाभाष्य ।

नक्षत्रमण्डल पृथ्वी के ऊपर नीचे भ्रमणकरता हुआ देखा जाताहै इससे पृथिवी आधारशून्य है ऐसा विश्वास होता है । क्योंकि यदि आधार होता तो नक्षत्रमण्डल

उसमें अटक जानेसे सदा एकाकार न घूम सकता। आकाश में भारी वस्तु नहीं ठह-रती इससे पृथिवी आकाशमें नीचे को गिरती है, ऐसा बौद्धलोग कहते हैं। दो सूर्य और दो चन्द्र हैं, वे एक एक करके अन्तर से उदय होते हैं ऐसा दिगम्बरजैन कहते हैं, इसलिये हम उनको युक्तिसङ्गत उत्तर कहते हैं॥ ७।८॥

इदानीं तेषां युक्तिभङ्गमाह—

भूःखेऽधः खलु यातीति बुद्धिर्बौद्ध मुधा कथम्।
जाता यातं तु दृष्ट्वापि खे यत्क्षिप्तं गुरु क्षितिम्॥ ९॥

यदि भूरधो याति तदा शरादिकमूर्ध्वं क्षिप्तं पुनर्भुवं नैष्यति। उभयोरधोगमनात्। अथ भूमेर्मन्दागतिः शरादेःशीघ्रा तदपि न। यतो गुरुतरं शीघ्रं पतति। उर्व्यतिगुर्वी। शरादिरतिलघुः। रे बौद्धैवं दृष्ट्वापि भूरधो यातीति बुद्धिः कथमियं तव वृथोत्पन्ना।

प्रभा।

अयमर्थः। यदि बौद्धानां मते धराऽधो याति तदा यत्किमपि वस्तूर्ध्वं क्षिप्तं चेन्न कदापि तया सह संमिलेदुभयोरेकदिक्पतनाद्भुवोगुरुत्वाच्चान्यापेक्षया द्रुततरपतननियमात्। अतो बौद्धानामित्थं जल्पनं नादरणीयमिति।

भाषाभाष्य।

अरे बौद्ध! कोई भारी वस्तु ऊपर फेंकने से वह तुरत पृथ्वीपर गिरती है, ऐसा देखकरभी पृथिवी आकाश में नीचे जाती है यह मिथ्याज्ञान तुम्हें कहा से हुआ? तात्पर्य यहहै कि यदि भूमि आकाश में नीचे जातीहै तो ऊपरसे कोई चीज छोड़ीजाय तो उसका पृथिवी से कभी मेल न होगा। क्योंकि भूमि अधिकभारी होने से वड़े वेग से नीचे जायगी। परन्तु ये सब बातें प्रत्यक्ष और युक्ति से विरुद्ध हैं॥ ९॥

इदानीं जैनयुक्तिभङ्गमाह—

किं गण्यं तव वैगुण्यं द्वैगुण्यं यो वृथा कृथाः।
भार्केन्दूनां विलोक्याह्ना ध्रुवमत्स्यपरिभ्रमम्॥ १०॥

यदा भरणीस्थो रविर्भवति तदा तस्यास्तमयकाले ध्रुवमत्स्यस्तिर्यक्स्थो भवति। तस्य मुखतारा पश्चिमतः। पुच्छतारा पूर्वतः। तदा मुखतारासूत्रे रविरित्यर्थः। अथ निशावसाने मुखतारा परिवर्त्य पूर्वतो याति। पुच्छतारा पश्चिमतो याति। ततो मुखतारासूत्रगतस्यैवार्कस्योदयो दृश्यते। अतो द्वौ द्वौ सूर्याविरयनुपपन्नम्। अत उक्तं किंकिमेकं तव वैगुण्यं गण्यम्। येन ध्रुवमत्स्यपरिभ्रमं दृष्ट्वापि भार्केन्दूनां द्वैगुण्यमङ्गीकृतम्।

भाषाभाष्य।

अहोरात्र में ध्रुवमत्स्य का भ्रमण देखकर भी जो तुम दो सूर्य और चन्द्र मानते हो, ये सब तुम्हारे दुर्गुण कहांतक गिनें।

उपपत्ति।

ध्रुवतारा से कुछ दूरीपर पुञ्जरूप ध्रुव पुच्छतारा रहती है। वह ध्रुवके चारों तरफ अहोरात्रमे एकबार भ्रमण करती है। सूर्यास्तके बाद ध्रुव बिन्दु से पश्चिम दिशामे दिखलाई देती है। और प्रात काल घूमकर पूर्वदिशा में रहाकरती है। उस स्थान से रविके उदयस्थानतक जो एक रेखा कल्पना कीजाय तो मालुम होता है कि रवि उसी बिन्दुपर उदय को प्राप्त होता है। इसप्रकार ध्रुवकी मुखतारा में उदय और पुच्छतारा में अस्त आकाश में प्रत्यक्ष देखनें में आयाकरता है। इस स्थिति मे यदि दो सूर्य कल्पना किये जायें तो उनके उदय की सङ्गति किस प्रकार सम्भव होसकती है? इसलिये दिगम्बर जैनो ने जो अपने ग्रन्थ में 'दो चन्दा दो सुज्जा' आदि और ५४ नक्षत्र चतुर्भुजस्तम्भ के समान मेरु जो लिखा है वह बिलकुल असङ्गत युक्ति और प्रत्यक्ष से विरुद्ध है + रात्रि में इन बातों की परीक्षा करके अपना विश्वास दृढ करना चाहिये ॥ १० ॥

+ श्रीपतिने लिखा है कि–

'भ्रमं चलत्वा स्थितिरस्ति सौम्यां नभस्यनेनैव वदन्ति जैनाः।
द्वौ द्वौ रवीन्दू द्विगुणा भसंघा चतुर्भुजस्तम्भनिभं च मेरुम्॥'

दानीं भूगोलस्य समतां निराकुर्वन्नाह—

यदि समा मुकुरोदरसन्निभा
भगवती धरणी तरणिः क्षितेः।
उपरि दूरगतोऽपि परिभ्रमन्
किमु नरैरमरैरिव नेक्ष्यते॥ ११॥
यदि निशाजनकः कनकाचलः
किमु तदन्तरगः स न दृश्यते।
उदगयं ननु मेरुरथांशुमा-
न्कथमुदेतिच दक्षिणभागके॥ १२॥

पूराणे भूः समादर्शोदरसन्निभा कथ्यते। तन्मध्ये मेरुः। परितो जम्बूद्वीपं लक्षयोजनव्यासम्। तद्बहिर्लक्षप्रमाणः क्षाराम्भोधिः। ततोन्यद्द्वीपं लक्षद्वयम्। ततःसमुद्रस्ततोऽन्यद्द्वीपम्। द्वीपाद्द्वीपं द्विगुणम्। समुद्रात्समुद्रो द्विगुणः। एवं यत्ससमं पुष्करद्वीपं तन्मध्ये मानसोत्तरपर्वतो वलयाकारोऽस्ति। तन्मस्तकोपरि रविरथचक्रं लक्षयोजनान्तरं विषुवद्दिने भ्रमति। उत्तरगोले तदुत्तरतो दक्षिणगोले दक्षिणत इति। अथ युक्तिरुच्यते। यदि समा भूस्तदा तदुपरि दूरगतो रविर्भ्रमन् किमस्मदादिभिर्न दृश्यते। सततं देवैरिव। यदि मेरुणान्तर्हितो रविस्तर्हि मेरुः कथं न दृश्यते। यदिमेरुतटान्निःसृतस्यार्कस्योदयस्तर्हि प्राच्या उत्तरत एवार्कस्योदयेन भवितव्यम्। यतो मेरुरुत्तरतः। अथ कथं दक्षिणभाग उद्गच्छन्दृश्यते। अतो भूमेः समतायामिदं नोपपद्यत इत्यर्थः।

प्रभा।

वासनाभाष्ये यदत्राचार्येणाख्यातं तदेवालम्। जम्बूप्रभृतिद्वीपसं-

निवेशाधखिलं भागवतविष्णुपुराणादिपुराणेषु खण्डशः समुपलभ्यते। भुवो गोलाकारत्वं नारङ्गफलानुरूपमीषदण्डाकारानुविद्धं सांप्रतिकैः सिद्धान्तितम्। गोलाकारानङ्गीकारे विप्रतिपत्तयश्चारुतया प्रदर्शिताः सन्ति। किंच देशभेदेन योऽक्षांशविभेदः समुपलभ्यते स गोलाकारान्यतराकारस्वीकारे न स्यात् देशभेदेन रव्युदयकालभिदापि न स्यात्। एवं मेरोर्दिनरात्रिकर्तृकत्वमपि न घटते प्रत्यक्षतो गोलविरोधाच्च वस्तुतो वेदतो भुवो गोलाकारत्वमेव लभ्यते। यत्तु पुराणेष्वन्यथान्यथा प्रतिपाद्यते तत्प्रातिभासिकस्वरूपदृष्ट्येति युक्तमुत्पश्यामः।

भाषाभाष्य।

यदि भूमि दर्पण की भांति समान है तो सूर्य पृथिवी के ऊपर बहुत दूरीपर भ्रमण करता हुआ जैसे देवताओं को छःमासतक दीखता है वैसेही मनुष्यों को क्यों नहीं दिखलाई देता? यदि मेरु रात्रिका कारण है तो मनुष्यों को वह क्यों नहीं उनके और सूर्य के बीच में दीखता? और मेरु पर्वत उत्तर मे स्थित है, फिर सूर्य दक्षिणगोल में क्यों उदय होता है? तात्पर्य यह है कि यदि मेरुकी आड़में रवि छिप जाय तो मेरु के उत्तरगोल में रहनेसे उसके किनारे से उदय होता पूर्व या उत्तर ही सूर्य दिखलाई देगा। पर वह दक्षिणायन में दक्षिण में उदय होता दीखता है क्योंकि मेरु के दक्षिणभाग में छःमास सूर्य रहता है। इसलिये मेरुको अस्तकारण मानना गोलविरुद्ध है।

उपपत्ति।

पृथिवी का आकार नारंगी के समान कुछ अण्डाकार में युरोपियन ज्योतिषियों ने मानाहै। जिसे (Oblate Spheroid) नामसे विख्यात करते हैं। पृथिवी दोनों ध्रुवोंके पास कुछ चिपटी है। यह एक भागमें १३ मील निश्चय हुआहै। यदि १३ माइल दोनों ध्रुवोंके पास अधिक स्थान होता तो ठीक गोलाकार पृथिवी हो जाती। ध्रुवोंके पासमें चिपटी होनेका और भी प्रमाण है। मध्याह्नवृत्तके चापकी लम्बाई दो स्थानों मे निश्चय करने से मध्यममान से ६९$\frac{1}{6}$ मील ठहरी है। यह चापके एक अंशकी लम्बाई समझनी चाहिये। यों पृथ्वीके कई स्थानों में परीक्षा करने

से फलमें कुछ थोड़ा अन्तर पड़ता है। और ध्रुवके पास नाप करने से एक अंश की लम्बाई विषुवद्वृत्तकी अपेक्षा कुछ अधिक होती है। इससे ज्ञात होता है कि विषुवरेखाके पास भूमिकी वक्रता ध्रुवस्थानकी अपेक्षा अधिक है। और भिन्न भिन्न स्थानों के अक्षांशों में एक एक अंशकी लम्बाई आपस में समान नहीं होती। जैसे—

विषुव रेखापर	....	६८, ७०४	मील
अक्षांश २०°	....	६८, ७८६	"
" ४०°	....	६८, ९९३	"
" ६०°	....	६९, २३०	"
" ८०°	....	६९, ३८६	"

इसप्रकार भूमिके नारंगी के समान आकारकी दृढ़ता सिद्ध होतीहै। यही आकार युक्ति सिद्ध होने से, सब प्राचीन और नवीन आचार्यों के सम्मत है।

पुराण ग्रन्थों में जो समतल आदि आकार भूमिका लिखाहै वह लोकदृष्टि से है। आचार्य ने आगे श्लोकमें यह बात सिद्ध की है। क्योंकि यदि शास्त्रदृष्टि से मानें तो सिद्धान्तों में जो ग्रह–गोलस्थिति के नियम हैं वे विरुद्ध होजाते हैं। जैसा, यदि गोलाकार न मानकर समतलही मानें तो देशभेद से जो भिन्न भिन्न अक्षांश होतेहैं वे एकाकारही सब स्थानों में सिद्ध होंगे। परन्तु प्रत्यक्ष वेधसे यह बात विरुद्धहै। और लङ्कोदय से चरकाल के अन्तर से रेखापुरमें सूर्य उदित होकर फिर स्वदेशमें उदय होनेकी स्थिति जो निश्चित कीगई है, वहभी असंगत होजायगी। क्योंकि समतल आकार होनेपर सब देशोंमें एक कालमें ही सूर्योदय होना चाहिये। इससे पृथ्वीका गोलाकारही युक्ति सिद्धहै + ॥ ११। १२ ॥

+ इसके सिवाय वेदमें भी पृथ्वीका गोलआकारही माना है। जैसा —

'चक्राणास परीणह पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमाना।

न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्र परिस्पशो अदधात्सूर्येण॥' (ऋ. स. १. ३३. ८)

और नीचे लिखी श्रुति में जो सूर्यका क्रमसे किरणप्रसार माना है वह भी समतल मानने से असङ्गत होजायगा। क्योंकि वह गोलाकारमें ही घटता है। जैसा ——

'आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे।

प्रबाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत्॥'

(ऋ. स. ४. ५३. ३) इसलिये निम्नलिखी रीति से भूमिका गोलाकारही सर्वथा सिद्धहोता है।

अथ प्रत्यक्षविरोधशङ्कां परिहरन्नाह—

समो यतःस्यात्परिधेः शतांशः
पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना
समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा ॥ १३ ॥

स्पष्टम्।

प्रभा।

यतः कारणात्परिधेः शतांशः समो भवति, पृथ्वी मही च नितरा पृथ्वी 'वोतो गुणवचनात्' इति ङीप्। स्थूलत्वगुणविशिष्टा। नरश्च तनीयानतिशयलघुः। अतः तस्य नरस्य तत्पृष्ठगतस्य भूपृष्ठस्थितस्य सा भूः कृत्स्ना निरवशेषा समेव दर्पणोदरवत्समाकारेव प्रतिभाति नतु वस्तुतस्तथाभूतास्तीत्यर्थः। अयमर्थः कस्यचिद्वस्तुनः शतांशः सूक्ष्मभाग इति यावत् समाकारो भवति नतु चक्राकारः। शाकल्यसंहितायामप्यभिहितम् 'वृत्तस्य पणवत्यंशो दण्डवद्दृश्यते तु सः' इति। एवं भूपृष्ठनिष्ठस्यद्रष्टुर्दृष्टिर्दृक्सूत्रानुरुद्धायदवधिगातितत्पर्यन्तं सम एवाकारः पृथिव्याः परिदृश्यते तदपेक्षया द्रष्टुरतिशयक्षुद्रत्वात्। अतएव सूर्यसिद्धान्ते भूगोलाध्याये—

'अल्पकायतया लोकाः स्वस्थानात्सर्वतोमुखम्।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम्॥' इति

भूमेर्वस्तुतो गोलाकारत्वेऽपि मुकुराकारतया दर्शने हेतुरुपन्यस्तः।

भाषाभाष्य।

जैसे परिधि का शतांश अर्थात् सूक्ष्मभाग समान मालुम होता है, टेढ़ा नहीं, वैसे हो इस पृथ्वीभारी भूमि की तुलना से मनुष्य अत्यन्त छोटे होने से भूमि के ऊपर उसकी दृष्टि जहांतक जाती है वह सब सपाटही मालुम पड़ती है।

उपपत्ति।

किसी गोल या वक्रवस्तु का छोटा से छोटाभाग सीधी रेखा के समान होताहै उस भाग में गोलत्व फिरा वक्रत्व नहीं रहता, यह परीक्षासे सहजमें मालुम होसकता है। भास्कराचार्य ने इसी बातको भूपरिधि के सौवें हिस्सेके दृष्टान्तरो बतलायाहै। यह दृष्टान्त बहुत ही सत्यहै। मनुष्य की दृष्टि दृक्सूत्रानुरोध से गोलाकार पृथ्वीके कोटथश दूरीतक भी नहीं जासकती, इसीलिये उसको जहांतक दीखता है सब समधरातल ही रहताहै पर वास्तव में गोल ही है। पृथ्वीके आकार की अपेक्षा मनुष्य चींटी से भी छोटा है फिर वह कैसे उसकी गोलाकारता का अवलोकन करसकता है? परन्तु युक्तिसिद्ध होने से निःसन्देह गोलहै सपाट नहीं है, केवल देखनेमें ही आती है। सूर्यसिद्धान्तमें भी 'अल्पकायतयातोका स्वस्थानात्सर्वतोमुखम्' इत्यादि लिखाहै। इस युक्तिसे पुराणों में जो समतल लिखाहै वह दृष्टिके अनुरोध सेही है। यह बातभी सिद्ध होती है ॥ १३ ॥

इदानीं स्वोक्तस्य भूपरिधिप्रमाणस्योपपत्तिमाह—

पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात्
तदक्षविश्लेषलवैस्तदा किम्।
चक्रांशकैरित्यनुपातयुक्त्या
युक्तं निरुक्तं परिधेः प्रमाणम् ॥ १४ ॥

निरक्षदेशः स्वदेशाद्यथायथा दक्षिणतो भवति तथातथा खस्वस्तिकाद्विपुवद्वृत्तं नतम्। तयोरन्तरेऽक्षांशाः। ते च निरक्षदेशादयसारयोजनैरनुपातेनोत्पद्यन्ते। अतःकस्मिंश्चित्पुरेऽक्षांशान् ज्ञात्वा तस्मात् पुरादुत्तरतोऽन्यस्मिन् पुरे ज्ञेयाः। ततस्तेषामन्तरांशैः पुरान्तरयोजनैश्चानुपातः। यद्यन्तरांशैः पुरान्तरयोजनानि लभ्यन्ते तदा चक्रांशैः ३६० किमिति। फलं भूपरिधियोजनानि।

भाषाभाष्य।

जो उत्तर फिरा दक्षिण नगरों के अक्षांशान्तर में यदि नगरों के अन्तर योजन

मिलते है तो चक्रांश में क्या ? इस अनुपात की युक्तिसे परिधि का प्रमाण युक्त कहागया है ।

उपपत्ति ।

देशभेद से ध्रुवकी ऊँचाई को अक्षांश कहते हैं । जहां ध्रुवकी ऊँचाई नहीं है उसको निरक्षदेश कहते हैं । उस निरक्षसे दक्षिण किंवा उत्तर हटने से अक्षांश (ध्रुवोन्नति) उत्पन्न होतेहैं । भूपृष्ठ पर विषुवरेखा में निरक्ष देश स्थितहै, जिसको लङ्का नामसे यहांपर लिखा है । वहांसे हमलोग उत्तर की तरफ हटेहैं । और जितनाही हटते जायँगे उतनाही वेध करने से अक्षांश भिन्न भिन्न होते जायँगे, अर्थात् ध्रुवकी ऊँचाई बढ़ती जायगी । और जब परम उत्तर ध्रुवदेश-तक चलेजायँ तो ध्रुव खस्वस्तिक में अर्थात् ठीक शिरके ऊपर होजायगा और वहांपर अक्षांश पूरे ९० होंगे । यह गोलपर ध्यान देनेसे स्पष्ट मालुम होता है । अथवा इसप्रकार सिद्ध होता है कि यदि कोई मैदान में जाय और क्षितिज (जहा आकाश और भूमि मिलेहुये मालुम पड़ते हैं) के पास किसी ऊंचे पर्वत या वृक्षको देखे तो वह उसको बहुत छोटा और प्राय. भूमि से मिला हुआ दीख पड़ैगा । फिर यदि उसीके तरफ चलताजाय तो क्रम क्रमसे उसका वास्तविक स्वरूप दिखलाई देता जायगा और कुछ कुछ ऊंचा मालुम होगा अन्तमें पास जानेपर बहुत ऊंचा मालुम होगा । इसीप्रकार निरक्ष देशमे ध्रुव क्षितिज में लगाहुआ मालुम पड़ता है । और जितनाही उसकी दिशामें जायँ ऊंचा होता जाता है । अब यदि कोई निरक्षसे उत्तर हैं तो उससे निरक्ष दक्षिण होगा । और खस्वस्तिकसे विषुवद्वृत्त नीचा होगा । अर्थात् जितना स्वदेश से निरक्ष दक्षिण होगा उतना ही खस्वस्तिक से विषुवद्वृत्त नत होगा। यों खस्वस्तिक और विषुवद्वृत्त के बीचमें अन्तर अक्षांशरूप होंगे । अब किसी दो स्थानों में अक्षांशों का वेधकर उनके अन्तरांश करके, नगरों का अन्तर जानकर अनुपात से भूपरिधि सिद्ध होगी । अनुपात, यदि अक्षांशों के अन्तर में पुरान्तर योजन मिलते हैं तो चक्रांश ३६० मे क्या मिलैंगे ? फल योजनात्मक भूपरिधि सिद्धहोगी फिर विलोम अनुपात से अक्षांश भी मालुम होसकैंगे ।

यह जो परिधि सिद्ध हुई है सो देशभेदसे भिन्न हुआ करती है । इसको स्पष्टपरिधि कहतेहैं । और निरक्ष देशमें जो है उसे मध्यम परिधि कहते हैं । क्योंकि वह मकाकार और सबसे बड़ी है ॥ १४ ॥

इदानीं तदेवं दृढीकुर्वन्नाह—

निरक्षदेशात्क्षितिषोडशांशे
भवेदवन्ती गणितेन यस्मात्।
तदन्तरं षोडशसङ्गुणं स्याद्
भूमानमस्माद्बहु किं तदुक्तम् ॥ १५ ॥
शृङ्गोन्नतिग्रहयुतिग्रहणोदयास्त-
च्छायादिकं परिधिना घटतेऽमुनाहि।
नान्येन तेन जगुरुक्तमहीप्रमाण-
प्रामाण्यमन्वययुजा व्यतिरेककेण ॥ १६ ॥

स्पष्टम्।

प्रभा।

निर्गतः अक्षो ध्रुवोन्नतिर्यस्मादसौ निरक्षः सचासौ देशश्च तस्मान्निरक्षदेशात् यस्मात् गणितेन क्षितिषोडशांशे भुवःषोडशमितांशे अवन्ती उज्जयिनी भवेत्। एतदुक्तं भवति। चक्रांशानां षोडशांशः सार्द्धद्वाविंशतिप्रमितो गणितेन भवति तत्समाश्चावन्त्यां पलांशा इति भूपरिधिषोडशांशे उज्जयिनी सिध्यति। अस्माद्धेतोः तदन्तरमर्थाल्लङ्कावन्त्यन्तरं षोडशगुणितं भूपरिधिः स्यात्। तदुक्तं बहु किम्? वृथा विस्तरेण न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः। अमुना परिधिना शृङ्गोन्नतिः ग्रहयुतिः ग्रहणम्, उदयः, अस्तं, ग्रहच्छायादिकं च घटते सिध्यतीत्यर्थः। अन्येन पुराणोक्तेन परिधिना न घटते। तेन उक्तमहीप्रमाणप्रामाण्यं कथितभूपरिधिमानयाथार्थ्यमन्वययुजा व्यतिरेकेण अन्वयव्यतिरेकाभ्यां जगुः। आचार्या ऊचुरित्यर्थः।

भाषाभाष्य।

निरक्ष देशमे भूमिके षोडशांश पर गणित से उज्जयिनी की स्थिति सिद्ध होगी।

है। इसलिये लङ्का और उज्जयिनी के अन्तर योजनों को सोलह से गुणा करने से भूपरिधि का मान ज्ञात होगा। इस विषयमें अधिक क्या कहें ? इस परिधि से शृङ्गोन्नति, ग्रहयुति, ग्रहण, उदयास्त, ग्रहछाया आदि संघटित होते हैं। दूसरी भूपरिधि की कल्पना से नहीं सिद्ध होते। इसलिये अन्वय और व्यतिरेक की युक्तिसे यही भूपरिधि आचार्यों ने प्रमाणित की है।

उपपत्ति।

पहिले जो भूपरिधि सिद्ध की है उसी को प्रकारान्तर से दृढ करते हैं। उज्जयिनी में अक्षांश २२$\frac{१}{२}$ हैं, ये चक्रांश ३६० के सोलहवें हिस्से के समान हैं। इसलिये भूपरिधि के षोडशांश पर उज्जयिनी की स्थिति सिद्ध हुई। यों लङ्का और उज्जयिनीके अन्तर योजनों को सोलहसे गुणा करने से भूपरिधि होती है + लङ्का और उज्जयिनी एक मध्यरेखा में स्थित हैं, उनका अन्तर २१३$\frac{१}{३}$ योजन है, ऐसा वराहमिहिर लिखते हैं। उनके मतसे अवन्ती मे अक्षांश २४° हैं। इसलिये, २४ : २१३$\frac{१}{३}$ :: ३६० : इस अनुपातसे भूपरिधि योजन ३२०० सिद्ध होते हैं। वराहमिहिर और भास्कराचार्य के मतमें अन्तर है॥ १५।१६॥

इदानीं भूगोले पुरनिवेशमाह—

लङ्काकुमध्ये यमकोटिरस्याः
प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः
सौम्येऽथ याम्ये वडवानलश्च॥ १७॥

कुवृत्तपादान्तरितानि तानि
स्थानानि षड्गोलविदो वदन्ति।
वसन्ति मेरौ सुरसिद्धसङ्घा
और्वे च सर्वे नरकाः सदैत्याः॥ १८॥

+ आचार्य के मतसे लङ्का और उज्जयिनी के अन्तर योजन $\frac{४८६७}{१६}$ = ३०४$\frac{३}{१६}$ है।

यो यत्र तिष्ठत्यवनीं तलस्था-
मात्मानमस्या उपरि स्थितं च।
स मन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्था
मिथश्च ये तिर्यगिवामनन्ति ॥ १९ ॥

अधःशिरस्काः कुदलान्तरस्था-
श्छायामनुष्या इव नीरतीरे।
अनाकुलास्तिर्यगधःस्थिताश्च
तिष्ठन्ति ते तत्र वयं यथात्र ॥ २० ॥

सुगमम्।

प्रभा।

और्वे और्वाद्भृगुवंशीयाद्दपेर्जातः और्वः। अण्। वडवानलापरनामधेयो भूगोलदक्षिणसीम्नि वर्तमानः। तस्मिन् सर्वे नरकाः दैत्याश्च निवसन्ति। यो जनः यत्र तिष्ठति स हि तलस्थामवनीं पृथ्वीमात्मानं चास्या उपरि स्थितं मन्यते। अतो ये कुचतुर्थसंस्थाः भूपरिधिचतुर्थांशांशान्तरे वर्तमानास्ते मिथः परस्परमात्मानं तिर्यगिवामनन्ति। कुदलान्तरस्थाः भूगोलापरार्धान्तरावस्थिताः नीरतीरे जलतटे छायामनुष्या इव अधःशिरस्काः प्रतीयन्ते। यथा तडागादि तीरस्थितस्य प्रतिबिम्बं पानीयेऽधःशिरस्कं प्रतीयते तथैवेति भावः। एवं तिर्यगधःस्थिताश्च ये ते सर्वे अनाकुलास्तिष्ठन्ति यथा वयमत्र तिष्ठामः। यथास्माकमवस्थानं निर्बाधं तथैवास्मदवस्थानाभिप्रायेणैव तिर्यगधोगतानामप्यवस्थानं निर्बाधमिति किं चित्रम्। आधेयापेक्षया आधारस्य महापरिमाणत्वात्। कूष्माण्डादौ सर्वत्र पिपीलिकासंचारदर्शनाच्च।

भाषाभाष्य।

भूमिके मध्यभाग में + लङ्का स्थित है, उसके पूर्वमें यमकोटि और पश्चिममें रोमकपत्तन है। और लङ्काके नीचे सिद्धपुर स्थित है। और उत्तरमें सुमेरु, दक्षिण में वडवानल है। गोलज्ञ पण्डित, इन छ:स्थानों को भूमिके चतुर्थांश के तुल्य अन्तर अर्थात् भूमध्य से ९०° अंशके अन्तर पर प्रत्येक की स्थिति कहते हैं। मेरुपर देवता और सिद्ध निवास करते हैं। और वे अर्थात् वडवानलमें दैत्यों के सहित सब नरकोंकी स्थिति है।

जो मनुष्य जहां रहताहै वह पृथ्वीको अपने नीचे मानता है और अपनेको उस के ऊपर जानता है। और जो लोग पृथ्वी के चौथेभाग अर्थात् ९०° अंशपर रहते हैं वेभी अपने को पृथ्वीके ऊपर और उसको नीचे समझतेहैं। परन्तु परस्परमें अपने को तिरछा मानते हैं और अपने से ठीक नीचे अर्थात् १८०° अंशपर के रहनेवालों का मानो शिर नीचा और पैर ऊंचा होगया है, ऐसा मालुम होता है। जैसे जलके तीरमें मनुष्यकी छाया उलटी देखने में आती है। परन्तु ऊपर किंवा नीचे रहने वाले सब आनन्द से निवास करते हैं, जैसे हमलोग यहांपर रहते हैं। इसप्रकार पृथ्वीके चारोतरफ मनुष्य निवास करते हैं ॥ १७। २०॥

इदानीं द्वीपानां समुद्राणां च स्थानमाह—

भूमेरर्द्धं क्षारसिन्धोरुदक्स्थं
जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्यवर्याः।
अर्धेऽन्यस्मिन् द्वीपषट्कस्य याम्ये
क्षारक्षीराद्यम्बुधीनां निवेशः ॥ २१ ॥

लवणजलधिरादौ दुग्धसिन्धुश्च तस्मा-
दमृतममृतरश्मिः श्रीश्च यस्माद्बभूव।
महितचरणपद्मः पद्मजन्मादिदेवै-
र्वसति सकलवासो वासुदेवश्च यत्र ॥ २२ ॥

+ पृथ्वी के जिस स्थान से दोनों ध्रुव क्षितिज में लगे दीखें वही भूमका मध्यस्थान है। विषुवरेखा से ध्रुवोंको देखने से वे क्षितिज में लगे दखने में आते हैं। इसलिये सिद्धान्तियों ने विषुवरेखा के उपर चार पुरी ठहराई है, और उनमें लङ्का को बीचम मानाहै। उसस पूर्व यमकोटि, पश्चिम रोमकपत्तन और नीचे सिद्धपुर माना है। इन चारों स्थानों म ध्रुव सदा क्षितिज म दिखलाई देताहै।

दध्नो घृतस्येक्षुरसस्य तस्मा-
न्मद्यस्य च स्वादुजलस्य चान्त्यः।
स्वादूदकान्तर्वडवानलोऽमी
पातालोकाः पृथिवीपुटानि ॥ २३ ॥
चञ्चत्फणामणिगणांशुकृतप्रकाशा
एतेषु सासुरगणाः फणिनो वसन्ति।
दीव्यन्ति दिव्यरमणीरमणीयदेहैः
सिद्धाश्च तत्र च लसत्कनकावभासैः ॥ २४ ॥
शाकं ततः शाल्मलमत्र कौशं
क्रौञ्चं च गोमेदकपुष्करे च।
द्वयोर्द्वयोरन्तरमेकमेकं
समुद्रयोर्द्वीपमुदाहरन्ति ॥ २५ ॥
स्पष्टम्।

प्रभा।

क्षारसिन्धोरुत्तरदिशि भुवोऽर्धांशे जम्बूद्वीपस्थितिरित्याचार्याः प्राहुः। अस्यापरार्धे दक्षिणदिशि द्वीपषट्कस्य तथा क्षारदुग्धादिसमुद्राणां च स्थितिः। अमृतवत् सन्तोषकारिणो रश्मयो मयूखा यस्य। चन्द्र इत्यर्थः। पद्माज्जन्म यस्यासौ पद्मजन्मा ब्रह्मा। महिते पूजिते चरणपद्मे यस्य सः महितचरणपद्मः। सकलस्य स्थावरजङ्गमात्मकविश्वस्य वासो यस्मिन्। वसुदेवस्यापत्यं वासुदेवः। ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्चेत्यनेनाण्। विष्णुपुराणादौ वासुदेवस्य बहुधा निरुक्तिः समुपलभ्यते। यथा तत्रैव 'सर्वत्रासौ समस्तञ्च वसत्यत्रेति वै यतः। ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिगीयते' ॥ इत्यादि। फणति प्रसारसंकोचं गच्छतीति फणा। फण गतौ, अच् ततष्टाप्। फणायां ये मणयस्तेषां

ये गणाः फणामणिगणाः । चञ्चन्तः शोभमानाः ये फणामणिगणाः मौलिरत्नसमूहास्तेषां येंऽशवः किरणास्तैः कृतः प्रकाशो यैस्ते । फणिनः सर्पाः फणाऽस्त्यस्येति विग्रहे व्रीह्यादिभ्यश्चेति इनिः । सासुरगणाः सदैत्याः । एतेषु पाताललोकेष्विति पूर्वेणान्वयः । निवसन्ति निवासं कुर्वन्ति । तत्र च लसत्कनकावभासैः शोभमानकाञ्चनकान्तिमद्भिर्दिव्यरमणी रमणीयदेहैर्देवाङ्गनाचारुदेहैः सह सिद्धाश्च दीव्यन्ति संक्रीडन्ते । दैवादिकाद्दिवुधातोःकर्त्तरिलट् । शाक–शाल्मल–कौशादयो द्वीपाः समुद्रद्वयान्तराल एकैकशः संस्थिताः सन्ति ।

भाषाभाष्य ।

आचार्यों ने कहा है कि क्षारसमुद्र के उत्तर भूमिके अर्धांशपर जम्बूद्वीप स्थित है । उसके दूसरे अर्धांश में दक्षिण छद्वीप एवं क्षार, दुग्ध आदि सात समुद्र हैं + प्रथम लवण समुद्र उसके दक्षिण दुग्ध समुद्र है । इस दुग्ध समुद्र से अमृतरश्मि चन्द्रमा

+ पृथिवी के मध्यभाग में जम्बूद्वीप है । जम्बूद्वीप का आकार कमलपत्र की भांति समतल और गोल है । जैसे कमलपत्र अपने मध्यभाग से कुछदूरतक क्रमसे उन्नत होकर फिर क्रमसे कुछ दूरतक अवनत होताहै वैसेही जम्बूद्वीप कुछ दूरतक क्रमसे उन्नत होकर फिर अवनत होकर फैला है । सभी कमलपत्रों का हाल ऐसा नहीं है पर किसी कमलपत्रका योंभी आकार होताहै । भागवत के ५ वे स्कन्ध में इस द्वीप के आकार को योंही लिखाहै ' यो वा अयं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तर कोशो नियुत योजनायाम. समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ' । जम्बू, लक्षप्रभृति द्वीप चारों तरफ से एक एक समुद्रसे घिरेहुये हैं । इन द्वीपों और समुद्रोंका विस्तार पौराणिक मतसे इसप्रकार है.––

(१) जम्बूद्वीप,	१ लक्षयोजन.
लवण समुद्र,	,, ,,
(२) लक्षद्वीप,	२ लक्षयोजन.
इक्षुसमुद्र,	,, ,,
(३) शाल्मलिद्वीप,	४ लक्षयोजन.
सुरासमुद्र,	,, ,,
(४) कुशद्वीप,	८ लक्षयोजन.
घृतसमुद्र,	,, ,,
(५) क्रौञ्चद्वीप,	१६ लक्षयोजन.
दधिसमुद्र,	,, ,,
(६) शाकद्वीप,	३२ लक्षयोजन.
दुग्धसमुद्र,	,, ,,
(७) पुष्करद्वीप,	६४ लक्षयोजन.
जलसमुद्र,	,, ,,
काञ्चनभूमि,	१००० लक्षयोजन.
लोकालोक पर्वत,	२५०० ,,

स्वादूदक समुद्रसे दक्षिण लोकालोक गिरितक भूप्रदेशको काञ्चनभूमि और जिस पर्वतसे काञ्चन भूमि घिरी है उसे लोकालोक कहते हैं । यो इन सब द्वीपों का प्रमाण भागवत और विष्णुपुराण में स्पष्ट उपलब्ध होता है ।

और लक्ष्मी ने जन्मलिया था। इसी में सर्वव्यापी वासुदेवका निवास है जिनके चरणकमल की ब्रह्मा आदि देवगण पूजा करते हैं। उसके बाद दधि, घृत, इक्षु, मद्य समुद्रहैं, शेषमें स्वादुजल समुद्र है। इस सातवें (स्वादुजल) समुद्रके भीतरही बडवानल है। पाताल लोक पृथ्वी के पुट (तह) रूपसे स्थितहै। इन सब पातालों में दैत्यों के साथ सर्पवास करते हैं। और उनके फणामणि से वहां प्रकाश होता है। वहांपर स्वच्छ सुवर्ण वर्णके समान सुन्दर शरीरवाली देवस्त्रियों के साथ सिद्धगण विलास किया करते हैं। शाक, शाल्मल, कौश, क्रौञ्च, गोमेदक और पुष्कर द्वीप दो दो समुद्रों के बीचमें एक एक वर्तमान हैं। २–२५॥

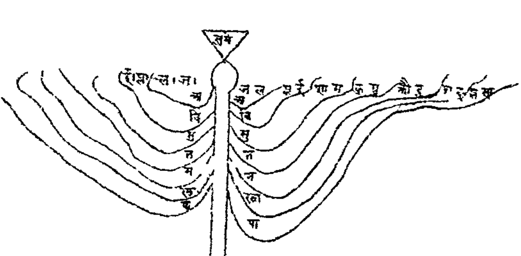
इदानीं जम्बूद्वीपमध्ये गिरिनिवेशवशेन नव खण्डान्याह—

लङ्कादेशाद्धिमगिरिरुदग्घेमकूटोऽथ तस्मा-
त्तस्माच्चान्ये निषध इति ते सिन्धुपर्यन्तदैर्घ्याः।
एवं सिद्धादुदगपि पुराच्छृङ्गवच्छुक्लनीला
वर्षाण्येषां जगुरिह बुधा अन्तरे द्रोणिदेशान् ॥ २६ ॥

भारतवर्षमिदं ह्युदगस्मात्
किन्नरवर्षमतो हरिवर्षम्।
सिद्धपुराच्च तथा कुरु तस्माद्
विद्धि हिरण्मयरम्यकवर्षे ॥ २७ ॥

* अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ये सात भूविवर पृथिवी के। ये सभी आपसमें दशहजार योजनकी दूरीपर स्थितहैं, यह भागवतका मत है। विष्णुपुराण में दूरी तो यही मानी है परन्तु नाम यों हैं--अतल, वितल, नितल, गभस्तिमत्, महातल, सुतल और पाताल।

पातालचित्र।



माल्यवांश्च यमकोटिपत्तना-
द्रोमकाच्च किल गन्धमादनः ।
नीलशैलनिषधावधी च ता
वन्तरालमनयोरिलावृतम् ॥ २८ ॥

माल्यवज्जलधिमध्यवर्ति यत्
तत्तु भद्रतुरगं जगुर्बुधाः ।
गन्धशैलजलराशिमध्यगं
केतुमालकमिलाकलाविदः ॥ २९ ॥

निषधनीलसुगन्धसुमाल्यकै-
रलमिलावृतमावृतमावभौ ।
अमरकेलिकुलायसमाकुलं
रुचिरकाञ्चनचित्रमहीतलम् ॥ ३० ॥

अत्र भूगोलस्यार्धमुत्तरं जम्बूद्वीपम् । तस्य क्षारान्धेश्च सन्धि-निरक्षदेशः । तत्र लङ्का रोमकं सिद्धपुरं यमकोटिरिति पुरचतुष्टयं भूपरिधिचतुर्थांशान्तरं किल कथितम् । तेभ्यः पुरेभ्यो यस्यां दिशि मेरुः सोत्तरा । अतो लङ्काया उत्तरतो हिमवान् नाम गिरिः पूर्वा-परसिन्धुपर्यन्तदैर्घ्योऽस्ति । तस्योत्तरे हेमकूटः । सोऽपि समुद्रपर्यन्त दैर्घ्यः । तथा तदुत्तरे निषधः । तेषामन्तरे द्रोणिदेशा वर्षसंज्ञाः । तत्रादौ भारतवर्षम् । तदुत्तरं किन्नरवर्षम् । ततो हरिवर्षमिति । एवं सिद्धपुरादुत्तरतः शृङ्गवान् नाम गिरिः । ततः श्वेतगिरिः । ततो नीलगिरिरिति । तेऽपि सिन्धुपर्यन्तदैर्घ्याः । तेषामन्तरे च वर्षाणि । तत्रादौ कुरुवर्षम् । तदुत्तरे हिरण्मयम् । ततो रम्यकमिति । अथ यमकोटेरुत्तरतो माल्यवान् नाम गिरिः । सतु निषधनीलपर्यन्त

दैर्घ्यः। तस्य जलधेश्च मध्ये भद्राश्वं वर्षम्। एवं रोमकादुत्तरतो गन्धमादनः। तस्य जलधेश्च मध्ये केतुमालम्। एवं निषधनील माल्यवद्गन्धमादनैरावृतमिलावृतं नाम नवमखण्डम्। सा स्वर्गभूमिः। अतस्तत्र देवक्रीडागृहाणि। शेषं स्पष्टम्।

प्रभा।

विद्धि जानीहीत्यर्थः। इला भूमिः तस्याः कला तां विदन्ति जानन्ति ते इलाकलाविदो भूगोलविद्याविशारदाः। इलावृतमलं प्राचुर्येणावृतम्। आङ्पूर्वकाद्वृधातोःक्तः। कृतावरणमात्रभौ। अमराःदेवास्तेषां ये केतिकुलायाः क्रीडाभवनानि तैः समाकुलं व्याप्तम्। कुलाय शब्दोत्र स्थानार्थकः, नतु 'कुलायोनीडमस्त्रियाम्' इत्यमरोक्त्या पक्षिवासभवनबोधकः। रुचिरं मञ्जुलं यत्काञ्चनं सुवर्णं तेन चित्रं नानारूपं महीतलं भूतलं यस्मिन्निलावृतविशेषणम्।

भाषाभाष्य।

जम्बूद्वीप नव † खण्डो में विभक्तहै। लङ्कादेश (निरक्ष) से उत्तर हिमगिरि

† जम्बूद्वीप, आठ कुलाचलों से नव खण्डोंमें विभक्तहै। भागवत के पञ्चमस्कन्ध के दूसरे अध्यायमें लिखाहै कि स्वायम्भुवमनु के पौत्र अग्नीध्र राजा के नौ पुत्र थे, उनका राज्याभिषेक अलग अलग इन नव खण्डों में हुआ, और वे सब खण्ड उनके नामानुसार प्रसिद्ध हुए। जैसा, नाभिवर्ष, अजनाभवर्ष, किम्पुरुषवर्ष, हरिवर्ष, इलावृतवर्ष, रम्यकवर्ष, हिरण्मयवर्ष, कुरुवर्ष, भद्राश्ववर्ष और केतुमालवर्ष। इन नौ खण्डोंका प्रमाण व्यास भगवान् ने जो लिखाहै उसे हम आगे लिखते हैं। यहां पर यह जानना आवश्यकहै कि स्वायम्भुवमनु के समय इन द्वीपों का आकार और प्रमाण जो था वह अब नहीं है। इस समय स्वायम्भुव के समय से छः मनु बीत चुके, सातवां वैवस्वत वर्तमानहै। यों करोड़ों वर्षके समय की स्थिति एकाकार कैसे होसकती? थोड़ेही काल में विपर्यय देखने में आया करताहै। भास्कराचार्य ने आठ कुलाचलों के नाम इसप्रकार लिखे हैं-हिमालय, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृङ्गवान्, माल्यवान्, और गन्धमादन इन मे नील और निषध सुमेरुके उत्तर और दक्षिण दिशा में नवहजार योजन के अन्तर से स्थित होकर पूर्व और पश्चिम दिशा में लवण समुद्र तक विस्तृत हैं। नीलगिरिसे नवहजार योजन पर श्वेतगिरि उससे उतनेही योजनों के अन्तर पर शृङ्गवान् पर्वत पूर्व और पश्चिम में विस्तृत होकर लवण समुद्र में मिला है। इसी प्रकार निषध पर्वत से नवहजार योजन दक्षिण में हेमकूट फिर उतनेही अन्तरपर दक्षिण हिमालयपर्वत है, वेभी पूर्व और पश्चिम में फैलकर लवण समुद्र में मिलाहै। माल्यवान् और गन्धमादन पर्वत क्रमसे सुमेरु के पश्चिम और पूर्व दिशा में नवहजार योजनों के अन्तर में स्थित होकर उत्तर और दक्षिण में फैल

मात्यवांश्च यमकोटिपत्तना-
द्रोमकाच्च किल गन्धमादनः।
नीलशैलनिषधावधी च ता
वन्तरालमनयोरिलावृतम् ॥ २८ ॥
माल्यवज्जलधिमध्यवर्ति यत्
तत्तु भद्रतुरगं जगुर्बुधाः।
गन्धशैलजलराशिमध्यगं
केतुमालकमिलाकलाविदः ॥ २९ ॥
निषधनीलसुगन्धसुमाल्यकै-
रलमिलावृतमावृतमावभौ।
अमरकेलिकुलायसमाकुलं
रुचिरकाञ्चनचित्रमहीतलम् ॥ ३० ॥

अत्र भूगोलस्यार्धमुत्तरं जम्बूद्वीपम्। तस्य क्षाराब्धेश्च सन्धि-र्निरक्षदेशः। तत्र लङ्का रोमकं सिद्धपुरं यमकोटिरिति पुरचतुष्टयं भूपरिधिचतुर्थांशान्तरं किल कथितम्। तेभ्यः पुरेभ्यो यस्यां दिशि मेरुः सोत्तरा। अतो लङ्काया उत्तरतो हिमवान् नाम गिरिः पूर्वा-परसिन्धुपर्यन्तदैर्घ्योऽस्ति। तस्योत्तरे हेमकूटः। सोऽपि समुद्रपर्यन्त दैर्घ्यः। तथा तदुत्तरे निषधः। तेषामन्तरे द्रोणिदेशा वर्षसंज्ञाः। तत्रादौ भारतवर्षम्। तदुत्तरं किन्नरवर्षम्। ततो हरिवर्षमिति। एवं सिद्धपुरादुत्तरतः शृङ्गवान् नाम गिरिः। ततः श्वेतगिरिः। ततो नीलगिरिरिति। तेऽपि सिन्धुपर्यन्तदैर्घ्याः। तेषामन्तरे च वर्षाणि। तत्रादौ कुरुवर्षम्। तदुत्तरे हिरण्मयम्। ततो रम्यकमिति। अथ यमकोटेरुत्तरतो माल्यवान् नाम गिरिः। सतु निषधनीलपर्यन्त

दैर्घ्यः। तस्य जलधेश्च मध्ये भद्राश्वं वर्षम्। एवं रोमकादुत्तरतो गन्धमादनः। तस्य जलधेश्च मध्ये केतुमालम्। एवं निषधनील माल्यवद्गन्धमादनैरावृतमिलावृतं नाम नवमखण्डम्। सा स्वर्गभूमिः। अतस्तत्र देवक्रीडागृहाणि। शेषं स्पष्टम्।

प्रभा।

विद्धि जानीहीत्यर्थः। इला भूमिः तस्याः कला तां विदन्ति जानन्ति ते इलाकलाविदो भूगोलविद्याविशारदाः। इलावृतमलं प्राचुर्येणावृतम्। आङ्पूर्वकाद्वृधातोःक्तः। वृञावरणमात्रभौ। अमराःदेवास्तेषां ये केतिकुलायाः क्रीडाभवनानि तैः समाकुलं व्याप्तम्। कुलाय शब्दोत्र स्थानार्थकः, नतु 'कुलायोनीडमस्त्रियाम्' इत्यमरोक्त्या पक्षिवासभवनबोधकः। रुचिरं मञ्जुलं यत्काञ्चनं सुवर्णं तेन चित्रं नानारूपं महीतलं भूतलं यस्मिन्निलीलावृतविशेषणम्।

भाषाभाष्य।

जम्बूद्वीप नव † खण्डों में विभक्तहै। लङ्कादेश (निरक्ष) से उत्तर हिमगिरि

---

† जम्बूद्वीप, आठ कुलाचलों से नव खण्डोंमें विभक्तहै। भागवत के पञ्चमस्कन्ध के दूसरे अध्याय में लिखाहै कि स्वायम्भुवमनु के पौत्र अग्नीध्र राजा के नौ पुत्र थे, उनका राज्याभिषेक अलग अलग इन नव खण्डों में हुआ, और वे सब खण्ड उनके नामानुसार प्रसिद्ध हुए। जैसा नाभिवर्ष, अजनाभवर्ष, किम्पुरुषवर्ष, हरिवर्ष, इलावृतवर्ष, रम्यकवर्ष, हिरण्मयवर्ष, कुरुवर्ष, भद्राश्ववर्ष और केतुमालवर्ष। इन नौ खण्डोंका प्रमाण व्यास भगवान् ने जो लिखाहै उसे हम आगे लिखते हैं। यहां पर यह जानना आवश्यकहै कि स्वायम्भुवमनु के समय इन द्वीपों का आकार और प्रमाण जो था वह अब नहीं है। उस समय स्वायम्भुव के समय से छः मनु बीत चुके सातवां वैवस्वत वर्तमानहै। तो क्याभी उस समय का स्थिति एकाकार कैसे होसकती ? थोड़ेही काल में विपर्यय देखने में आया करताहै। भास्कराचार्य ने आठ कुलाचलों के नाम इसप्रकार लिखे हैं हिमालय हेमकूट, निषध नील श्वेत शृङ्गवान् माल्यवान् और गन्धमादन इन में नील और निषध सुमेरुके उत्तर और दक्षिण दिशा में नवहजार योजन के अन्तर से स्थित होकर पूर्व और पश्चिम दिशा में लवण समुद्र तक विस्तृत हैं। नीलगिरिसे नवहजार योजन पर श्वेतगिरि उससे उतनेही योजनों के अन्तर पर शृङ्गवान् पर्वत पूर्व और पश्चिम में विस्तृत होकर लवण समुद्र में मिला है। इसी प्रकार निषध पर्वत से नवहजार योजन दक्षिण में हेमकूट फिर उतनेही अन्तरपर दक्षिण हिमालयपर्वत है, ये भी पूर्व और पश्चिम में फैलकर लवण समुद्र में मिलेहैं। माल्यवान् और गन्धमादन पर्वत क्रमसे सुमेरु के पश्चिम और पूर्व दिशा में नवहजार योजनों के अन्तर में स्थित होकर उत्तर और दक्षिण में फैल

उसके उत्तर हेमकूट फिर निषध पर्वत है, ये सब समुद्र तक लम्बे हैं। इसीप्रकार सिद्धपुर (उज्जयिनी से १८० पूर्वमें स्थित) के उत्तर शृङ्गवान् पर्वत उसके उत्तर श्वेतगिरि फिर नीलगिरि है। इन पर्वतों के दो दो के अन्तर पर जो देश हैं वे द्रोणि देश कहलाते हैं जिनको पण्डित लोग वर्ष कहते हैं। जिस देश में हमलोग वास करते हैं वह यह भारतवर्ष है। इसके उत्तर किन्नरवर्ष बाद में हरिवर्ष है। इसीप्रकार सिद्धपुर से प्रथम कुरुवर्ष उसके उत्तर हिरण्मयवर्ष फिर रम्यकवर्ष स्थित है। यमकोटि (उज्जयिनी से ९० अंश पूर्वमें स्थित) से उत्तर माल्यवान् और रोमकपत्तन (उज्जयिनी से ९० अंश पश्चिम में स्थित) से उत्तर गन्धमादन पर्वत स्थित हैं। ये दोनों नील और निषध पर्वततक विस्तृत हैं। इन चार पर्वतों के बीच में इलावृत वर्ष है। माल्यवान् से समुद्रतक भद्राश्ववर्ष और गन्धमादन से समुद्रतक केतुमालवर्ष है। निषध, नील, गन्ध, माल्य इन चार पर्वतों के मध्यमें इलावृतवर्ष है, जहां सुवर्ण की विचित्र छटाओं से भूषित देवगणों का केलिकुल है। यही स्वर्गभूमि है। २६—३०॥

इदानीं मेरुसंस्थानमाह—

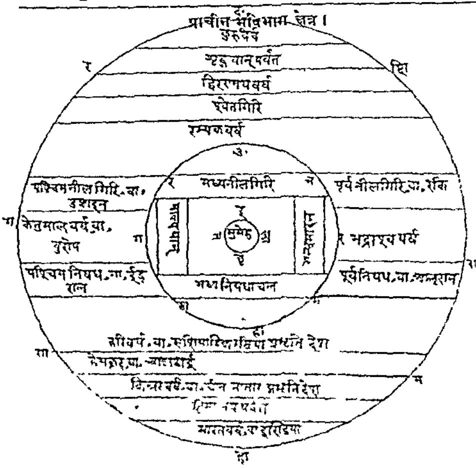
इह हि मेरुगिरिः किल मध्यगः
कनकरत्नमयस्त्रिदशालयः।
द्रुहिणजन्मकुपद्मजकर्णिके-
ति च पुराणविदोऽपुरवर्णयन्॥ ३१॥

विष्कम्भशैलाः खलु मन्दरोऽस्य
सुगन्धशैलो विपुलः सुपार्श्वः ।
तेषु क्रमात्सन्ति च केतुवृक्षाः
कदम्बजम्बूवटपिप्पलाख्याः ॥ ३२ ॥
जम्बूफलामलगलद्रसतः प्रवृत्ता
जम्बूनदी रसयुता मृदभूत्सुवर्णम् ।
जाम्बूनदं हि तदतः सुरसिद्धसङ्घाः
शश्वद्बिभ्रत्यमृतपानपराङ्मुखास्तम् ॥ ३३ ॥

शृङ्गवान् और श्वेतगिरि बिल्कुल समुद्र में लीन होगये । इसका कारण मन्वन्तरों में आकस्मिक प्रलय घटनाही है । भागवत के आठवें स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय में लिखा है कि । आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिकोलय । समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप । अब नव वर्षोंकी सीमा जानना चाहिये । सुमेरु के चारों तरफ चौकोर भूमिका नाम इलावृत वर्ष है । इलावृतवर्षकी चारो सीमापर नील, निषध, माल्यवान् और गन्धमादन ये चारों पर्वत क्रम से उत्तर, दक्षिण, पश्चिम और पूर्व मे स्थित हैं । सुमेरु पर्वत के दक्षिण निषधाचल से हेमकूट अर्थात् अल्टाई गिरितक जो भूभाग है उसका नाम हरिवर्ष है । हरि-वर्ष के पूर्व और पश्चिम सीमा में लवण समुद्र है । इस समय यह एशियाटिक रसिया प्रभृति कई महा देशों में विभक्त है । हेमकूट से दक्षिण हिमालयतक भूप्रदेश को किन्नर किंवा किंपुरुष देश कहते हैं । इसके पूर्व और पश्चिम सीमापर लवण समुद्र वर्तमान है यह स्थान आजकल पारस, आरब, चीन, तातार, प्रभृति कई महादेशों में बंटा है । हिमालय से दक्षिण जम्बूद्वीप पर्यन्त भूभाग को भारतवर्ष कहते हैं । इसके पूर्व पश्चिम और दक्षिण सीमा लवण समुद्र से वेष्टित है । सुमेरु के पश्चिम माल्यवान् से जम्बूद्वीप के दक्षिणभाग तक भूभाग को केतुमालवर्ष कहते हैं । इसके पूर्व और पश्चिम सीमापर क्रमसे पश्चिम निषधाचल अर्थात् ईउराल पर्वत और पश्चिम नीलगिरि डफ्राइन पर्वत अवस्थित है । और इसकी दक्षिण सीमापर लवण समुद्र स्थित है । इस समय इसी देश को यूरोप कहते हैं । पूर्व में पूर्व नीलगिरि अर्थात् रकी पर्वत, पश्चिम में पूर्व निषधाचल यानी अल्टान दक्षिण में लवणसमुद्र एवं उत्तर में गन्धमादन इन चार सीमाओं के मध्यस्थान को भद्राश्ववर्ष कहते हैं । इस समय यह प्रदेश समुद्र में मग्न होगया है । जिस भूप्रदेश के उत्तर नीलगिरि, दक्षिण श्वेतगिरि, पूर्व और पश्चिम लवण समुद्र है उसको रम्यकवर्ष कहते हैं । यह देश उत्तर अमेरिका का उत्तर भाग है । इस देशका भी कई अंश छिन्न भिन्न होकर लुप्त होगया है । श्वेतगिरिसे दक्षिण शृङ्गवान् तक भूभाग को हिरण्मयवर्ष कहते हैं । और शृङ्गवान् से दक्षिण जम्बूद्वीप के दक्षिणभाग तक भूभाग को कुरुवर्ष कहते हैं । हिरण्मय और कुरुवर्ष मालूम होता है जब उसके सीमा के श्वेत और शृङ्गवान् पर्वत अप्रयोजनता को प्राप्त हुए थे तभी लुप्तप्राय होगये थे । और सम्भवत उत्तर अमेरिका मे कुछ अंश और कुछ दक्षिण में परिणत होगया है । विष्णुपुराण और वायु पुराण में भी जम्बूद्वीप का वर्णन और भूगोल लिखा है । उससे भास्कर का भूगोल वर्णन कुछ भिन्न है । परन्तु सब पुराणों के ही आधार पर है ।

वनं तथा चैत्ररथं विचित्रं
तेष्वप्सरोनन्दननन्दनं च ।
धृत्याढ्यं यद्धतिकृत्सुराणां
भ्राजिष्णु वैभ्राजमिति प्रसिद्धम् ॥ ३४ ॥

सरांस्यथैतेष्वरुणं च मानसं
महाह्रदं श्वेतजलं यथाक्रमम् ।
सरःसुरामारमणश्रमालसाः
सुरा रमन्ते जलकेलिलालसाः ॥ ३५ ॥



इस प्रकार प्राचीन भूगोल का वर्णन और उसका स्वरूप है। यहां पर प्रत्येक देश और समुद्रों की लम्बाई चौड़ाई आदि का प्रमाण पुराणोक्त है। इसकी यथार्थता परीक्षा असाध्य है।

सद्रत्नकाञ्चनमयं शिखरत्रयं च
मेरौ मुरारिकपुरारिपुराणि तेषु।
तेष्वधः शतमखज्वलनान्तकानां
रक्षोऽम्बुपानिलशशीशपुराणि चाष्टौ ॥ २६ ॥

तस्येलावृतस्य मध्ये कनकरत्नमयो मेरुगिरिः कर्णिकाकारस्तदेव देवानामालयम्। तत्र मेरावुपरि शिखरत्रयम्। तेषु शिखरेषु मुरारेर्ब्रह्मणः पुरारेश्च पुराणि सन्ति। शिखराणामधः समन्तादिन्द्रादिलोकपालानां पुराणि सन्ति। अथ मेरोर्विष्कम्भशैला इत्याधारपर्वताः। यस्यां दिशि यमकोटिस्तद्दिक्प्रभृति मन्दरसुगन्धविपुलसुपार्श्वा दिक्षु सन्ति। मन्दरे कदम्बः केतुवृक्षश्चैत्ररथं वनमरुणोदं सरः। सुगन्धशैलमस्तके। केतुवृक्षो जम्बूः। येनेदं जम्बूद्वीपमुच्यते। नन्दनं वनं मानसं सरः। विपुलशैलमस्तके केतुवृक्षो वटो धृतिर्वनं महाह्रदंसरः। सुपार्श्वमस्तके केतुवृक्षः पिप्पलो वैभ्राजं वनं श्वेतोदं सरः। शेषं सुगमम्।

प्रभा।

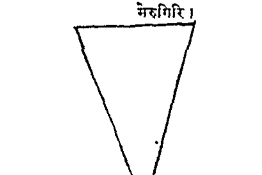
इहेलावृतवर्षे कनकरत्नमयः। कनकं सुवर्णं रत्नमश्मजातिर्मणिविशेषः। एभिः प्रचुरमिति तदर्थे मयट्। त्रिदशानां देवानामालयो धामभवनम्। एवंविधो मेरुगिरिर्मध्यगस्तस्येलावृतवर्षस्य मध्यभागावस्थितो वर्तते। अमुं मेरुं, द्रुहिणस्य ब्रह्मणो जन्म कुर्जन्मभूरेव पद्मं तस्माज्जाता या कर्णिकेत्यवर्णयन् सादरमकथयन् पौराणिकाः। जम्बूफलाद् अमलः स्वच्छो गलन् द्रवीभावेन पतन् यो रसः तस्मात् प्रवृत्ता समुद्गता जम्बूनदी। मृद्रसयुतासुवर्णमभूत्। तत्सुवर्णमतो जाम्बूनदं जम्बूनद्यां भवमिति विग्रहे अण्। तदभिख्या लेभे इत्यर्थः। सुगन्ध

पर्वतस्थजम्बूफलानामत्युच्चस्थानात् पातेन विशीर्णानामनस्थिप्राये भकायनिभानां रसेन संजाता जम्बूनाम नदी इलावृते वहतीत्यादि भागवते लेखोऽप्युपलभ्यते। नन्दनं नन्दयतीति विग्रहे नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यच् इति ल्युः । इन्द्रवनम्। भ्राजिष्णु इत्यत्रेष्णुच् दीप्तियुक्तमित्यर्थः । रमते रमयतीति वा रामा ज्वलादित्वात् णः ततष्टाप् । रामाणां रमणं तेन यः श्रमस्तेनालसाः। सुराः देवाः रमन्ते । सुरारिर्विबुदेवः को ब्रह्मा पुरारिः शिवः । तेषामधः प्रदेशे इन्द्राग्नियमरक्षोवरुणवायुकुबेरेशानामष्टौ पुराणि नगराणि सन्ति ।

भाषाभाष्य ।

इलावृतवर्षके बीचमें कनक और रत्नमय देवताओंका निवासस्थान मेरुगिरि† स्थित है। वह पद्मकर्णिका के समानहै, उसी से ब्रह्माकी उत्पत्तिहै। इस मेरुके आधारभूत मन्दर, सुगन्ध, विपुल और सुपार्श्व पर्वत हैं । उनपर कदम्ब, जम्बू, वट और पिप्पल वृक्ष क्रमसे पताकारूप से स्थित हैं। जम्बूफल के विमल–रससे जम्बू नदीकी उत्पत्तिहै । जिसके रससे मिट्टी के संयोग से सुवर्ण उत्पन्न होता है। इस लिए उस सुवर्ण को जाम्बूनद कहते हैं। अमृतपान से विरक्त होकर देव और सिद्ध पुरुष इस नदी के रसका पान करते हैं । वहींपर विचित्र चैत्ररथ नामक वन है

† पुराणों में मेरु पर्वत का आकार पद्मकर्णिका समान लिखा है। वायु पुराण के ३४ वें अध्याय में लिखा है कि महार्णवाम्बु कर्णिकाकार ! पद्मसंस्थिता । तत कर्णिदग्रथाता मर्मांर महाबल ॥ इस प्रकार मेरुका आकार यों है—



और अप्सरों को आनन्द देनेवाला नन्दनवन है । देवताओं को धैर्यप्रद धृतिरन और शोभायुक्त वैभ्राज नामक वन है । वहींपर अरुण, मानस, महाह्रद और श्वेतजल नामक सरोवर हैं । जिनमें स्त्रियों के सहवास श्रमसे आलसी देवगण जलक्रीडा किया करते हैं। मेरुगिरि के तीन शिखरहैं, जहां विष्णु, ब्रह्मा और शिव की तीन पुरी हैं । इन शिखरों के नीचे अष्टदिक्पालों की पुरी हैं पूर्वमें इन्द्रकी अमरावती, दक्षिणमें यमकी संयमनी, पश्चिममें वरुणकी श्रद्धावती, उत्तरमें कुबेरकी महोदया पुरी है । पूर्व दक्षिण मे अग्निकी तेजोवशा, दक्षिण पश्चिम में राक्षसकी कृष्णाङ्गना, पश्चिम उत्तरमें वायुकी गन्धवती, और उत्तर पूर्व में ईशकी यशोवती पुरी है ॥ ३१ । ३६ ॥

तत्रान्यं विशेषमाह—

विष्णुपदी विष्णुपदात्पतिता मेरौ चतुर्धास्मात् ।
विष्कम्भाचलमस्तकशस्तसरःसंगताऽऽगता वियता ॥ ३७ ॥
सीताख्या भद्राश्वं सालकनन्दा च भारतं वर्षम् ।
चक्षुश्च केतुमालं भद्राख्या चोत्तरान्कुरून्याता ॥ ३८ ॥
याकर्णिताभिलषिता दृष्टा स्पृष्टावगाहिता पीता ।
उक्ता स्मृता स्तुता या पुनाति बहुधापि पापिनःपुरुषान्॥३९॥
यां चलिते दलिताखिलबन्धो
गच्छति वल्गति तत्पितृसङ्घः ।
प्राप्ततटे विजितान्तकदूतो
याति नरे निरयात् सुरलोकम् ॥ ४० ॥

गङ्गां यामीत्युपक्रमं कुर्वत्यपि नरे तस्य पितॄणां नरकस्थानां पाशबन्धास्त्रुट्यन्ति । अथ गच्छति मार्गगमने नत्पितरो वल्गन्ति । अस्मत्कुलजो गङ्गां गच्छति । अतोस्माकं दुष्कृतकर्मविच्छेदादूर्ध्वगतिर्भविष्यतीति हर्षेणोत्पतन्ति । अथ प्राप्तनट

गङ्गामन्त्रस्थिते स्वकुलजे गङ्गाबलेन मुष्टिघातादिभिरन्तकदूतान् जित्वा देवलोकं यान्ति। एवंविधाया गङ्गाया मन्दाकिन्याः किमन्यद्वर्ण्यत इत्यर्थः। शेषं स्पष्टम्।

प्रभा।

विष्णोः पदं स्थानं यस्याः सा विष्णुपदी गङ्गा। गौरादित्वात् ङीप्। निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदी स्मृता' इति ब्रह्मवैवर्त पुराणे स्थितम्। विष्कम्भाचलानां मन्दरादीनां मस्तके शस्तं प्रशस्तं यत् सरो मानस–महाहृदादि तत्र संगता। वियता गगनमार्गेण आगता। मेरुपाताच्चतुर्धा विभक्ता सती चतुर्ष्वपि विष्कम्भाचलस्थितसरःसु संगतेत्यर्थः। सीतानामधेया धारा भद्राश्ववर्षं गता। अलकनन्दा चैनद् भारतवर्षं याता। एवमग्रेऽपि।

भाषाभाष्य।

विष्णुपदी गङ्गा विष्णुपद से मेरुपर गिरी है। वहांसे चार प्रवाहों में विभक्त होकर चारों मन्दर आदि आधार पर्वतों के शिरोवर्ति सरमें मिली है। सीतानामक धारा भद्राश्ववर्ष में, अलकनन्दा भारतवर्ष में, चक्षु केतुमाल (युरोप) में और भद्रा कुरुवर्ष में फैली है। जिस गङ्गा के नाम सुनने, उसके प्रेम करने, देखने, स्पर्श करने, स्नान करने और जलपान करने एवं स्मरण और स्तुति करने से नाना प्रकार के पापी पुरुषों का उद्धार होता है। जिसके पास जानेका इरादा करनेही से पितृगण यमपाश से छूटजाते हैं। और जाने से वे सब आश्रम में आनन्दसे कूदते हैं। और तीरपर पहुँचने पर यमदूता का जीतकर स्वर्गलोक को सिधारते हैं॥ ३७। ४०॥

इदानीं भारतस्यापि मध्ये नवखण्डानि सकुलाचलांश्चाह—

ऐन्द्रं कशेरु सकलं किल ताम्रपर्ण-
मन्यद्गभस्तिमदतश्च कुमारिकाख्यम्।
नागं च सौम्यमिह वारुणमन्त्यखण्डं
गान्धर्वसंज्ञमिति भारतवर्षमध्ये॥ ४१॥

वर्णव्यवस्थितिरिहैव कुमारिकाख्ये
शेषेषु चान्त्यजजना निवसन्ति सर्वे ।
माहेन्द्रशुक्तिमलयर्क्षकपारियात्राः
सह्यःसविन्ध्य इह सप्त कुलाचलाख्याः ॥ ४२ ॥

स्पष्टम् । प्रभा ।

भारतवर्षेऽपि तावदैन्द्रादीनि नवखण्डानि सन्ति तथाच मत्स्यपुराणे–' इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् । नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥ अयं तु नवमस्तेषां द्वीपःसागरसंवृतः । इन्द्रद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुण इत्यादि विष्णुपुराणेऽपि स्थितम् । इह कुमारिकाख्यखण्ड एव ब्राह्मणादिवर्णव्यवस्था नान्यत्र । कुमारिकाखण्डमेव भरतखण्डमिति बोध्यम् । माहेन्द्रशुक्त्यादयश्चात्र सप्तकुलपर्वताः । तथाच मार्कण्डेयपुराणे 'माहेन्द्रो मलयःसह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचलाः' इति ।

भाषाभाष्य ।

इस भारतवर्ष में भी नवखण्ड हैं । उनके नाम ये हैं, ऐन्द्र, कशेरु ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, कुमारिका, नाग, सौम्य, वारुण और गन्धर्व । इनमें केवल कुमारिका खण्डमें ही ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णोंकी व्यवस्था है । बाकी खण्डों में अन्त्यज जातियोंका निवास है । माहेन्द्र, शुक्तिमान्, मलय, ऋक्ष, पारियात्र (वा पारिपात्र), सह्य और विन्ध्य ये भारतवर्ष के सात कुलपर्वत हैं ॥ ४१।४२ ॥

इदानीं लोकव्यवस्थामाह—

भूर्लोकाख्यो दक्षिणे व्यक्षदेशा-
त्तस्मात्सौम्योऽयं भुवः स्वश्च मेरुः ।
लभ्यःपुण्यैः खे महः स्याज्जनोऽतो-
नल्पानल्पैः स्वैस्तपः सत्यमन्त्यः ॥ ४३ ॥

स्पष्टम् । यदिदमुक्तं तत्सर्वं पुराणाश्रितम् ।

प्रभा ।

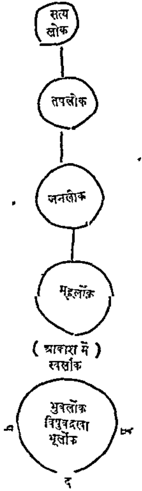
निरक्षदेशाद्दक्षिणे भूर्लोकः तस्माच्चोत्तरप्रदेशोऽयं जम्बूद्वीपात्मको भुवर्लोकः मेरुः स्वर्लोकः । खे महर्लोकस्ततो जनस्ततश्च सत्यलोकः

एते सप्तलोका अग्निपुराणे निर्दिष्टाः । यथा 'भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनश्च तप एवच । सत्यलोकश्च सप्तैते लोकास्तु परिकीर्तिताः ॥ ' इति । स्वै रात्मीयैरल्पानल्पैर्न्यूनाधिकैः पुण्यैर्लभ्यः । स्वस्वपुण्यानुरूपाउत्तरोत्तर लोकप्राप्तिरितितात्पर्यम् ।

भाषाभाष्य ।

लङ्काके दक्षिणकी तरफ भूर्लोक है । उससे उत्तरकी तरफ भुवर्लोक, और मेरुको स्वर्गलोक कहते हैं । मेरुके ऊपर आकाशमें महर्लोक है, उसके ऊपर जनलोक, तपलोक और सत्यलोक ये सब एकसे एक ऊपर हैं † जैसा जैसा मनुष्यका पुण्य होताहै वैसा वैसा लोक मिलता है ॥ ४३ ॥

† सिद्धान्त के मत से लोकस्थिति नीचे लिखे क्रम से है । अग्निपुराण में भी यही क्रम है । परन्तु भागवत में भिन्न है ।



इदानीं दिग्व्यवस्थितिमाह—

लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्या-
त्तदा दिनार्धं यमकोटिपुर्याम्।
अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः
स्याद्रोमके रात्रिदलं तदैव॥ ४४॥
यत्रोदितोऽर्कः किल तत्र पूर्वा
तत्रापरा यत्र गतः प्रतिष्ठाम्।
तन्मत्स्यतोऽन्येच ततोऽखिलाना-
मुदक्स्थितो मेरुरिति प्रसिद्धम्॥ ४५॥

स्पष्टम्।

प्रभा।

प्रतितिष्ठतीति प्रतिष्ठा प्रतिपूर्वकस्थाधातोः 'आतश्चोपसर्गे' इत्यङ् ततष्टाप्। एवमुदयास्तवशेन पूर्वापरे विज्ञाय ताभ्यां मत्स्यतोऽन्ये दक्षिणोत्तरे प्रसाध्ये इति। अखिलानां सकलदेशानामुदगुत्तरदिशि मेरु गिरिरिति प्रसिद्धं विश्रुतम्।

भाषाभाष्य।

जब लङ्का में सूर्योदय होगा उस समय यमकोटि में दिनार्ध और नीचे सिद्धपुर में अस्तकाल एवं रोमकपत्तन में आधीरात होगी। जिस दिशा में सूर्य उदय हो वही पूर्व दिशा और जिधर अस्तहो वही पश्चिम दिशा समझना चाहिये। यों दोनों दिशाओंको जानकर मत्स्य बनाकर दक्षिण और उत्तर दिशाभी सिद्धहोगी सब देशों से उत्तर दिशा में मेरुगिरि की स्थिति है यह बात प्रसिद्ध है।

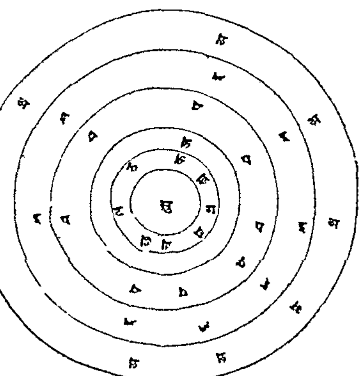
उपपत्ति।

भूगोलके मध्यमें लङ्काकी कल्पना है। वहांसे पूर्वदिशा में ९० अंशपर यमकोटि स्थित है। यमकोटिका मध्याह्नवृत्त लङ्काका क्षितिज है। लङ्कामें जब उदय होगा तो उससे ९० अंश पूर्व यमकोटि में दिनार्ध होगा। यों जब यमकोटिमें

दिनार्ध होगा तो उससे नीचे ९० अंशपर सिद्धपुर में अस्त होगा । और उसी समय रोमकपत्तन मे अर्धरात्रि होगी । इसप्रकार इन नगरों में किसी स्थान में उदय मानकर ९० अंश पर पूर्व और पश्चिम स्थित नगरों में क्रमसे उदय, अस्त दिनार्ध और रात्र्यर्ध की व्यवस्था सहज में ज्ञात होती है ।

भास्कराचार्य ने लिखाहै सब प्रदेशों से मेरु उत्तरमें स्थितहै। इस विषय को सप्रमाण सिद्ध करने में सूर्यगति के नियमकी विवेचना आवश्यक है। भागवतके पञ्चम स्कन्ध के २१ वें अध्याय में लिखा है कि 'सव्येन चलन् दक्षिणेन याति।' इससे यह ज्ञात हुआ कि सूर्य दक्षिणावर्त से मेरुके चारों तरफ भ्रमण करता है। नीचे लिखे क्षेत्र में स्पष्ट रीति से मालुम होगा । 'सु' सुमेरु, 'ज' जम्बूद्वीप, 'प' प्लक्षद्वीप, 'इ' इक्षुसमुद्र और 'अ' से अन्यान्य भूभाग समझना चाहिये। 'क ख ग घ, च छ ट ठ' सुमेरु प्रदक्षिणा करनेका रविमार्ग है ॥

क्षेत्र ।



'क ख' आदि मार्गसे रवि प्रदक्षिणा करता है। 'क' स्थानपर जब सूर्य उदय होगा तब 'ख' स्थान ठीक सूर्याभिमुख होगा। 'क' चिह्नपर उदय होने से क चिह्नित दिशा पूर्व 'ग' चिह्नित पश्चिम 'सु' चिह्न उत्तर और 'पइत्र' दक्षिणदिशा सिद्ध होती है। जब 'ख' चिह्नपर सूर्य उदय होगा उस समय 'ख' पूर्व, 'घ' पश्चिम, 'सु' उत्तर एवं 'पइत्र' दक्षिण दिशा होगी। इसीप्रकार 'ग' चिह्नपर भी उदय कल्पना करके दिशाओंका ज्ञान सहज है। यों ज्ञातहोगा कि 'छटठ' इत्यादि क्रमसे पश्चिम, ठटछच इत्यादि क्रमसे पूर्व और 'सु' उत्तर एवं 'पइत्र' दक्षिण दिशामें होंगे। इसप्रकार देखाजाता है कि 'सु' चिह्नित दिशा जम्बूद्वीप से उत्तर 'पइत्र' चिह्नित दिशा जम्बूद्वीप किंवा लवण समुद्रसे दक्षिण है। अब सिद्ध हुआ कि हमारे यहांसे मेरु उत्तर सिवाय किसी दूसरी दिशामें नहीं है और लवण, इक्षु प्रभृति समुद्र हमारे यहां से दक्षिण दिशामें वर्तमान हैं। इसीलिए विष्णुपुराणमें भी लिखा है कि 'सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थितः' ॥ ४४।४५ ॥

इदानीं विशेषमाह—

यथोज्जयिन्याः कुचतुर्थभागे
प्राच्यां दिशि स्याद्यमकोटिरेव।
ततश्च पश्चान्न भवेदवन्ती
लङ्कैव तस्याः ककुभि प्रतीच्याम् ॥ ४६ ॥
तथैव सर्वत्र यतोहि यत्स्यात्
प्राच्यां ततस्तत्र भवेत्प्रतीच्याम्।
निरक्षदेशादितरत्र तस्मा—
त्प्राचीप्रतीच्यौ च विचित्रसंस्थे ॥ ४७ ॥

इष्टप्रदेशान्मेरोरभिमुखीमुत्तरां दिशं निश्चलां कृत्वा निरक्षाभिमुखींदक्षिणां च निश्चलां कृत्वा तन्मत्स्यात्प्राच्यपरा साध्या। एवं यत्प्राच्यग्रे चिह्नं भवति ततः पुनरुत्तरां दक्षिणां च साधयित्वा यावत्प्राच्यपरा साध्यते तावत्पूर्वरेखायां न पतति। उत्तरायाश्चलितत्वात्प्राच्यपरा चलिता भवतीत्यर्थः। शेषं सुगमम्।

प्रभा।

यथोज्जयिन्येति श्लोकद्वयमपि स्फुटम् । अत्रेदंबोध्यम्, ध्रुवतारयोः क्षितिजगतत्वाभिप्रायेण पौलस्त्यावासनिमित्तकप्रसिद्ध्याच लङ्कापुरं भूपृष्ठमध्यं प्रकल्प्य ततः पूर्वक्रमेण नवत्यंशान्तरे ९० यमकोटिमशीत्यधिकशतांशान्तरे १८० सिद्धपुरं सप्तत्यधिकद्विशत्यंशान्तरे २७० रोमकपुरंच भचक्रभ्रमणसंस्थावगत्यर्थं कल्पितम्। तेषां विषुवरेखात इतस्ततो वर्तमानत्वे नष्टत्वेऽपि च कालवशेन प्रकृते न क्षतिर्यावद्भूगोलावस्थानं विषुवदुपलक्षितबिन्दुलक्षणकस्थानचतुष्टयव्यत्यासापायायोगात्।

भाषाभाष्य।

जैसे उज्जयिनी से पूर्वदिशामें भूमिके चतुर्थांश पर यमकोटि स्थित है तौभी यमकोटि से पश्चिम दिशामें उज्जयिनी नहीं किन्तु लङ्काही है। इसी प्रकार सर्वत्र जिस स्थानसे जो स्थान पूर्वमें है उससे दूसरा स्थान पश्चिम में नहीं होसकता। यों स्पष्ट है कि निरक्षदेशसे अलग पूर्व और पश्चिम दिशाकी विचित्र स्थिति हो जातीहै। अर्थात् उत्तर दिशाके चलनसे सब दिशाओंमें अन्तर पड़जाताहै॥४६।४७॥

इदानीं चक्रभ्रमणव्यवस्थामाह—

निरक्षदेशे क्षितिमण्डलोपगौ
ध्रुवौ नरः पश्यति दक्षिणोत्तरौ।
तदाश्रितं खे जलयन्त्रवत्तथा
भ्रमद्भचक्रं निजमस्तकोपरि॥ ४८॥
उदग्दिशं याति यथा यथा नर—
स्तथा तथा खान्नतमृक्षमण्डलम्।
उदग्ध्रुवं पश्यति चोन्नतं क्षिते—
स्तदन्तरे योजनजाः पलांशकाः॥ ४९॥
योजनसंख्या भांशै—
र्गुणिता स्वपरिधिहृता भवन्त्यंशाः।
भूमौ कक्षायां वा
भागेभ्यो योजनानि च व्यस्तम्॥ ५०॥

उदग्दिशं याति यथा यथा नर इत्यनेनापसारयोजनैरनुपातः सूचितः। यदि भूपरिधियोजनैश्चक्रांशा लभ्यन्ते तदापसारयोजनैः किमिति। फलमक्षांशाः। यदि चक्रांशमितपरिधिना भूपरिधिर्लभ्यते तदाक्षांशैः किमिति। फलं निरक्षदेशस्वदेशयोरन्तरयोजनानि स्युः। शेषं स्पष्टम्। एवं निरक्षदेशात्क्षितिचतुर्थांशे किल मेरुः। तत्र नवतिः ९० पलांशाः।

प्रभा।

उदग्दिशमित्यादिना भुवो गोलाकारत्वमपि ज्ञायते। स्वपरिधिर्भूपरिधिः कक्षापरिधिश्च। भागेभ्यः साधिताक्षांशेभ्यो व्यस्तं विपरीतानुपातेन योजनान्यन्तरयोजनानि ज्ञायन्ते।

भाषाभाष्य।

निरक्ष देशमें मनुष्य दक्षिण और उत्तर दोनों ध्रुवोंको क्षितिजवृत्तमें लगा देखता है। और ध्रुवासक्त भचक्रको, अपने शिरके ऊपर जलयन्त्र (अरहट) के भांति भ्रमण करता हुआ देखता है। मनुष्य जैसे उत्तरको चलैगा वैसेही भमण्डल को झुकाहुआ और उत्तर ध्रुवको क्रमसे ऊंचा देखैगा। भूमि और ध्रुवकी ऊँचाई के मध्यमें योजनात्मक अक्षांश होताहै। योजन संख्याको भाश (३६०) से गुणाकर स्पष्टपरिधिका भाग देने से भूमि किंवा कक्षामें अंश सिद्ध होते हैं। विपरीत अनुपातसे अंशसे योजनात्मक अन्तर होताहै।

उपपत्ति।

निरक्ष देशमें दोनों ध्रुव क्षितिज में संलग्न मालूम होते हैं। और वहांसे जितनाही उत्तरको चलाजाय उतनाही क्रमसे ध्रुव ऊंचा होता जायगा। ये बातें प्रथम 'पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात्' इस श्लोककी उपपत्ति में स्पष्ट रूपसे लिखी हैं। जिस प्रकार वहां दो स्थानों का अन्तर जानकर योजनात्मक भूपरिधिका साधन किया है, उसीप्रकार यहां प्रथम अक्षांशका साधन होताहै। फिर त्रैराशिक से दोनो स्थानोंके अन्तर योजनभी सिद्ध होजाते हैं।

अक्षांश के साधनार्थ अनुपात,

$$\text{भूपयो: ३६०̊ :: अंयो:} = \frac{\text{६३०̊} \times \text{अंयो}}{\text{भूपयो:}} = \text{अक्षांश ।}$$

अन्तरयोजनार्थ अनुपात,

$$\text{३६०: भूप :: अक्षां:} = \frac{\text{भूप} \times \text{अक्षां}}{\text{३६०}} = \text{अन्तरयोजन ।}$$

इसप्रकार ' योजनसंख्या भांशैर्गुणिता—' इत्यादि उपपन्न हुआ॥ ४८–५० ।

अतस्तत्र ध्रुवर्क्षसंस्थानमाह—

सौम्यं ध्रुवं मेरुगताः खमध्ये
याम्यं च दैत्या निजमस्तकोर्ध्वे।
सव्यापसव्यं भ्रमदृक्षचक्रं
विलोकयन्ति क्षितिजप्रसक्तम् ॥ ५१ ॥

स्पष्टम्। कृते गोलबन्धे भगोलं परिभ्राम्येदं शिष्याय दर्शयेत्।

प्रभा।

मेरुगता अमराः सौम्यं ध्रुवं खमध्ये दैत्या असुराः याम्यं ध्रुवं च निजमस्तकोर्ध्वे पश्यन्ति। ऋक्षचक्रं भचक्रं सव्यासव्यं भ्रमत् क्षितिजप्रसक्तं विलोकयन्ति। तदेतद् भचक्रभ्रमणं देवानां पूर्वादिदिक्क्रमेण दैत्यानांपूर्वादिदिग्व्युत्क्रमेण भवतीति भावनीयम्।

भाषाभाष्य।

मेरुवासी देवगण उत्तर ध्रुवको और दैत्यगण दक्षिण ध्रुवको अपने शिरके ऊपर देखते हैं। और वे लोग अनुलोम विलोमरूपसे भचकको क्षितिजरेखासक्त भ्रमण करताहुआ देखते हैं।

उपपत्ति।

खगोल के अन्तर्गत भगोल बनाकर उसको घुमाने से भचक्रका भ्रमण क्षितिजासक्त होताहै। मेरुप्रष्ठवासियों को ध्रुव खमध्य में दीखता है क्योंकि वहांपर ९०̊ अक्षांश होते हैं। और विषुवद्वृत्त उनलोगों का क्षितिजवृत्त होता है। उस

क्षितिजवृत्त से क्रान्तिके तुल्य क्रान्तिवृत्त और भचक्र दक्षिण उत्तरको हटा है। ऐसी स्थिति में देव और दैत्य दोनों, यथा समय—क्रान्तिवृत्त और भचक्रको क्षितिजमें लगाहुआ भ्रमण करते हुये देखते हैं। अर्थात् वहांपर क्षितिजवृत्त में सूर्यादि उदित होकर क्षितिज के समानान्तर वृत्तके स्वरूप में चारोंतरफ भ्रमण करते हैं। यों मेरुकी स्थिति गोलपर स्पष्ट प्रतीत होतीहै। खगोलान्तर्गत भगोल की रचना आगे 'गोलबन्धाधिकार' में कही जायगी ॥ ५१ ॥

इदानीं भूपरिधिमानं प्राकथितमपि विशेषार्थमनुवदतिस्म।

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धय-(४९६७)
स्तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवः सिद्धांशकेनाधिकः (१५८१ $\frac{1}{24}$)
पृष्ठक्षेत्रफलं तथा युगगुणस्त्रिंशच्छराष्टाद्रयो (७८५३०३४)
भूमेः कन्दुकजालवत्कुपरिधिव्यासाहतेः प्रस्फुटम् ॥ ५२ ॥

भूव्यासः कुभुजङ्गसायकभूमितानि योजनानि चतुर्विंशत्यंश १५८१ $\frac{1}{24}$ मितानि। परिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धिमितानि ४९६७। ननु भूव्यासस्य कथं त्वदुक्तादन्यः परिधिरिति चेदत्रोच्यते। महद्युतादिव्यासार्धं प्रकल्प्य वृत्तशतांशादपि सूक्ष्मविभागस्य ज्योत्पत्तिविधिना ज्या साध्या। यत्संख्याकस्य विभागस्य ज्या तत्संख्यया सा गुणिता सती परिधिर्भवति। यतः शतांशादपि सूक्ष्मोंशो वृत्तेः समः स्यात्। अतोऽयुतद्वयव्यासे २०००० द्विकाग्न्यष्टयमर्तुमितः ६२८३२ परिधि[1] रार्यभटाचार्यैरङ्गीकृतः। यत्पुनः श्रीधराचार्यब्रह्मगुप्तादिभिर्व्यासवर्गाद्दशगुणात्पदं परिधिः स्थूलोप्यङ्गीकृतः स सुखार्थम्। नहि ते न जानन्तीति। तथा भूपृष्ठक्षेत्रफलं योजनात्मकं युगगुणत्रिंशच्छराष्टाद्रयः ७८५३०३४। कथमिदं जातं तदाह। परिधिव्यासाहतेःप्रस्फुटम्।

---

[1] 'चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम्। अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः॥' आर्यभटीय गणितपाद श्लो० १० ॥

प्रभा ।

कन्दुकजालवत् यथा कन्दुकस्य पृष्ठभागः परितोजालावृतो भवति तथैवेदं भूमेः पृष्ठक्षेत्रफलमुपरितनं जायत इत्यर्थः । शेषं स्फुटमेव ।

भाषाभाष्य ।

भूमिकी परिधि ४९६७ योजन कहीगई है । उसका व्यास १५८१$\frac{२}{२४}$ योजन अपने चौबीसवें हिस्से के सहित निश्चित हुआ है । और उसका पृष्ठक्षेत्रफल ७८५३०३४ योजनहै । यह भूमिका क्षेत्रफल गेंदके जालके समान ऊपरका होता है । यह भूपरिधि और व्यासके गुणन से स्फुट सिद्ध होता है ।

उपपत्ति ।

(१) ऊपर वासना भाष्य में भास्कराचार्य ने सूक्ष्म अनुपातके क्रमसे व्यास और परिधिका आनयन कियाहै । वह इसप्रकार है, व्यासार्धको अयुत (१००००) आदि बड़ी संख्या कल्पना करके ज्योत्पत्ति की विधिसे वृत्तके शतांशकी अपेक्षाभी सूक्ष्म अंशकी ज्या साधन करना । परिधि के जितने सूक्ष्म अंशकी ज्या सिद्धभई हो उससे ज्याको गुणा करने से परिधि होगी । क्योंकि शतांशसे भी सूक्ष्म अंश वृत्तमें सम रेखाकार होता है । इसीलिये वृत्तका व्यास २०००० कल्पना करके तदनुसार ६२८३२ परिधि (प्रथम) आर्यभटादिकों ने स्वीकृतकी है । परन्तु श्रीधराचार्य और ब्रह्मगुप्तादिकोंने जो दशगुणित व्यासवर्ग के मूल $\sqrt{१० \times व्या^२}$ को परिधिके समान मानाहै वह स्थूल प्रकार-होनेपर भी सुभीते के लिये मानली है

सूर्यसिद्धान्तादि प्राचीन ग्रन्थों में ' तद्वर्गतोदशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत् ' अर्थात् दशगुणित व्यासवर्ग का मूल परिधिके समान होता है । अथवा, इसप्रकार

$$व्यास : परि :: १ : \sqrt{१०} = ३.१६२३ ।$$

इसीके लिये भास्कराचार्य कहते हैं कि आर्यभट ब्रह्मगुप्त शुद्ध अनुपात जानक भी इसको क्यों उपयुक्त किया ? रङ्गनाथ ने सूर्यसिद्धान्त की टीकामें लिखाहै कि गणित लाघव के लिये इसको स्वीकृत किया है । सूर्यसिद्धान्त में जो सूक्ष्मविधि परिधिके साधनकी लिखी है उसीसे '.१: $\sqrt{१०}$ ' इस अनुपातकी उत्पत्ति है ' योजनानि शतान्यष्टौ-' इत्यादि प्रकार से अनुपात यों हुआ-

$$६८७६ : २१६०० :: १ : \frac{२१६०० \times १}{६८७६}$$ इसमें हरक

अपवर्तन देने से और शेष संख्याका वर्ग करने से ८।५२।१२ हुआ। इन संख्याओं को एकत्र करने के लिये स्वल्पन्तर से १० मानलिया। इसप्रकार 'वर्गेण वर्ग गुणयेत्—', इत्यादि विधि से व्यासवर्ग दशगुणितका मूल परिधि हुई। इसी विषय का भास्कराचार्यने वासनाभाष्यमें प्रसङ्ग किया है। परन्तु यह भास्कराचार्य को सम्मत नहीं है। उनके अनुसार—

१२५० : ३९२७ :: १ : ३.१४१६ यह सूक्ष्म अनुपात है। इसके अनुसार भूव्यास १५८१$\frac{1}{2}$ योजन और परिधि ४९६७ सिद्ध होतीहै। † ब्रह्मगुप्त और भास्करका भूव्यास तो एकही है। परन्तु भूपरिधि में अन्तर पड़ गया। क्योंकि ब्रह्मगुप्तने १:$\sqrt{१०}$ इस स्थूल अनुपातका सुभीते के लिये उपयोग किया है।

प्राचीन आचार्यों ने जो योजनात्मक भूव्यास लिखे हैं वे सब परस्पर विरुद्ध हैं। जिसप्रकार अर्धज्या से ज्या का बोध होताहै, प्राय उसीप्रकार योजनार्ध से योजन का अर्थ है। योजन का प्रमाण भी प्राचीनों का भिन्नहै। भट्टोत्पल के लेखानुसार पुलिशके मतसे अंगुलादि योजनप्रमाण यों है—

पुलिशके मतसे	भास्कर के मत से—
१२ अगुल=१ शकु.	८ यव=१ अगुल.
२ शकु=१ हस्त.	२४ अगुल=१ हस्त.
४००० हस्त=१ क्रोश.	४ हस्त=१ दण्ड.
८ क्रोश=१ योजन.	२००० दण्ड=१ क्रोश.
	४ क्रोश=१ योजन.

इसप्रकार पुलिशानुसार ८ कोश का और भास्करानुसार ४ कोश का एक योजन होता है। (आर्यभट ने औरही लिखा है) ऐसेही परस्पर योजन मान विरुद्ध होने से प्राचीन भूव्यास और परिधि योजनों का ठीक विवेक कठिन है। भारत में भास्करानुसार ४ कोश का योजन प्रसिद्ध है। और एक कोश में २ मील मानी जाती हैं। परन्तु योजनमान में मील की सख्या बहुतों ने भिन्न मानी है। किसी ने एक योजन में ५ मील मानकर सूर्य सिद्धान्त का भूव्यास ८००० मील निश्चित किया है। ९ मील का योजन (योजनार्ध) होतो ब्रह्मगुप्त और

---

† 'भूदहनजलमयाना विष्कम्भोयाजनैं द्विनेन्दूनाम्। शशिनवशनिधिभि १५८१ र्यमपञ्चशरग्नैं ५२२ शून्यवसुवेदै ४८०॥' ब्राह्मस्फुटसिद्धांत, त्रिप्रश्नाधिकार, श्लोक १२।

भास्करका भूव्यास ७९०५ मील सिद्ध होता है । सांप्रत में युरोपियन मतसे ७९१२ मील निश्चित हुआ है । परन्तु जिसप्रकार हमारे यहां योजन प्रमाण में प्राचीन आर्यों का विसंवाद है, वैसेही युरोपियन ज्योतिषियों के भी अनेक प्रकार के मत उपलब्ध होते हैं । वास्तव में एक कोश में दो मील का हिसाब ठीक है और उसी के अनुसार व्यवहार भी है । यदि यह सत्य है तो एक योजनमें आठ मील स्फुटही है । परन्तु इस नियम का उपयोग प्राचीनों की मान शैलीपर निरर्थकही है । उन लोगों की स्वतन्त्र व्यवस्था है ।

(२) पूर्व 'यदि समा मुकुरोदरसन्निभा' इस श्लोक की उपपत्ति में भूमि के आकार का सयुक्तिक उपपादन हुआ है । वहां लिखा है कि मध्याह्नवृत्त के चापकी लंबाई दो स्थानों में निश्चय करने से मध्यममानसे ६९$\frac{१}{८}$ मील निश्चित हुई है यह चापके एक अंश की लंबाई है । अब इसी से अनुमानद्वारा भूपरिधि का ज्ञान भी सुगम है ।

$$१ : ६९\frac{१}{८} \text{ मील} :: ३६० :$$

∴ ३६० = २५,००० मील के भीतर भूपरिधि सिद्ध भई ।

और भूव्यास $= \frac{२५,०००}{३.१४१५९} = ८०००$ मीलके भीतर होता है ।

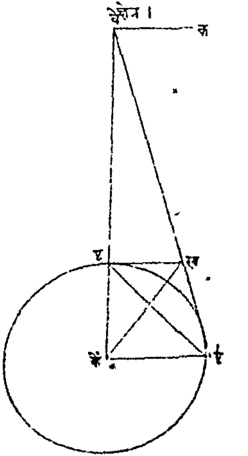
ांश=अ। तव, अ=∠पृं वे क। ९०−∠पुं वे क=∠ पृवेस। इस कोणकी कोटि=∠वेखपृ। अनुपात, △ वेपृस त्रिभुज में।

ज्या∠वेखपृ : वेपृभुज :. ज्या∠पृवेख : पृसभुज।

ज्या∠वेसपृ : वेपृभुज ·: ज्या∠९० वेस।

अब, केंपृस त्रिभुजमें 'पृ' कोण समकोण होने से जात्य है। और केंपृंस त्रिभुज में पृं समकोण होने से जात्य है। इनकी कोटि भूव्यास के समान है। और दोनों जात्यों में 'कें स' कर्ण एकही है। यों जात्य तुल्य हुए। पृ स भुज कें पृं भुज के तुल्य हुआ। अब 'वे स' में पृ स के तुल्य 'स पृं' जोड देने से 'वे पृं' का मान हुआ। 'वे पृं कें' जात्य में पृं समकोण है। 'वे' कोणकोटि 'कें' है। अनुपात—

ज्या ∠ वे कें पृं वे पृं भुज ज्या ∠ कें वे पृं : कें पृं भुज। यही भूव्यासार्ध का प्रमाण है। इसीप्रकार अन्य रीतियों से भी भूव्यास साधन होसकता है॥ ५२॥



लल्लोक्तस्य नगशिखीभुजङ्गबाणभुजङ्गमेत्यादेर्भूपृष्ठफलस्य*
दूषणमाह—

दुष्टं कन्दुकपृष्ठजालवदिलागोले फलं जल्पितं
लल्लेनास्य शतांशकोऽपि न भवेद्यस्मात्फलं वास्तवम् ।
तत्प्रत्यक्षविरुद्धमुद्धतमिदं नैवास्तु वा वस्तु वा
हे प्रौढा गणका विचारयत तन्मध्यस्थबुद्ध्या भृशम् ॥ ५२ ॥

यल्लल्लोक्तं भूपृष्ठफलं तद्दुष्टम् । यतस्तदुक्तफलस्य शतांशकोऽपि वास्तवं पारमार्थिकं फलं न भवति । अत्यन्तंदुष्टमित्यर्थः । कुतो यतस्तत्प्रत्यक्षविरुद्धम् । प्रत्यक्षबाधो हि महाद्दूषणम् । अथात्मन औद्धत्याशङ्कां परिहरन्नाह । इदं यदुक्तं नैवोद्धतं किन्तु वस्तुपरमार्थः । अथवा किं शपथपरिहारेण । उद्धतमस्तु वा वस्त्वस्तु वा । हे प्रौढा गणका मध्यस्थबुद्ध्या विचारयत भृशमत्यर्थम् ।

प्रभा ।

इलागोले भूगोले लल्लेन यत्कन्दुकजालवत्फलं भूपृष्ठफलं जल्पितमविचारेण कथितं तद्दुष्टमसमीचीनम् । यस्मादस्यानीतफलस्य शतांशकोऽपि वास्तवं यथार्थं फलं न भवेत् । गणितेन न सिध्येदित्यर्थः । तत्प्रत्यक्षविरुद्धमिदं मन्निरूपितमुद्धतमविनीतं नैव किन्तु परमार्थः । वा, उद्धतमस्तु विचारशून्यमेव भवतु । वा वस्त्वस्तु यथार्थमेव भवतु । 'भावः पदार्थो धर्मः स्यात्सत्त्वं तत्त्वञ्च वस्तु च' इति त्रिकाण्डशेषः । हे प्रौढा गणकाः तदखिलं यूयं मध्यस्थबुद्ध्या मध्ये वादिप्रतिवादिनोरन्तरे तिष्ठतीति मध्यस्था । स्थाधातोः कः । तद्बुद्ध्या पक्षपातराहित्येनेत्यर्थः । भृशमत्यर्थं विचारयत सदसद्विवेकं कुरुत ।

---

* लल्लाचार्य का पूरा श्लोक उनके 'शिष्यधीवृद्धिद' में यों है—
नगशिखीन्दुशराक्षभुजङ्गमस्वरनगाद्रिशिवेन्दुनगाग्निभिः (२८५६२१८५५७) ।
गुणहतं भवति परिधिर्महीतलगतस्य तु कन्दुकपञ्जरम् ॥

भाषाभाष्य।

लल्लाचार्य ने कन्दुकजाल के समान जो भूपृष्ठफल निश्चित किया है उसके शतांश में एक अंश भी यथार्थ नहीं है। वह प्रत्यक्ष विरुद्ध है। हम जो कहते हैं सो वास्तवमें सत्य है या असत्य, इसका विचार, हे प्रौढ ज्योतिषीगण! आप लोग मध्यस्थ होकर करें ॥ ५३ ॥

अथ सद्युक्तिः—

यत्परिध्यर्धविष्कम्भं वृत्तं कृत्तं किलांशुकम्।
तेनार्धश्छाद्यते गोलः किंचिद्वस्त्रेऽवशिष्यते ॥ ५४ ॥
गोलक्षेत्रफलात्तस्माद्वस्त्रक्षेत्रफलं यतः।
सार्द्धद्विगुणितासन्नं तावदेवापरे दले ॥ ५५ ॥
एवं पञ्चगुणात्क्षेत्रफलात्पृष्ठफलं खलु।
नाधिकं जायते तेन परिधिघ्नं कुतः कृतम् ॥ ५६ ॥
वृत्तक्षेत्रफलं यस्मात्परिधिघ्नं न युक्तिमत्।
दुष्टत्वाद्गणितस्यास्य दुष्टं भूपृष्ठजं फलम् ॥ ५७ ॥

गोलपरिध्यर्धप्रमाणो यथा व्यासो भवति तथा वस्त्रं वृत्तं कृत्वा तेन वस्त्रेण गोलोपरि न्यस्तेन गोलार्धं प्रच्छाद्यते। वस्त्रपरिधेः संकोचात् किंचिद्वस्त्रेऽवशेषं भवति। एवं सति गोलव्यासवृत्तक्षेत्रफलाद्वस्त्रवृत्तक्षेत्रफलं सार्धद्विगुणितासन्नं भवति। तावदेवापरे किल गोलार्धे। एवं वृत्तक्षेत्रफलात्पञ्चगुणादधिकं पृष्ठफलं कथंचिदपि न भवति। किन्तु न्यूनमेव स्यात्। तर्हि तेन लल्लेन 'वृत्तफलं परिधिघ्नं समन्ततो भवति गोलपृष्ठफलम्।' इति स्वगणिते कथं परिधिघ्नं कृतम्। किन्तु वृत्तफलं चतुर्घ्नमेव पृष्ठफलं भवति। अस्य लल्लोक्तस्य गणितस्य दुष्टत्वादभूपृष्ठफलमपिदुष्टमित्यर्थः।

अथ बालावबोधार्थं गोलस्योपरिदर्शयेत्। भूगोलं मृण्मयं

दारुमयं वा कृत्वा तं चक्रकलापरिधिं प्रकल्प्य २१६०० तस्य मस्तके बिन्दुं कृत्वा तस्माद्बिन्दोर्गोलपश्चतिभागेन शरद्विदस्रसंख्येन २२५ धनूरूपेणैव वृत्तरेखामुत्पादयेत् । पुनस्तस्मादेव बिन्दोस्तेनैव द्विगुणसूत्रेणान्यां त्रिगुणेनान्यामेवं चतुर्विंशतिगुणं यावच्चतुर्विंशतिर्वृत्तानि भवन्ति । एषां वृत्तानां शरनेत्रबाहवः २२५ इत्यादीनि ज्यार्धानि व्यासार्धानि स्युः। तेभ्योऽनुपाताद्वृत्तप्रमाणानि। तत्र तावदन्त्यवृत्तस्यमानं चक्रकलाः २१६००। तस्य व्यासार्धं त्रिज्या ३४३८ । ज्यार्धानि चक्रकलागुणानि त्रिज्याभक्तानि वृत्तमानानि जायन्ते । द्वयोर्द्वयोर्वृत्तयोर्मध्य एकैकं वलयाकारं क्षेत्रम् । तानि चतुर्विंशतिः। बहुज्यापक्षे बहूनि स्युः। तत्र महदधोवृत्तं भूमिमुपरितनं लघु मुखं शरद्विदस्रमितं लम्बं प्रकल्प्य लम्बगुणं कुमुखयोगार्धमित्येवं पृथक् पृथक् फलानि । तेषां फलानां योगो गोलार्धपृष्ठफलम् । तद्द्विगुणं सकलगोलपृष्ठफलम् । तद्व्यासपरिधिघाततुल्यमेव स्यात् ।

प्रभा ।

यत्परिध्यर्धविष्कम्भमित्यादि स्फुटं विवृतमाचार्यैः ।

भाषाभाष्य ।

गोल परिधि के अर्धको व्यास कल्पना करके यदि वस्त्रका वृत्तकाटकर बनायाजाय तो वह वस्त्रवृत्त गोलार्धको ढकलेता है और कुछ अंश उसका बाकी रहजाता है। गोल क्षेत्रफल से वस्त्रक्षेत्रफल अढाई २½ गुणा के आसन्न होताहै । और उतनाही दूसरे गोलके हिस्सेमें भी होता है । इसप्रकार पञ्चगुण क्षेत्रफल से पृष्ठफल किसीप्रकार अधिक नहीं होता । फिर लल्लाचार्य ने परिधि से वृत्तफल को क्यों गुणा किया! वृत्तक्षेत्रफल को परिधि से गुणना अयुक्तहै । इसलिये 'वृत्तफलं परिधिघ्नं समन्ततोभवति गोलपृष्ठफलम्' यह लल्लाचार्यकृतपाटीगणित का पृष्ठफल साधन विधि अशुद्ध है । और इससे सिद्ध कियाहुआ भूपृष्ठफल भी अशुद्ध है ।

उपपत्ति ।

मिट्टी अथवा काठका एक गोल बनाकर उसको भूगोल कल्पना करे जिसकी परिधिमें २१६०० कला होंगी। और एक स्थानपर उसका मध्यबिन्दु मानकर उस से चापाकार गोलके छानवें भाग २२५ से पहली वृत्तरेखा बनावे इसीप्रकार उसी बिन्दुसे दूने तिगुने आदि चापाकार गोलके छानवे भागसे दूसरी तीसरी आदि वृत्तरेखा बनावे। इसप्रकार इस ग्रन्थ के अनुसार चौवीस वृत्तरेखा होंगी, यदि अधिक ज्याखण्ड माने जावेंगे तो अधिक होंगी। उनसब वृत्तरेखाओं के व्यासार्ध २२५' इत्यादि होंगे। इनपरसे यों अनुपातद्वारावृत्तोंके मान सिद्ध होंगे।

३४३८ : २१६०० :: २२५ इ.

अन्तिम वृत्तका मान २१६०० चक्रकला होगा। और दो दो वृत्तरेखाओं के बीचमें एक एक वलयाकार क्षेत्र होंगे। वे यहां चौवीस ज्याखण्ड कल्पना करने से २४ बनेंगे। यदि २४ से अधिक ज्याखण्ड कल्पना किये जायेंगे तो अधिक वलयक्षेत्र बनेंगे। उनके फल 'लम्बगुणं कुमुखयोगार्धम्' इस लल्लोक्तसूत्रानुसार सिद्ध होंगे। अर्थात् छोटी वृत्तरेखा को मुख, बड़ी को भूमि और २२५ को लम्ब कल्पना करके मुख और भूमि के योगार्ध को लम्ब से गुणना वह वलयक्षेत्रका फल होगा यों चौवीस वलयक्षेत्रों के फलोंका योग गोलपृष्ठार्ध फल होगा उसको दूना करने से गोलपृष्ठ फल होगा ॥ ५४।५७ ॥

अथान्यथा प्रतिपाद्यते—

गोलस्य परिधिः कल्प्यो वेदभज्यामितैर्मितः।
मुखबुध्नगरेखाभिर्यद्वदामलके स्थिताः ॥ ५८ ॥
दृश्यन्ते वप्रकास्तद्वत्भगुक्षपरिधेर्मितान्।
ऊर्ध्वाधः कृतरेखाभिर्गोले वप्रान्प्रकल्पयेत् ॥ ५९ ॥
तत्रैकवप्रकक्षेत्रफलं खण्डैः प्रसाध्यते।
सर्वज्यैक्यं त्रिभज्यार्धहीनं त्रिज्यार्धभाजितम् ॥ ६० ॥
एवं वप्रफलं तत्स्याद्गोलव्याससमं यतः।
परिधिव्यासघातोऽतो गोलपृष्ठफलं स्मृतम् ॥ ६१ ॥

अत्राभीष्टे कस्मिंश्चिद्ग्रन्थे यावन्ति ज्यार्धानि तत्संख्या चतुर्गुणा तन्मितः किल गोले परिधिः कल्प्यः। यथामलकगोलपृष्ठे

मुखबुध्नगरेखाभिः सहजाभिर्विभक्ता वप्रका दृश्यन्ते। तथाभीष्टे गोलपृष्ठे मस्तकात्तलगरेखाभिः कल्पितपरिधिसंख्यान्वप्रकान्प्रकल्प्यैकस्मिन् वप्रे क्षेत्रफलं साध्यम्। तद्यथा। इह किल धीवृद्धिदे चतुर्विंशतिर्ज्यार्धानि। अतः षण्णवतिहस्तमितो गोले परिधिः कल्पितः। प्रतिहस्तमूर्ध्वाधोरेखाभिस्तावन्तो वप्रकाश्च कृताः। तत्रैकस्य वप्रकस्यार्धे हस्तान्तरे हस्तान्तरे तिर्यग्रेखाः कृत्वा ज्यासंख्यानि चतुर्विंशतिः खण्डानि कल्पितानि तत्र जीवाः पृथक् पृथक् त्रिज्याभक्तास्तिर्यग्रेखाप्रमाणानि भवन्ति। तत्राधस्तनी रेखा हस्तमात्रा। उपरितन्यस्तु ज्यावशेन किञ्चिन्न्यूनाः। सर्वत्र हस्तमित एव लम्बः। लम्बगुणं कुमुखयोगार्धमिति खण्डफलान्यानीयैकीकृतानि। तद्वप्रकार्धे फलम्। तद्द्विगुणमेकस्मिन् वप्रके फलं भवति। तत्साधनार्थमिह सूत्रमिदम्। सर्वज्यैक्यं त्रिभज्यार्धहीनमित्यादि। अत्र सर्वज्यानां शरनेत्रबाहव इत्यादीनामैक्यं सुरयमकृतबाणतुल्यम् ५४२३३ एतत्त्रिज्यार्धेनोनं जातं मनुतत्त्वपञ्चमितम् ५२५१४। एतत्त्रिज्यार्धभक्तं जातमेकवप्रके क्षेत्रफलं व्याससमम् ३०। ३१। यत एतावानेव षण्णवतिपरिधेर्गोलस्य व्यासः स्यात् ३०। ३३ परिधितुल्यकाश्च वप्रका इति परिधिव्यासघातो गोलपृष्ठफलमित्युपपन्नम्। तथाचोक्तमस्मत्पाटीगणिते।

> वृत्तक्षेत्रे परिधिगुणितव्यासपादः फलं तत्
> क्षुण्णं वेदैरुपरि परितः कन्दुकस्येव जालम्।
> गोलस्यैवं तदपि च फलं पृष्ठजं व्यासनिघ्नं
> षड्भिर्भक्तं भवति नियतं गोलगर्भे घनाख्यम्॥

गोलपृष्ठफलस्य व्यासगुणितस्य षडंशो घनफलं स्यात्।

अत्रोपपत्तिः । पृष्ठफलसंख्यानि रूपबाहूनि व्यासार्धतुल्यवेधानि सूचीखातानि गोलपृष्ठे प्रकल्प्यानि । सूच्यग्राणां गोलगर्भे संपातः । एवं सूचीफलानां योगो घनफलमित्युपपन्नम् । यत्पुनः क्षेत्रफलमूलेन क्षेत्रफलं गुणितं घनफलं स्यादिति तत्प्रायश्चतुर्वेदाचार्यः परमतमुपन्यस्तवान्[1] ।

प्रभा ।

वेदघ्ना चतुर्गुणिता या ज्या तन्मानमितः परिधिर्गोलस्य कल्पनीयः । बुध्नो मूलदेशः । 'मूलं बुध्नोऽङ्घ्रिनामकः' इत्यमरात् । मुखं च बुध्नश्चतयोर्गता या रेखास्ताभिः । यद्वदामलके धात्रीफले वप्रकाः क्षेत्राणि 'पुन्नपुंसकयोर्वप्रः केदारः क्षेत्रमस्य तु' इत्यमरः । स्थिता दृश्यन्ते तद्वदेव गोले ऊर्ध्वाधः मुखबुध्नाभ्यां कृतरेखाभिः प्रागुक्तपरिधेर्मितान् चतुर्गुणितज्याप्रमाणान् वप्रान् प्रकल्पयेत् । गणक इति शेषः । यथा ह्यामलकपृष्ठे मुखतलगरेखाभिःस्वाभाविकीभिर्विभक्ता वप्रका दृश्यन्ते तथैव गोलेऽप्यूर्ध्वाधोरेखाभिर्वप्रकाः कल्पितपरिधिसंख्यासंमिताः प्रकल्प्या इत्यर्थः । शेषं स्फुटमेव ।

भाषाभाष्य ।

चौगुनी ज्या-संख्या (९६) के समान गोलकी परिधि कल्पना करना । फिर उस गोलमें ऊपर (मुख) से नीचे तक कल्पित परिधि संख्या के समान रेखाएं करनी, जैसे आमलक में ऊपर से नीचे तक खड़ी रेखाएं बनी रहती हैं । यों गोल में क्षेत्रों को उत्पन्न करना । सब ज्याओं के योगमें त्रिज्यार्ध घटाकर और त्रिज्यार्ध का भाग देनेसे एक क्षेत्रका फल होगा । यह फल गोलव्यासके तुल्य होगा । इसी लिये परिधि और व्यासका घात गोलके पृष्ठफल के समान कहागया है ।

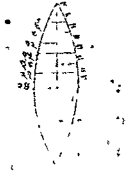
---

[1] आर्यभट का मत यह है 'समपरिणाहस्यार्धं विष्कम्भार्धहतमेव वृत्तफलम् । तन्निजमूलेन हतं घनगोलफलं निरवशेषम् ॥' गणितपादे आर्या ७ इस स्वचतुर्थांशेन धारवासम स्यात् ।

उपपत्ति ।

यहां पर गोलमे चौबीस ज्यार्ध कल्पना किये गये हैं। उन संख्या को चार से गुणने पर गोलकी परिधि का मान ९६ हाथ हुआ। और उतनेही वप्र भी कल्पना किये हैं। ज्यार्ध के तुल्य अर्थात् हाथ हाथके अन्तर पर चौबीस वप्रखण्ड कल्पना कियेगये हैं। इनमें नीचेकी रेखा एक हाथकी है और ऊपरवाली सब ज्यारूप होने से कुछ कुछ कम हैं। अब अनुपात से हाथभरके अन्तर पर जो तिरछी रेखा की हैं उनका आनयन करके वप्रोंका फल सिद्ध करना चाहिये।

क्षेत्र ।



ज्याओंमें अलग अलग त्रिज्याका भाग देने से तिरछी रेखाओंका प्रमाण होता है। उसमें अनुपात यों होता है:-यदि त्रिज्या में रूपमित तिरछी रेखा मिलती है, तब प्रथम ज्या में क्या ? फल गोलके मस्तक से हाथभर के अन्तर पर प्रथम तिरछी रेखाका प्रमाण होगा। इसी क्रम एक,दो,तीन आदि ज्याओंकी हाथभर के अन्तर परकुल रेखाएं सिद्ध होंगी। अन्तकी चौबीसवीं रेखा हाथभरकी होती है और लम्ब सर्वत्र हाथभर काही है, इसलिये 'लम्बगुणं कुमुखयोगार्ध-, इस से वप्रफल सिद्ध होगा।

उक्त अनुपात के अनुसार:—

त्रि : १ :: प्रज्या : $=\frac{\text{प्रज्या}}{\text{त्रि}}$

त्रि : १ :: द्विज्या : $=\frac{\text{द्विज्या}}{\text{त्रि}}$

त्रि : १ :: तृज्या : $=\frac{\text{तृज्या}}{\text{त्रि}}$

इत्यादि........

त्रि : १ :: त्रयोविंशीज्या:$=\frac{\text{त्रयोविंशीज्या}}{\text{त्रि}}$

त्रि : त्रि :: १ :

इन तिरछी रेखाओं के मान में पहले की भांति दो दो के योगार्धों को लम्ब से गुणने पर वप्रखण्डों के फल होते हैं। इस प्रकार फल हुए—

$\frac{\text{प्रज्या}\frac{1}{2}}{\text{त्रि}}$, $\frac{\text{प्रज्या}\frac{1}{2}\ \text{द्विज्या}\frac{1}{2}}{\text{त्रि}}$

$\frac{\text{द्विज्या½ तृज्या½}}{\text{त्रि}}$ इत्यादि ......, $\frac{\text{त्रयोविंज्या½ त्रि½}}{\text{त्रि}}$, इनकायोग आधेवप्रका फल हुआ, $\frac{\text{(प्रज्या १ द्विज्या १ तृज्या ...त्रयोविंज्या १ त्रि½)}}{\text{त्रि१}}$ इसको द्विगुण किया तो संपूर्ण वप्र का फल हुआ $\frac{\text{(प्रज्या१ द्विज्या१ तृज्या१ .. त्रयोविंशज्या१ त्रि½)} \times २}{\text{त्रि१}}$, भाज्य भाजकमें दोका अपवर्तन देनेसेहुआ $\frac{\text{(प्रज्या१ द्विज्या१ तृज्या१ ..... त्रयोविंज्या१ त्रि½)}}{\text{त्रि½}}$;

यहा पर भाज्यराशि, त्रिज्यार्ध से हीन सब ज्याखण्डों के योग के समान गणित करने से सिद्ध होता है इसलिये कहा है कि 'सर्वज्यैक्यं त्रिभज्यार्धहीन' यों यह दूसरी युक्ति सगत होती है ॥ ५८। ६१ ॥

इदानीं भूमेः प्रलयभेदो प्रलयांश्चाह—

> वृद्धिर्विधेरह्नि भुवः समन्तात्
> स्याद्योजनं भूभवभूनपूर्वैः।
> ब्राह्मे लये योजनमात्रवृद्धे-
> र्नाशो भुवः प्राकृतिकेऽखिलायाः ॥ ६२ ॥
> दिने दिने यन्म्रियते हि भूतै-
> र्दैनंदिनं तं प्रलयं वदन्ति।
> ब्राह्मं लयं ब्रह्मदिनान्तकाले
> भूतानि यद्ब्रह्मतनुं विशन्ति ॥ ६३ ॥
> ब्रह्मात्यये यत्प्रकृतिं प्रयान्ति
> सर्वाण्यतः प्राकृतिकं कृतीन्द्राः।
> लीनान्यतः कर्मपुटान्तरत्वात्
> पृथक्क्रियन्ते प्रकृतेर्विकारैः ॥ ६४ ॥
> ज्ञानाग्निदग्धाखिलपुण्यपापा
> मनः समाधाय हरौ परेशे।
> यद्योगिनो यान्त्यनिवृत्तिमस्मा-
> दात्यन्तिकं चेति लयश्चतुर्धा ॥ ६५ ॥

अत्र लयो नाम भूतविनाशः। सतु साम्प्रतं प्रत्यहमुत्पद्यते। स दैनंदिन उच्यते। यो ब्रह्मदिनान्ते चतुर्युगसहस्रावसाने लोकत्रयस्य संहारः स ब्राह्मोलय उच्यते। तत्राक्षीणपुण्यपापा एव लोकाः कालवशेन ब्रह्मशरीरं प्रविशन्ति। तत्र मुखं ब्राह्मणाः। बाह्वन्तरं क्षत्रियाः। ऊरुद्वयं वैश्याः। पादद्वयं शूद्राः। ततो निशावसाने पुनर्ब्रह्मणः सृष्टिं चिन्तयतो मुखादिस्थानेभ्यः कर्मपुटान्तरत्वाद् ब्राह्मणादयस्तत एव निःसरन्ति। तस्मिन् प्रलये भुवो योजनमात्रवृद्धेर्विलयो नाखिलायाः। अथ यदा ब्रह्मण आयुषोऽन्तस्तदा यःप्रलयःस महाप्रलय उच्यते तत्र ब्रह्मा ब्रह्माण्डे। तत्पाञ्चभौतिके। भूर्जले। जलं तेजसि। तेजो वायौ। वायुराकाशे। आकाशमहङ्कारे। अहङ्कारो महत्तत्त्वे। महत्तत्त्वं प्रकृतौ। एवं सकलभुवनलोका अक्षीणपुण्यपापा एवाव्यक्तं प्रविशन्ति। यदा भगवान् सिसृक्षुः प्रकृतिपुरुषौ क्षोभयति। तदा तानि भूतानि कर्मपुटान्तरत्वात् प्रकृतेः स्वत एव निःसरन्ति। यथाह श्रीविष्णुपुराणे पराशरो जगदुत्पत्तिकारणम्। 'प्रधानकारणीभूता यतो वै सृज्यशक्तय इति। सृज्यशक्तयस्तत्कर्माणि। तान्येव सृष्टौ मुख्यं कारणम्। इतराणि निमित्तकारणानि। अन्यैरप्युक्तम्।

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।

नह्यात्मनां भवति कर्मफलोपभोगः कायाद्विनेत्यादि।

अस्मिन् प्रलयेऽखिलाया भुवो नाश इत्यर्थः। तथा ज्ञानाग्निदग्धाखिलपुण्यपापा योगिनो विषयेभ्यो मनः समाधाय समाहृत्य तद्ब्रह्मणि समाहितं कृत्वा यान्ति। देहं त्यजन्ति। अनिवृत्तिं यान्ति स आत्यन्तिको लय इति।

प्रभा ।

वृद्धिर्विधेरह्नीत्यादि स्फुटमेव । अत्र भुवो वृद्धित्रयकल्पना पुराणानुमता बोध्या । प्रलयो हि नित्यनैमित्तिकप्राकृतिकात्यन्तिकभेदेन चतुर्धा । तथा चोक्तं विष्णुपुराणे ।

'नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको द्विज ।
नित्यश्च सर्वभूतानां प्रलयोऽयं चतुर्विधः ॥'

अत्राचार्येण वासनाभाष्ये तच्चतुष्टयविषयिणी विश्वस्थितिश्श्रुततया प्रदर्शिता, किं वृथापल्लवितेन । कूर्मपुराणेऽपि 'योऽयं संदृश्यते नूनं नित्यं लोके क्षयस्त्विह । नित्यः संकीर्त्यते नाम्ना मुनिभिः प्रतिसञ्चरः ।' इत्यादि समुपलभ्यते । तत्र प्रलयभेदोऽपि साधु प्रतिपादितः ।

भाषाभाष्य ।

ब्रह्माके एक दिनमे अर्थात् चारहजार युगोंमें पृथिवी अपनेमें उत्पन्नहुए नानापदार्थों से एक योजन चारों तरफ से वढती है । और ब्रह्मा के दिनान्त मे अर्थात् ब्राह्मलय मे एक योजन बढीहुई पृथ्वीका नाश होता है । और प्राकृतिक प्रलय में सारी पृथ्वीका नाश होता है । कालवश जो प्रतिदिन मनुष्यों की मृत्यु होती है उसको दैनन्दिन प्रलय कहते हैं । ब्रह्माके दिनान्त में ब्राह्मलय होता है । उससमय समस्त भूत ब्रह्माके शरीर मे प्रविष्ट होजाते हैं । ब्रह्माके अन्तकाल मे समस्त प्राणी निज प्रकृति में लीन होजाते हैं इसलिये विद्वान्लोग उसको प्राकृतिक प्रलय कहते हैं । यों अपनी प्रकृति में लीन होकर भी प्राणी कर्मान्तरवश पुन प्रकृति से अलग होजाते है । ज्ञानरूप अग्निद्वारा सपूर्ण पुण्य पाप भस्मकरके परमेश्वर में मन स्थिर करके, जो योगिजन अनिवृत्ति अवस्था को प्राप्त होते हैं उमको आत्यन्तिकलय कहते हैं । इसप्रकार लय चार प्रकारका है । ६२ । ६५ ॥

अथ ब्रह्माण्डगोलमाह—

भूभूधरत्रिदशदानवमानवाद्या
ये याश्च धिष्ण्यगगनेचरचक्रकक्षाः ।
लोकत्रयस्थितिरुपर्युपरिप्रदिष्टा
ब्रह्माण्डभाण्डजठरे तदिदं समस्तम् ॥ ६६ ॥

स्पष्टम् ।

प्रभा ।

भवतीति भूःपृथ्वी । धरन्तीति धराः । पचाद्यच् । भुवो धरा पर्वताः । त्रिदशाः देवाः । तदाद्याः तत्प्रभृतयो ये । याश्च धिष्ण्यगगनेचरचक्रकक्षाः । धिष्ण्यानि नक्षत्राणि । गगनेचराः ग्रहाः । चक्रं [illegible] दायः । कक्षा भ्रमणवर्त्मानि । उपर्युपरि यथोत्तरं लोकव्यवस्थिति लोकानामवस्थानं प्रदिष्टा मुनिभिः प्रतिपादिता । तदिदं समस्तं जगत्स्रष्टुरण्डं चतुर्दशभुवनगोलकः, तदेव भाण्डं पात्रं [illegible] तंत इत्यर्थः । ब्रह्माण्डगोलान्तर्गतमेवाखिलं चराचरं विश्वमिति तत्त्वम् ।

भाषाभाष्य ।

भूमि, पर्वत, देवता, दैत्य, मनुष्य आदि और ग्रह, नक्षत्र कक्षा, भूर्लोक आदि का क्रम सब इसी ब्रह्माण्डके भीतर ही है ॥ ६६ ॥

इदानीमन्योदितं ब्रह्माण्डमानं पूर्वकथितमपि प्रसङ्गादनुवदति स

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृद्भुजङ्गेन्दुभि-१८७१२०६९२००००००००

ज्योतिःशास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः ।

तद्ब्रह्माण्डकटाहसंपुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं

केचित्प्रोचुरदृश्यदृश्यकगिरिं पौराणिकाः सूरयः ॥ ६७ ॥

करतलकलितामलकव

दमलं सकलं विदन्ति ये गोलम् ।

दिनकरकरनिकरनिहत—

तमसो नभसः स परिधिरुदितस्तैः ॥ ६८ ॥

ब्रह्माण्डेतन्मितमस्तु नो वा

प्रभा।

ब्रह्माण्डमेव कटाहसंपुटं तत्तटे संधौ केचिदाचार्या वेष्टनं परिधिं ज-
गुरूचुः। केचित्पौराणिकाः सूरयो विद्वांसोऽदृश्यदृश्यकगिरिं लोकालो-
कपर्वतप्रमाणं प्रोचुः। करतले कलितं स्थापितं यदामलकं तद्वदमलं
निर्दूषणं ये विद्वांसः सकलं गोलं गोलगणितं विदन्ति जानन्ति, तैः
दिनकरस्य ये करास्तेषां ये निकराः समूहास्तैर्निहतं दूरीकृतं तमो
यस्य तस्य नभस आकाशस्य स कोटिस्न इत्यादिप्रतिपादितः परिधि-
रुदितः। ब्रह्माण्डमेतन्मितं पूर्वप्रमाणकमस्तु मास्तु वा। कल्पे ग्रहो
यानन्ति योजनानि क्रामति गच्छति। क्रमु पादविक्षेपे वर्तमाने लट्।
पूर्वैराचार्यैस्तत्प्रमाणं खकक्षाख्यं प्रोक्तमिदं नोऽस्माकं सैद्धान्तिकानां
मतम्। कल्पे योजनात्मिका ग्रहगतिरेव खकक्षाख्या।

इति प्रभायां भुवनकोशाध्याय।

भाषाभाष्य।

दिशाम जाति
आजकल विश
आचार्यों ने इस
की सबसे पहले यह
से इस भूभ्रमण की

...आकाशकक्षा का योजनात्मकमान १८७१२०६९२०००००००
...प्रमाण को कोई विद्वान् ब्रह्माण्डकटाह के ऊपर का वेष्टन कहते
...राणिक कहते हैं कि यह लोकालोक पर्वत का प्रमाण है। जो हस्त-
...ति स्वच्छ गोलगणित को जानते हैं वे कहते हैं कि सूर्यकिरण
...अन्धकार के सीमा की परिधिमात्र है। जो ऊपर कहागया है
...हो अथवा न हो। कल्पकाल (ब्राह्मदिन) में जितनी
...ह की होती है उसीको पूर्वाचार्य खकक्षा कहते हैं, यह हमारा

प्रासादभू

य ५। और लल्लाचार्य ५
...यदि न भ... ...वनकोश समाप्त हुआ।

लोकव्यवस्थ... ...परिप्रादष्ट—
ब्रह्माण्डभाण्डजठरे तदि
ष्म्।

इदानीं भूमेरुपरि सप्तवायुस्कन्धास्तानाह—

भूवायुरावह इह प्रवहस्तदूर्ध्वः
स्यादुद्वहस्तदनु संवहसंज्ञकश्च ।
अन्यस्ततोऽपि सुवहः परिपूर्वकोऽस्माद्
बाह्यः परावह इमे पवनाः प्रसिद्धाः ॥ १ ॥
भूमेर्बहिर्द्वादशयोजनानि
भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम् ।
तदूर्ध्वगो यः प्रवहः स नित्यं
प्रत्यग्गतिस्तस्य तु मध्यसंस्था ॥ २ ॥
नक्षत्रकक्षाखचरैः समेतो
यस्मादतस्तेन समाहतोऽयम् ।
भपञ्जरः खेचरचक्रयुक्तो
भ्रमत्यजस्रं प्रवहानिलेन ॥ ३ ॥
प्रसिद्धमिदम् ।

प्रभा ।

भूमेरुपरि तावत्सप्त वायुस्कन्धाः सन्ति । तेषां नामा[illegible] ...नैः ।
आवहः, प्रवहः, उद्वहः, संवहः, सुवहः, परिवहः, परा[illegible] ...यः ॥ ६७
र्बहिर्द्वादशयोजनान्यष्टचत्वारिंशत्क्रोशान् यावद् भूवायु[illegible]
वाम्बुदाः मेघाः तडितो विद्युतः । आद्यपदेन करके[illegible]
रकारजःसंहतिसन्ध्यारागादि विज्ञेयम् । एवं लद[illegible] ...८ ॥
तायां द्रष्टव्यानि । तस्य भूवायोरूर्ध्ववर्ती प्रवहवायु[illegible]
प्रत्यग्गतिः पश्चिमगतिः । तस्य मध्यसंस्था सदै[illegible]
तेन प्रवहानिलेनायं नक्षत्रकक्षाखचरैः समे[illegible] ...धा
तोऽजस्रं भ्रमति । प्रवहवायुरेव भचक्रभ्रम[illegible] ...नः ॥ ६६ ॥
ऽप्युक्तम्‘यस्मान्ज्योतींषि वहति प्रवहस्तेन स[illegible] ...नानासमाभिर्वाय

भाषाभाष्य।

भूवायु, आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, सुवह और परावह ये सात वायुस्कन्ध आकाश में उत्तरोत्तर प्रसिद्ध हैं। पृथ्वी से बारह योजनतक भूवायु है, वहां मेघ, बिजली आदिकी स्थिति है। उसके ऊपर प्रवहवायु है, जो नित्य पश्चिमाभिमुख एकाकार गति से चलती है। यह भपञ्जर ग्रह, नक्षत्रकक्षा, और ग्रहकक्षा के सहित प्रवहवायु द्वारा हमेशा भ्रमण करता है।

उपपत्ति।

(भूभ्रमण)

सांप्रतमें वैज्ञानिक विचारो से निर्विवाद सिद्ध है कि भूमि भ्रमण करती है+ और सूर्य आदि ग्रह भचक्रके साथ स्थिर है। यहां संक्षेप से यह सिद्धान्त दिखलाया जाता है।

+ आर्यभट ने अपने 'आर्यभटीय' में सबसे पहले यह सिद्धान्त लिखा है। जैसा —

'अनुलोमगतिनौंस्थ पश्यत्यचल विलोमग यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत्समपश्चिमगानि लङ्कायाम्॥'

इसका भाव यों है 'जैसे नावपर चढ़ेहुवे मनुष्य को जिधर वह जाती है उससे विपरीत दिशा में तीरके अचल वृक्ष आदि चलते हुए प्रतीत होते हैं, इसी प्रकार निरक्ष देशमें अचल नक्षत्र पूर्वसे पश्चिम दिशामें जातेहुये प्रतीत होते हैं।' इससे भूमिकी पश्चिम से पूर्वदिशा में गति सिद्धहुई है। यही सिद्धान्त आजकल विज्ञान से दृढ़होकर सर्वमान्य हुआ है। परन्तु हमारे देशमें आर्यभट के पीछे लल्ल, श्रीपति आदि आचार्यों ने इस सत्यरूप सिद्धान्तपर विचार न करके उलटे खण्डन ही किया है। इस लिये इस सिद्धान्त की सबसे पहले यहां उत्पत्ति होने पर भी वृद्धि नहीं हुई। और यहभी कारण है कि जिन प्राकृतिक नियमों से इस भूभ्रमण की उपपत्ति होती है, वे नियम भी प्राचीनकाल में विशेष रीतिसे ज्ञात न थे।

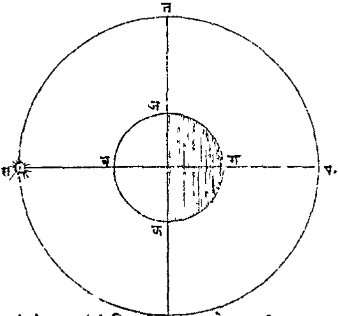
भूभ्रम सिद्धान्त का खण्डन श्रीपति ने इसप्रकार किया है —

'नौस्थोऽनुलोमगमनादचल यथा न चामन्यते चलानि नैवमिलाभ्रमेण।
स्वस्थस्यनिरचलस्यैनिश्चलादनकमप्यभाति मुरैश्वरसर्पीति यदीन कचित्॥
यच्चम्बरचरा विहगा स्वनीडमागाढयन्ति न खलु भ्रमणे धरित्र्याः।
क्रियाम्बुदा अपि न भूरिपयोमुच स्युर्देशस्य पूर्वगमनेन विगाय इन॥
भूगोलवेगजनितेन समीरणेन केत्वादयोऽप्यपरदिग्गतय सदा स्यु।
प्रासादभूधरशिरास्यपि सपतति तस्माद्भ्रम मुहुरयन्त्यचराऽन्दर्शन॥'

और लल्लाचार्य के श्लोक ये हैं—

'यदि च भ्रमति क्ष्मा तदा स्वकुलाय कथमाप्नुयु खगा।
इषवोऽभिनभ समुज्झिता निपतन्त स्युरपाम्पतेर्दिशि॥
पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो वरुणाशाभिमुखो व्रजेद्घन।
अथ मन्दगमात्तदा भवेत् कथमेकेन दिवा परिभ्रम॥'

पृथिवी में दोप्रकार की गति है। एक दैनंदिन दूसरी वार्षिक गति कहलातीहै। अहोरात्र मे अपने अक्षपर पश्चिम से पूर्व की तरफ जो भ्रमणहै वह दैनंदिन गति है। और सूर्य के आस पास एक वर्ष में एकबार प्रदक्षिणा करने की वार्षिक गति है। प्रतिदिन सूर्य आदि ग्रह और नक्षत्रों का उदयास्त जो देखने मे आता है यह पृथिवी की नित्यगति से होता है। वह इसप्रकार है–कल्पना किया 'जवकग' पृथिवी और 'स' सूर्य और 'तसनप' खगोलीयवृत्त है। अब माना कि पृथिवी अपने अक्षपर 'ज' बिन्दु से 'व' बिन्दुकी ओर अर्थात् पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है और कोई मनुष्य 'ज' स्थान में है, यों देखना चाहिए सूर्य उदय होते हुए कैसे दिखलाई देता है।



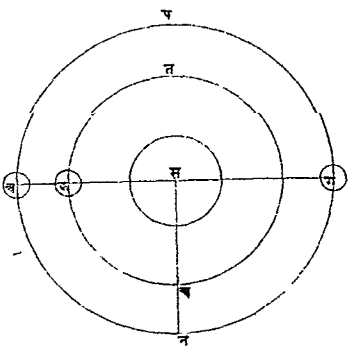
जिसप्रकार 'ज' स्थान 'व' बिन्दुकी तरफ आवेगा उसीप्रकार उस मनुष्य को सूर्य उठताहुआ दीख पड़ेगा। और जब 'ज' स्थान 'व' स्थानपर आजायगा तब उस मनुष्य को, शिरपर सूर्य आने से मध्याह्न होगा। यों 'ज' स्थान के 'क' स्थानपर आने से मनुष्य को संध्या और 'प' स्थान में जो नक्षत्र हैं वह उदय होता दिखलाई देगा। इसप्रकार जब 'ज' 'ग' बिन्दुपर जायगा उससमय आधी रात और 'प' स्थानका नक्षत्र शिरपर आने से नक्षत्र पूर्व से पश्चिम की तरफ जाते हुए देखने में आवेंगे। इसीक्रमसे 'ज' स्थान को अपने पहले 'ज' स्थानपर आने से दूसरे दिनका सूर्योदय होगा और 'प' स्थान के नक्षत्र पश्चिम दिशा में अस्त होंगे।

किसी दीप के सामने गोलवस्तु रखकर उसको आगे तरफ घुमाने से भी यह बात

सहजमें ज्ञात होसकती है। इसप्रकार पृथिवी की दैनदिनगति और उससे दिन-रात की व्यवस्था स्पष्ट सिद्ध होती है । इस गति को मानने से प्रवहवायु की कल्पना नहीं करनी पडती। अब वार्षिक गति जानना आवश्यक है । वह यह है कि क्रान्तिवृत्त में सूर्यका जो स्थान परिवर्त हुआ करता है अर्थात् समय समय पर उदय और अस्त बिन्दुओं में जो अन्तर देखने में आया करता है, वह इस गति के कारण से ही है। इसको स्वगति समझनी चाहिए । पर यह स्वगति भी पृथिवी के ही भ्रमण से उत्पन्न होती है।

आकर्षणशक्ति का यह नियम है कि यदि दो पदार्थ एक दूसरे के पास फिरें तो केन्द्राकर्षणशक्ति से वे दोनों एक साधारण केन्द्र के आस पास घूमेंगे। यह भी है कि किसी दडे के दोनों छोरों में यदि दो समान परिमाणके पदार्थ लगाके वह दडा किसी दूसरे दडेपर आडा करके घुमा दियाजाय तो उन दोनों के वृत्ताकार मार्गका केन्द्र समान अन्तर पर होगा अर्थात् उस दडे के मध्य बिन्दुके आसपास वे दोनों पदार्थ वृत्ताकार मार्ग में फिरा करेंगे। परन्तु वे पदार्थ जैसे छोटे या बडे होंगे वैसेही उनके फिरने के मार्गका साधारण केन्द्र बडे पदार्थ के पास और छोटे से दूर होता जायगा। यहा तक कि बडे पदार्थ के केन्द्र में उनका साधारण केन्द्र होगा।

जैसा, 'अग' एक आडे दडे के दोनों अन्तों में 'अ' और 'ग' दो तुल्य पदार्थ हैं, तो 'सन' खडा दडा उस आडे दडे के 'स' मध्यबिन्दु में आधार होगा। और उस आडे दडे को घुमावें तो 'अ' और 'ग' ये दोनो पदार्थ एकही 'स'



केन्द्र के आस पास (गपअन) वृत्तमें घूमेंगे। परन्तु यदि दूसरा पदार्थ 'क' के समान बड़ा मानाजाय तो 'ग' पदार्थ की अपेक्षा वह आधार 'क' के पास लगेगा और यह बड़ा पदार्थ 'तकच' वृत्तमें घूमेगा। परन्तु तौभी दोनोंके वृत्ताकार मार्गों का केन्द्र 'स' यह एकही होगा। और जब दूसरा पदार्थ बहुतही बड़ा हो जैसा कि 'स' तब 'सन' आधार उसके गुरुत्वकेन्द्र में लगेगा। तौभी दंडा घुमाने से 'स' और 'ग' पदार्थ उसी एकही (स) बिन्दुके आस पास घूमेंगे, अर्थात् 'स' पदार्थ अपने ही केन्द्र के चारों तरफ और 'ग' उस के आस पास घूमेगा। इसप्रकार पृथ्वी और सूर्य को उक्त दोनों पदार्थों के स्थान में कल्पना करके यह विषय समझना चाहिए। यों यदि पृथ्वी स्थिर और सूर्य फिरता हुआ मानें तो सूर्यकक्षाका केन्द्र पृथ्वी के केन्द्र में होने के लिए, सूर्य के परिमाणसे पृथिवी का परिमाण बहुतही बड़ा होना चाहिए। परन्तु यह बात विरुद्ध है, क्योंकि पृथ्वी की अपेक्षा सूर्यका मान कई लाख गुणा अधिक है। इस लिए पृथ्वी और सब ग्रह सूर्य के ही आस पास घूमा करते हैं। और सूर्य बिम्ब भी अपने अक्ष पर भ्रमण करता हुआ वर्ष में एकबार भूमिकी प्रदक्षिणा करता है।

गति विद्याके नियमों से यह ज्ञात हुआ है कि सूर्य, पृथ्वी आदि ग्रह अपने परस्पर-आकर्षण से, या तो एक स्थान में होजाने चाहिए, या साधारण गुरुत्व केन्द्र में भ्रमण करना चाहिए। परन्तु सब ग्रहों की अपेक्षा सूर्य का मान अधिक होने से उनका साधारण गुरुत्व केन्द्र सूर्य के करीब में रहता है, इसलिए सब ग्रह उसीके चारों तरफ भ्रमण किया करते हैं। जब सूर्य, बृहस्पति आदि महापिण्ड अपने अक्षमें भ्रमण करते हैं तो उनकी अपेक्षा छोटापिण्ड पृथिवी का भी घूमता हुआ मानाजाय तो क्या आश्चर्यकी बातहै? ग्रहगणितमें इससे कोई आपत्ति नहींहै।

यदि कोई मनुष्य जहाज की कोठरी में बैठा हो और जहाज क्रमसे चलाया जाय तो उस मनुष्य को जहाजकी गतिका अनुभव न होगा। यही हाल भूपृष्ठ-वासियों की भी है, जिससे हमलोगों को इसकी गति का ज्ञान नहीं होता। यही आर्यभट ने पहला दृष्टान्त दिया है।

और श्रीपति, लल्ल आदिकों ने जो शङ्काएं की हैं कि पृथिवी के चलने पर भूपृष्ठ के पदार्थ गिरपड़ेंगे, पक्षियों को अपना घोंसला न मिलेगा, यह सब सामान्य शङ्काएं हैं। क्योंकि सब पदार्थ अपने गुरुत्व के अनुसार पृथिवी के तरफ उसके केन्द्राकर्षणशक्ति से खिंचे हुए हैं। और यह आकर्षण पृथिवी के चारोंतरफ कई मीलतक होता है। इसलिए जो भूपृष्ठ के पदार्थ हैं, वे सब जहां के तहां रहतेहैं।

इसी भांति कितनेही शङ्का, समाधान हैं। यहां भूभ्रमण की मोटी बातें संक्षेप से लिखी गई हैं। वास्तव में इस विषयका विचार बड़ा गहन और उसका समझना भी कठिन है। यहां केवल दिग्दर्शनमात्र किया गयाहै॥ १। २॥

इदानीं ग्रहाणां पूर्वगतिमनुपलक्षितामपि दृष्टान्तेन दृढीकुर्वन्नाह—

यान्तो भचक्रे लघुपूर्वगत्या
 खेटास्तु तस्यापरशीघ्रगत्या।
कुलालचक्रभ्रमिवामगत्या
 यान्तो न कीटा इव भान्ति यान्तः॥ ४॥

प्रभा।

भचक्रे भमण्डले खेटाः लघ्वी या पूर्वा गतिस्तया यान्तो व्रजन्तः तस्यापरशीघ्रगत्या तस्य भचक्रस्य अपरा पश्चिमा या शीघ्रगतिर्नाक्षत्र-षष्टिघटीरूपा तया यान्तो गच्छन्तः कुलालचक्रभ्रमिवामगत्या दण्डेन भ्राम्यमाणस्य कुलालचक्रस्य या भ्रमिर्भ्रमणं तस्या वामगत्या दण्ड-कृतं यद्दिक्कं चक्रभ्रमणं तद्विपरीतगत्येत्यर्थः। कीटा इव यान्तो न भान्ति। अयमर्थः। यथा किल कुलालचक्रे पश्चिमदिशि भ्रामिते सति तत्र पिपीलिकाया पूर्वगतिर्न लक्ष्यते किन्तु पश्चिमैव। एवं ग्र-हाणामतिलघुः पूर्वागतिरपि न लक्ष्यते। किन्तु प्रवहकृता पश्चिम-गतिः। सा तु सूक्ष्मदृशाऽनुसंधातव्येति तत्त्वम्।

भाषाभाष्य।

ग्रह अपनी लघु-पूर्वगति से भचक्र में गमन करते हुए प्रवहजन्य शीघ्र पश्चिम गति से नहीं लक्षित होते। जैसे कुम्हार के चाकमें चींटी विलोम दिशामें जातीभी चाकके भ्रमणवश उसकी वह गति नहीं मालूम होती॥ ४॥

इदानीं मध्यगतिवासनां विवक्षुरादौ तावद्भदिनपूर्वकं रवेः स्फुट-सावनदिनमाह—

समं भसूर्यावुदितौ किलार्क्या
 षष्ट्या घटीनामुदितं पुनर्भम्।
रविस्ततः स्वोदयभुक्तिघातात्
 खाभ्राष्टभू १८०० लब्धसमासुभिश्च॥ ५॥

सगागतासुसंयुता खेस्तु षष्टिनाडिकाः ।
स्फुटं द्युगत्रमुद्गमाद्द्युभुक्तितश्च तच्चलम् ॥ ६ ॥
षष्ट्या घटीनां भदिनं सदाक्ष्यां
तद्भुक्तितुल्यासुयुतं खरांशोः ।
स्यान्मध्यमं सावनमेवमब्दे
तत्संख्यका भभ्रमतो निरेका ॥ ७ ॥

यदा किमपि नक्षत्रं सूर्यश्च किल समकालमुदितः नह्यर्कोदयवेलायां किमपि नक्षत्रमुपलभ्यते किन्तु केवलात्र युक्तिरुच्यत इति किलशब्दः प्रयुक्तः।तस्मात्कालादनन्तरं नाक्षत्राणां घटीनां षष्ट्या ६० तन्नक्षत्रं पुनरुदेति । ततोऽनन्तरं रविरुदेति । सच कियता कालेन । तदर्थमनुपातः । रविः किल क्रान्तिवृत्ते स्फुटगत्या पूर्वतो गतः । यद्यष्टादशशतानि राशिकलाः स्वोदयासुभिरुद्गच्छन्ति तदा स्फुटगतिकलाः कियद्भिरिति । एवं लब्धासुभिर्भोदयानन्तरं खेरुदयः। अत एव नाक्षत्राःषष्टिघटिकास्तैर्लब्धासुभिरधिका खेः स्फुटं सावनमहोरात्रं भवति । तच्चाहोरात्रं चलम् । प्रत्यहमन्यादृक् । प्रत्यहं गत्यन्यत्वात्प्रतिमासं राश्युदयान्यत्वाच्च ।

गति तत्र मेषराशेः कला अष्टादशशतानि १८०० गगनभूरसहचन्द्रमितैरसुभि १६७० रुद्धच्छन्ति। अन्यस्यान्यैरितिगतिकलानामनुपातेनासवः कर्तुं युज्यन्ते। एवं कृते सति स्फुटमहोरात्रं भवति। यत्त्वैरुक्तं तन्मध्यममेव। एवं वर्षमध्ये यावन्ति स्फुटसावनानि तावन्त्येवं मध्यमानि स्युः। तत्संख्यका भभ्रमतो निरेकेति यावन्तो भभ्रमा जातास्तत्संख्यकैकोना सती सावनदिनसंख्या भवति। यतो रविः पूर्वतो गच्छन्नेकं परिवर्तं गतः अतस्तस्योदयसंख्यैकोनेत्युपपद्यते॥

प्रभा।

ऋक्षरैषा आर्क्षी तया घटीनां षष्ट्या नाक्षत्रषष्टिघटिकयेत्यर्थः सममेककालावच्छेदेन।

भाषाभाष्य।

सूर्य और नक्षत्र एक समय में क्षितिज में उदित होकर दूसरे दिन फिर नक्षत्र ६० घटी में उसी स्थान में नक्षत्र उदित होता है। और रवि, स्वोदयघटिका और गति घटिका के गुणन १८०० का भाग देने से जो असु उपलब्ध हो, उस प्रमाण से पीछे उदित होताहै। उक्तरीति से जो असु सिद्ध हुए हैं उनको साठ घड़ी में जोड़देने से रविका स्फुट सावन अहोरात्र होता है। प्रतिमास उदय और प्रतिदिन की गति के भेद से यह सावन–अहोरात्र चल होता है। नाक्षत्र अहोरात्र सदा साठ घड़ीका होता है। उसमें रविगति के तुल्य असुओं को जोड़ देने से रवि का मध्यम–सावनाहोरात्र होता है। इसप्रकार सावनाहोरात्र संख्या नाक्षत्राहोरात्र संख्या से एक कम होती है।

उपपत्ति।

रवि आदि ग्रहों में दो गति हैं। एक पूर्वगति जिसे स्वगति कहते हैं। दूसरी पश्चिमगति, जिसको प्रवहजन्यगति कहते हैं। इसी गति से प्रतिदिन सूर्य आदि ग्रहोंका उदयास्त होता दिखलाई देता है। पूर्वगति स्पष्ट नहीं दीखती यह वेध से ज्ञात होती है। नक्षत्रों में केवल प्रवहजन्य पश्चिम गतिही है, पूर्वगति नहीं है। उदयकाल में पूर्व क्षितिज में यदि एक समय में सूर्य और किसी नक्षत्र का उदय कल्पना किया जाय और फिर दूसरे दिन नाक्षत्र साठ घटी में उसी समय उन दोनों को देखा जाय

तो वेधद्वारा साफ मालुम होगा कि नाक्षत्र साठघटी में वह नक्षत्र ठीक उसी स्थान में आगया, जहां पूर्वदिन देखागयाथा। परन्तु रवि ठीक उस बिन्दु से कुछ नीचे को दबा मालुम होगा जिस बिन्दु में पूर्वदिन देखा गया था। यही कारण है कि ग्रहों की पूर्वगति भी है जिससे ये चालित होकर नक्षत्रोदय के बाद कुछ काल में उदित होते हैं। उस काल के जानने के लिये अनुपात–एक राशिकला १८०० में उदयासु मिलते हैं तो स्फुट गतिकला में कितने असु मिलेंगे ?

$$१८०० : उदयासु :: गतिक : \frac{उदसु \times स्फुटगतिक}{१८००} = असु ।$$

इसप्रकार जो असु आवें उतने काल के बाद नक्षत्रोदय के अनन्तर रवि उदय होगा उन असुओं को नाक्षत्र षष्टिघटिका अर्थात् २१६०० असुओं में जोड़ देने से रवि के स्फुट सावन–अहोरात्रासु होंगे। यों रविका सावनाहोरात्र स्पष्ट होता है। प्रतिक्षण में स्फुटगति के भेदसे यह प्रतिदिन भिन्न भिन्न सिद्ध होगा।

रविकी मध्यमगति के जितने असु हों उनको ६० घटी में जोड़ देने से मध्यमसावन दिन होता है। गति और उदयों की घटती बढ़ती वर्षभर में तुल्य होजाती है। इसलिये वर्षान्त में स्फुट और मध्यम रविसावन समान होजाते हैं। रवि अपनी गति से पूर्व में हटते हटते वर्ष में एक भगण अर्थात् द्वादश राशि के अन्तर पर होजाता है। इसलिये नाक्षत्र संख्या में एक घटाने से रविसावन होता है।

लल्लाचार्यने अपने शिष्यधी वृद्धिद–में लिखा है कि रविगति कला के समान असु नाक्षत्र ६० घटी में जोड़ देने से सावन दिन होता है[†] परन्तु यह युक्ति ठीक नहीं है। यदि रवि विषुवन्मण्डल में भ्रमण करे तब विषुवन्मण्डल की एक कला एक असु के समान उदित होवे। उसी स्थिति में रविगति कला के समान असु होसके हैं। परन्तु रवि क्रान्तिवृत्त में भ्रमण करता है, उस स्थिति में मेषराशि की कला १८०० अपना उदय १६७० इतने असुओं में होता है। इत्यादि। इसलिये लल्लका मत एक देशी अप्रमाण है ॥ ५–७ ॥

इदानीं वर्षमध्ये सावनसंख्यामाह—

> पञ्चाङ्गरामास्तिथयः खरामाः
> सार्धद्विदस्राः कुदिनानि वर्षे।
> अस्यार्कमासोऽर्कलवः प्रदिष्ट-
> स्त्रिंशद्दिनः सावनमास एव ॥ ८ ॥

[†] [illegible]

एकस्मिन्सौरवर्षे पञ्चपष्ट्यधिकत्रिपती ३६५ मिताः सावन-वसाः पञ्चदश १५ नाडिकाश्च त्रिंशत्पलानि ३० च सार्द्धानि विंशति २२। ३० विपलानि। एषामुपपत्तिर्मध्यगतिभाष्ये थितैव। अस्यार्कवर्षस्य द्वादशांशोऽर्कमासो भवतीति युक्तम्। सावनमासस्तु सावनानां त्रिंशतैव भवति॥

भाषाभाष्य।

एक सौरवर्ष में ३६५ दिन, १५ घडी, ३० पल और २२। ३० विपल होते हैं। इसका बारहवां हिस्सा सूर्यमास कहलाता है। और सावन मास ३० दिन का होता है।

उपपत्ति।

युरोपियन मत से सौरवर्ष का मान हमारे यहां से कुछ भिन्न है। वह ३६५ दिन, ५ घंटा, ४८ मिनट और ४६.०५४४४ सेकण्ड है। सूर्यसिद्धान्त और आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार सातों ग्रहों का मध्यमवर्ष मान इसप्रकार है—

	सूर्यसिद्धान्त।	आधुनिकसिद्धान्त।
रवि,	३६५.२५८७५	३६५.२५६३७
चन्द्र,	२७.३२१६७	२७.३२१६६
भौम,	६८६.९९७५	६८६.९५०५
बुध,	८७.९५८५	८७.९६९३
गुरु,	४३३२.३२०६	४३३२.५८४७
शुक्र,	२२४.६९८५	२२४.७००८
शनि,	१०७६५.७७३०	१०७५९.२१९७

यों संख्या में अन्तर उपलब्ध होता है। युरोपियन मतानुसार नाक्षत्रदिन-संख्या वर्ष में ३६६$\frac{1}{4}$ होती है। यह मध्यम सावन दिन ३६५$\frac{1}{4}$ के समान है। यदि 'म' मध्यमसावन दिन का अन्तर और 'न' नाक्षत्र दिन का अन्तर ज्ञात हो तो—

३६५$\frac{1}{4}$: ३६६$\frac{1}{4}$ :: म : न

इसप्रकार निष्पत्ति समान होती है। और यदि 'म' ज्ञात हो तो 'न' संख्या का मान ज्ञात होसकता है।

भास्कराचार्यने रविमास ३० दिन, २६ घड़ी, १७ पल लिखा है यह उक्त सौरवर्ष का द्वादशांश है। सावन मास ३० सावन दिनों का होता है। उदय से उदय पर्यन्त काल को सावन कहते हैं॥ ८॥

इदानीं चान्द्रमासमाह—

कालेन येनैति पुनः शशीनं
क्रामन्भचक्रं विवरेण गत्योः ।
मासः स चान्द्रोऽङ्कयमाः कुरामाः
पूर्णेषव २९ । ३१ । ५० स्तत्कुदिनप्रमाणम् ॥ ६ ॥

दर्शान्ते किल शशी रविणायुक्तो भवति । ततो द्वावपि पूर्वतो गच्छतः । तयोः शशी शीघ्रगतित्वात् प्रत्यहं गत्यन्तरेणाग्रतो याति एवं गच्छंश्चक्रकला २१६०० तुल्यमन्तरं यदाग्रतो याति तदा रविणा योगमेति । तयोः कालयोरन्तरालं चन्द्रमासः । तत्प्रमाणमनुपातेन । चन्द्रार्कयोर्मध्यगती आदौ सम्यक् सावयवे कृत्वा यदि गत्यन्तरेणैकं कुदिनं लभ्यते तदा चक्रकलातुल्येनान्तरेण कियन्तीत्यनुपातेन चान्द्रमासे कुदिनानि लभ्यन्ते । एकोनत्रिंशद्दिनान्येकत्रिंशद्घटिकाः पञ्चाशत्पलानि २९ । ३१ । ५० इत्युपपन्नम् ॥

प्रभा ।

गत्योः स्वस्वगत्योर्विवरेणान्तरेण भचक्रं क्रान्तिवृत्तं क्रामन्गच्छन् शशी चन्द्रो येन कालेन यावता समयेन इनं रविमेति प्राप्नोति स कालश्चान्द्रोमासः ।

भाषाभाष्य ।

गत्यन्तर में क्रान्तिवृत्त में भ्रमण करता हुआ चन्द्र जितने समय में रवि में संयुक्त होता है उस समय को चान्द्रमास कहते हैं । उसका प्रमाण २९ दिन, ३१ घड़ी और ५० पल है ।

इदानीं चान्द्रमासमाह—

कालेन येनैति पुनः शशीनं
क्रामन्भचक्रं विवरेण गत्योः ।
मासः स चान्द्रोऽङ्कयमाः कुरामाः
पूर्णेपवः २९ । ३१ । ५० स्तत्कुदिनप्रमाणम् ॥ ६ ॥

दर्शान्ते किल शशी रविणायुक्तो भवति । ततो द्वावपि पूर्वतो गच्छतः । तयोः शशी शीघ्रगतित्वात् प्रत्यहं गत्यन्तरेणाग्रतो याति एवं गच्छंश्चक्रकला २१६०० तुल्यमन्तरं यदाग्रतो याति तदा रविणा योगमेति । तयोः कालयोरन्तरालं चन्द्रमासः । तत्प्रमाणमनुपातेन । चन्द्रार्कयोर्मध्यगती आदौ सम्यक् सावयवे कृत्वा यदि गत्यन्तरेणैकं कुदिनं लभ्यते तदा चक्रकलातुल्येनान्तरेण कियन्तीत्यनुपातेन चान्द्रमासे कुदिनानि लभ्यन्ते । एकोनत्रिंशद्दिनान्येकत्रिंशद्घटिकाः पञ्चाशत्पलानि २९ । ३१ । ५० इत्युपपन्नम् ॥

प्रभा ।

गत्योः स्वस्वगत्योर्विवरेणान्तरेण भचक्रं क्रान्तिवृत्तं क्रामन्गच्छन् शशी चन्द्रो येन कालेन यावता समयेन इनं रविमेति प्राप्नोति सकालश्चान्द्रोमासः ।

भाषाभाष्य ।

गत्यन्तर से क्रान्तिवृत्त में भ्रमण करता हुआ चन्द्र जितने समय में रवि से संयुक्त होता है उस समय को चान्द्रमास कहते हैं । उसका प्रमाण २९ दिन, ३१ घड़ी और ५० पल है ।

उपपत्ति ।

अमा को सूर्य और चन्द्र का योग होता है । फिर वे अपनी गति के अन्तर से चलते हैं और जब दोनों का चक्रकला २१६०० अर्थात् बारहराशि का अन्तर होजाता है तो पुनः आपस में मिलते हैं । यों एक अमान्त से दूसरे अमान्त तक जो काल है उसको चान्द्रमास कहते हैं । उस चान्द्रमास के साधनार्थ अनुपात—

गअं : कुदिन : : चकअं : $\frac{\text{चकअं} \times \text{कुदिन}}{\text{गअं}}$ = कुदिन । ये कुदिन अर्थात् मा-

एवं त्रिगुणचतुर्गुणादिभिः कर्कटादिसंक्रान्तयो भवन्ति। एवं संक्रान्तिरग्रतोऽग्रतो याति। पुनर्दर्शान्तं प्राप्नोति तदा गतचान्द्रमासेभ्यः सौरा एकोना भवन्ति। यदा संक्रान्तिर्दर्शान्तमतिक्रम्याग्रतो याति तदानुपातेन यावन्तः सौरा भवन्ति तावद्भिरेकोऽधिमासः। तत्रानुपातः। यद्यनेन सौरचान्द्रान्तरेण कुदिनात्मकेन ०।५४। २७। ३१।५२।३० एकः सौरोमासो भवति तदा चान्द्रमासान्तःपातिभिः कुदिनैः २६।३१।५० कियन्त इति। फलं सूर्यमासाः ३२।१५।३१।२८।४७। अथच युगाधिमासैर्युगसौरमासा लभ्यन्ते तदेकेन किमिति। फल मेतावन्त एव सौरमासा लभ्यन्ते। एतावद्भिः सौरामासैरेकश्चान्द्रमासोऽधिको भवति। अतएवाधिमासस्य चान्द्रत्वम्। कल्पेऽपि कल्प्या अनुपाततोऽत इति सुगमम्।

प्रभा।

चान्द्रोनोयःसौररतेन हृताद्रक्ताच्चान्द्राद्वाप्ता लब्धा ये सौरामासास्तैर्दशनैर्दलाढ्यै ३२। १६ रित्यर्थः। मासैश्चान्द्रमसोऽधिमासः मस्यते परिमीयत इति मासः मासाद्रविसंक्रान्ति मासादधिक इति मयूरव्यंसकादित्वात्समासः स्यात्। असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्यादिति तल्लक्षणम्। तथाच तैत्तिरीयश्रुतिः। 'द्वादश मासाः संवत्सरः। अस्ति त्रयोदशो मासः,। सौरान्मासादैन्दवश्चान्द्रोमासो यस्माल्लघीयाँल्लघुतरस्तस्माच्चे मासाः संख्ययाधिकाःस्युः। सौरमासा पेक्षयेत्यर्थः। शेषं स्फुटम्।

भाषाभाष्य।

चान्द्रमास और सौरमास के अन्तर का चान्द्रमास में भागदेने से जो फल मिले वह अधिमास होता है। वह ३२½ सौरमास के अन्तर पर होता है। इससे

इदानीमधिमासोपपत्तिमाह--

चान्द्रोनसौरेण हृतात्तु चान्द्रा-
दवाप्तसौरैर्दशनैर्दलाढ्यैः ३२। १६।
मासैर्भवेच्चान्द्रमसोऽधिमासः
कल्पेऽपि कल्प्या अनुपाततोऽतः॥ १०॥
सौरान्मासादैन्दवः स्याल्लघीयान्
यस्मात्तस्मात्संख्यया तेऽधिकाःस्युः॥
चान्द्राः कल्पे सौरचान्द्रान्तरे ये
मासास्तज्ज्ञैश्चाधिमासाः प्रदिष्टाः॥ ११॥

अत्र द्वितीयश्लोकस्तावत्प्रथमं व्याख्यायते। सौरान्मासादैन्दवोमासो यतोलघुरतः कारणात् कल्पे सौरमाससंख्यायाश्चान्द्रमाससंख्याधिका भवति। यथा धान्यराशिमानेऽष्टसेतिकाहारमितेः षट्सेतिकाहारमितिरधिका भवतीति बालैरपि बुध्यते। यावन्तश्चान्द्रमासाः कल्पेऽधिका भवन्ति तत्संख्याधिमाससंख्या तज्ज्ञैः कल्पिता। तत्र कियद्भिः सौरैरेकोऽधिमासो भवतीति युक्तिरुच्यते। चान्द्रोनसौरेण हृतात्तु चान्द्रादिति। सौरमासकुदिनेभ्यश्चान्द्रमासकुदिनेषु शोधितेषु शेषं दिनस्थाने पूर्णमधश्चतुष्पञ्चाशद्घटिकाः सप्तविंशतिपलानि सावयवानि ०। ५४। २७। ३१। ५२। ३०: एकस्मिन्सौरमास इदं सौरचान्द्रान्तरं कुदिनात्मकम्। युगस्यादेरुपर्येकस्मिन् दर्शान्ते प्राप्त एकश्चान्द्रमासः पूर्णस्तदनन्तरं चतुष्पञ्चाशद्घटिकाभिः सावयवाभिर्मध्यमार्कस्य वृषभसंक्रान्तिस्तत्र रविमासः पूर्णस्ततोऽन्यस्मिन् दर्शान्ते प्राप्तेऽन्यश्चान्द्रमासान्तः। ततो दर्शान्तादुपरि द्विगुणाभिस्ताभिरेव घटीभिर्मिथुनसंक्रान्तिः।

इदानीमवमशेषमाह—

शशाङ्कमासोनितसावनेन ० । २८ । १०
त्रिंशद्धृता लब्धदिनैस्तु चान्द्रैः ।
रुद्रांशकोनाब्धिरसैः ६३ । ५४ । ३३ क्षयाहः
स्यात्सावनोऽतश्च युगेऽनुपातात् ॥ १२ ॥

युगे चान्द्राणां सावनानां च दिनानां यदन्तरं तान्यवमानि । अत एकस्मिन् मासे चान्द्रसावनान्तरं कुदिनात्मकं गृहीतम् । तत्र दिवसाः पूर्णमष्टाविंशतिर्घटिका दश पानीयपलानि च ० । २८ । १० इदमेकस्मिन्मासे त्रिंशत्तिथ्यात्मके कुदिनात्मकमवमखण्डम् । यद्यनेन त्रिंशच्चान्द्राणि दिनानि लभ्यन्ते तदा संपूर्णेनैकेनावमेन कियन्तीति त्रैराशिकेन लब्धैरुद्रांशकोनाब्धिरसैः ६३ । ५४ । ३३ रेकः क्षयाहो भवति । स च सावनः । अखण्डस्य रूपस्य सावनेच्छाकल्पनात् । अतोऽनुपातात्कल्पेऽपि ।

प्रभा ।

शशाङ्कमासश्चान्द्रमासस्तेनोनितो यः सावनमासस्तेन हृता भक्ता-स्त्रिंशत् । लब्धदिनैश्चान्द्रैरुद्रांशकोनाब्धिरसैः ६३ । ५४ । ३३ क्षयाहः सावनः स्यात् । अतोऽनुपाताद् युगेऽपि साध्य इत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

चान्द्रमास में सावनमास को घटाकर शेषका तीस में भागदेने से लब्ध ६४ $\frac{१}{६}$ चान्द्रदिनों में एक सावन अवम होता है । उससे अनुपात से युगावम भी सिद्ध होते हैं ।

उपपत्ति ।

कल्प युग की आदि में सावन और चान्द्रदिनों की प्रवृत्ति एकवारगी हुई है । परन्तु चान्द्रदिन सावनदिन की अपेक्षा छोटा होने से, सावनदिन के अर्थात् सूर्योदय से पूर्वकाल में ही चान्द्रदिन पूरा होजाता है । इस स्थिति में चान्द्रदिनान्त और सूर्योदय के मध्य में जो काल रहता है उसको अवमशेष कहते हैं । वह सावन है,

अनुपातद्वारा कल्प कालमें भी ज्ञात करना चाहिये। सौरमास से चान्द्रमास छोटा होता है इसलिये सौरमास से चान्द्रमास की संख्या अधिक होती है। कल्प में, सौर, चान्द्रमासों के अन्तर में जो चान्द्रमास होते हैं, उनको विद्वान लोग अधिमास कहते हैं।

उपपत्ति।

कल्प में जितने चान्द्रमास सौरमास से अधिक होते हैं वे अधिमास कहलाते हैं। अब यहां यह जानना आवश्यक है कि कितने सौरमासो में एक अधिमास पड़ता है। एक अधिमास जानने के बाद अनुपात से कल्प काल में भी सुगमता से सिद्ध होसका है। सौरमास के कुदिनों में चान्द्रमास सम्बन्धि कुदिनों को घटाने से शेष दिन, घटिकादि ०।४५।२७।३१।५२।३०। यह एक सौरमास में सौरचान्द्र का अन्तर है। अमा से दूसरे अमान्त तक चान्द्रमास और एक रविसंक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक सौरमास होता है। यों समझना चाहिये कि युगारम्भ के बाद अमा को एक चान्द्रमास पूरा होगया। और अमान्त के बाद उक्त घटिका में रविकी वृष संक्रान्ति हुई और उसी समय सौरमास पूरा भया। इसीप्रकार दूसरे अमान्त पर पुनः चान्द्रमास पूराभया और उसके बाद द्विगुणित उक्त घटिका में मिथुन संक्रान्ति भई और सौरमास पूराभया। यों क्रमसे अमान्त के बाद रविसंक्रान्ति दूनी, तिगुनी, चौगुनी के हिसाब से अमान्त के बाद बढ़ती जायगी और दर्शान्त का अतिक्रमण करके आगे होगी। इस स्थिति में अनुपात से जितने सौरमास मिलें उस हिसाब से एक अधिमास पड़ैगा। अर्थात् सौरमास से एक चान्द्रमास अधिक होजायगा, जिसमें कि संक्रान्ति नहीं हुई है। अब अनुपात की प्रवृत्ति हुई—

०।४५।२७ इत्यादि : १ सौरमास : : २९।३१।५०

इसप्रकार चान्द्रमास से ३२।१५।३१ इत्यादि सौरमासादि प्राप्तहुये। इतने सौरमासों मे एक चान्द्रमास वा अधिमास पड़ता है यह सिद्ध हुआ। यों युग सौरमास और कल्प सौरमासों से युगाधिमास और कल्पाधिमास भी स्पष्ट हो जाते हैं॥ १०। ११॥

०

एवमवमशेषस्यापि तुल्यत्वमेव । एकत्र चान्द्रदिनान्यन्यत्र कुदिनानि छेदः । अधिमासावमशेषयोरिष्टजातित्वं प्रकल्प्य मतिमद्भिश्चन्द्रार्कानयनानि कृतानि । तत्र ये जडास्ते वासनां पर्यालोचयन्तो भ्रमन्ति ।

प्रभा ।

सौरेभ्यः साधितास्ते चेदित्यादि पद्यद्वयमपि स्फुटमेव ।

भाषाभाष्य ।

सौरमास से अधिमास साधन करने से वह चान्द्र होता है । और चान्द्रसे साधन करने से सौर होता है । और शेष भी उसी के अनुसार चान्द्र और सौर होता है । यदि चान्द्र दिनों से अवम का साधन हो तो वह सावन होता है । और सावन दिनों से साधन करने से चान्द्र होता है । और उसी के अनुसार शेष भी होते हैं ।

उपपत्ति ।

सौरमास और चान्द्रमास से अधिमास साधन करने से वह क्रमसे चान्द्र सौर होता है और शेष भी उसी के अनुसार होता है । अनुपात इसप्रकार होते हैं—

(१) कसौदि : कधिमा : : इसौदि. $\frac{\text{कधिमा} \times \text{इसौदि}}{\text{कसौदि}}$=गताधिमास, शेष अधिशेष चान्द्रात्मक होता है ।

∵ कसौदि : कचामा : : इसौदि $\frac{\text{कचांमा} \times \text{इसौदि}}{\text{कसौदि}}$ ।

कचां=कसौ+कधि । दोनो खण्डो को अलग अलग इष्टसौरदिन से गुणा और कल्प सौर दिनका भाग देने से हुआ—

$\frac{\text{कसौ} \times \text{इसौदि}}{\text{कसौ}}$, $\frac{\text{कअधि} \times \text{इसौदि}}{\text{कसौ}}$ । हर और अंशमे कल्प सौर का अपवर्तन देने से फल और शेष चान्द्रात्मक होता है । क्योंकि मध्यराशि चान्द्रखण्ड है । इसप्रकार 'सौरेभ्यः साधिता.—तच्छेषं तद्वशात्तथा, यह उपपन्न हुआ ।

(२) कचां : कधि : . इचां. $\frac{\text{कधि} \times \text{इचां}}{\text{कचा}}$=गताधिमास, और शेष अधिशेष सौरात्मक रहेगा ।

क्योंकि सावनदिन का अवयवभूत है। यह अवमशेष प्रतिदिन बढ़ता है और जब ६० घटिका (२४ घण्टे) तक बढ़ जाता है तब एक अवमदिन पूरा होता है। उसके पूरे होने मे जितने चान्द्रदिन लगते हैं उसके साधन के लिये एक मास सम्बन्धि सावनचान्द्रान्तर ० दिन, २८ घटी, १० पल सिद्ध करके, अनुपात यों हुआ—

०।२८।१०।३० चन्द्रदिन :: सावदिनः ६४$_{१}^{१}$ तिथि।

इस प्रकार ६४$_{१}^{१}$ इतने चान्द्रदिनो में एक पूरा क्षयाह होता है। वह सावन है, क्योंकि इच्छा जातीय फल होता है॥ १२॥

इदानीमधिमासस्य चान्द्रत्वमवमस्य सावनत्वमभिधायाहर्गणान् कल्पगतमानेतुं विलोमविधिना यान्यवमान्यानीतानि ये चाधिमासास्तेषां विशेषमाह—

सौरेभ्यः साधितास्ते चेदधिमासास्तदैन्दवाः।
चेच्चान्द्रेभ्यस्तदा सौरास्तच्छेषं तद्वशात्तथा॥ १३॥
सावनान्यवमानिस्युश्चान्द्रेभ्यः साधितानि चेत्।
सावनेभ्यस्तु चान्द्राणि तच्छेषं तद्वशात्तथा॥ १४॥

यथाहर्गणानयने सौरेभ्यश्चान्द्रान् साधयितुं ये ऽधिमासा आनीयन्ते ते चान्द्रास्तच्छेषं च चान्द्रम्। यदि चान्द्रेभ्यः सौरान् साधयितुं तदा सौरास्तच्छेषमपि सौरम्। एवं चान्द्रेभ्यः सावनानि साधयितुमवमान्यानीयन्ते तदा तानि सावनानि। यदि सावनेभ्यश्चान्द्राणि कर्तुं तदा चान्द्राणि स्युः। साध्यत्वं भजन्तीत्यर्थः। तच्छेषमपि तद्वशात्। अभिमतद्युगणादवमैर्हतादित्यादिनाहर्गणात् कल्पगतमानीतं तदा सावनेभ्योऽवमान्यानीतानि। तानि चान्द्राणि। चन्द्रदिवसेभ्योऽधिमासाः साधितास्ते सौरास्तच्छेषं तद्वशादित्यर्थः। अधिमासस्य चान्द्रत्वे सौरत्वे चाधिमासशेषं तुल्यमेव स्यात्। किन्त्वेकत्र रविदिनानि छेदः। अन्यत्र चान्द्राणि।

इदानीं विशेषः प्रश्नाध्याये—

अहर्गणस्यानयनेऽर्कमासा-
श्चैत्रादिचान्द्रैर्गणकान्विताः किम्।
कुतोऽधिमासावमशेषके च
त्यक्ते यतः सावयवोऽनुपातः॥ १५॥

प्रभा।

हे गणक! अहर्गणस्यानयने साधनेऽर्कमासाः सौरमासाश्चैत्रादिगतचान्द्रैःकिमन्विताः? विजातीययोः कथं योगः कृत इत्यर्थः। अधिमासावमशेषके च कुतः कस्माद्धेतोस्त्यक्ते, यतोऽनुपातः सावयवो भवतीति प्रश्नः।

भाषाभाष्य।

अहर्गण के साधन में सौरमास चैत्रादि चान्द्रमासों में क्यों जोड़े गए? अधिमास और अवमशेष को क्यों छोड़ दिया? क्योंकि अनुपात सावयव होता है, यह प्रश्न है॥ १५॥

अस्य प्रश्नस्योत्तरमाह—

दर्शावधिश्चान्द्रमसो हि मासः
सौरस्तु संक्रान्त्यवधिर्यतोऽतः।
दर्शाग्रतः संक्रमकालतः प्राक्
सदैव तिष्ठत्यधिमासशेषम्॥ १६॥
दर्शान्ततो यातातिथिप्रमाणैः
सौरैस्तु सौरा दिवसाः समेता।
यतोऽधिशेषोत्थदिनाधिकास्ते
त्यक्तं तदस्मादधिमासशेषम्॥ १७
तिथ्यन्तसूर्योदययोस्तु मध्ये
सदैव तिष्ठत्यवमावशेषम्।
त्यक्तेन तेनोदयकालिकः स्या-
त्तिथ्यन्तकाले द्युगणोऽन्यथातः॥ १८॥

∴ कचां : कसौ : : इचां : $\dfrac{\text{कसौ} \times \text{इचां}}{\text{कचां}}$ ।

कसौ=कचां—कधि । दोनों खण्डों को अलग अलग इष्टचान्द्र से गुणकर कल्पचान्द्र का भाग देने से हुआ—

$\dfrac{\text{कचां} \times \text{इचां}}{\text{कचां}}$ । $\dfrac{\text{कधि} \times \text{इचां}}{\text{कचा}}$ । यहां कल्पचान्द्रमित गुणक और भाजक में अपवर्तन देने से फल और शेष सौरात्मक रहेगा । मध्यम राशि के सौरसम्बन्धि होने से । इसलिये 'चेचान्द्रेभ्यस्तदा सौरास्तच्छेषं तद्वशात्तथा—' यह उपपन्न हुआ ।

(३) कचां : कव : : इचां: $\dfrac{\text{कव} \times \text{इचां}}{\text{कचां}}$ = गतावम और शेष अवमशेष सावनात्मक होगा ।

क्योंकि, कचां : कसा : : इचां : $\dfrac{\text{कसा} \times \text{इचां}}{\text{कचां}}$ ।

कसा=कचां—कव । इन दोनों खण्डों को अलग अलग इष्टचान्द्रसे गुणकर कल्पचान्द्र का भाग देने से हुआ—

$\dfrac{\text{कचां} \times \text{इचां}}{\text{कचा}}$, $\dfrac{\text{कव} \times \text{इचां}}{\text{कचा}}$ । हर अंश में कल्पचान्द्र का अपवर्तन देने से फल और शेष सावनात्मक होगा । इसप्रकार 'सावनान्यवमानिस्युश्चान्द्रेभ्यःसावितानि चेत्' यह उपपन्न हुआ—

(४) कसा : कव : : इसा : $\dfrac{\text{कव} \times \text{इसा}}{\text{कसा}}$ = गतावम और शेष अवमशेष चान्द्रात्मक रहेगा ।

क्योंकि, कसा : कचां : : इसा : $\dfrac{\text{कचां} \times \text{इसा}}{\text{कसा}}$ ।

कचां=कसा+कव । दोनों खण्डों को अलग अलग इष्टसावन से गुणकर कल्पसावन का भाग देने से हुआ—

$\dfrac{\text{कसा} \times \text{इसा}}{\text{कसा}}$, $\dfrac{\text{कव} \times \text{इसा}}{\text{कसा}}$ । हर अंश में कल्पसावन का अपवर्तन देने में फल और शेष चान्द्रसम्बन्धि होगा । इसप्रकार 'सावनेभ्यस्तु चान्द्राणि तच्छेषं तद्वशात्तथा ।' यह उपपन्न हुआ ।

[illegible] '[illegible]' का भाव स्पष्ट होता है । १३-१४ ।

है। तिथ्यन्त और सूर्योदय कालके मध्यमें अवमशेष घटिकात्मक रहता है। उसको छोड़ देने से अहर्गण सूर्योदय समय में होता है। अन्यथा तिथ्यन्त काल का ही होता है।

उपपत्ति।

अमान्त में चान्द्र और संक्रान्ति मे सौरमास पूरा होताहै। उन दोनों के मध्य मे जितनी तिथि रहती हैं वे अधिमास शेष तिथि कहलाती हैं। क्योंकि सौर और चान्द्रका अन्तर अधिमास कहलाता है। अहर्गण के साधन में गतमास में चैत्रादिगत चान्द्रमासों को सौर मानकर जोड़ देने से संक्रान्ति तक मास गत होते हैं। फिर उन में गत तिथियों को सौर दिन मानकर जोडने से इष्टदिन तक अहर्गण होता है। परन्तु यह अहर्गण सौरचान्द्रान्तर अर्थात् अधिमास शेष दिनों से अधिक होता है इस लिये घटाना चाहिये। और अधिमास के साधन में अनुपात से लब्ध अधिमास और उस के शेष को सौर दिनों में युक्त करने से चान्द्राह होते हैं। इस स्थितिमें अधिमास शेषदिनों को जोडना प्राप्त होता है और पूर्व घटाना इसलिये 'धनर्णयोरन्तरमेवयोग—, इस नियम से अधिमास शेष को छोड़ दिया।

तिथिकी समाप्तिके बाद जितनी घड़ी मे सूर्योदयहो उस घड़ी को अवमशेष घटिका कहते हैं। क्योंकि चान्द्र और सावन का अन्तर अवम होता है। अनुपात से लब्ध अवम को तिथियों में घटादेने से तिथ्यन्त मे सावनाहर्गण होता है। यदि सूर्योदय में अहर्गण सिद्ध करना हो तो तिथ्यन्त में अवमशेष घटिका जोड़ देने से उदयकाल में होगा। इस प्रकार जोड़ना प्राप्त होता है। परन्तु यहां पर भी 'धनर्णयो —' इस नियम से अवमशेष घटिकाओं को छोड़ दिया तो बस सूर्योदय का अहर्गण होगया। ये सब उपपत्ति बहुत स्फुट हैं। १६–१८॥

अथोदयान्तरकर्मोपपत्तिमाह—

अहर्गणो मध्यमसावनेन
कृतश्चलत्वात्स्फुटसावनस्य।
तद्रुत्थखेग उदयान्तराख्य-
कर्मे द्युनोनयुताः फलेन ॥ १९ ॥
लङ्कोदये स्युर्न कृत।स्तथाद्यै-
र्यतोऽन्तरं तच्चलमल्पकं च।

योऽयमहर्गण आनीतः स मध्यमसावनेनैव। कुतः। स्फुसा-

मध्यममानेन यावत्यमावास्या तदन्ते चान्द्रमासान्तः। मध्यमार्कस्य यस्मिन् दिने संक्रान्तिस्तत्र संक्रान्तिकाले रविमासान्तः। तयो रविचन्द्रमासान्तयोरन्तरे यावत्यस्तिथयः सावयवास्ता अधिमासशेषतिथयः। यतः सौरचान्द्रान्तरमधिमासः। अहर्गणानयने गताब्दा रविगुणास्ते सौरमासा जाताः। अतस्तेषु चैत्रादिचान्द्रतुल्याः सौरा एव मासा योजितास्ते संक्रान्त्यवधयो जातास्तेषु त्रिंशद्गुणेषु गततिथितुल्याः सौरा एव दिवसा योजिताः। अतः सौरचान्द्रान्तरेणाधिका जातास्तदन्तरमधिमासशेषदिनानि भवन्ति। सौरचान्द्रान्तरत्वात्। अतोऽधिमासशेषदिनान्येभ्यः शोध्यानि। अथ चाधिमासानयनेऽनुपातलब्धैरधिमासैर्दिनीकृतैस्तच्छेषदिनैश्चयुक्ताः सौराहाश्चान्द्राहा भवितुमर्हन्ति। एवमत्राधिमासशेषदिनानि क्षेप्याणि। तत्र शोध्यानि। अतः कारणादधिमासशेषं त्यक्तम्। अथावमशेषत्यागकारणमुच्यते। तिथ्यन्तानन्तरं यावतीभिर्घटीभिः सूर्योदयस्ता अवमशेषघटिकाः। यतश्चान्द्रसावनान्तरमवमानि। यद्यवमशेषं न त्यज्यते लब्धावमैरवमशेषघटिकाभिश्च तिथय ऊनी क्रियन्ते तदा तिथ्यन्ते सावनोऽहर्गणो भवति। अथच सूर्योदयावधिः साध्यः। तिथ्यन्ताहर्गणोऽवमशेषघटीभिर्युक्तः सन्नुदयावधिर्भवति। अतोऽवमशेषे त्यक्ते स्वतः सूर्योदयावधिर्भवति।

भाषाभाष्य।

अमान्त तक चान्द्र और संक्रान्ति तक सौर मास होता है। इसलिये अमान्त के आगे रवि संक्रान्ति कालतक अधिमासशेष रहता है। दर्शान्तके बाद जितनी तिथि बीती हैं उनको सौर मानकर सौरदिन उनमें जोड़ देने से यह चान्द्रदिन समूह अधिशेष दिनोंसे अधिक होजाता है इसलिये अधिमास शेषको छोड़ दिया

नाक्षत्र ६० घड़ीमें जोड़ ने से स्पष्ट सावनकाल होता है। अब क्रान्तिवृत्त के तिरश्चीन होने से उसके टुकड़े समानकाल में उदित नहीं होते, इसलिये विषुवद्वृत्तका मध्यमगति कलोत्पन्नासु चिह्न जब क्षितिज में लगैगा उस समय मध्यम गति कलातुल्यासु चिह्न नहीं लगता। किंतु उन चिह्नों का जो अन्तर है उसके तुल्य क्षितिज से नीचे रहता है और कभी ऊपर। इसी कारण मध्यम सावनाहर्गण से जो ग्रह सिद्ध होते हैं वे ठीक क्षितिज के नहीं होते, किन्तु उक्त अन्तर से अन्तरित रहते हैं यही अन्तर उदयान्तर है अर्थात् मध्यम और स्पष्ट सावनों का अन्तर काल है। इसलिये मध्यम सावन से सिद्ध ग्रहों में उनको ठीक क्षितिजस्थ करने के लिये उदयान्तर-संस्कार आवश्यक हुआ। केवल रविवर्षान्त में मध्यम और स्पष्ट सावन तुल्य होते हैं, इसलिये वहां उक्त संस्कार का अभाव होता है। परन्तु फिर अन्तर पड़ता है। यों पदादि में आरम्भ, उन के मध्य में परम और अन्त में शून्य होता है। इस प्रकार चारो चरणों में अभाव होने से वर्ष में चारदफा शून्य होता है। इस संस्कार के विनाही ब्रह्मगुप्त ने जो 'लङ्कासमयाम्योत्तररेखायां भास्करोदये मध्या.' मध्यमाधिकार ३४ यह लिखा है वह असङ्गत है॥

अथोदयान्तरमाह—

मध्यार्कभुक्ता असवो निरक्षे
ये ये च मध्यार्ककलासमानाः॥ २०॥
तदन्तरं यत्स्फुटमध्ययोस्तद्-
द्युपिण्डयोः स्याद्विवरं गतिघ्नम्।
हृतं द्युरात्रासुभिरासलिप्ता-
हीना ग्रहाश्चेदसवोऽल्पकाः स्युः॥ २१॥
तदन्यथाढ्यास्तु निजोदयैश्चे-
द्भुक्तासुपूर्वं विहितं तदानीम्।
कृतं तथा स्याच्चरकर्ममिश्रं
कर्म ग्रहाणामुदयान्तराख्यम्॥ २२॥

वनस्य चलत्वात्। तथाविधेनानुपातेन स्फुटो नायातीत्यर्थः युगादेरारभ्य वर्तमानरविवर्षादेः प्राग्यावान् मध्यमसावनस्तावानेव स्फुटसावनः स्यात्। किंतु रविवर्षादेरूर्द्ध्वं यावान् मध्यमसावन-रतावान्न स्फुटः। अतस्तदुत्थखेटा उदयान्तराख्यकर्मोद्भवेन फलेनोनयुताः सन्तो लङ्कोदये स्युर्नान्यथा। लङ्कायां भास्करोदये मध्या इति यदन्यैरुक्तं तदसत्।

प्रभा।

स्फुटसावनस्य चलत्वात्प्रतिक्षणमन्यादृशत्वादहर्गणो मध्यमसावनेन कृतः। तदुत्थखेटा मध्यमाहर्गणोत्पादितग्रहा उदयान्तराख्यकर्मोद्भवेन फलेनोनयुताः सन्तो लङ्कोदये स्युर्नान्यथा। उदयान्तरसंस्कारमन्तरा लङ्कायां भास्करोदये मध्या न भवन्तीत्याचार्याभिमतम्। तथाचैः पूर्वाचार्यैर्न कृतम्। यतस्तदुदयान्तराख्यकर्मान्तरं चलमस्थिरमल्पकं चेत्युपेक्षितमिति भावः।

भाषाभाष्य।

स्पष्टसावन के प्रतिक्षण भिन्न होने से अहर्गण मध्यम सावन से किया गया है। इसलिये अहर्गण से साधित ग्रहों में उदयान्तर संस्कार करने से वे ठीक लङ्कोदय में मध्यम होते हैं, अन्यथा नहीं। पूर्वाचार्यों ने इस उदयान्तर संस्कार को अस्थिर और स्वल्प होने से ग्रहों में नहीं किया है।

उपपत्ति।

स्पष्ट सावन के प्रतिक्षण भिन्न होने से अहर्गण का साधन मध्यम सावन से हुआ है। इसलिये मध्यम अहर्गण से सिद्ध किये ग्रह ठीक सूर्योदय काल में नहीं होते। कभी सूर्योदय के पूर्व और कभी पीछे होते हैं। संपात से क्रान्तिवृत्त में मध्यम सूर्य के प्रदेशतक जितनी कला होती हैं उन को त्रिज्यार्ध मान एक वृत्त करने पर वह नाड़ी वृत्त के जिस चिह्न पर संपात करै वहां से संपात नाड़ी वृत्त में मध्यमगतिकलातुल्यासु होते हैं। इन को नाक्षत्र ६० घड़ी जोड़ने से रवि का मध्यम सावनकाल होता है। ऐसे ही सायन मध्यम सूर्य जो क्रान्तिवृत्त में प्रदेश है उस पर ध्रुव प्रोतवृत्त करने से वह जहां नाड़ी संपात करै उस बिन्दु से संपात तक मध्यम गति कलोत्पन्नासु होते हैं। इन

भाषाभाष्य।

निरक्षदेश में मध्यार्कभुक्तासु और मध्यार्ककलातुल्यासुओं का अन्तर स्पष्ट और मध्यम अहर्गण का अन्तर है। उस अन्तर को गति से गुणकर अहोरात्रासु का भाग देने से लब्धफल को असुवों के न्यून होनेपर ग्रहमें घटादेना अन्यथा जोड़देना अर्थात् विषमपद में फल ऋण और समपद में धन करना। इसप्रकार मध्यार्कभुक्तासु सिद्ध होते हैं। यदि स्वदेशोदय से मध्यार्कभुक्तासु सिद्ध करके यह उदयान्तर कर्म कियाजाय तो ग्रहों में चर संस्कार स्वतः होजाता है।

उपपत्ति।

पूर्व श्लोकमें उदयान्तर-संस्कार का कारण बतलाकर अब उसका साधन प्रकार बतलाते हैं।

मेषादि से लेकर सायन सूर्यकी जो भुक्तराशि हों उनके निरक्षदेशीय उदयोंका योग करना। और जिस वर्तमान राशिके भुक्त अंशहों उनको भी उस राशिसम्बन्धि उदयासुओं से गुणकर और उसमें तीस का भाग देकर जो असु मिलें। उनको भी निरक्षदेशीय उदयों के योगमें जोड़देना। इसप्रकार मध्यार्कभुक्तासु सिद्ध होंगे। इतने असुओं के समान, कालमें नाक्षत्रदिन के अन्तर लङ्कामें मध्यम सूर्य होता है। परन्तु अहर्गण से जो ग्रह सिद्धहुए हैं वे मध्यार्ककला के समान असु कालमें नाक्षत्रदिन के अनन्तर के हैं। इसलिये मध्यार्कभुक्तासु और मध्यार्ककलातुल्यासुओं का जो अन्तर है वही स्पष्ट मध्यम अहर्गणों का अन्तर है। वही सूर्योदयों का अन्तर है। वही उदयान्तर है। वही उसके साधन के लिये अनुपात किया:—

$$\text{अहोरासुः गतिक : : अन्तरासुः} = \frac{\text{गतिक} \times \text{अन्तरासु}}{\text{अहोरासु}} = \text{उदयान्तर}$$ । यह

फल, यदि कलासे असु अधिक हों अर्थात् समपद में, ग्रह में धन करना चाहिये। और यदि असुओं से कला अधिकहो अर्थात् विषमपद में ऋण करना चाहिये। यहांपर यदि स्वदेशोदय से मध्यार्क के भुक्तासु सिद्ध कियेजायँ तब ग्रहों में चर संस्कार स्वयं होजाता है। और यदि स्पष्टसूर्य के भुक्तासु ग्रहणकिये जायँ, तब उदयान्तर-भुजान्तर-चर ये तीनों संस्कार स्वतः होजाते हैं। यह उदयान्तर-संस्कार † स्वल्पान्तर होने से ग्रहों में पूर्वाचार्यों ने नहीं किया, यह आचार्यका कथन है। २०-२२।

---

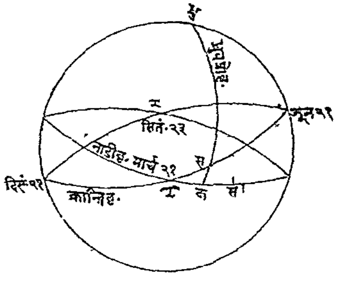
† इस उदयान्तर-संस्कार को अंग्रेजी गोलग्रन्थों में इक्वेशन आफ् टाइमस (Equation of time) के नाम से लिखा है। इसका अर्थ कालसमीकरण है। युरोपियन रीति के अनुसार इसका उपपादन संक्षेप से इसप्रकार है —

सायनांशेन रविणा मेषादेरारभ्य ये भुक्ता राशयस्तत्सम्बन्धिनो ये निरक्षोदयासवो गगनभूगपट्कचन्द्रा १६७० इत्यादयस्तेषामैक्यं कृत्वा भुज्यमानराशेर्ये भुक्ता भागास्तांस्तदुदयासुभिः संगुण्य त्रिंशता ३० विभज्य लब्धासवोऽपि तत्र क्षेप्याः। एवं मध्यार्कभुक्तासवः स्युः। भदिनान्तादूर्ध्वं तावत्यस्वात्मके काले लङ्कायां मध्यमार्कस्योदयः। तत्कालेहि ग्रहाः साध्याः। अथ चाहर्गणेन ये सिद्धास्ते मध्यमार्ककलामितेऽस्वात्मके काले भदिनान्तादूर्ध्वं जाताः। अतोऽसूनां कलानां च यदन्तरं तेनार्कोदयोऽन्तरितः। अतस्तदुदयान्तराख्यं कर्मोच्यते। तैरन्तरासुभिर्ग्रहगतिं संगुण्यार्कसावनाहोरात्रासुभि २१६५९ विभज्य लब्धकला ग्रहे ऋणं कार्याः। यदि कलाभ्योऽसवोऽल्पकाः स्युः। अन्यथा धनम्। यदि तु स्वदेशोदयैर्मध्यमार्कभुक्तासूनानीयेदं कर्म कृतं तदौदयिकानां ग्रहाणां चरकर्मापि कृतं स्यात्। यदि तु स्फुटार्कभुक्तानसून् स्वोदयासुभिरानीयेदं कर्म कृतं तदोदयान्तरभुजान्तरचरकर्माणि त्रीण्यपि कृतानि स्युः। तर्हि कथमिदमुदयान्तराख्यं कर्माद्यैर्न कृतं तदाह। यतोऽन्तरं तन्नलमल्पकं च। वर्षचरणान्तेषु चतुर्ष्वप्यन्तराभावः। तन्मध्येष्वन्तरस्य वृद्धिक्षयौ।

प्रभा।

निरक्षे ये मध्यार्कभुक्ता असवः येच मध्यार्ककलातुल्यासवस्तेषां यदन्तरं तत्स्फुटमध्ययोर्युपिण्डयोरहर्गणयोर्विवरमन्तरं स्यात्। तद्गतिघ्नं धुरात्रासुभिर्हृतं विभक्तं विधेयम्। आप्तलिप्ताभ्यो ग्रहाहीनाः कार्याः। यदि असवोल्पकाः। यद्यधिकास्तदा आढ्याः कार्याः। शेषं स्फुटमेव।

क्षेत्र,



अब इसक्षेत्र में कल्पना किया स्पष्ट सूर्य 'स' है। तब उसका चरकाल T क होगा, क्योंकि ध्रुव-प्रोतवृत्त नाड़ीवृत्तपर लम्बरूप है, इसलिये क चिन्ह से सपात T तक नाड़ीवृत्त में सूर्यका चरकाल ही होगा। सं मध्यम सूर्य है, अर्थात् T सं नाडी वृत्तगत मध्यम सूर्य है। 'क' नाडी वृत्त म स्पष्ट सूर्य स्थान है। T स क गालीय त्रिभुज में, T स कर्ण होने से T क से अधिक है। इसलिये स्पष्ट सूर्य T क, मध्यम T सं से पश्चिम होने से प्रतिदिन पहिलेही उदय को प्राप्त होगा। क्योंकि पलभाकाल घड़ी काल स तेज है। इससे यह काल समीकरण का भाग ऋण होगा। इसका परममान—१ °कला होगा। इसीप्रकार यह निश्चित होता है कि अयनान्त स सपात बिंदुतक पलभाकाल घड़ीकाल से मंद होने से, कालसमीकरण का भाग धन होगा। उसका भाग परम +१ ° कला होगा।

अब (१) कारण='क' और (२) कारण='य' कल्पना करने से ऊपर जो लिखागया है उसका साराश या हुआ —

(१) 'क' मानका वर्ष में सूर्य के नीचस्थान और उच्चस्थान मे अभाव होता है। अर्थात् २१ दिसम्बर और १ जुलाई को। और परम धनमान + ७ कला मार्च मास के अंतसे— ७ कला सितम्बर क अन्ततक बदलता ह।

(२) 'य' मानका वर्ष मे चार दफा अभाव होता है। दोनों सपातों में और दोनों अयनान्ता में। सपात से अयनान्त तक 'य' ऋण और अयनान्त से सपात तक धन होता है। और धन + १ ° कला अपने परममान मे—१० तक बदलता है।

(३) क और य का योग वा अन्तर, उनके एक वा विपरीत राशियों के अनुसार, करने से, काल-समीकरण का भाग सिद्ध होता है। इसप्रकार क और य का बीजगणितानुसार जो योग होगा वही काल-समीकरण होगा। य' का परममान यह है —

कालसमीकरण स्पष्ट और मध्यमकाल का अंतररूप होता है। जब स्पष्टकाल से मध्यमकाल अधिक होता है उस समय अंतर धन होता है। और जब मध्यमकाल से स्पष्ट अधिक होता है तब दोनों का अन्तर ऋण होता है। पलभायन्त्र से जो कालज्ञान होता है वह स्पष्ट और जेबघड़ी (watch) से जो कालज्ञान होता है वह मध्यम होता है। इसलिये यदि इनदोनों के कालों का अन्तर कियाजाय तब वहभी कालसमीकरण रूप है।

इसप्रकार, (मध्यमकाल) ± (स्पष्टकाल)=कालसमीकरण।
अथवा, (घड़ीकाल) ± (पलभाकाल)=कालसमीकरण।

स्पष्ट सूर्य क्रांतिवृत्त में भ्रमण करता है और मध्यम सूर्य ५९'। ८" इसगति से नाडीवृत्त में भ्रमण करता है। परन्तु क्रान्तिवृत्त में स्पष्टसूर्य की गति बदला करती है और नाडीवृत्त में एकाकार रहती है। इसलिये यह प्रतीत होता है कि कालसमीकरण दो कारण से उत्पन्न होता है।

(१) भूकक्षावृत्त के उत्केन्द्र से, क्रांतिवृत्त में सूर्यकी अतुल्यगति।

(२) परमक्रांति।

अब प्रथम इनदोनों कारणों का अलग अलग विचार करके फिर इनकी संयोगशक्ति से, वर्ष में कालसमीकरण कब परम और कब उसका अभाव होता है, इसका विचार कियाजायगा।

(१) केपलर के दूसरे नियम से यह सिद्ध हुआ है कि जब पृथ्वी अपने अक्षमें भ्रमण करतीहुई सूर्यके पास अर्थात् उसके नीचस्थान में पहुंचती है, तब उसका वेग बहुत होजाता है। यह प्राय: ३१ दिसम्बर को पहुंचा करती है। इसलिये पृथ्वी जिसगति के नियम से क्रांतिवृत्त में भ्रमण किया करती है वह गति उससमय में बहुत बढ़जाती है। पृथ्वी अपने अक्षमें पश्चिम से पूर्वको घूमती है, इस भ्रमण से स्पष्ट सावन दिन मध्यम सावनदिन से बड़ा होगा। और रविनीचस्थान में पृथ्वी के पहुंचने पर अर्थात् ३१ दिसम्बर को यदि पलभा और घड़ीको एक साथ ही चला दियाजाय तब स्पष्टकाल मध्यमकाल के अंतर्गत होता है। यह स्पष्टकाल की घटती प्राय: तीनमासतक होती है, जबतक कि पृथ्वीकी स्पष्ट और मध्यमगति समान न होजाय अर्थात् वह पदान्त को न पहुंचे। इसप्रकार पृथ्वी की अतुल्यगति से जो कालसमीकरण का भाग उत्पन्न होता है, वह मार्च मासतक परम होकर प्राय धन ७' कला, व मिनट होता है। उसके बाद फिर पलभाकाल घड़ीकाल से बढ़ता है और गत तीनमास में जितना कम था, वह पृथ्वी के उच्चमें पहुंचने पर पूरा पड़कर फिर मध्यम और स्पष्टकाल समान होजाते हैं। यह प्राय १ जुलाई को होजाता है। उस समय, पृथ्वी की अतुल्यगति से जो कालसमीकरण उत्पन्न होता है उसका अभाव होजाता है।

इसी प्रकार देखने में आता है कि उक्त रवि उच्च से उसके नीचस्थानतक कालसमीकरण अपने परमप्रमान ऋण ७' कला सितम्बर के अन्ततक होता है।

(२) क्रान्ति के वशसे चर में सदा अंतर पड़ा करताहै। कल्पना किया, नीचे लिखे चित्रमें, 'स' स्पष्टसूर्य और 'स'' मध्यम सूर्य है। वे दोनों सायन मेषादि से स्पष्टक्रान्तिवृत्त और मध्यम नाडीवृत्त में चले और सायनतुलामें जाकर दोनों एक होगये। उस समय चरका अभाव हुआ। और दोनों अयनों में चर परमहुआ। अर्थात् सायन मेषादि और सायनतुलादि में और कर्कादि मकरादि में क्रम से क्रांति शून्य और परम उत्तर वा दक्षिण होने से चरभी शून्य और परम हुआ। इन चार स्थानों में क्रान्तिके वशमें जो कालसमीकरण का भाग उत्पन्न होता है, वह शून्य होता है। इसप्रकार वर्षमें चारबार उसका अभाव सिद्ध हुआ।

भाषाभाष्य।

जो ग्रह उदयान्तर के संस्कार से लङ्कोदयकाल के सिद्ध होते हैं वे देशान्तर संस्कार से निज देश के उदयकालिक सिद्ध हो जाते हैं। देशान्तर दो प्रकार का है। एक पूर्वापर। दूसरा दक्षिणोत्तर जिसे चर कहते हैं।

तत्र तावत्पूर्वापरमाह—

यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः।
आदौ प्रागुदयोऽपरत्रविषये पश्चाद्धि रेखोदयात्
स्यात्तस्मात्क्रियते तदन्तरभवं खेटेष्वृणं स्वं फलम् ॥ २४ ॥

लङ्काया मेरुपर्यन्तं नीयमाना रेखोज्जयिनी कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशन्ती याति सा मध्यरेखेत्युच्यते। रेखायां यदार्कोदयस्तत्कालात् पूर्वमेव पूर्वदेशे भवति। रेखोदयकालादनन्तरं पश्चिमदेशेऽर्कोदयः। तदन्तरकालस्तदन्तरयोजनैः स्पष्टभूवेष्टनादनुपातेन ज्ञायते। यदि स्फुटपरिधियोजनैः षष्टिघटिका लभ्यन्ते तदा रेखा स्वपुरयोरन्तरयोजनैः किमितीति त्रैराशिकेन देशान्तरघटिका लभ्यन्ते। मध्यगत्याथचानीता नाड्यस्ताभिरनुपातः। यदि घटीषष्ट्या ग्रहस्य गतिकला लभ्यन्ते तदा देशान्तरघटीभिः किमिति। अथवा योजनैरेवानुपातः। स्फुटपरिधियोजनैर्गतिः प्राप्यते तदा देशान्तरयोजनैः किमिति। फलं कलाः प्रागृणं यतस्तत्रादावुदयः। पश्चाद्धनम्। यतस्तत्र रेखोदयादनन्तरमर्कोदय इत्युपपन्नम्।

इदानीं देशान्तरस्वरूपमाह—

येऽनेन लङ्कोदयकालिकास्ते
देशान्तरेण स्वपुरोदये स्युः ।
देशान्तरं प्रागपरं तथान्यद
याम्योत्तरं तच्चरसंज्ञमुक्तम् ॥ २३ ॥

य उदयान्तरकर्मणा लङ्कायामौदयिका ग्रहाजातास्ते देशान्तरकर्मणा स्वपुरोदयिकाः स्युः । तच्च देशान्तरं द्विविधम् । एकं पूर्वापरमन्यद्याम्योत्तरम् । तच्चरसंज्ञमुक्तम् ।

प्रभा ।

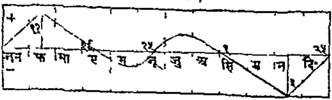
ये ग्रहा अनेनोदयान्तरसंस्कारेण लङ्कोदयकालिका जातास्ते हि देशान्तरसंस्कारेण संस्कृताः स्वपुरोदये स्यु : ।

+१०′, – १०′, +१०′, —१०′,

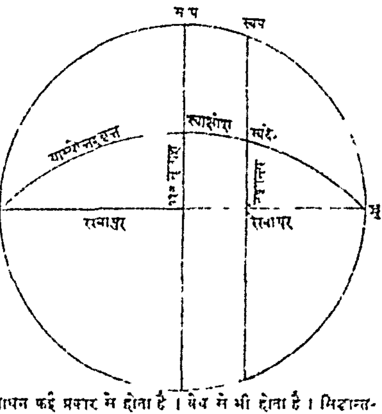
यह क्रम से , फरवरी , मे , अगस्त और नवम्बर में होता है । और 'क' का मान ±७′ से कभी अधिक नहीं होसक्ता । इसलिये यह सिद्ध होता है कि ऊपर लिखे महीनों में कालसमीकरण (क+य) उसी राशिसम्बधि होगा जिस राशिसम्बधि 'य' है । चाहे 'क' का मान ऋण हो अथवा धन ।

वर्ष में कालसमीकरण के अभाव के दिन यह हैं—प्राग १६ एप्रिल १५ जून, १ सितम्बर और २५ दिसम्बर । और परम धन फल १४′ । २८″ इतना ११ फरवरी को और परम ऋणफल १६′ २१″, ३ नवम्बर को हुआ करता है । यह उक्त दोनों फलों के योग से संयुक्त फल है । यह बात क्षेत्र में इसप्रकार स्पष्ट प्रतीत होती है —

क्षेत्र,



इस क्षेत्र में जो मध्य में सीधीरेखा है उस में कालसमीकरण का अभाव दिखलाया गया है और उस रेखा से जो चापाकार क्षेत्र का दो स्थान में लम्ब रेखा से अन्तर दिखलाया है वह नियत दिनों में धन ऋण फल है । यह विषय अति मनन है । उपयोगी होने से, संक्षेप में यहां लिखा गया है ।



देशान्तर का साधन कई प्रकार से होता है । वेध से भी होता है । सिद्धान्ततत्त्वविवेक में कमलाकरभट्टने सूत्रांश साधन करके देशान्तर निकाला है । निरक्षरेखा में रोमकपत्तन से ९० अंश पर स्वालयास्त नगर की कल्पना की है । उस का और रेखापुर का मध्यपरिधिगत अन्तर ११ सिद्ध किया है । इसीको सूत्रांश कहते हैं । इसप्रकार रेखापुर और स्वदेशके सूत्रांशोंको सिद्धकरके अनुपात किया—

६० : गस :: सूत्रा :

अथवा—

$$३६० : ३६०० :: सू : \frac{३६०० \times सू}{३६०} = १० \times सू = देशा-$$

न्तरकला । इसप्रकार 'निघ्नी सु दशाग्रसूत्रं' उत्पन्न होता है । (देखो तत्त्व विवेक, मध्यमाधिकार) । २४ ॥

प्रभा।

रेखोदयादादौ पूर्वदेशे प्रागुदयः। अपरत्र पश्चिमदेशे तु पश्चादिति देशान्तरं प्रागृणं पश्चाद्धनं क्रियत इत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

लङ्का से मेरुतक कुरुक्षेत्र, उज्जयिनी—आदि देशों में होती हुई जो रेखा है उस को भूमि की मध्यरेखा कहते हैं। रेखापुर से पूर्व देशों में प्रथम सूर्योदय और पश्चिम में पीछे से होता है। इसलिये देशान्तर संस्कार पूर्व में ऋण पश्चिम में धन किया जाता है।

उपपत्ति।

रेखापुर में जब सूर्योदय होगा उस समय से पहिले ही उस के पूर्ववर्ति देशों में सूर्योदय होगा। और रेखोदय के बाद में पश्चिमवर्ति देशों मे होगा। मध्य रेखा और स्वदेशान्तर स्पष्ट भूपरिधि में योजनात्मक होता है उसी को देशान्तर योजन कहते हैं। रेखोदय काल के कितने काल पूर्व या पश्चात् स्वदेश सूर्योदय होगा, उसके साधनार्थ अनुपात—

स्पपयो : ६० :: देयो : फल रेखापुर और स्वपुर के सूर्योदय घटिकाओं का अन्तर होगा। इसी को देशान्तर घटिका कहते हैं। यह लङ्कासे पूर्व किंवा पश्चिम मे, तात्कालिक भुजांश के समान है।

अथवा प्रकारान्तर से अनुपात—

६० : गक : देघ : इस प्रकार कलात्मक फल को ग्रहों में संस्कार करने से स्वदेशोदय के होते हैं। अथवा एकही अनुपात से साधन किया—

स्पपयो : गक :: देयो :

इस प्रकार फल समान आता है। क्षेत्र स्थिति यों है।

उपपत्ति।

निरक्षदेश और स्वदेश का अन्तर योजन अक्षांश के समान है। उस को ९०
में घटा देने से लम्बांश रहते हैं। वह स्वदेश और मेरु का योजनात्मक अन्तर
है। मेरु को केन्द्र मानकर ९० से जो वृत्त होगा वह निरक्षदेश में होकर
जायगा, उसी को मध्यमपरिधि कहते हैं। और जो वृत्त लम्बज्या तुल्य व्यासार्ध
से बनेगा वह स्पष्टपरिधि स्वदेश की होगी। यह परिधि मध्यमपरिधिके समा-
नान्तर होती है और उस से छोटी होती है। यहा पर मध्यमपरिधि से स्वदेशीय
स्पष्टपरिधि का साधन करते हैं—

त्रि : मप :: ल ज्या : $\frac{\text{मप}\times\text{लज्या}}{\text{त्रि}}$ =स्पष्टपरिधि ॥ २५ ॥

मध्यगतिवासना समाप्तहुई।

इदानीं गोलंविवक्षुरादौ ज्योत्पत्तिकथने कारणमाह—

पटो यथा तन्तुभिरूर्ध्वतिर्य-
ग्गपैर्निबद्धोऽत्र तथैव गोलः।
दोःकोटिजीवाभिरमुं प्रवक्तुं
ज्योत्पत्तिमेव प्रथमं प्रवक्ष्ये॥ १ ॥

स्पष्टम्।

प्रभा।

यथा ऊर्ध्वतिर्यग्गपैस्तन्तुभिः सूत्रैःपटो वस्त्रं निबद्धो भवति तथैवात्र
गोलोऽप्यूर्ध्वाधो दोःकोटिजीवाभिर्निबद्धः। अमुं गोलं प्रवक्तुमाख्यातुं
प्रथमं गोलारम्भइत्यर्थः। ज्योत्पत्तिमेव प्रवक्ष्ये व्याकरोमि।

भाषाभाष्य।

जैसे खड़े बेंडे सूत्रों के सयोग से वस्त्र बुना हुआ होताहै उसी प्रकार यह गोल
भी भुजज्या कोटिज्याओं से वेष्टित है इसलिये पहिले इस गोल को स्वरूपज्ञानार्थ
ज्योत्पत्ति का निरूपण करताहू॥ १ ॥

इदानीं भूगोले स्फुटपरिधिप्रदेशं स्फुटतानुपातं चाह—

स्वदेशमेर्वन्तरयोजनैर्य-
　　ल्लम्बांशजैर्मेरुगिरेः समन्तात्।
वृत्तं स्फुटो भूपरिधिर्यतः स्यात्
　　त्रिज्याहृतो लम्बगुणः कृतोऽस्मात्॥ २५॥

स्वपुरस्य मेरुगर्भस्य चान्तरे यावन्ति योजनानि तावन्ति लम्बांशजानि। यतो निरक्षदेशस्वपुरान्तरयोजनान्यक्षांशजानि। भागेभ्यो योजनानि च व्यस्तमित्युपपद्यत इत्यर्थः। तैर्लम्बांशजैर्योजनैर्मेरुगिरेः समन्ताद्यद्वृत्तमुत्पद्यते स स्फुटो भूपरिधिः। यो मध्यपरिधिः पठितः स निरक्षदेशोपरि। अयं तु स्वपुरोपरि। अतः किंचिन्न्यूनो भवति। अथ तदानयनम्। मध्यमपरिधेरर्धार्धं त्रिज्यातुल्यं व्यासार्धं प्रकल्प्य तस्मिन् व्यासार्धे स्वपुरे यावती लम्बज्या तावत् स्फुटपरिधेर्व्यासार्धं भवितुमर्हति। अतस्तेन त्रैराशिकम्। यदि त्रिज्याव्यासार्धे मध्यमः परिधिर्लभ्यते तदा लम्बज्या मिते क इति। फलं स्फुटपरिधिरित्युपपन्नम्।

इति गोलभाष्ये मध्यगतिवासना। अत्र ग्रन्थसंख्या १७५।

प्रभा।

स्वदेशस्य मेरोश्च यान्यन्तरयोजनानि तैर्लम्बांशजैर्लम्बांशोत्पन्नैर्मेरुगिरेः समन्ताद् यद्वृत्तं स स्फुटो भूपरिधिः।

इति प्रभायां मध्यगतिवासना।

भाषाभाष्य।

स्वदेश और मेरु का जो लम्बांश तुल्य अन्तर योजन है उस व्यासार्ध से मेरुगिरि के चारों तरफ जो वृत्त होगा उस को स्पष्टपरिधि कहते हैं। इसलिये उस को लम्बज्या से गुणकर त्रिज्या का भाग दिया है।

मताङ्गुलेन सूत्रेण वृत्तं विलिख्य दिगाङ्कितं चक्रांशकैश्चाङ्कितं कृत्वा तत्रैकस्मिन्नेकस्मिन् वृत्तचतुर्थांशे नवतिर्नवतिर्भागा भवन्ति । ततो यावन्ति ज्यार्धानि कार्याणि तावद्भिर्विभागैरेकैकं वृत्तचतुर्थांशं विभज्य तत्र चिह्नानि कार्याणि । तद्यथा। यत्र चतुर्विंशतिर्जीवाः साध्यास्तत्र चतुर्विंशतिर्भवन्ति । एवं द्वितीयचतुर्थांशेऽपि । ततो दिक्चिह्नादुभयतश्चिह्नद्वयोपरिगतं सूत्रं ज्यारूपं भवति । एवं चतुर्विंशतिर्ज्या भवन्ति । तासामर्धानि ज्यार्धानि । तत्प्रमाणान्यङ्गुलैर्मित्वा ग्राह्याणि ।

अथादितो व्याख्यायते । येष्टा त्रिज्या स कर्णः कल्प्यः । या भुजज्या सभुजस्तयोः कर्णभुजयोर्वर्गान्तरपदं कोटिः । कोटिज्येत्यर्थः । तत्र ये भुजकोटिज्ये ते भुजकोट्यंशानां क्रमज्ये ज्ञातव्ये । भुजज्या त्रिज्यातो यावद्विशोध्यते तावत् कोट्यंशानामुत्क्रमज्यावशिष्यते । एवं कोटिज्योना त्रिज्या भुजांशानामुत्क्रम ज्यास्यात् ।

अथोत्क्रमज्यास्थानं दर्शयति । तत्र पूर्वलिखिते वृत्ते चिह्नयोरुपरिगतं सूत्रं किल ज्या । तदुपरि तयोश्चिह्नयोर्मध्ये यद्वृत्तखण्डं तच्चापं धनुः । चापमध्यस्य ज्यामध्यस्य च यदन्तरं बाणाकारं सोत्क्रमज्येत्युच्यते । त्रिभमौर्विकाया इत्यग्रे सम्बन्धः ।

एवं साधारण्येन ज्याक्षेत्रं दर्शयित्वाथ निर्दिष्टांशानां गणितेन ज्यानयनम् । त्रिभमौर्विकाया यद्वर्गार्धस्य मूलं सा पञ्चचत्वारिंशदंशानां ज्या स्यात् । तस्या यावत्कोटिज्या साध्यते तावत् तावत्येव भवति । यतस्तत्रकोट्यंशा अपि पञ्चचत्वारिंशत् ।

अत्रोपपत्तिः । त्रिज्याभुजस्त्रिज्या च कोटिस्तयोर्वर्गयोगपदं कृतान्तः समचतुरस्रस्य भुजःस्यात् । सैव नवतिभागानां ज्या ।

इदानीं जीवाक्षेत्रसंस्थानं तावदाह—

इष्टा त्रिज्या सा श्रुतिर्दोर्भुजज्या
कोटिज्या तद्वर्गविश्लेषमूलम् ।
दोःकोट्यंशानां क्रमज्ये पृथक् ते
त्रिज्याशुद्धे कोटिदोरुत्क्रमज्ये ॥ २ ॥

ज्याचापमध्ये खलु बाणरूपा
स्यादुत्क्रमज्या त्रिभमौर्विकायाः ।
वर्गार्धमूलं शरखेदभाग-
जीवा ततः कोटिगुणोऽपि तद्वत् ॥ ३ ॥

त्रिभज्यकार्धं खगुणांशजीवा
तत्कोटिजीवा खरसांशकानाम् ।
क्रमोत्क्रमज्या कृतियोगमूला-
र्धं तदर्धांशकशिञ्जिनी स्यात् ॥ ४ ॥

त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेर्दलस्य
मूलं तदर्धांशकशिञ्जिनी वा ।
तस्याः पुनस्तद्दलभागकानां
कोटेश्च कोट्यंशदलस्य चैवम् ॥ ५ ॥

एवं त्रिपञ्चसूर्यजिनादिसंख्या
अभीष्टजीवाः सुधिया विधेयाः ।
त्रिज्योत्थवृत्ते भगणाङ्किते वा
ग्राह्या अभीष्टा विगणय्य जीवाः ॥ ६ ॥

अत्र त्रिज्योत्थवृत्ते भगणाङ्किते वेत्येतदन्त्यवृत्तस्योत्तरार्धमादौ व्याख्यायते। ज्योत्पत्तावभीष्टा त्रिज्या कल्प्य ते समायाभूमौ त्रिज्या

तत्राष्टमात् तदर्धांशकशिञ्जिनी चतुर्थम् ४ । तत्कोटिज्याविंशम् २० । एवं चतुर्थाद्द्वितीयम् २ । द्वाविंशं च २२ । द्वितीयात् प्रथमं १ त्रयोविंशं च २३ । एवं दशमचतुर्दशपञ्चमैकोनविंश-सप्तमसप्तदशैकादशत्रयोदशानीत्यष्टमात् १० । १४ । ५ । १९ । ७ । १७ । ११ । १३ । अथ द्वादशात् पष्ठाष्टादशतृतीयैकविंश-नवमपञ्चदशानि ६ । १८ । ३ । २१ । ९ । १५ । त्रिज्या चतुर्विंशमिति २४ । अतोऽवशिष्टां ज्योत्पत्तिमग्रे वक्ष्यामः ।

प्रभा ।

इष्टत्रिज्येत्यादयः श्लोका आचार्येण समासतो व्याख्याताः । विशेषः क्षेत्रस्थितौ व्यक्तीकरिष्यते ।

भाषाभाष्य ।

इष्ट त्रिज्याकर्ण भुजज्या भुज और दोनों का वर्गान्तर मूल कोटिज्या होती है। भुजांश और कोटयंशकी क्रमज्याओं को त्रिज्या में घटाने से कोटिज्या और भुज-ज्याकी उत्क्रमज्या होती है । ज्या और चाप के बीचमें बाणरूप खड़ी रेखा को उत्क्रमज्या कहते हैं । त्रिज्यावर्ग के अर्धका मूल ४५ की ज्या होती है, उसकी कोटिज्या भी-उतनीही होती है । त्रिज्या का अर्ध ३० की ज्या और उसकी कोटिज्या ६० की होती है। क्रमज्या और उत्क्रमज्याओं के वर्गयोगमूल का अर्ध अर्धांशकी ज्या होती है । अथवा त्रिज्या और उत्क्रमज्या के गुणन के अर्ध का मूल अर्धांशज्याके समान होताहै । इसीप्रकार अर्धांशज्या के भी अर्ध की ज्या और कोटिज्या सिद्ध करना चाहिये । यों ३, ६, १२, २४ आदि इष्टज्याओं को कल्पना करना अथवा त्रिज्यावृत्त बनाकर उसे भगणों से अङ्कित करके इष्टज्याओं को गिनकर जानना चाहिये ।

उपपत्ति ।

किसी निर्दिष्ट चापकी ज्याको भुजज्या कहते हैं वह ९० से न्यून चाप की होती है । उसको ९० घटाने से शेष प. [illegible] कहते हैं । क्योंकि प्रथमपद में भुजज्या बढ़ती है और पदान्त [illegible] और तब

तदर्धं ग्राह्यम्। अतो वर्गयोगस्य चतुर्थांशः कृतः। तदेव त्रिज्या वर्गार्धमतस्तन्मूलं शरवेदभागज्येत्युपपन्नम्।

अथ त्रिंशद्भागानां ज्या त्रिज्यार्धमिता स्यात्। तस्याः कोटिज्या षष्टिभागानां ज्या स्यात्।

अत्रोपपत्तिः। वृत्तान्तः पातिसमषड्स्रस्य भुजो व्यासार्धमितः स्यादिति प्रसिद्धं गणितेऽपि कथितम्। अतस्त्रिज्यार्धं त्रिंशद्भागज्येत्युपपन्नम्।

अतः प्राग्वदुत्क्रमज्या। षष्टिभागज्ययोना त्रिज्या राशेरुत्क्रमज्या। सा कोटिरूपिणी। क्रमज्या भुजरूपिणी। तदग्रयोर्निबद्धसूत्रं तत्कर्णः। तत्त्रिंशद्भागानां ज्यारूपम्। अतस्तदर्धं पञ्चदशभागानां ज्यार्धमित्युपपन्नम्। एवं सर्वत्र तदर्धांशकशिञ्जिनीनामुपपत्तिर्ज्ञेया।

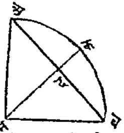
अथ प्रकारान्तरेण तदर्धांशकशिञ्जिनीमाह। त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेरित्यादि।

अस्योपपत्तिः। तत्राद्याक्षरचिह्नैर्बीजप्रकारेण कथ्यते। तत्रोत्क्रमज्योना त्रिज्या किल कोटिज्या। तस्यावर्गोऽयम्। उ व १ ६ त्रिभा २ं त्रिव १। अनेनोना त्रिज्याकृतिर्दोर्ज्याकृतिः स्यात्। उ व १ उत्रिभा २। अयं क्रमज्यावर्ग उत्क्रमज्यावर्गयुतो जातः। उत्रिभा २। अस्य चतुर्थभागः उत्रिभा ½। अस्य मूलं ग्राह्यम्। अत उक्तं त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेरित्यादि। एवं तस्या अप्यन्या तदर्धांशकशिञ्जिनीति। एवं कोटिज्यायाअपि यावदभिमतखण्डानि स्युः। तद्यथा। यत्र चतुर्विंशतिः खण्डानि तत्र राशेर्ज्याष्टमं खण्डम् ८। तत्कोटिज्या षोडशम् १६। शरवेदभागज्या द्वादशम् १२। अस्मात् खण्डत्रयात् कथितप्रकारेण चतुर्विंशतिः खण्डान्युत्पद्यन्ते।

(१) अब चाप=९०° और अ क चाप=४५°

∴ अद=ज्या + $\frac{१}{२}$ अब और मअ या मब=त्रिज्या। इसलिये,

मब²=मअ²+मब²=२ मअ²=२ त्रि²।



∴ अब= $\sqrt{२ त्रि^२}$ और अद=$\frac{१}{२}$ ज्या अब

=$\sqrt{\frac{त्रि^२}{२}}$, अथवा, ज्या ४५°=$\sqrt{\frac{त्रि}{२}}$। इसलिये

'त्रिभमौर्विकायाः, वर्गार्धमूलं शरवेदभागजीवा—'

इत्यादि उपपन्न हुआ।

(२) वृत्तान्तर्गत सम षट्कोण क्षेत्र का भुज व्यासार्ध के तुल्य होताहै यह व्यक्त गणित के क्षेत्र व्यवहार अथवा क्षेत्रमिति के तीसरे अध्याय से सिद्ध है। इसलिये वृत्त ६०° त्रिज्या के तुल्य है ६०° ज्या=त्रि∴ ज्या ३०°=$\frac{१}{२}$त्रि। इससे 'त्रिभज्यकार्धं खगुणांशजीवा—, इत्यादि उपपन्न होता है।

(३) अप एक निर्दिष्ट चापहै। अब चापार्ध है।
अप चाप की ज्या पम और उत्क्रमज्या मअ है। तब,

अप=$\sqrt{पम^२+अम^२}$, और ज्या$\frac{१}{२}$ अप=अन=ज्या अब।

∴ ज्या अब=$\frac{१}{२}$ $\sqrt{पम^२+अम^२}$। इस प्रकार 'क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूला-र्द्धं तदर्धांशकशिञ्जिनी स्यात्' यह उपपन्न हुआ।

(४) कोज्या=त्रि–उज्या।

वर्ग करने से—

त्रि²—२ त्रि×उज्या+ उ²

त्रिज्यावर्ग में घटाने से भुजज्यावर्ग शेषरहा—

२ त्रि×उज्या–उज्या²

∴ ज्या²=२ त्रि×उज्या–उज्या²

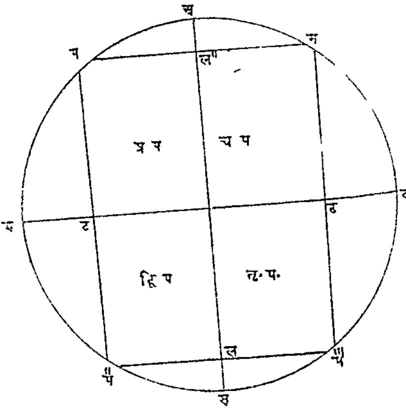
'उज्या²' जोड़ने से—

ज्या²+उज्या²=२ त्रि×उज्या।

१। श्रीपतिने लिखाहै—"क्षेत्रे षडस्ने हृदयाल्पयज्वर्याहो समा गोलविदो वदति।
वृत्ते परीणाहषडंशजीवा विष्कम्भखण्डेन समेत्यतश्च" ॥ १ ॥

कोटिज्या शून्य होती है। इसप्रकार प्रथमपद मे भुजज्याभुज, कोटिज्या कोटि, त्रिज्याकर्ण यह क्षेत्र बनता है । इसीतरह दूसरे पद मे कोटिज्या बढती है और पदान्त में त्रिज्या तुल्य होजाती है। भुजज्या शून्य होती है । ऐसेही फिर तीसरे पद में भुजज्या बढती है चौथे में कोटिज्या। ये सब बातें निम्न लिखित क्षेत्र मे स्पष्ट मालूम पडती हैं।

क्षेत्र



प्रथम पद में अप भुजांश की प ल भुजज्या और उसके प व कोटयंश की पर कोटिज्या अल उत्क्रमज्या और वट कोटयुत्क्रमज्या है ऐसेही द्वितीयपद में अल उत्क्रमज्या, प ल भुजज्या प ट कोटिज्या घट कोटयुत्क्रमज्या है इसीप्रका तीसरे और चौथे पदमें भी जानना।

देखता किन्तु अलग देखता है इस कारण विद्वानों ने मध्यग्रह में भुजफल का संस्कार किया है।

उपपत्ति।

भास्कराचार्य के मत से भूमि ब्रह्माण्ड के केन्द्र में है और सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह उसके चारों तरफ वृत्ताकार निज कक्षाओं में भ्रमण करते हैं। इन कक्षाओं का केन्द्र भूमि में नहीं है। जिस वृत्त में ग्रह भ्रमण करता है उसे प्रतिवृत्त कहते हैं और उसी व्यासार्ध से जो भू केन्द्रक वृत्त होता है उसे कक्षावृत्त कहते हैं प्रतिवृत्त में भ्रमण करता हुआ ग्रह जहां कक्षावृत्तमें दिखलाई दे वही ग्रह का स्पष्ट स्थान है उसी के ज्ञानार्थ ग्रहों के मध्यस्थान में मन्दफल का संस्कार किया जाता है। मध्यम ग्रह मन्दफल संस्कृत मन्दस्पष्ट कहलाता है। और जिस वृत्तमें यह मन्द-स्पष्ट ग्रह भ्रमण करता है उसे मन्दप्रतिवृत्त कहते हैं। सूर्य, चन्द्र मन्दफल संस्कृत ठीक भूकेन्द्रक सिद्ध होजाते हैं। परन्तु पञ्चताराग्रह मन्दफल संस्कृत भूकेन्द्रक न होकर अन्यस्थान के सिद्ध होते हैं। इस कारण कक्षावृत्तको ही पञ्चग्रह सम्बन्धि द्वितीय प्रतिवृत्त कल्पना करके उसी केन्द्र और व्यासार्ध से दूसरा कक्षावृत्त बनाया। इस प्रकार द्वितीय प्रतिवृत्त में भ्रमण करता हुआ ग्रह इस कक्षावृत्त में जहां दिख-लाई देता है उस के ज्ञानार्थ मन्दस्फुट ग्रहों में द्वितीय संस्कार शीघ्रफल का किया जाता है॥ ७॥

एवमेकेनैव श्लोकेन संक्षेपाच्छेद्यकसर्वस्वमुक्त्वेदानीं किञ्चित्सविस्तरं छात्रान् प्रत्याह—

पूर्वापरायतायां तद्भित्तावुत्तरपार्श्वके।
दर्शयेच्छिष्यबोधार्थं लिखित्वा छेद्यकं सुधीः॥ ८॥

नाद्यापीदं सम्यगस्माभिर्ज्ञायत इति शिष्यैरुक्त आचार्य आह। पूर्वापरायतायामित्यादि। स्पष्टार्थम्।

भाषाभाष्य।

पूर्व पश्चिम विस्तृत भित्ति के उत्तर तरफ छेद्यक को लिखकर शिष्यबोध के लिये विद्वान् लोग दिखलावे। इसकी निर्माण विधि आगे दिखलाई गई है॥ ८॥

आधा करने से—

$\frac{1}{2}$ (ज्या^{2} + उज्या^{2}) = $\frac{1}{2}$ त्रि × उज्या।

वर्गमूल लेने से अर्धांश ज्या हुई

$\frac{1}{2}\sqrt{\text{ज्या}^2 + \text{उज्या}^2} = \sqrt{\frac{1}{2}\text{त्रि} \times \text{उज्या}}$

इसप्रकार 'त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेर्दलस्य मूलं तदर्द्धांशकशिञ्जिनी वा' यह विधि उपपन्न हुई। और शेष बातें साफ हैं।

ज्योत्पत्ति संक्षिप्त समाप्तहुई।

छेद्यकाधिकारः।

इदानीं स्पष्टीकरणे फलस्योत्पत्तिमाह—

भूमेर्मध्ये खलु भवलयस्यापि मध्यं यतःस्याद्
यस्मिन् वृत्ते भ्रमति खचरो नास्य मध्यं कुमध्ये।
भूस्थो द्रष्टा नहि भवलये मध्यतुल्यं प्रपश्येत्
तस्मात्तज्ज्ञैः क्रियत इह तद्दोःफलं मध्यखेटे॥ ७॥

यदेतत् भपञ्जरेऽश्विन्यादीनां भानां वलयं तद्भूमेः समन्तात्सर्वत्र तुल्येऽन्तरे वर्तते। यतस्तस्य मध्यं कुमध्ये। अथ यस्मिन् वृत्ते ग्रहो भ्रमति तस्य मध्यं कुमध्ये न। तद्भूमेः समन्तात्समानान्तरं नेत्यर्थः। अतो भूस्थो द्रष्टा भवलये मध्यमस्थाने ग्रहं न पश्यति किन्त्वन्यत्र पश्यति। तयोर्भवलये यदन्तरं तद्ग्रहस्य फलमित्यर्थादुक्तं भवति। अत उक्तं तस्मात्तज्ज्ञैः क्रियत इह तद्दोःफलं मध्यखेट इति।

भाषाभाष्य।

भचक्रका केन्द्र पृथिवी है, परन्तु जिस वृत्त में ग्रह नित्य भ्रमण करता है उसका मध्य भूमि नहीं है। अर्थात् उस वृत्तकी उच्चता भूमि से विषम है। समानाकार नहीं है। इसलिये भूनिवासी द्रष्टा कक्षावृत्तगत मध्यमस्थान में ग्रह को नहीं

देखता किन्तु अलग देखता है इस कारण विद्वानों ने मध्यग्रह में भुजफल का संस्कार किया है ।

उपपत्ति ।

भास्कराचार्य के मत से भूमि ब्रह्माण्ड के केन्द्र में है और सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह उसके चारों तरफ वृत्ताकार निज कक्षाओं में भ्रमण करते हैं । इन कक्षाओं का केन्द्र भूमि में नहीं है । जिस वृत्त में ग्रह भ्रमण करता है उसे प्रतिवृत्त कहते हैं और उसी व्यासार्ध से जो भू केन्द्रक वृत्त होता है उसे कक्षावृत्त कहते हैं प्रतिवृत्त में भ्रमण करता हुआ ग्रह जहां कक्षावृत्तमें दिखलाई दे वही ग्रह का स्पष्ट स्थान है उसी के ज्ञानार्थ ग्रहों के मध्यस्थान में मन्दफल का संस्कार किया जाता है । मध्यम ग्रह मन्दफल संस्कृत मन्दस्पष्ट कहलाता है । और जिस वृत्तमें यह मन्दस्पष्ट ग्रह भ्रमण करता है उसे मन्दप्रतिवृत्त कहते हैं। सूर्य, चन्द्र मन्दफल संस्कृत ठीक भूकेन्द्रक सिद्ध होजाते हैं । परन्तु पञ्चताराग्रह मन्दफल संस्कृत भूकेन्द्रक न होकर अन्यस्थान के सिद्ध होते हैं । इस कारण कक्षावृत्तको ही पञ्चग्रह सम्बन्धि द्वितीय प्रतिवृत्त कल्पना करके उसी केन्द्र और व्यासार्ध से दूसरा कक्षावृत्त बनाया । इस प्रकार द्वितीय प्रतिवृत्त में भ्रमण करता हुआ ग्रह इस कक्षावृत्त में जहां दिखलाई देता है उस के ज्ञानार्थ मन्दस्फुट ग्रहों में द्वितीय

[illegible] तदग्रे ।

त्रिभज्ययैव प्रतिमण्डलाख्यं
सैवोच्चरेखा त्वपरात्र तिर्यक् ॥ १२ ॥
तुङ्गोर्ध्वरेखा खलु यत्र लग्ना
तत्रोच्चमस्मिन् प्रतिमण्डलेऽपि ।
ततो विलोमं खलु तुङ्गभागे—
र्मेषादिरस्मात्खचरोऽनुलोमम् ॥ १३ ॥
देयस्तदुच्चान्तरमत्र केन्द्रं
दोर्ज्योच्चरेखा खगयोश्च मध्ये ।
तिर्यक्स्थरेखाखगयोस्तु कोटिः
सोर्ध्वाधरा बाहुगुणस्तु तिर्यक् ॥ १४ ॥

आधा करने से—

$\frac{1}{2}$ (ज्या^{2} + उज्या^{2}) = $\frac{1}{2}$ त्रि × उज्या।

वर्गमूल लेने से अर्धांश ज्या हुई

$\frac{1}{2}\sqrt{\text{ज्या}^2+\text{उज्या}^2}=\sqrt{\frac{1}{2}\text{त्रि}\times\text{उज्या}}$

इसप्रकार ' त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेर्दलस्य मूलं तदर्द्धांशकशिञ्जिनी वा ' यह विधि उपपन्न हुई। और शेष बातें साफ हैं।

ज्योत्पत्ति संक्षिप्त समाप्त हुई।

छेद्यकाधिकारः।

इदानीं स्पष्टीकरणे फलस्योत्पत्तिमाह—

भूमेर्मध्ये खलु भवलयस्यापि मध्यं यतःस्याद्

यस्मिन् वृत्ते भ्रमति खचरो नास्य मध्यं कुमध्ये।

मतिकान्तमोत ाा नहि भवलये मध्यतुल्यं प्रपश्येत

प्रत्यक्षाविषयमित्यर्थः। दिव्यं ज्ञानं पारम्पर्यवशादृषिपरंपरया ' ब्रह्मा ह च नारदाय हिमगुर्यच्छौनकाय ' इत्यादिकया रहस्यमप्रकाश्यमवनीं प्रकाश्यं नीतं ऋषिपरम्परया भुवि प्रकटीकृतम्। ततस्तस्मात्कारणाद्रहस्यभूतत्वेनेत्यर्थः। द्वेषिकृतघ्नदुर्जनदुराचाराचिरावासिनाम्। द्वेषिणश्च कृतघ्नाश्च दुर्जनाश्चेत्यादि विशेषणसमासःतेषां नैतत्प्रकाश्यमध्यापनीयमिति इमां मुनिकृतां सीमां नियमपद्धतिमुज्झतस्त्यजतः पुंस इति शेषः। आयुः सुकृतक्षयः स्यात्। सूर्यसिद्धान्तेऽप्युक्तम् 'रहस्यमेतद्देवानां न देयं यस्य कस्यचित्। ' सुपरीक्षित शिष्याय देयं वत्सरवासिने॥ ' इति॥

भाषाभाष्य।

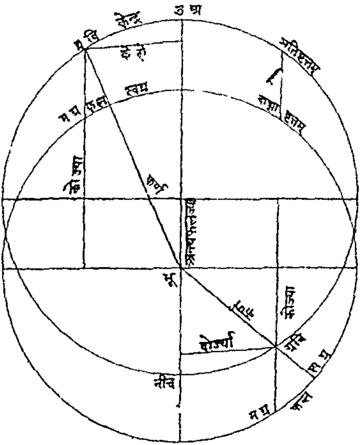
जो ब्रह्मोक्त दिव्य, अतीन्द्रिय, ज्ञान वसिष्ठादि ऋषियों ने परम्परा क्रम से पृथिवी पर प्रकाशित किया है उसको द्वेषी, कृतघ्न, दुर्जन, दुराचारी और अन्य

विलोम और ग्रहोंको अनुलोम कल्पना करना। ग्रह और उच्चका अन्तर केन्द्र कहलाता है। ग्रह और उच्चगत रेखाके बीच में भुजज्या रहती है। ग्रह एवं याम्योत्तर रेखाके बीचमें ऊपर नीचे कोटि होतीहै। और त्रिज्या भूमध्यसे तिरछी होती है। इसप्रकार छेद्यक निर्माण होता है।

उपपत्ति।

नीचे लिखेहुयेक्षेत्रमे उच्च,ग्रह, अन्त्यफलज्या आदिका स्थान स्पष्ट प्रतीत होगा

प्रतिवृत्तभाङ्गि।



इतिकर्तव्यतोपपत्तिमाह—

किलवृ॰ ोर्ये

नस्यजीवा।

भित्तेरुत्तरपार्श्वे विन्दुं कृत्वा तस्माद्विन्दोस्त्रिज्यामितेन कर्कटेन वृत्तं विलिखेत् । तत्कक्षावृत्तम् । यस्य ग्रहस्य छेद्यकं विलिख्यते तस्य मध्यमभुक्तिपञ्चदशांशेन तस्मिन्नेव विन्दौ यद्वृत्तं क्रियते सा भूः । लम्बनावनतिदर्शनार्थमियं भूः । अन्यथा विन्दुरेव भूः कल्प्यते । तत्कक्षावृत्तं चक्रांशैरङ्क्यम् । तत्रेष्टस्थाने मेषादिं प्रकल्प्य तस्मान्मध्यमग्रहमुच्चं च दत्त्वा तदग्रयोश्चिह्ने कार्ये । भूम्युच्चयोरुपरिगता रेखा कार्या । सोच्चरेखा । अथ भूमध्यउच्चरेखाजनितमत्स्येन तिर्यग्रेखान्या कार्या । अथ ग्रहस्यान्त्यफलज्यामितं सूत्रं भूमध्यादुच्चरेखायां दत्त्वा तदग्रचिह्नात् त्रिज्यामितेनैव कर्कटकेन यद्वृत्तं विलिख्यते तत्प्रतिमण्डलम् । तत्रापि सैवोच्चरेखा । किन्तु तन्मध्येऽन्या तिर्यग्रेखा कार्या । प्रतिमण्डलमपि चक्रांशैरङ्क्यम् । अथोच्चरेखोपरिनीयमाना यत्र लगति तत्र प्रतिमण्डलेऽप्युच्चं कल्प्यम् । तस्मादुच्चराशिभागान् विलोमतो गणयित्वा तदग्रे मेषादिः कल्प्यः । ततो ग्रहोऽनुलोमं देयः । तत्र ग्रहोच्चयोरन्तरं केन्द्रम् । उच्चरेखायास्तिर्यग्ग्रहगामिनी रेखा सा दोर्ज्या । प्रतिमण्डलमध्ये या तिर्यग्रेखा तद्ग्रहयोरन्तरं कोटिज्या । सा किलोर्ध्वरूपा भवति ।

भाषाभाष्य ।

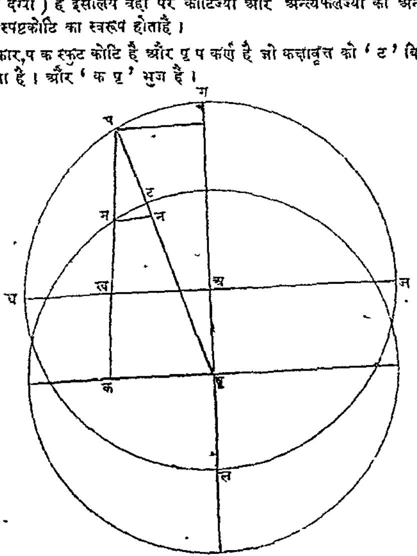
त्रिज्या तुल्य कर्कटक (वृत्त बनाने के कंपासका प्राचीन नाम कर्कटक है) से पहिले कक्षावृत्त बनाना । इस वृत्तके मध्यसे मध्यमग्रहभोगके पन्द्रहवें हिस्से से जो वृत्त बनेगा वह पृथिवी होगी । कक्षावृत्त को राशियों से अङ्कित करके उच्च और ग्रह का दान करके एक रेखा भूमि और उसके बीचमें करना, यह वृत्त में पूर्वापर रेखा होगी । बाद में याम्योत्तर रेखा भी भू बिन्दु में होतीहुई करनी । भूमध्य से पूर्वापर रेखामें अन्त्यफलज्या की कल्पना करके उसके अग्रबिन्दु को केन्द्र मानकर उसी कक्षावृत्तके त्रिज्याव्यासार्ध से प्रतिमण्डल वृत्त बनाना । इस वृत्तमें उच्चगतरेखा ही पूर्वापर रेखा होगी और याम्योत्तर रेखा दूसरी करनी । इस प्रतिमण्डलमें भी उच्च और पूर्वापर रेखाके संपात में उच्च की कल्पना करके वहांसे मेषादि राशियों को

। दोनों के वर्गयोगमूल से कर्ण होता है। वह भूमध्य और विलोम और ग्रहों के अन्तर में होता है। कक्षावृत्त और कर्ण का जिस विन्दु में हलाता है। ग्रहस्पष्ट ग्रह दीखताहै कक्षावृत्त और कोटि रेखा का सम्पात विन्दु सर रेखाके बीधान हैं। स्पष्ट ग्रह और मध्यग्रह का अन्तर फल स्थान है। स्पष्ट है। इसप्रध्यमग्रह अधिक होनेपर ग्रहों में फलका ऋण संस्कार और न्यून होनेपर धन संस्कार कियाजाता है।

उपपत्ति।

नीचे लिखे क्षेत्र में 'ज ग घ' मकरादि केन्द्र और 'न ल ज' कर्कादि केन्द्र है। मकरादि केन्द्र में कोटिज्या ऊपर होती है इसलिये कोटिज्या और अन्त्यफलज्याके योगसे स्पष्ट कोटि होती है। कर्कादि केन्द्र में कोटिज्या नीचे होती (पूर्वक्षेत्र देखो) है इसलिये वहां पर कोटिज्या और अन्त्यफलज्या का अन्तर करने से स्पष्टकोटि का स्वरूप होताहै।

इसप्रकार, प क स्फुट कोटि है और पृ प कर्ण है जो कक्षावृत्त को 'ट' विन्दु पर काटता है। और 'क पृ' भुज है।



तद्दूर्ध्वतः कोटिगुणो मृगादौ
कर्क्यादि केन्द्रे तदधो यतः स्यात् ॥ १५ ॥
अतस्तदैक्यान्तरमत्रकोटि—
दोर्ज्याभुजस्तत्कृतियोगमूलम् ।
कर्णः कुमध्यप्रतिमण्डलस्थ—
खेटान्तरे स्पष्टखगो हि दृश्यः ॥ १६ ॥
कक्षाख्यवृत्ते श्रुतिसूत्र सक्ते
फलं च मध्यस्फुटखेटमध्ये ।
मध्येऽग्रगे स्पष्टखगादृणं तत्
पृष्ठस्थिते स्वं क्रियते ततश्च ॥ १७ ॥

सितेन कर्कटेन
विलिख्यते
क्रियते

तयोः कक्षावृत्तप्रतिवृत्तयोर्मध्ये ये तिर्यग्रेखे तयोरन्तरं सर्वत्रान्त्यफलज्यातुल्यमेव स्यात् । ततोन्त्यफलज्याग्राडुपरि प्रतिवृत्तस्य कोटिज्या मृगादौ केन्द्रे भवति । कर्क्यादौ तु तदधः । अतःकोटिज्यान्त्यफलज्ययोर्योगवियोगौ कृतौ । तथा कृते सति कक्षामध्यगतिर्यग्रेखावधेः स्फुटकोटिर्भवति । कोटितलकुमध्ययोरन्तरं दोर्ज्या स भुजः । तत्कोटिवर्गैक्यपदं कर्ण इत्युपपन्नम् । कर्णो नाम ग्रह कुमध्ययोरन्तरसूत्रम् । तत्सूत्रं कक्षामण्डले यत्र लग्नं तत्र स्फुटो ग्रहः । स्फुटमध्ययोरन्तरं फलम् । तच्च मध्यग्रहात्स्फुटे ग्रहेऽधिके धनमूने ऋणं क्रियत इत्युपपन्नम् । एवं मन्दफलेन मन्दस्फुटः शीघ्रफलेन स्फुटः स्यात् ।

भाषाभाष्य ।

कक्षावृत्त और प्रतिवृत्त गत याम्योत्तर रेखाओंके मध्यमें अन्त्यफलज्या होती है । मकरादि केन्द्रमें कोटिज्या ऊपर एवं कर्कादि केन्द्र में नीचे होती है । इसलिये कोटिज्या और अन्त्यफलज्या का क्रमसे योग वियोग करने से स्फुटकोटि होती है ।

मन्दस्फुटो द्राक्प्रतिमण्डले च।
भ्रमत्यतश्चञ्चलकर्मणीह
मन्दस्फुटो मध्यखगः प्रकल्प्यः॥ १८ ॥
मन्दकर्मपूर्वकं शीघ्रकर्मेत्येतत्स्पष्टार्थम्।

प्रभा।

स्वे निजे मन्दप्रतिवृत्ते मध्यग्रहो भ्रमति । शीघ्रप्रतिवृत्ते च मन्दस्पष्ट इति शीघ्रफलानयनार्थं मन्दस्पष्ट एव मध्यः प्रकल्प्य इति।

भाषाभाष्य।

मध्यम ग्रह अपने मन्दप्रतिवृत्तमें और मन्दस्पष्ट निज शीघ्र प्रतिवृत्तमें भ्रमण करताहै। इसलिए शीघ्रफलके साधनार्थ मन्दस्पष्टको मध्यम ग्रह कल्पना किया है १८॥

इदानीमुच्चोपपत्तिमाह—
भ्रमन् ग्रहः स्वे प्रतिमण्डले नृभिः
स यत्र कक्षावलये विलोक्यते।
स्फुटो हि तत्रास्यफलोपपत्तये
प्रकल्पितं तुङ्गमिहाद्यसूरिभिः॥ १९ ॥
यः स्यात्प्रदेशः प्रतिमण्डलस्य
दूरे भुवस्तस्य कृतोच्चसञ्ज्ञा।
सोऽपि प्रदेशश्चलतीति तस्मात्
प्रकल्पिता तुङ्गगतिर्गतिज्ञैः॥ २० ॥
उच्चाद्भपट्कान्तरितं च नीचं
मध्यः स्वनीचोच्चसमो यदा स्यात्।
कक्षास्थमध्योपरि कर्णसूत्र—
पातात् स्फुटो मध्यसमस्तदानीम्॥ २१ ॥

इसलिये 'ट' ग्रह का स्पष्ट स्थान है और टम ग्रह का फल है। एवं 'म' मध्यम ग्रह है। यों स्पष्ट ग्रह से मध्यमग्रह आगे पीछे रहने पर धन, ऋण की उपपत्ति स्फुट होती है।

ग्रहफल की उपपत्ति और प्रकारसे भी होसकती है। जैसे, 'मन' लम्ब 'पट' के ऊपर करने से यह फलज्या होगी और 'पमन' त्रिभुज 'पप्रक' के सजातीय होगा।

∴ पप्र : प्रक = पम : मन; इसलिये, मन= $\frac{\text{पम} \times \text{प्रक}}{\text{पप्र}}$ =फलज्या,

$$= \frac{\text{प्रअ} \times \text{प्रक},}{\text{प्रप}}$$ क्योंकि, पम=खक=प्रअ।

अब, कें=केन्द्रज्या, अ= अन्त्यफलज्या, फ=फलज्या और क=कर्णके कल्पना किया। तब स्पष्टकोटि=कोज्या ± अ। मृगादि और कर्कादि केन्द्र के अनुसार। और कर्ण= $\sqrt{\text{२केज्या} \times (\text{कोज्या} \pm \text{अ})^2}$ इसलिये नियमानुसार

$$\text{फ} = \frac{\text{अ} \times \text{केंज्या}}{\text{क}} = \frac{\text{अ} \times \text{केंज्या}}{\sqrt{\text{केंज्या२} + (\text{कोज्या} \pm \text{अ})^2}}$$ ।

यह बात जानना आवश्यक है कि जब केन्द्रकोटिज्या अन्त्यफलज्या के समान कर्कादि केन्द्र में होगी, तब कर्ण केन्द्र दोर्ज्या के तुल्य होगा। अन्यथा कर्ण सदा दोर्ज्यासे बड़ा रहेगा। और इसी हेतु से फल अन्त्यफलज्यासे कम होगा। ऐसेही जब कर्ण केन्द्र दोर्ज्या के समान होगा तब फल परमाधिक होकर अन्त्यफलज्या के समान होगा। अर्थात् जिस समय ग्रह कक्षावृत्त गत याम्योत्तर रेखा और प्रतिवृत्तके संपात विन्दु पर पहुंचता है तभी परमफल होताहै। इसलिये प्रतिवृत्त और कक्षावृत्त की याम्योत्तर रेखाओंका अन्तर सदा समान और अन्त्यफलज्या के तुल्य रहता है। वासनाभाष्य में आचार्य ने भी लिखा है '....तयोरन्तरं सर्वत्रान्त्यफलज्यातुल्यमेव स्यात्।'

इसप्रकार मध्यम ग्रह फल संस्कृत मन्दस्पष्ट होताहै। पुनः मन्दस्पष्टमें शीघ्रफल का संस्कार करने से स्पष्ट ग्रहहोता है। मन्दस्पष्ट औरस्पष्ट विमण्डलगत आचार्य ने मानाहै, फिर उन्हींको स्वल्पान्तर से क्रान्तिवृत्तगत मान लिया है, कोई संस्कार नहीं किया ॥ १५ । १६ । १७ ॥

इदानीं मन्दस्फुटं मध्यमं प्रकल्प्य शीघ्रफलं यत्साध्यते तदुपपत्तिमाह—

मध्यो हि मन्दप्रतिमण्डले स्वे

भाषाभाष्य।

अपने उच्चस्थान में स्थित ग्रह पृथिवी से बहुत दूर और नीच स्थित समीप होताहै, इसलिये ग्रह निम्न क्रमसे छोटा और बडा दिखलाई देताहै। इसीप्रकार सूर्य के समीपमे उसके तेजसे ग्रहबिम्ब छोटा और दूरी में बडा दीखता है॥

इदानीमन्यदुक्तं प्रकारान्तरमाह—

उक्तामथैषा प्रतिवृत्तभङ्ग्या
युक्तिः पृथक् श्रोतुरसंभ्रमार्थम्।
स्पष्टीकृतेस्तां पुनरन्यथाहं
नीचोच्चवृत्तस्य च वच्मि भङ्ग्या॥ २३॥

इह किल स्पष्टीकरणयुक्तिः प्रतिवृत्तभङ्ग्या मयोक्ता। अथ तामेव नीचोच्चवृत्तभङ्ग्या वच्मि।

प्रभा।

स्फुटार्थोऽयं श्लोकः। क्षेत्ररचना विशेषोऽत्र भङ्गिः।

भाषाभाष्य।

इसप्रकार हमने प्रतिवृत्तभङ्गि (भङ्गि, क्षेत्र रचना को कहते हैं) से सुननेवालोकी संदेह निवृत्ति के लिये स्पष्ट ग्रहसाधन की युक्ति कही है। अब उसी युक्ति को 'नीचोच्चवृत्त' क्षेत्रद्वारा पुन कहते हैं।

इदानीं तां भङ्गिमाह—

कक्षास्थमध्यग्रहचिह्नतोऽथ
वृत्तं लिखेदन्त्यफलज्यया तत्।
नीचोच्चसंज्ञं रचयेच्च रेखां
कुमध्यतो मध्यखगोपरिस्थाम्॥ २४॥
कुमध्यतो दूरतरे प्रदेशे
रेखायुते तुङ्गमिह प्रकल्प्यम्।
नीचं तथासन्नतरेऽथ तिर्यङ्

उच्चप्रदेशात् क्रमेण चलितस्य फलप्रवृत्तिर्दृश्यते। अतस्तुङ्गं कल्पितम्। शेषं स्पष्टम्। मध्यगतिवासनायां च सविस्तरमुक्तम्।

प्रभा।

यदा मध्यो ग्रहः स्वनीचोच्चसमो भवति तदा तत्र फलाभावान्मध्य एव स्फुटः न कापि भिदा। तत्र कक्षावृत्तगतोर्ध्वरेखाकर्णयोरैकरूप्याद् उच्चाच्चलितस्य ग्रहस्य फलोपलब्धिदर्शनाच्च। अन्यत्स्फुटम्।

भाषाभाष्य।

ग्रह निज प्रतिवृत्त में भ्रमण करताहुआ जहां कक्षावृत्त में दिखलाईदे वहीं स्पष्ट ग्रहका स्थान है। स्फुटग्रहोंकी फलोपपत्ति के लिये उच्चकी कल्पना विद्वानोंने की है। भूमिसे प्रतिमण्डलका जो ऊंचा भाग है उसकी उच्चसंज्ञा है वह उच्चप्रदेश भी चलता है इसलिये उच्चगति की कल्पना हुई है। उच्चदेशसे छः राशिके अन्तर पर नीच प्रदेश है। जिससमय मध्यम ग्रह अपने नीच और उच्चस्थान में होगा तब कक्षावृत्तगत पूर्वापररेखा और कर्णरेखाके मेल होनेसे मध्यम ग्रह ही स्फुट होगा। क्योंकि उस स्थानमें फलका अभाव होताहै॥ १६—२१॥

इदानीमन्यदाह—

उच्चस्थितो व्योमचरः सुदूरे
नीचस्थितः स्यान्निकटे धरित्र्याः।
अतोऽणुबिम्बः पृथुलश्च भाति
भानोस्तथासन्नसुदूरवर्ती॥ २२॥

स्पष्टम्।

प्रभा।

व्योम्नि नभसि चरतीति व्योमचरो ग्रहः, उच्चस्थितः उच्चप्रदेशे वर्तमानो धरित्र्या भुवः सकाशात्सुदूरे भवति। तथैव नीचे स्थितो निकटे भवति। अतःकारणाद् ग्रहबिम्बोऽणुः सूक्ष्मस्तथा पृथुलः स्थूलो विस्तीर्ण इत्यर्थः। भाति प्रतीयते। तथा भानोरासन्नसुदूरस्थितोऽपि ग्रहास्तत्तेजःपुञ्जपराभूतत्वात्क्रमेणाणुर्महांश्च प्रतीयत इत्यर्थः।

उच्च स्थान से मन्दकर्म मे निजकेन्द्रगति से विलोम और शीघ्रकर्म में अनुलोम भ्रमण करते हैं। इसलिये मन्दकेन्द्र का दान विलोम और शीघ्रकेन्द्रका अनुलोम करना चाहिये। ग्रह और उच्चरेखा के अन्तर मे दोर्ज्या रहती है। एवं ग्रह और याम्योत्तररेखा के अन्तरमें कोटिज्या रहती है।

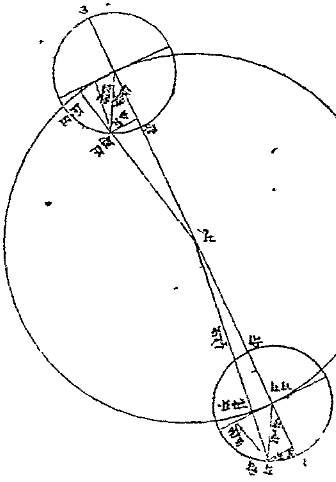
उपपत्ति।

अन्त्यफलज्या व्यासार्ध से जो वृत्त बनता है उसे नीचोच्चवृत्त कहते हैं। कक्षा-वृत्त में जो भुजज्या और कोटिज्या होती है उसका नीचोच्चवृत्त में परिणाम न करने से भुजफल और कोटिफल नाम पडता है। इस परिणाम के लिये गणिताध्याय में इसप्रकार अनुपात किया है—

त्रिज्या : भुज्या :: अंज्या=भुजफल। ऐसेही कोटि फल भी सिद्ध होताहै।

नीचोच्चवृत्त भङ्गि की रचना उक्त विधि के अनुसार करने से यों होती है।

नीचोच्चवृत्तभङ्गि।



नीचोच्चमध्ये रचयेच्चरेखाम् ॥ २५ ॥

नीचोच्चवृत्ते भगणाङ्किते ऽस्मिन्
मान्दे विलोमं निजकेन्द्रगत्या ।
शैघ्रे ऽनुलोमं भ्रमति स्वतुङ्गा-
दारभ्य मध्यद्युचरो हि यस्मात् ॥ २६ ॥

अतो यथोक्तं मृदुशीघ्रकेन्द्रं
देयं निजोच्चादद्युचरस्तदग्रे ।
दोर्ज्योच्चरेखावधि खेटतः स्या-
त्तिर्यक्स्थरेखावधि कोटिजीवा ॥ २७ ॥

प्राग्वत् कक्षावृत्तं चक्रांशाङ्कितं कृत्वा तत्र मध्यग्रहं च दत्त्वा ग्रहचिह्नेऽन्त्यफलज्या प्रमाणेनान्यवृत्तं लिखेत् । तन्नीचोच्चवृत्त संज्ञम् । अथ भूमध्याद्ग्रहोपरिगता रेखा किञ्चिद्दीर्घा कार्या । सात्रोच्चरेखा । नीचोच्चवृत्ते भूमेर्दूरतरे प्रदेशे रेखायुत उच्चं प्रकल्प्यम् । आसन्ने रेखायुते नीचम् । नीचोच्चचिह्नाभ्यां मत्स्यमुत्पाद्य तिर्यग्रेखा मध्ये कार्या । तस्मिन् वृत्ते केन्द्रगत्योच्चस्थानादारभ्य मध्यग्रहो भ्रमति । मान्दे विलोमं शैघ्र्येऽनुलोमम् । अतः कारणान्मन्दकेन्द्रमुच्चाद्विलोमं देयम् । शीघ्रकेन्द्रमनुलोमम् । तदग्रे ग्रहः । अत्रापि ग्रहोच्चरेखान्तरे दोर्ज्या । ग्रहतिर्यग्रेखयोरन्तरे कोटिज्या ।

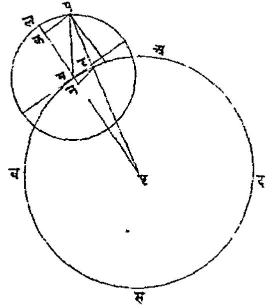
भाषाभाष्य ।

कक्षावृत्तगत मध्यमग्रह चिह्न को केन्द्र मानकर अन्त्यफलज्या व्यासार्ध से नीचोच्चवृत्त करना । फिर भूमध्य से मध्यमग्रह तक रेखा करना। भूमध्य से दूर इस रेखाका जहां नीचोच्चवृत्त के साथ संयोग हो वहीं नीचोच्चवृत्त में उच्चस्थान मानना । और आसन्न प्रदेश में नीच स्थान की कल्पना करना । फिर याम्योत्तर-रेखा करके राशियों से अङ्कित करना । इस नीचोच्चवृत्त में "केन्द्रगति से" मध्यम ग्रह

उपपत्ति ।

नीचोच्चवृत्त में फलसाधन की उपपत्ति इसप्रकार है । पृक स्फुटकोटि पृप कर्ण, 'ट' कक्षावृत्तगत स्फुट ग्रह और टम फल है । पृम रेखा पर टन लम्ब करने से 'टन' फलज्या होगी ।

फलज्या=फ, प्रतिवृत्तीय केन्द्र=क,कर्ण=क, अन्त्यफलज्या=अ ।



त्रि : भुज्या=अंफ : भुफ ।

इसलिये भुजफल=$\frac{\text{अंफ} \times \text{भुज्या}}{\text{त्रि}}$,अन, पृटन और पृपक त्रिभुज सजातीय हैं ।

$\therefore$ पृप : पक=पृट : टन

अथवा,

क : पक = त्रि : फ

$\therefore$ फ=$\frac{\text{पक} \times \text{त्रि}}{\text{क}}$;

इस स्थिति में भुजफल को त्रिज्या से गुण कर कर्ण का भागदेने से फलज्या के समान होता है ॥

परन्तु, पक=$\frac{\text{अंफ} \times \text{भुज्या}}{\text{त्रि}}$,

$\therefore$ फ=$\frac{\text{अंफ} \times \text{भुज्या}}{\text{त्रि}} \times \frac{\text{त्रि}}{\text{क}} = \frac{\text{अफ} \times \text{भुज्या}}{\text{क}}$=फलज्या

इसकी विशेष विधि गणिताध्याय मे लिखी है । यहां सुगमता के लिये क्षेत्र दिखलाया गया है ॥ २४—२७ ॥

इदानीं कर्णानयनं फलं चाह—

ये केन्द्रदोःकोटिफले कृते ते
नीचोच्चवृत्ते भुजकोटिजीवे ।
त्रिज्योदर्ध्वतः कोटिगुणो मृगादौ
कर्क्यादिकेन्द्रे तदधो यतः स्यात् ॥ २८ ॥
अतस्तदैक्यान्तरमत्रकोटि-
र्दोर्दोः फलं भूग्रहमध्यसूत्रम् ।
कर्णोऽथ मध्यग्रहकर्णमध्ये
फलं धनर्णं तदिहोक्तवच्च ॥ २९

पूर्वार्द्धं सुगमम् । कक्षावृत्ते व्यासार्धं किल त्रिज्या । त्रिज्याग्रादुपरि कोटिफलं यतो मृगादौ केन्द्रे भवति कर्क्यादौ तु तदधः । अतस्तदैक्यान्तरं स्पष्टा कोटिः । तस्मिन् त्र्यस्ते भुजफलमेव बाहुः । भूग्रहान्तरं कर्णः । दोः कोटिवर्गैक्यपदमिति प्रसिद्धम् । अत्रापि प्राग्वत् कक्षावृत्ते कर्णसूत्रसक्ते स्फुटो ग्रहः । स्फुटमध्ययोरन्तरं फलमित्यादि ।

इति नीचोच्चवृत्तभङ्गिः ।

तस्य यथा गोभ्रमाद्विपरीतो भ्रमः। तत्र गौः किलापसव्यं भ्रमति। तदूर्ध्वकाष्ठं तथा भ्राम्यमाणमपि स्वाङ्गेन सव्यभ्रममुत्पादयति। एवं नीचोच्चवृत्ते भ्रमणं विपरीतमिव प्रतिभाति। शेषं स्पष्टम्।

इति मिश्रभङ्गिः।

प्रभा।

मन्दोच्चतोऽग्रे इति। प्रतिमण्डले प्राक् पूर्वाभिमुखं वस्तुतः स्वगत्या गच्छन् ग्रहः मन्दोच्चतो मन्दप्रतिवृत्तीयोच्चस्थानाद् अनुलोमं कक्षास्थराशिक्रममार्गेण निजकेन्द्रगत्या अग्रे भ्रमति गच्छतीव भाति। शीघ्रात् शीघ्रप्रतिवृत्तीयोच्चस्थानात् विलोमं कक्षास्थराशिक्रमवैपरीत्येन निजकेन्द्रगत्या शीघ्रकेन्द्रगत्या गच्छतीव भाति। मन्दोच्चग्रहयोः प्रागगमनादुच्चगतेरल्पत्वान्मन्दोच्चादग्र एव ग्रहो भवतीत्यनुलोमगमनभानम्। शीघ्रोच्चगतेरधिकत्वाच्छीघ्रोच्चात्पश्चादेव ग्रहो भवतीति विलोमगमनभानम् तस्य प्रतिवृत्तस्थग्रहस्यानुलोमप्रतिलोमयाने नीचोच्चवृत्ते पुनरन्यथा वैपरीत्येन भवतः। मन्दप्रतिवृत्तीयानुलोमगतं विलोमं तथा शीघ्रप्रतिवृत्तीयविलोमगमनमत्रानुलोमं भवतीति भावः शेषं स्फुटम्॥

भाषाभाष्य।

प्रतिमण्डल में मन्दोच्च से पूर्व दिशा में निज केन्द्र गति द्वारा ग्रह अनुलोम मण करता है। और शीघ्रोच्च से विलोम भ्रमण करता हुआ मालूम पड़ता है योंकि पीछे को हटा रहता है। नीचोच्च वृत्त में प्रतिमण्डलीय ग्रह की वह नुलोम और विलोम गति विपरीत होती है। उसमें एक ग्रह गति है दूसरा तेभान (गति का आभास) विद्वानों ने फलोपपत्ति के लिये यह कल्पना की। नीचोच्च वृत्त और प्रतिवृत्त भङ्गि को एकत्र लिखने से दोनों वृत्तों के संपात न्दु में ग्रह अवश्य हुआ करता है। जैसे तैलयन्त्र में वृषभ जिस दिशा में भ्रमण

के होता है । यह विधि प्रतिवृत्तीय फलानयन के अनुसार है । आचार्य ने गणिताध्याय में फलानयन की रीति लिखी है । २८ । २६ ॥

अथ मिश्रभङ्गिमाह—
मन्दोच्चतोऽग्रे प्रतिमण्डले प्राग्
ग्रहोऽनुलोमं निजकेन्द्रगत्या ।
शीघ्राद्विलोमं भ्रमतीव भाति
विलम्बितः पृष्ठत एव यस्मात् ॥ ३० ॥
नीचोच्चवृत्ते पुनरन्यथा ते
तस्यानुलोमप्रतिलोमयाने ।
एकागतिः सा प्रतिभानमन्यत्
प्राज्ञैः फलार्थं प्रविकल्पितं तत् ॥ ३१ ॥
भङ्गिद्वयं चेल्लिखितं विमिश्रं
वृत्तद्वयेऽप्यत्र यथोक्तवृत्तः ।
नीचोच्चवृत्तप्रतिवृत्तयोगे
भ्रमत्यवश्यं द्युचरस्तदानीम् ॥ ३२ ॥
यथा भवेत्तैलिकयन्त्रमध्ये
काष्ठभ्रमो गोभ्रमतो विलोमः ।
नीचोच्चवृत्तभ्रमणं तथान्यत्
स्याद्वच्चतोऽपि प्रतिमण्डलेन ॥ ३३ ॥

ग्रहः पूर्वगत्या प्रतिमण्डलेनैव भ्रमति । यदेतन्नीचोच्चवृत्तं तस्माज्ज्ञैर्गणकैः फलार्थं कल्पितम् । तत्र प्रतिमण्डलगतेर्विलोमं ग्रहो गच्छन्निव प्रतिभाति । कथं तत्र विलोमगतिः प्रतिभाति । तत्र दृष्टान्तः । यथा तैलिकयन्त्रमध्ये तिलपीडनार्थमूर्ध्वकाष्ठं प्रक्षिप्यते ।

तद्वृत्तौ शीघ्रनीचोच्चमध्यं तथा
शीघ्रनीचोच्चवृत्ते स्फुटः खेचरः ॥ ३४ ॥
शीघ्रनीचोच्चवृत्तस्य मध्यस्थितिं
ज्ञातुमादौ कृतं कर्म मान्दं ततः।
खेटबोधायशैघ्र्यं मिथः संश्रिते
मान्दशैघ्र्ये हि तेनासकृत् साधिते ॥ ३५ ॥
नीचोच्चवृत्तभङ्गिपर्यालोचनयैवं परिणमतीति स्पष्टार्थम्।

प्रभा।

मध्यगत्येत्यादि। मध्यगत्या मध्यमकक्षावृत्ते ग्रहो गच्छेदिति कल्पना। यस्मात् मन्दनीचोच्चवृत्तस्य कक्षावृत्तीयमध्यग्रहचिह्नमध्यं केन्द्रं स्यात्। तथा तद्वृत्तौ मन्दश्रुतिसक्तकक्षावृत्तपरिधिप्रदेशे मन्दस्फुटग्रहस्थाने शीघ्रनीचोच्चवृत्तमध्यं भवेत्। शीघ्रनीचोच्चवृत्ते मन्दस्पष्टग्रहदानेन यत्स्थानं तत्रस्फुटो विम्बात्मकोग्रहः। कक्षामण्डले शीघ्रनीचोच्चवृत्तस्य मध्यस्थितिं केन्द्रावस्थानं ज्ञातुं प्रथमं मान्दकर्म मध्यग्रहे कृतम्। ततः खेटबोधाय मन्दस्पष्टे शैघ्र्यं कर्मेति। हि यस्मात् मान्दशैघ्र्येफले मिथः संश्रिते अन्योन्याश्रिते तेन ते फले असकृदनेकवारंसाधिते ॥

भाषाभाष्य।

मन्दनीचोच्च वृत्त का केन्द्र कक्षावृत्त में होने से ग्रह अपनी गति से उसी वृत्तमें भ्रमण करता है। शीघ्रनीचोच्च वृत्त का केन्द्र कक्षावृत्त (जिस बिन्दु में मन्दकर्ण कक्षावृत्त को काटता है) में रहता है और उसीवृत्त में स्पष्टग्रह भ्रमण करताहै। शीघ्रनीचोच्चवृत्त के केन्द्र स्थिति ज्ञानार्थ प्रथम मन्दफल का संस्कार किया गया है। इसप्रकार मन्द और शीघ्रफल के परस्पर संबद्ध होने से स्पष्टीकरण में असकृत्कर्म कियागया है।

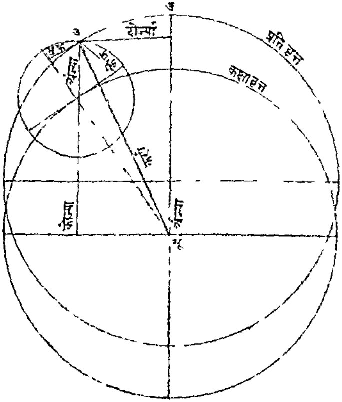
तात्पर्य यह है कि शीघ्रफल मन्दस्पष्ट ग्रह के अधीन है और मन्दस्पष्ट मन्द

करता है उससे विपरीत दिशा में काष्ठ का स्वाङ्ग भ्रमण होता है उसी प्रकार-नीचोच्चवृत्त और प्रतिवृत्त का भ्रमण आपस में मालूम पड़ता है।

उपपत्ति।

नीचोच्च वृत्त और प्रतिवृत्तभङ्गि को एकत्र करने से जो क्षेत्र बनता है उसको मिश्रभङ्गि कहते हैं। उक्त विधि से निर्माण करने से उसका आकार इसप्रकार होता है ॥ ३० । ३३ ॥

मिश्रभङ्गि।



इदानीं मन्दशीघ्रकर्मद्वयेन स्फुटत्वे कारणमाह—

मध्यगत्या स्वकक्षाख्यवृत्ते व्रजेन्-
मन्दनीचोच्चवृत्तस्य मध्यं यतः।

मागच्छतीति ब्रह्मगुप्तमतम्। अथ यद्येवं परिधेः कर्णेन स्फुटत्वं तर्हि किं शीघ्रकर्म्मणि न कृतमित्याशङ्क्य चतुर्वेद आह। ब्रह्मगुप्तेनान्येषां प्रतारणपरमिदमुक्तमित्यादि। तदसत्। चले कर्मणीत्थं किं न कृतमिति नाशङ्कनीयम्। यतः फलवासना विचित्रा। शुक्रस्यान्यथा परिधेः स्फुटत्वं भौमस्यान्यथा तथा किं न बुधादीनामिति नाशङ्क्यम्। अतो ब्रह्मोक्तिरत्र सुन्दरी।

भाषाभाष्य।

किसी आचार्य का मत है कि स्वल्पान्तर होने से मन्दफलानयन में कर्णानुपात नहीं कियागया। किसी का मत है कि मन्दनीचोच्चपरिधि, कर्ण से गुणकर त्रिज्या का भाग देने से स्पष्ट होती है। इसलिये पुन. यदि कर्णानुपात कियाजाय तौ भी फल पूर्व तुल्यही सिद्ध होताहै। इसकारण कर्णानुपात नहीं किया। शीघ्रफल साधन में यह विधि क्यों न कीगई। यह शङ्का न करनी चाहिये, क्योंकि प्रत्येक ग्रहों की फलोपपत्ति भिन्न है॥

उपपत्ति।

मन्दनीचोच्चवृत्त परिधि कर्णानुसार बदला करती है। उस स्थिति में दोनों का सम्बन्ध समानही रहता है। मन्दनीचोच्चपरिधि गणिताध्याय में जो लिखी है वह मध्यम अर्थात् त्रिज्यातुल्य कर्ण में है। इसकारण पहिले परिधि का स्पष्टीकरण कर्णानुसार होना आवश्यक है। क्योंकि पुन॰ कर्ण घटा बढ़ा करता है। मन्द फल का साधन करना उचित है परन्तु कर्णानुपात करने पर भी फल में भेद नहीं होता यह आचार्य ब्रह्मगुप्त का मत है +।

+ आचार्य ब्रह्मगुप्त का श्लोक यह है—

'त्रिज्याभक्त परिधि कर्णगुणो बाहुकोटिगुणकारा।
असकृन्मान्दे तत्फलमाद्यसम नात्र कर्णोऽस्मात्॥'

श्रीपतिका भी कथन है—

'त्रिज्यागुण श्रुतिहृत परिधिर्यतादेः कोट्योर्गुणोमृदुफलानयनेऽसकृन्यात्।
स्यात्मन्दमाद्यसममेव फल ततश्च कर्ण कृतो न मृदुकर्मणि तन्त्रकारैः॥'

फल विना नहीं होता इसलिये दोनों फलों का परस्परमें सम्बन्ध है। इसलिये प्रथम मन्दस्पष्ट को ही स्पष्ट मानकर उससे मन्द फलका साधन करके गणितागत मध्यग्रह में संस्कार करके मन्दस्पष्ट सिद्ध किया पुनः शीघ्र फल सिद्ध करके स्पष्ट कियागया है यों बार बार करने पर अन्तर निवृत्त होजाता है ॥ ३४ । ३५ ॥

इदानीं मन्दकर्मणि कर्णः किं न कृत इत्याशङ्क्योत्तरमाह—

स्वल्पान्तरत्वान्मृदुकर्मणीह
कर्णः कृतो नेति वदन्ति केचित्।
त्रिज्योद्धृतः कर्णगुणः कृतेऽपि
कर्णे स्फुटःस्यात्परिधिर्यतोऽत्र ॥ ३६ ॥
तेनाद्यतुल्यं फलमेति यस्मात्
कर्णःकृतो नेति च केचिदूचुः।
नाशङ्कनीयं न चले किमित्थं
यतो विचित्रा फलवासनात्र ॥ ३७ ॥

इह कर्णेन यत्फलमानीयते तदेव समीचीनम्। यन्मन्दकर्मणि कर्णो न कृतस्तत्स्वल्पान्तरत्वात्। मन्दफलानि हि स्वल्पानि भवन्ति। तदन्तरं चाति स्वल्पमिति केषांचित् पक्षः। ब्रह्मगुप्तोऽत्र कारणमाह। त्रिज्यभक्तः परिधिः कर्णगुण इत्यादि। मन्दकर्मणि मन्दकर्णतुल्येन व्यासार्धेन यद्वृत्तमुत्पद्यते तत्कक्षामण्डलम्। तेन ग्रहो गच्छति। यो मन्दपरिधिः पाठपठितः स त्रिज्यापरिणतः। अतोऽसौ कर्णव्यासार्धे परिणाम्यते। ततोऽनुपातः। यदि त्रिज्यावृत्तेऽयं परिधिस्तदा कर्णवृत्ते क इति। अत्र परिधेः कर्णोगुणास्त्रिज्या हरः। एवं स्फुटपरिधिस्तेन दोर्ज्या गुण्या भांशै ३६० र्भाज्या। ततस्त्रिज्यया गुण्या कर्णेन भाज्या। एवं सति त्रिज्यातुल्ययोः कर्णतुल्ययोश्च गुणहरयोस्तुल्यत्वान्नाशे कृते पूर्वफलतुल्यमेव फल

मत देखता है उस स्थान में भूपृष्ठगत द्रष्टा नहीं देखता। और मध्याह्न मे दोनों द्रष्टा समान ही देखते हैं। इस लिये नतकर्म कहा गया है। लम्बन साधन में उसकी जो युक्ति कही है वही यहां पर भी जाननी चाहिये ॥ ३८ ॥

इदानीं गतिफलाभावस्थानमाह—

कक्षामध्यगतिर्यग्रेखाप्रतिवृत्तसंपाते
मध्यैव गतिः स्पष्टा परं फलं तत्र खेटस्य ॥ ३९ ॥

कक्षावृत्तमध्ये या तिर्यग्रेखा तस्याः प्रतिवृत्तस्य च यः संपातस्तत्र मध्यैव गतिः स्पष्टा। गतिफलाभावात्। किं च तत्र ग्रहस्य परमं फलं स्यात्। यत्र ग्रहस्य परमं फलं तत्रैव गतिफलाभावेन भवितव्यम्। यतोऽद्यतनश्वस्तनग्रहयोरन्तरं गतिः। फलयोरन्तरं गतिफलम्। ग्रहस्य गतेर्वा फलाभावस्थानमेव धनर्णसंधिः। यत्पुनर्लल्लोक्तम्—

मध्यैव गतिः स्पष्टा वृत्तद्वययोगगे द्युचरे।

इति। तदसत्। नहि वृत्तद्वययोगे ग्रहस्य परमं फलम्।

भाषाभाष्य।

कक्षावृत्तगत याम्योत्तर रेखा और प्रतिवृत्त का जिस बिन्दु में संपात होता है वहां मध्यगति ही स्पष्टगति होती है। और वहीं पर ग्रहका परमफल भी होताहै ॥

उपपत्ति।

लल्ल श्रीपति आदि प्राचीन आचार्यों का मत है कि कक्षावृत्त और प्रतिवृत्त के संपात बिन्दुपर ग्रहोंकी स्पष्ट और मध्यमगति समान होती है और वही परमफल भी होता है। परन्तु भास्कराचार्य इसका प्रतिवाद करके निश्चित करते हैं कि कक्षावृत्तगत–याम्योत्तर रेखा और प्रतिवृत्त का जहां संपात होता है वहीं परम फल और मध्यगति ही स्पष्टगति होती है। वर्तमान और गत दिन सम्बन्धि ग्रह का अन्तर उसकी गति के समान होता है। और फलों का अन्तर गतिफल के तुल्य होता है। इसप्रकार यदि सूर्योदय काल में एक दो दिन सम्बन्धि ग्रहों का मध्यम स्थान क्रम से $प_1$, $प_2$, $प_3$ इत्यादि कल्पना किया जाय और ग्रहकी

जैसा, त्रि : मध्यप=कर्ण : स्पप, $\therefore$ स्पप= $\frac{\text{मध्यप}\times\text{क}}{\text{त्रि}}$,

स्पष्टनीचोच्चवृत्तगत भुजफल= $\frac{\text{मप}\times\text{क}}{\text{त्रि}}\times\frac{\text{दोर्ज्या}}{३६०}$;

त्रिज्यावृत्तगत फल= $\frac{\text{मप}\times\text{क}}{\text{त्रि}}\times\frac{\text{दोर्ज्या}}{३६०}\times\frac{\text{त्रि}}{\text{क}}=\frac{\text{मप}\times\text{दोर्ज्या}}{३६०}$ यह कर्णानुपातन करके साधित भुज फल के समान है, इस लिये मन्दफल साधन में कर्णानुपात नहीं किया । ब्रह्मसिद्धान्त के भाष्यकार चतुर्वेदाचार्य ने लिखा है कि ब्रह्मगुप्त का यह मत प्रतारणार्थ है । क्योंकि शीघ्र फलके साधन में कर्णानुपात नहीं किया । परन्तु भास्कराचार्य के मत से ब्रह्मगुप्त की कल्पना बहुत उत्तम है ॥ ३६ । ३७ ॥

इदानीं नतकर्मवासनामाह ।

* प्राक् पश्चात् प्रतिमण्डलस्थखचरं द्रष्टा कुमध्यस्थितः
कक्षायां खलु यत्र पश्यति नतं नो तत्र भूपृष्ठगः ।
मध्याह्ने तु कुमध्यपृष्ठगनरौ तुल्यं यतः पश्यत—
स्तेनोक्तं नतकर्मलम्बनविधौ या युक्तिरत्रापि सा ॥ ३८॥

स्पष्टम् ।

प्रभा ।

कुमध्यस्थितो द्रष्टा प्रतिमण्डलस्थखचरं प्राक् पश्चात् नतं यत्र खलु पश्यति तत्र भूपृष्ठगो द्रष्टा तं ग्रहं नतं न पश्यति । मध्याह्नेतूभावपि द्रष्टारौ दृक्सूत्रयोरैक्यात्समं पश्यतस्तेन कारणाल्लम्बनविधौ नतकर्मोक्तम् । तत्र या युक्तिरभिहिता सैवात्रापि बोध्येत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

भूमध्यगत द्रष्टा प्रतिवृत्तगत ग्रहको कक्षा में जिस स्थान में पूर्व किंवा पश्चि

* बहुतों का मत है कि भास्कराचार्य ने गणिताध्याय में जो नतकर्म लिखा है उसके साथ इस श्लोक का सम्बन्ध न होने से यह क्षेपक है ॥

भाषाभाष्य।

वंश शलाकाओं से प्रतिमण्डलादि वृत्त बनाकर उच्च और ग्रहको अङ्कित करके ग्रहकी वक्रआदि गतियोंको ज्योतिषी दिखलावे।

उपपत्ति।

उक्त नियमके अनुसार यदि उच्च और ग्रहों में विपर्यास मालूम पड़े तो ग्रहों की गति वक्रमार्गानुसार होगी। जब ग्रह अ अँ रेखा में आवे, तब वह अपने उच्च स्थान में होगा। और जब क, कं कँ में हो उस समय नीचगत होगा और जब व व इत्यादि में हो तब स्थिर होगा और जिस समय वं क वँ के ऊपर के चाप में ग्रह होगा तब उसकी गति सीधी होने से शीघ्र मालूम होगी। और वं क वँ नीचे के चाप में जब हो तब उसकी वक्रगति दिखलाई देती है ॥ ४० ॥

वक्रभङ्गि।

अपने उच्च स्थान अथवा नीच से गति कल्पना करके $फ_1$, $फ_2$, $फ_3$ इत्यादि फल कल्पना किया जाय ॥

तब, $प_1 \pm फ_1$, $प_2 \pm फ_2$, $प_3 \pm फ_3$, ये ग्रहों के स्पष्ट स्थान होंगे ।

$\therefore प_2 - प_1 \pm (फ_2 - फ_1)$,

$प_3 - प_2 \pm (फ_3 - फ_2)$,

$प_4 - प_3 \pm (फ_4 - फ_3)$; इसप्रकार क्रमसे तीनों दिनोंकी स्पष्टगति सिद्ध होगी । अब स्पष्ट और मध्यम गतिके अन्तरको गतिफल कहते हैं । इस लिये गतिफलके अभाव में—

$प_2 - प_1$, $प_3 - प_2$; इत्यादि स्पष्टगति के भाग होंगे जोकि मध्यमगति के समान है । और शेष भाग $फ_2 - फ_1$, $फ_3 - फ_2$ इत्यादि गतिफल होंगे । जोकि क्रम से दो दिनके फलों का अन्तररूप है । इसप्रकार यह स्पष्ट है कि गतिफल फलके आश्रय पर है । परन्तु जब फल का मान बढ़ता है उस समय गतिफल घटता है इसलिये जब फल परम होताहै तब गतिफल का अभाव होजाता है । उस स्थिति में कक्षावृत्त गत याम्योत्तर रेखा जिस बिन्दुमें प्रतिवृत्तके साथ संपात करती है (देखो प्रतिवृत्तभङ्गि) वहां गतिफल शून्य होता है और उसी स्थान में मध्यम और स्पष्टगति आपस में समान होती हैं । यही भास्कराचार्य का मत है । दूसरों का मत भ्रमपूर्ण है ॥ ३६ ॥

इदानीं ग्रहस्य वक्रत्वं छेद्यके यथा शीघ्रं दृश्यते तदर्थमाह—

वंशोद्भवाभिः प्रतिमण्डलाद्यं
कृत्वा शलाकाभिरिदं यथोक्तम् ।
प्रचाल्य तुङ्गं खचरं च गत्या
चक्रादि सर्वं खलु दर्शयेद् द्राक् ॥ ४० ॥

वंशशलाकाभिश्छेद्यकं कृत्वा तत्राद्यतनस्फुटग्रहस्थानं चिह्नयित्वा द्वितीयदिन उच्चं ग्रहं चोच्चवशान्मेषादिं च प्रकल्प्यान्यत् स्फुटग्रहस्थानं चिह्न्यम् । तत्पूर्वचिह्नाद्यदि पृष्ठगतं तदा वक्रा गतिर्ज्ञेया ।

प्रभा।

तत्फले भुजांशफल इत्यर्थः। ऋणे सति मध्यमार्कोदयात्स्फुटार्कोदयः प्राक् पूर्वमेव भवति। एवं स्वे धने तस्मात्कालादनन्तरमस्माद् भुजांशफलसम्बन्धि फलं क्षयः स्वं वा ग्रहे युक्तियुक्तं सयुक्तिकं निरुक्तं प्रतिपादितमस्तीत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

भुजांशफल ऋण होनेपर मध्यम सूर्योदय के पहिले और धन होनेपर बाद स्पष्ट सूर्योदय होताहै। इस लिये भुजांशफलसम्बन्धि असुओं का ग्रह में ऋण, धन संस्कार ठीक कहागया है।

उपपत्ति।

इस विधिकी उपपत्ति आचार्य ने गणिताध्याय में लिखी है। ये भुजांशफल सम्बन्धि असुकाल समीकरण के उस भागके तुल्य हैं जो सूर्यकी क्रान्तिवृत्त में अतुल्यगति से उत्पन्न होताहै॥ ४३॥

इदानीं छेद्यकोपसंहारेण गणकप्रज्ञां वर्णयन्नाह—

ये दर्भगर्भाग्रधियोऽत्र तेषां
स्याच्छेद्यकार्थः परमाणुरूपः।
येऽन्ये जडाः कुण्ठधियश्च तेषां
स्यादिन्द्रवज्राहतपक्षतुल्यः॥ ४४॥

इन्द्रवज्राहतपक्षः पर्वतस्तत्तुल्यच्छेद्यकार्थो जडानाम्। इन्द्रवज्रा छन्दश्च सूचितम्। शेषं स्पष्टम्।

इति श्रीभास्करीयेगोलभाष्येमिताक्षरेस्फुटगतिवासनायां
छेद्यकाधिकारः।

अत्र ग्रन्थसंख्या २४०।

प्रभा।

दर्भगर्भाग्रवद्धीमतिर्येषांते कुशाग्रबुद्धयः। तेषां कृते छेद्यकप्रपञ्चोऽत्यन्तंक्षुद्रभूतः। अन्येषां तु इन्द्रवज्राहतपक्षतुल्यः इन्द्रवज्रेणा-

इदानीं केन्द्रसंज्ञां स्फुटकक्षां चाह—

वृत्तस्य मध्यं किल केन्द्रमुक्तं
केन्द्रं ग्रहोच्चान्तरमुच्यतेऽतः।
यतोऽन्तरे तावति तुङ्गदेशा-
न्नीचोच्चवृत्तस्य सदैव केन्द्रम् ॥ ४१ ॥

ग्रहस्य कक्षा चलकर्णनिघ्नी
स्फुटा भवेद्व्यासदलेन भक्ता।
तद्व्यासखण्डान्तरितः कुमध्यात्
स भ्राम्यते हि प्रवहानिलेन ॥ ४२ ॥

श्लोकद्वयमपि स्पष्टम्।

प्रभा।

वृत्तस्य मध्यमित्यादि स्फुटम्। चलकर्णः स्वशीघ्रकर्णस्तेन तस्याः स्फुटकक्षाया यद्व्यासखण्डं त्रिज्यातेनान्तरितः।

भाषाभाष्य।

वृत्तके मध्यको केन्द्र कहते हैं। इसीलिये ग्रह और उसके अन्तरको भी केन्द्र कहते हैं। क्योंकि उसमें केन्द्र तुल्य अन्तर पर नीचोच्चवृत्तका केन्द्र रहता है। ग्रहकक्षा को शीघ्रकर्ण से गुणकर त्रिज्याका भाग देने से स्पष्ट होती है। भूमि के मध्यमें स्फुटकक्षा के व्यासार्ध समान दूरीपर प्रवहानिलद्वारा ग्रह भ्रमण करते हैं ॥ ४१ । ४२ ॥

इदानीं भुजान्तरकर्मोपपत्तिमाह—

मध्यमार्कोदयात्प्राक्स्फुटार्कोदयः
स्यादृणे तत्फले स्वे यतोऽनन्तरम्।
तेन भास्वत्फलोत्थासुजातं क्षयः
स्वं फलं भुक्तिगुणं निरक्षं ग्रहे ॥ ४३ ॥

स्पष्टं स्फुटगतौ व्याख्यातं च।

आदौ सारदारुमयीं यष्टिं कृत्वा तदर्धस्थाने तत्र प्रोतां पृथ्वीं सूक्ष्मां शिथिलां च विधाय तस्या बहिश्चन्द्रादीनां गोलान् यष्टया सह दृढान् बध्नीयात्। तेषां बहिर्नलिकासंस्थौ खदृग्गोलाविति साधारण्येनोक्तम् ॥

प्रभा।

ऋज्वीमवक्राम्। अपृथ्वीं सूक्ष्माम्। आरो भौमः। नलिकाश्रितौ खगोलदृग्गोलौ बध्नीयात्। गणक इति शेषः शेषं व्यक्तमेव।

भाषाभाष्य।

सरल, सुदृढ़ काष्ठ की ध्रुवयष्टि बनाकर उसके मध्यभाग मे पृथ्वी की कल्पना करना (यह भूगोल इसप्रकार ध्रुवयष्टि मे होना चाहिये जिसमे उस कील में गोल घूम सकें) उसके बाहर क्रम से चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, मङ्गल, बृहस्पति और शनि गोल दृढ़ता से बांधना। उसके ऊपर नलिका अर्थात् ध्रुवयष्टि से सम्बन्ध खगोल और दृग्गोल अलग २ बांधना चाहिये * ॥ २ ॥

इदानीं सविशेषमाह—

पूर्वापरं विरचयेत् सममण्डलाख्यं
याम्योत्तरं च विदिशोर्वलयद्वयं च।
ऊर्ध्वाध एवमिहवृत्तचतुष्कमेत-
दावेष्ट्य तिर्यगपरं क्षितिजं तदर्धे ॥ ३ ॥

एकं पूर्वापरमन्यद्याम्योत्तरं तथा कोणवृत्तद्वयमेवं वृत्तचतुष्टयमू-

---

* स्थिर नक्षत्रोंके गोलको यहापर भगोल कहते है। यह भगोल प्रत्येक ग्रहोंका अलग न मानकर सब ग्रहोंके लिये एकही मान लियागया है। इस भगोल में क्रान्तिवृत्त, विषुवद्वृत्त, अहोरात्रवृत्त आदि की कल्पना है जोकि अस्थिरवृत्त है। इसकारण यह भगोल ध्रुवनलिका में दृढ़ता से बांधागया है। जिसमें घूमतीहुई कीलके सहारे यह भी घूमे। इस गोलके बाद खगोल है। इसमें सममण्डल, मध्याह्नवृत्त, क्षितिजवृत्त आदि जोकि स्थानीय अक्षांश के अनुसार स्थिर रहते हैं, उनकी कल्पना कीगई है। इसप्रकार भगोल और खगोलको अलग अलग स्थिर करके एक तीसरा दृग्गोलकी भी कल्पना कीगई है। इसमें भगोल और खगोल के वृत्त आपस में मिलहुये रहते है इस दृग्गोलमें उक्त दोनों गोलों के संयोगसे जो गोलीय [illegible]र उत्पन्न होते है, वे स्पष्ट प्रतीत होते हैं।

हतौ पक्षौ यस्य सः पर्वत इत्यर्थः । पुरा सपक्षाः पर्वता आसन् शचीशेन पक्षहीनाःकृताः इति पौराणिकी गाथा ।

इति प्रभायां छेद्यकाधिकारः ।

भाषाभाष्य ॥

जो कुशाग्रबुद्धि पुरुष हैं उनके लिये छेद्यकविषय परमाणु के समान क्षुद्र है। और जो जड़ कुण्ठमति हैं उनको पर्वत के समान है ॥ ४४ ॥

छेद्यकाधिकार समाप्त हुआ ।

इदानीं गोलबन्धाधिकारमाह—

खुसरलवंशशलाकावलयैः श्लक्ष्णैः सचक्रभागाङ्कैः ।
रचयेद्गोलं गोले शिल्पे चानल्पनैपुणो गणकः ॥ १ ॥

स्पष्टम् ॥

प्रभा ।

स्फुटार्थोऽयं श्लोकः पूर्वापरोर्ध्वाधोभागेषु वृत्तसंपातबिन्दवःपूर्वादिस्वस्ति कपदेन परिभाष्यन्ते ।

भाषाभाष्य ।

पूर्व और पश्चिम संपात में गयाहुआ, खस्वस्तिकसे स्वदेशाक्षांशके तुल्य दक्षिण दिशा में झुका और उसी प्रमाण से गोलके नीचले भागमें उत्तरकी तरफ झुका हुआ साठ घड़ी से अङ्कित करके नाडीवलय को ज्योतिषी बनावे ॥ ५ ॥

इदानीं दृङ्मण्डलमाह—

ऊर्ध्वाधरस्वस्तिककीलयुग्मे
प्रोतं श्लथं दृग्वलयं तदन्तः ।
कृत्वा परिभ्राम्य च तत्र तत्र
नेयं ग्रहो गच्छति यत्र यत्र ॥ ६ ॥

खस्वस्तिके चाधःस्वस्तिके चान्तःकीलकौ कृत्वा तयोः प्रोतं श्लथं दृग्वलयं कार्यम् । तत्तु पूर्ववृत्तेभ्यः किञ्चिन्न्यूनं कार्यम् । यथा खगोलान्तर्भ्रमति । यद्येक एव ग्रहगोलस्तदेकमेव दृङ्मण्डलम् । यो यो ग्रहो यत्र यत्र वर्तते तस्य तस्योपरीदमेव परिभ्राम्य विन्यस्य दृग्ज्याशङ्क्वादिकं दर्शनीयम् । अथवा पृथक् पृथगष्टौ दृङ्मण्डलानि रचयेत् । तत्राष्टमं वित्रिभलग्नस्य । तच्च दृक्क्षेपमण्डलम् ।

प्रभा ।

स्पष्टम् ।

भाषाभाष्य ।

ऊर्ध्व और अध स्वस्तिक के कीलों में ढीला पोयाहुआ दृङ्मण्डल होता है । यह वृत्त उक्त सब वृत्तों के भीतर होता है और घुमाकर जहां जहां ग्रहबिम्ब होता है वहां वहां लाया जाता है ॥ ६ ॥

र्ध्वाधोरूपमावेष्ट्य तदर्धे वृत्तं क्षितिजाख्यं निवेशयेत्। अत्र याम्यो-त्तरवृत्त उत्तरक्षितिजादुपरि पलांशान्तर एकं ध्रुवचिह्नं कार्यम्। दक्षिणक्षितिजादधोऽन्यत्।

भाषाभाष्य।

पूर्व—पश्चिम दिशामें सममण्डल और दक्षिण—उत्तर दिशा में याम्योत्तर वृत्त और विदिशाओं में दो वृत्त ऊपर नीचे के क्रमसे करना। इसप्रकार चार वृत्त करके उनके आधे पर क्षितिजवृत्तकी कल्पना करनी ॥ ३ ॥

इदानीमुन्मण्डलमाह—

पूर्वापरक्षितिजसङ्गमयोर्विलग्नं
याम्ये ध्रुवे पललवैः क्षितिजादधःस्थे।
सौम्ये कुजादुपरि चाक्षलवैर्ध्रुवेत—
दुन्मण्डलं दिननिशोःक्षयवृद्धिकारि ॥ ४ ॥

समवृत्तक्षितिजयोर्यौ पूर्वापरौ संपातौ तयोर्ध्रुवयोश्च स... बध्यते तदुन्मण्डलसंज्ञम्। दिनरात्र्योर्वृद्धिक्षयौ तद्वशेन भवतः।

भाषाभाष्य।

पूर्वापर और क्षितिज रेखामें सङ्गत, दक्षिण ध्रुव की तरफ स्वदेशाक्षांशके समान क्षितिज से नीचे, और उत्तर ध्रुव में उसी प्रकार ऊंचे गया हुआ उन्मण्डल वृत्त बनाना। यह उन्मण्डल दिन—रात्रिके घटती, बढ़तीका कारण है ॥ ४ ॥

इदानीं विषुवन्मण्डलमाह—

पूर्वापरस्वस्तिकयोर्विलग्नं
खस्वस्तिकाद्दक्षिणतोऽक्षभागैः।
अधश्च तैरुत्तरतोऽङ्कितं च
पश्चात्र नाडीवलयं विदध्यात् ॥ ५ ॥

तयोरेव पूर्वापरसंपातयोर्विलग्नं तथा याम्योत्तरवृत्ते खस्वस्तिकाद्दक्षिणतोऽधः स्वस्तिकादुत्तरतोऽक्षांशान्तरे यद्वृत्तं निबध्यते तद्विषुवद्वृत्तम्।

खगोलवृत्तैर्वक्ष्यमाणैर्भगोलवृत्तैः क्रान्तिविमण्डलाद्यैर्यो निबध्यते स दृग्गोलः। कथमस्य दृग्गोलसंज्ञेति तदर्थमाह। द्विगोलजातमित्यादि। यतोऽग्राकुज्यासमशङ्क्वाद्यक्षक्षेत्राणि द्विगोलजातानि। भगोलवृत्तैः खगोलवृत्तमिलितैस्तान्युत्पद्यन्ते। भिन्नगोलबन्धे सम्यङ्नोपलभ्यन्त इति दृग्गोलः कृतः।

इति खगोलदृग्गोलबन्धौ।

प्रभा।

बद्ध्वा खगोल इत्यादि स्फुटम्। दृग्गोलोऽयमक्षक्षेत्रादिज्ञानार्थमत्यन्तोपयुक्तः। अत्रान्तर्द्विविधसूत्रसत्त्वाद् दृङ्मण्डलं बहिर्निवेश्यम्।

भाषाभाष्य।

खगोल के दोनों ध्रुवों में दो नलिकाएं बांधकर उस के आधार पर, खगोल के बाहर, दृग्गोल की रचना करना चाहिए। खगोल में क्रान्तिवृत्त, विमण्डल आदि भगोलीयवृत्तों से जो गोल बांधा जाता है वह दृग्गोल कहलाता है। दोनों गोल की क्षेत्रस्थिति दिखलाई देने से इसको दृग्गोल कहते हैं+ ॥ ८। ९ ॥

इदानीं भगोलबन्धमाह—

याम्योत्तरक्षितिजवत्सुदृढं विदध्या-
दाधारवृत्तयुगलं ध्रुवयष्टिबद्धम्।
षष्ट्यङ्कमत्र सममण्डलवत्तृतीयं
नाड्याह्वयं च विषुवद्वलयं तदेव ॥ १० ॥

यथा खगोले क्षितिजं याम्योत्तरं च तदाकारमपरमाधारवृत्तद्वयं ध्रुवयष्टिस्थं कृत्वा तदुपर्यन्यत्तृतीयं सममण्डलाकारं घटीषष्ट्या चाङ्कितं कार्यम्। तन्नाडीवृत्तं विषुवद्वृत्तसंज्ञं च।

+ यहांपर इस अधिकार के दूसरे श्लोक की टिप्पणी देखनी चाहिए।

अथ विशेषमाह—

ज्ञेयं तदेवाखिलखेचराणां
पृथक् पृथग्वा रचयेत्तथाष्टौ ।
दृङ्मण्डलं वित्रिभलग्नकस्य
दृक्क्षेपवृत्ताख्यमिदं वदन्ति ॥ ७ ॥

व्याख्यातमेवेदम् ।

प्रभा ।

लम्बनादिसाधनार्थं दृङ्मण्डलस्य दृक्क्षेपमण्डलमिति विशेषसंज्ञाकरणम् ।

भाषाभाष्य ।

इस एकही दृङ्मण्डल को सब ग्रहों के लिए समझना चाहिए । अथवा अलग अलग आठ दृङ्मण्डल बनाए जायँ, सात ग्रहों के लिए और आठवां वित्रिभलग्न के लिए । वित्रिभलग्न के दृङ्मण्डल को दृक्क्षेपमण्डल कहते हैं ॥ ७ ॥

इदानीमेवं खगोलमुक्त्वा दृग्गोलमाह—

बद्ध्वा खगोले नलिकाद्वयं च
ध्रुवद्वये तन्नलिकास्थमेव ।
बहिः खगोलाद्विदधीत धीमान्
दृग्गोलमेवं किल वक्ष्यमाणम् ॥ ८ ॥

भगोलवृत्तैः सहितः खगोलो
दृग्गोलसंज्ञोऽपममण्डलाद्यैः ।
द्विगोलजातं खलु दृश्यतेऽत्र
क्षेत्रं हि दृग्गोलमतो वदन्ति ॥ ९ ॥

तस्मिन् खगोले ध्रुवचिह्नयोर्नलिकाद्वयं बद्ध्वा तन्नलिकाधारमेव खगोलाद्बहिरङ्गुलत्रयान्तरे दृग्गोलं रचयेत् । कथितैः

क्रान्तिपात और ग्रहों के स्पष्ट विक्षेपपात विलोम भ्रमण करते हैं। इनके स्थान भी इसी में अङ्कित करना चाहिए ॥ ११ ॥

इदानीं क्रान्तिवृत्तस्य निवेशनमाह—

क्रान्तिपाते च पाताद्भषट्कान्तरे
नाडिकावृत्तलग्नं विदध्यादिदम्।
पाततः प्राक् त्रिभे सिद्धभागैरुदग्-
दक्षिणे तैश्च भागैर्विभागेऽपरे ॥ १२ ॥

क्रान्तिपातचिह्नात् षड्भेऽन्तरेऽन्यचिह्नं कार्यम्। ते चिह्ने नाडीवृत्तेन संसक्ते कृत्वा पातचिह्नादग्रतस्त्रिभेऽन्तरे नाडीवृत्ताद्भागचतुर्विंशत्योत्तरतो यथा भवत्यपरविभागे त्रिभेऽन्तरे दक्षिणतश्च तैर्भागैर्यथाभवति तथा बध्नीयात्।

प्रभा।

स्फुटार्थोऽयं श्लोकः। सिद्धभागपदं परमक्रान्त्यंशोपलक्षकं तेन यदा यावती परमक्रान्तिरुपलभ्यते तदा तावत्येव ग्राह्येति तत्त्वम्।

भाषाभाष्य।

क्रान्तिपात-चिह्न से छः राशि के अन्तर पर दूसरा चिह्न करना, वे नाडीवृत्त के लगान होने चाहिए। पातचिह्न से तीन राशि की दूरी पर आगे नाडीवृत्त से चौबीस अंश उत्तर हटाकर, इसी प्रकार पश्चिम तरफ दक्षिण दिशा में उतने ही अंश की दूरी पर क्रान्तिवृत्त को बांधना। (गोल देखो) ॥ १२ ॥

इदानीं विमण्डलमाह—

नाडिकामण्डले क्रान्तिवृत्तं यथा
क्रान्तिवृत्ते तथा क्षेपवृत्तं न्यसेत्।
क्षेपवृत्तं तु राश्यङ्कितं तत्र च
क्षेपपातेषु चिह्नानि कृत्वोक्तवत् ॥ १३ ॥

प्रभा ।

स्फुटार्थोऽयं श्लोकः । विषुवद्वलयं निरक्षपूर्वापरशब्देनापि परिभाष्यते ।

भाषाभाष्य ।

याम्योत्तरवृत्त और क्षितिजवृत्त के समान ध्रुवयष्टि—सम्बद्ध दो आधारवृत्त रचना करना । सममण्डल की भांति साठघटिका से अङ्कित करके, तीसरा नाडीवृत्त उक्त दोनों वृत्तों के ऊपर कल्पना करना । यह नाडीवृत्त ही विषुवद्वृत्त कहलाता है ॥ १० ॥

इदानीं क्रान्तिवृत्तमाह—

क्रान्तिवृत्तं विधेयं गृहाङ्कं भ्रम-
त्यत्र भानुश्च भार्द्धे कुभा भानुतः ।
क्रान्तिपातः प्रतीपं तथा प्रस्फुटाः
क्षेपपाताश्च तत्स्थानकान्यङ्कयेत् ॥ ११ ॥

अथान्यत् तत्प्रमाणमेव वृत्तं कृत्वा तत्र मेषादिं प्रकल्प्य द्वादशराशयोऽङ्क्याः । तत्क्रान्तिवृत्तसञ्ज्ञम् । तस्मिन् वृत्ते रविर्भ्रमति । तथा रवेर्भार्द्धान्तरे भूभा च । तथा तत्र क्रान्तिपातो मेषादेर्विलोमं भ्रमति । तथा ग्रहाणां विक्षेपपाताः प्रस्फुटा विलोमं भ्रमन्ति । अतः क्रान्तिपातादीनां स्थानानि तत्राङ्क्यानि ।

प्रभा ।

क्रान्तिपातः प्रतीपमर्थाद्विलोमं भ्रमति । एवमेव ग्रहाणा विक्षेपपाता अपि । शेषं स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

द्वादश राशियों से अङ्कित करके क्रान्तिवृत्त की कल्पना करनी इस में सूर्य्य भ्रमण करता है । और सूर्य्य से छः राशि के अन्तर पर भूभा भ्रमण करती है ।

वृत्त में विमण्डल का स्थापन करना। इस विमण्डल को द्वादश राशियों से अङ्कित करके उस में विक्षेपपात को अङ्कित करना। क्रान्तिवृत्त और विमण्डल का छ छ राशियों पर संपात स्थिर करके, क्रान्तिवृत्त से उत्तर क्षेपपात से तीन राशि के अन्तर पर और स्फुटशरांश के समान दूरीपर, इसीप्रकार दक्षिण में तीन राशि के दूरी पर और क्रान्तिवृत्त से स्फुटशरांश के तुल्य अन्तर पर विमण्डल को स्थिर करना। ग्रहों के स्पष्टशरांश, त्रिज्यागुणित और शीघ्रकर्णभक्त स्पष्ट होते हैं। छ ग्रहों के विमण्डल अलग अलग कल्पना करना चाहिए। अपने अपने वृत्तों में चन्द्रादि ग्रह भ्रमण करते हैं।

उपपत्ति।

चन्द्रपात और उसका स्पष्टस्थान चन्द्र के कक्षावृत्त में रहता है। इसलिए विक्षेपकेन्द्र कक्षावृत्त में गिनना चाहिए। यों चन्द्र का शर, विक्षेपकेन्द्र के अनुसार सिद्ध करने से, कक्षावृत्त-केन्द्र और भूकेन्द्रानुसार समानही सिद्ध होगा। परन्तु और ग्रहों के पात और मन्दस्पष्टस्थान उनके शीघ्रप्रतिवृत्त में रहते हैं। इसलिए उनके शर विक्षेपकेन्द्र से सिद्ध करने पर शीघ्रप्रतिवृत्तीय मन्दस्पष्टस्थान और पातसम्बन्धी सिद्ध होंगे। और वे शीघ्रप्रतिवृत्तीय केन्द्राभिप्राय से मध्यमशर होंगे। जोकि ग्रहों के सूर्यकेन्द्रकशर के समान होते हैं।

जैसा कि, इस क्षेत्र में 'नघ' क्रान्तिवृत्त का चतुर्थांश है। 'नअ' शीघ्रप्रतिवृत्त, 'न' पातस्थान और 'प' ग्रहस्थान है।

'नब' क्रान्तिवृत्त के धरातल पर 'अब' और 'पंप' लम्बरूप खींचना। तब, 'अब' परमशर और 'पंप' ग्रहशर। शीघ्रप्रतिवृत्तकेन्द्रगतद्रष्टा, ग्रह को 'पंप' तुल्य दूरीपर देखेगा। इसलिए यह शर मध्यम कहलाता है।

यह शर यों सिद्ध होता है,—

ज्यानअ . ज्याअब : ज्या नपं : ज्या पंप,

अथवा,

त्रि × ज्या पंप = ज्या अब × ज्या नपं,

इस लिये 'पपं' के साधन में 'अब' का ज्ञान पहिले होना चाहिए। अ-

क्रान्तिवृत्तस्य विक्षेपवृत्तस्य च
क्षेपपाते सपड्भे च कृत्वा युतिम्।
क्षेपपाताग्रतः पृष्ठतश्च त्रिभे
क्षेपभागैः स्फुटैः सौम्ययाम्ये न्यसेत् ॥ १४ ॥
शीघ्रकर्णेन भक्तास्त्रिभज्यागुणाः
स्युः परक्षेपभागा ग्रहाणां स्फुटाः।
क्षेपवृत्तानि पण्णां विदध्यात् पृथक्
स्वस्ववृत्ते भ्रमन्तीन्दुपूर्वा ग्रहाः ॥ १५ ॥

अस्य श्लोकस्य समग्रस्य व्याख्यानम्। यथा क्रान्तिवृत्तं पृथक् पृथक् कृतमेवं विमण्डलमपि राश्यङ्कं पृथक् कृत्वा तत्र मेषादेर्व्यस्तं स्फुटं क्षेपपातं दत्त्वाग्रे चिह्नं कार्यम् । अथ क्रान्तिवृत्तस्य विमण्डलस्य च क्षेपपातचिह्नयोः संपातं कृत्वा तस्मात् पड्भान्तरेऽन्यं च संपातं कृत्वा क्षेपपाताग्रतस्त्रिभेऽन्तरे क्रान्तिवृत्तादुत्तरतः स्फुटैः क्षेपभागैः पृष्ठतश्च त्रिभेऽन्तरे तैरेव भागैर्दक्षिणतः स्थिरं कृत्वा विमण्डलं निवेशनीयम् । अथ पठिता ये विक्षेपभागास्ते त्रिज्यागुणाः शीघ्रकर्णेन भक्ताः स्फुटा ज्ञेयाः । अत्रानुपातः यदि कर्णाग्र एतावन्तस्तर्हि त्रिज्याग्रे कियन्त इति । यतो भ गोले त्रिज्यैव व्यासार्धम्। एवं चन्द्रादीनां पड्विमण्डलानि क र्याणि । स्वस्वविमण्डले ग्रहा भ्रमन्ति।

प्रभा।

आचार्येणैव व्याख्याता इमे श्लोकाः । स्रग्विणीवृत्तानि ।

भाषाभाष्य ।

जिस प्रकार नाडीवृत्त में क्रान्तिवृत्त का संनिवेश किया गया है, वैसेही क्रा

सब पहिले क्षेत्र मे

ज्या नअ : ज्या अव :: ज्या नपं : ज्या पपं

$$\therefore \text{ज्या अव} = \frac{\text{ज्या पंप} \cdot \text{ज्या नअ}}{\text{ज्या नपं}}$$

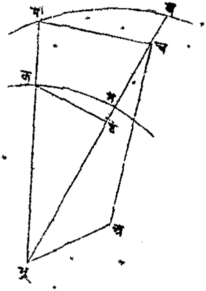
अथवा, $\text{अव} = \frac{\text{पंप} \cdot \text{त्रि}}{\text{नपं}}$;

उत्थापन से

$$\text{अव} = \frac{\text{पश} \cdot \text{नप} \cdot \text{त्रि}}{\text{शीक} \cdot \text{नप}} = \frac{\text{पशत्रि}}{\text{शीक}} \text{ ।}$$

इस प्रकार 'शीघ्रकर्णेन भक्ता–इत्यादि उपपन्न हुआ ॥ १३ । १५ ॥

क्षेत्र ।



इदानीं क्रान्ति विक्षेपं चाह—

नाडिकामण्डलात्तिर्यगत्रापमः
क्रान्तिवृत्तावधिः क्रान्तिवृत्तान्छरः ।

र्थात् शरसाधन में परमशर की आवश्यकता है। और 'नप' पातस्थान से ग्रह की दूरी, जोकि विक्षेपकेन्द्र कहलाता है। यह ग्रह का मन्दस्पष्टस्थान और पात के मध्यस्थान स्वरूप है। ग्रहशर, भूकेन्द्राभिप्राय से स्पष्ट कहलाता है। इस स्पष्टशर का साधन इस प्रकार है,—

'भू' भूकेन्द्र, 'अ' शीघ्रप्रतिवृत्तकेन्द्र, 'प' ग्रह का मन्दस्पष्टस्थान। और 'भूप' शीघ्रकर्ण जोकि कक्षावृत्त को 'क' बिन्दु पर काटता है। यों 'क' बिन्दु कक्षावृत्तगत ग्रह का स्पष्टस्थान होगा। 'अ' केन्द्र से पच वृत्त और 'भू' केन्द्र से कम वृत्त करना। इन दोनों वृत्तों के धरातल क्रान्तिवृत्त पर लम्बरूप होंगे। इस प्रकार, प च मध्यमशर और कम स्पष्टशर होगा। प च और कम रेखाएं क्रान्तिवृत्त के धरातल पर लम्बरूप खींची गई हैं। और ये दोनों रेखाएं भू च रेखा पर भी समकोण उत्पन्न करेंगी। इस प्रकार, प च मध्यमशर की ज्या और क ट स्पष्टशरज्या। अब, भू प च और भू क ट त्रिभुजों में,

$$\text{भूप} : \text{पच} :: \text{भूक} : \text{कट};$$

$$\therefore \text{कट} = \frac{\text{भूक} \times \text{पच}}{\text{भूप}};$$

$$\text{अथवा, स्पष्टशरज्या} = \frac{\text{त्रि} \times \text{मशरज्या}}{\text{शीक}} ।$$

$$\text{परन्तु, मध्यमशरज्या} = \frac{\text{ज्याअव} \times \text{ज्यानपं}}{\text{त्रि}},$$

$$\therefore \text{स्पष्टशरज्या} = \frac{\text{त्रि}}{\text{शीक}} \times \frac{\text{ज्याअव} \times \text{ज्यानपं}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{ज्याअव} \times \text{ज्यानपं}}{\text{शीक}} ।$$

ग्रहशर का मान छोटा होता है, इसलिए सिद्धान्तों में उसकी ज्या के स्थान चाप का ग्रहण किया गया है। इस प्रकार स्पष्टशर $= \frac{\text{अव} \times \text{नपं}}{\text{शीक}}$, या, $= \frac{\text{परा} \times \text{नपं}}{\text{शीक}}$।

यों विक्षेपकेन्द्रदोर्ज्या को परमशर से गुणकर शीघ्रकर्ण का भाग देने से ग्रह स्पष्टशर सिद्ध होता है। अब मानना किया कि—

न = स्पष्टशर,
नपं = विक्षेपकेन्द्र,
पेर = स्पष्टशर,
अव = परमशर,

इस परमक्रान्ति के कोण का ज्ञान उत्तरायण और दक्षिणायन के आरम्भ में मध्याह्न नतांश के वेध से ज्ञात होता है। कल्पना किया न, नं दोनों नतांश और 'अ' स्थानीय अक्षांश है। अब, यदि 'स' किसी अयन में सूर्य का स्थान मानें तो उसकी क्रान्ति 'सम' होगी। यह क्रान्तिवृत्त और नाडीवृत्त सम्पात से बना 'प' कोण के मान के तुल्य है। क्योंकि दो महावृत्तों के सम्पातोत्पन्न कोण का मान जो उन वृत्तों पर लम्बरूप होता है, उस के चाप में गिना जाता है। यों यह क्रान्ति ध्रुवप्रोतवृत्त में, समझनी चाहिए।

नतांश और क्रान्ति के योग, वियोग से अक्षांश होता है यह उपपत्ति से सिद्ध है।

इसलिए, अ=न+प, उत्तरायण मे.
अ=नं−प, दक्षिणायन में.

अन्तर करने से 'प' का मान हुआ, $प=\frac{नं-न}{२}$। वसन्तसम्पात मे सूर्य की क्रान्ति शून्य होती है। उस के बाद हर दिन, सूर्य की वार्षिकगति के कारण उस की क्रान्ति कुछ काल तक बढ़ती है। वह प्रायः २१ जून तक बढ़ती चली जाती है, क्योंकि उस समय तक परमक्रान्ति होजाती है। फिर क्रम से घटने लगती है और शारदसंपात में करीब २३ सितम्बर तक शून्य होजाती है।

इस प्रकार, सूर्य की क्रान्ति, वसन्तसंपात =0
" " परम उत्तर=२३, २८', उत्तर.
" " शारदसंपात=0
" " परम दक्षिण=२३, २८', दक्षिण.

इसप्रकार वर्ष में क्रान्ति की घटती बढ़ती हुआ करती है। इस स्थिति में सूर्य का शर शून्य मानागया है। इस लिए मध्यमक्रान्ति ही स्पष्ट है। आजकल युरोपियन विद्वानों ने सूर्य का शर भी करीब १" निश्चित किया है ॥ १६ ॥

इदानीं क्रान्तिपातमाह—

विषुवत्क्रान्तिवलययोः सम्पातः क्रान्तिपातः स्यात्।
तद्भगणाः सौरोक्ता व्यस्ता अयुतत्रयं कल्पे ॥ १७ ॥
अयनचलनं यदुक्तम्मुञ्जालाद्यैः स एवायम्।
तत्पक्षे तद्भगणाः कल्पे गोऽङ्गर्तुनन्दगोचन्द्राः
(१९९६६९) ॥ १८ ॥

क्षेपवृत्तावधिस्तिर्यगेवं स्फुटो
नाडिकावृत्तखेटान्तरालेऽपमः ॥ १६ ॥

क्रान्तिवृत्ते यत्स्फुटग्रहस्थानं तस्य नाडीवृत्तात्तिर्यगन्तरं सा क्रान्तिः। अथ विमण्डले च यत् ग्रहस्थानं तस्य क्रान्तिवृत्ताद्यत् तिर्यगन्तरं स विक्षेपः। अथ विमण्डलस्थग्रहस्य नाडीवृत्ताद्यः त्तिर्यगन्तरं सा स्फुटा क्रान्तिः।

प्रभा।

नाडिकामण्डलादित्यादि स्फुटम्। तिर्यक्पदेन लम्बरूपता बोध्या।

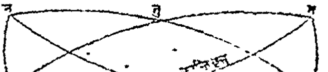
भाषाभाष्य।

नाडीवृत्त से क्रान्तिवृत्त तक तिरछा अन्तर क्रान्ति कहलाती है। और क्रान्तिवृत्त से विक्षेपवृत्त तक शर होता है। इसप्रकार नाडीवृत्त और ग्रह के बीच में स्पष्टक्रान्ति होती है।

उपपत्ति।

क्रान्तिवृत्त और नाडीवृत्त के धरातलों के संपात से जो कोणं उत्पन्न होता है उसका मान परमक्रान्ति के तुल्य है। साम्प्रत में युरोपियनवेधानुसार उसका मान २३,२८′ है। उक्त दोनों वृत्तों का सम्पात दो स्थान अर्थात् मेष और तुल में, गोल में स्पष्ट है। इन दोनों सम्पातबिन्दुओं में जब सूर्य आता है तब उसका उदय और अस्त ठीक पूर्व और पश्चिम में होकर दिन, रात समान होते हैं, जैसा कि निरक्ष में हुआ करता है। क्योंकि उस दिन अहोरात्रवृत्त का आधाभाग क्षितिज के ऊपर और आधा नीचे होने से सारी पृथ्वी में दिन, रात की स्थिति समान होती है।

क्षेत्र।



ष्यति तदा महामतिमन्तो ब्रह्मगुप्तादीनां समानधर्माण एवोत्पत्स्यन्ते। ते तदुपलब्ध्यनुसारिणीं गतिमुररीकृत्य शास्त्राणि करिष्यन्ति। अत एवायं गणितस्कन्धो महामतिमद्भिर्धृतः सन्ननाद्यन्तेऽपि काले खिलत्वं न याति। अतोऽस्य क्रान्तिपातस्य भगणाः कल्पेऽयुतत्रयं तावत् सूर्यसिद्धान्तोक्ताः। तथा मुञ्जालाद्यैर्यदयनचलनमुक्तं स एवायं क्रान्तिपातः। ते गोऽङ्गर्तुनन्दगोचन्द्रा १९९६६९ उत्पद्यन्ते। अथ च ये वा ते वा भगणा भवन्तु। यदा येंऽशा निपुणैरुपलभ्यन्ते तदा स एव क्रान्तिपात इत्यर्थः। तं विलोमगं क्रान्तिपातं ग्रहे प्रक्षिप्य क्रान्तिः साध्या।

भाषाभाष्य।

नाडीवृत्त और क्रान्तिवृत्त के संपात को क्रान्तिपात कहते हैं। सूर्यसिद्धान्त में, क्रान्तिपातभगणविलोम तीन अयुत कल्प में कहे हैं। मुञ्जाल आदि आचार्यों ने जो अयनचलन का निरूपण किया है वह यही है। उनके मत से कल्प में १९९६६९ भगण होते हैं। इन भगणों से जो सांप्रत में अयनांश सिद्ध हो उनका ग्रह में संस्कार करके क्रान्तिसाधन करना चाहिए। क्रान्ति से चर, उदय, आदि सिद्ध होते हैं। यों लग्न के साधन में चरखण्ड का संस्कार करना चाहिए।

उपपत्ति।

क्षेत्रमिति के अनुसार दो वृत्तों का संपात दो बिन्दुओं पर होता है, इस नियम से विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्त का संपात दो स्थान पर सिद्ध है। स्वभावशक्ति से संपातबिन्दु चल है, इस कारण यह बिन्दु सर्वदा चला करता है अर्थात् उक्त दोनों वृत्तों के संपातबिन्दु सरकते रहते हैं। इस संपात को कोई आचार्य क्रान्तिपात कहते हैं। उन का यह अभिप्राय है—किसी काल में अश्विनी की योगतारा और उक्त संपात एक स्थान पर था, तब ठीक चित्रा के पूर्वार्द्ध में अर्थात् $१३\frac{१}{३} \times १३\frac{१}{२} = १८०$ अंशोंपर दूसरा संपात होता था और पुनर्वसु के तीसरे पाद $१३\frac{१}{३} \times ६\frac{३}{४} = ९०$ में दक्षिणायनबिन्दु, उत्तराषाढ के पहले पाद $१३\frac{१}{३} \times २०\frac{१}{४} = २७०$ में उत्तरायणबिन्दु होता था। उस काल को अयनांशाभाव काल कहते हैं। जब स्वभावशक्ति से प्रेरित संपातबिन्दु अश्विनीयोगतारा को छोड़कर आगे चला और वेधसाधन से उसका चलन ज्ञात हुआ तब से यह काल अयनांशसत्ताकाल कहलानेलगा। और पहला संपातबिन्दु, स्थिरमेषादि–निरयणचिह्न से तथा तत्तत्कालिक संपातबिन्दु, चलमेषादि–सायनचिह्न से व्यवहृत होनेलगा। और स्थिरमेषादि से चलमेषादि तक जो क्रान्तिवृत्त में चापाकार

तत्सञ्जातं पातं क्षिप्त्वा खेटेऽपमः साध्यः।
क्रान्तिवशाच्चरमुदयाश्चरदललग्नापमे ततः क्षेप्यः ॥१६॥

क्रान्त्यर्थं पातः क्रान्तिपातः। पातो नाम सम्पातः। कयोः। विषुवत्क्रान्तिवलययोः। न हि तयोर्मेषादावेव संपातः। किन्तु तस्यापि चलनमस्ति। येऽयनचलनभागाः प्रसिद्धास्त एव विलोमगस्य क्रान्तिपातस्य भागाः। मेषादेः पृष्ठतस्तावद्भागान्तरे क्रान्तिवृत्ते विषुवद्वृत्तं लग्नमित्यर्थः। नहि क्रान्तिपातो नास्तीति वक्तुं शक्यते। प्रत्यक्षेण तस्योपलब्धत्वात्। उपलब्धिप्रकारमग्रे वक्ष्यति। तत्कथं ब्रह्मगुप्तादिभिर्निपुणैरपि नोक्त इति चेत्। तदा स्वल्पत्वात्तैर्नोपलब्धः। इदानीं बहुत्वात् साम्प्रतिकैरुपलब्धः। अत एव तस्य गतिरस्तीत्यवगन्तव्यम्। यद्येवमनुपलब्धोऽपि सौरसिद्धान्तोक्तत्वादागमप्रामाण्येन भगणपरिध्यादिवत् कथं तैर्नोक्तः। सत्यम्। अत्र गणितस्कन्धे उपपत्तिमानेवागमः प्रमाणम्। तर्हि मन्दोच्चपातभगणा आगमप्रामाण्येनैव कथं तैरुक्ता इति न च वक्तव्यम्। यतो ग्रहाणां मन्दफलाभावस्थानानि प्रत्यक्षेणैवोपलभ्यन्ते। तान्येव मन्दोच्चस्थानानि। यान्येव विक्षेपाभावस्थानानि तान्येव पातस्थानानि किन्तु तेषां गतिरस्ति नास्ति वेति सन्दिग्धम्। तत्र मन्दोच्चपातानां गतिरस्ति। चन्द्रमन्दोच्चपातवदित्यनुमानेन सिद्धा सा च कियती तदुच्यते। यैर्भगणैरुपलब्धिस्थानानि तानि गणितेन नागच्छन्ति। तद्भगणसंभवा वार्षिकी दैनन्दिनी वा गतिर्ज्ञेया। नन्वेवं यद्यन्यैरपि भगणैस्तान्येव स्थानान्यागच्छन्ति तदा कतरस्या गतेः प्रामाण्यम्। सत्यम्। तर्हि सांप्रतिकोपलब्ध्यनुसारिणी कापि गतिरङ्गीकर्तव्या। यदा पुनर्महता कालेन महदन्तरं भवि-

विषुवदपक्रममण्डलसपाते प्राचि मेषादि ।
पश्चात्तुलादिरनयोरपक्रमासम्भव प्रोक्त ॥
राशित्रयान्तरेऽस्मात्कर्कादिरुक्रमान्मृगादिश्च ।
तत्र च परमा क्रान्तिर्जिनभागमिताथ तत्रैव ॥
निर्दिष्टोऽयनसन्धिश्चलनं तत्रैव सम्भवति ।
तद्भगणा कल्पे स्युर्गोरसरसगोङ्कचन्द्रमि ॥ ॥,

इस के अनुसार अयनांशगति यों सिद्ध होती है— $\frac{१९९६६९ \times ३६० \times ६० \times ६०}{४३२००००००}$

$= \frac{१९९६६९ \times ३}{१००००} = ५९''$ । ९″ और 'त्रिंशत्कृत्य' इस शुद्ध सूर्यसिद्धान्त के पाठ के अनुसार $\frac{६००}{४३२००००} = \frac{१''}{७२००}$ । $\frac{१ \times १०८ \times ६० \times ६०}{७२००} = ५४''$ यह अयनांशगति होती है । और आधुनिक युरोपियनमतसे ५०·२४ विकला गतिहै १।इसके अनुसार ७२ वर्ष में १ पूरा होता है और द्वादश राशिपर भ्रमण $\frac{३६० \times ६६ + ६०}{५०'' २४}$ २६,०००वर्षों में होताहै ॥ १७ । १८ ॥

इदानीं विक्षेपपातानाह—

एवं क्रान्तिविमण्डलसंपाताः क्षेपपाताः स्युः ।
चन्द्रादीनां व्यस्ताः क्षेपानयने तु ते योज्याः ॥ २० ॥
मन्दस्फुटो द्राक् प्रतिमण्डले हि
ग्रहो भ्रमत्यस्य च तस्य पातः ।
पातेन युक्ताद्गणितागतेन
मन्दस्फुटात्खेचरतः शरोऽस्मात् ॥ २१ ॥
पातेऽथवा शीघ्रफलं विलोमं
कृत्वा स्फुटात्तेन युताच्छरोतः ।
चन्द्रस्य कक्षावलये हि पातः
स्फुटाद्विधोर्मध्यमपातयुक्तात् ॥ २२ ॥

तथा क्रान्तिवृत्तविमण्डलयोः संपातः क्षेपपातः । तं ग्रहे प्रक्षिप्य क्षेपः साध्यः । एतदुक्तं भवति । क्रान्तिपातः प्रसिद्धः । यथा तं ग्रहे

प्रदेश बनता रहता है उसको क्रान्तिपात-अयनग्रह शब्द से कहन लग और गोल स्थिति के अनुरोध से स्थिरमेषादि से आगत ग्रह में उस चापाकार प्रदेश के अंशोंको संस्कार करके उसको सायनग्रहण कहने लगे, इत्यादि। कालक्रम से अयनांशवश जब अश्विनी आदि ताराओं का चलन हुआ तब अश्विनीयोगतारा भी चलित हुई, ऐसी दशा में उक्त सम्पातबिन्दु का परिचायक कोई न रहा अर्थात् वह बिन्दु क्षेत्र-मितिपरिभावित बिन्दुस्वरूप में आकर अदृश्य होगया। और अयनांश के विषय में मतभेद फैलने और निरयणगणनारम्भस्थान स्थिरमेषादि केवल अनुमानगम्य हो गया। संपातबिन्दु के दैनंदिनादिगतिमान में अनेक मतभेद हैं और राशिभोग में यों मतभेद है कि सूर्यसिद्धान्त के अनुसार संपातबिन्दु स्थिरमेषादि से २७ अंश पश्चिम जाकर फिर उसी क्रम से लौटकर स्थिरमेषादि में आजाता है और फिर २७ अंश पूर्व जाता है वहा से फिर लौटकर स्थिरमेषादिमें आता है। यों चार भ्रमण २७+२७+२७+२७=१०८का एक भगण माना जाताहै। युग में ६०० भगण माने हैं और कल्प में ६००×१०००=६००००० भगण होते हैं। परन्तु प्रकृत में आचार्य के 'व्यस्ता अयुतत्रयं कल्पे' इस वाक्य के अनुसार कल्प में ३०००० ये भगण सिद्ध होते हैं। एकवाक्यता करने के लिये कई एक मतिमान् 'व्यस्ता विना विंशत्या अस्ता गुणिता:' ऐसी व्याख्या करके उक्त ३०००० इन भगणों को २० से गुणकर सूर्यसिद्धान्त के साथ एकवाक्यता करते हैं ३००००×२०=६०००००। मेरे विचार से उक्त एकवाक्यता असंगत प्रतीत होती है क्योंकि व्यस्तशब्द की उक्त व्याख्या आचार्य की लेखशैली से विरुद्ध है। यह अवश्य सम्भव है कि आचार्य के समय में 'त्रिंशत्कृत्य:' इस शुद्धपाठ के स्थान में 'त्रिंशत्कृत्व:' यह प्रामादिक पाठ प्रचलित रहाहो, जिसकी चर्चा रङ्गनाथ ने सूर्यसिद्धान्त के टिप्पण में की है। यों आचार्यलिखित सूर्यसिद्धान्त के मत से युगमे ३० भगण कल्प में ३०×१००० =३०००० भगण होते हैं। अत एव मरीचिलिखित—

'खाभ्रखाभ्राग्नय: कल्पे क्रान्तिपातविपर्यया:।
व्यस्ता अङ्कविलिप्ताया गतेः प्रत्यब्ददर्शनात्॥'

यह श्लोक प्रचलित हुआ है।

$$\frac{३००००}{४३२००००००००} = \frac{१}{१४४०००} = \frac{१ \times ३६० \times ६० \times ६०}{१४४०००} = ९''$$

और मुञ्जाल आदि कितने एक आचार्यों का यह मत है कि संपातबिन्दु का पूरा भ्रमण होता है, जैसा कि विक्षेपपातों का। और यही मत भास्कराचार्य को अभिमत है। मुञ्जाल के वाक्य यों हैं—

'उत्तरतो याम्यदिशं याम्यान्तात्तदनु सौम्यदिग्भागम्।
परिसरता गगनसदां चलनं किञ्चिद्भवेदपमे॥

क्षेपकेन्द्र है । अन्य ग्रहों का पात और उनका मन्दस्पष्टस्थान उनके शीघ्रप्रतिवृत्त मे रहता है । इस लिये विक्षेपकेन्द्र के साधन मे पात को मन्दस्पष्ट में जोडना चाहिए । ग्रह का स्पष्टपात वही है जिसको स्पष्टग्रहस्थान में युक्त करने से विक्षेपकेन्द्र होता है । और वह मध्यमपात में शीघ्रफल का व्यस्तसंस्कार करने से सिद्ध होता है ।

इस प्रकार यदि स्फुटपात=या तब ऊपर कही रीति से विक्षेपकेन्द्र=या+स्पग्र । और मन्दस्पग्र + मध्यपा विक्षेपकेन्द्र है । दोनों के तुल्य होने से समीकरण करके पक्षान्तरानयन करनेपर य का मान य =मन्दस्पग्र + मध्यपा - स्पग्र=मन्दस्पग्र + मध्यपा–मन्दस्पग्र–शीफ=मध्यपा–शीफ यों ' पातेऽथवा शीघ्रफलं विलोमम्–' इत्यादि प्रकार उपपन्न हुआ ॥ २० । २२ ॥

इदानीं ज्ञशुक्रयोर्विशेषमाह—

ये चात्र पातभगणाः पठिता ज्ञभृग्वो-
स्ते शीघ्रकेन्द्रभगणैरधिका यतः स्युः ।
स्वल्पाः सुखार्थमुदिताश्चलकेन्द्रयुक्तौ
पातौ तयोः पठितचक्रभवौ विधेयौ ॥ २३ ॥
चलाद्विशोध्यः किल केन्द्रसिद्ध्यै
केन्द्रे सपाते द्युचरस्तु योज्यः ।
अतश्चलात् पातयुताज्ज्ञभृग्वोः
सुधीभिराद्यैः शरसिद्धिरुक्ता ॥ २४ ॥
स्फुटोनशीघ्रोच्चयुतौ स्फुटौ तयोः
पातौ भगोले स्फुट एव पातः ।

ननु ज्ञशुक्रयोः शीघ्रोच्चपातयुतिं केन्द्रं कृत्वा यो विक्षेप आनीतः स शीघ्रोच्चस्थान एव भवितुमर्हति । न ग्रहस्थाने । यतो ग्रहोऽन्यत्र वर्तते । अत इदमनुपपन्नमिव प्रतिभाति । तथा च ब्रह्मसिद्धान्तभाष्ये । ज्ञशुक्रयोःशीघ्रोच्चस्थाने यावान् विक्षेपस्तावानेव यत्रतत्रस्थस्यापि ग्रहस्य भवति । अत्रोपलब्धिरेव वासना नान्यत्कारणं वक्तुं शक्यत इति चतुर्वेदेनाप्यनध्यवसायोऽत्र कृतः।

प्रक्षिप्य क्रान्तिः साध्यते, एवं विक्षेपपातं ग्रहे प्रक्षिप्य क्षेपः साध्य इत्यर्थः । अथ विक्षेपपातो मन्दस्फुटे यत्प्रक्षिप्यते तत्कारणमाह। मन्दस्फुट इति । यतः शीघ्रप्रतिमण्डले मन्दस्फुटगत्या ग्रहो भ्रमति । तत्र च वृत्ते पातोऽतो गणितागतं पातं मन्दस्फुटे प्रक्षिप्य क्षेपः साध्यते। शेषं स्पष्टम् ।

भाषाभाष्य ।

इस प्रकार क्रान्तिवृत्त और विमण्डल के संपात को क्षेपपात कहते हैं। इस विलोमगतिपात का चन्द्रादि ग्रहों में संस्कार करके विक्षेपसाधन करना । पात और मन्दस्पष्ट ग्रह निज शीघ्रप्रतिवृत्त में भ्रमण करता है। इस लिए मन्दस्पष्ट और पात का योग करके शरसाधन करना चाहिए । अथवा शीघ्रफल का पात में विलोम संस्कार करके, उसको स्पष्ट करके शर सिद्ध करना । चन्द्र के कक्षावृत्त में पात की स्थिति है, इस लिए स्पष्टचन्द्र में पात का संस्कार करके शरसाधन करना ।

उपपत्ति ।

सूर्य क्रान्तिवृत्त पर भ्रमण करता है । परन्तु चन्द्र, भौम आदि ग्रह क्रान्तिवृत्त में न भ्रमण करके अपने अपने विमण्डल में भ्रमण करते हैं जिन का धरातल क्रान्तिवृत्त के धरातल की तरफ झुका हुआ है । वे विमण्डल जिन बिन्दुओं में क्रान्तिवृत्त धरातल को काटते हैं, ग्रह भ्रमण करता हुआ जहां उन बिन्दुओं में, क्रान्तिवृत्त से उत्तर दिशा में, उदित होता है. वह उस का पात कहलाता है । और उस बिन्दु से छ राशि पर जो संपात होता है वह सषड्भपात कहलाता है । चन्द्रपात उस के कक्षावृत्त में भ्रमण करता है, क्योंकि चन्द्रकक्षावृत्तधरातल का केन्द्र क्रान्तिवृत्तधरातलकेन्द्र में होकर गया है, अर्थात् भूकेन्द्र में होकर । परन्तु अन्य ग्रहों के पात उन के शीघ्रप्रतिवृत्त में रहते हैं, क्योंकि उन के विमण्डलधरातलकेन्द्र शीघ्रप्रतिवृत्तकेन्द्र में होकर गये हुए हैं । जो केन्द्र क्रान्तिवृत्त के धरातल में होते हैं ।

जब ग्रह अपने पात से अलग किसी स्थान में है उस स्थिति में उस ग्रह और क्रान्तिवृत्त धरातल का यथासंभव दक्षिणोत्तर अन्तर शर कहलाता है । जब ग्रह अपने पात से आगे या पीछे तीन राशि के अन्तर पर होता है तब क्रान्तिवृत्त से दक्षिण किंवा उत्तर, उस का परम अन्तर होता है । यही अन्तर परमशर कहलाता है । इस प्रकार ग्रहों का शर उस के पात से प्रारम्भ होता है और तीन राशि के अन्तर पर परम होता है इस लिए शर के साधन में ग्रह और पात का अन्तर जानना आवश्यक है । यह अन्तर ग्रह और पात के योग के तुल्य है । क्योंकि पात मेषादि से विलोम भ्रमण करता है । इसी अन्तर को विक्षेपकेन्द्र कहते हैं । चन्द्र का पात और उसका स्पष्टस्थान उसके कक्षावृत्त में रहता है, इन दोनों का योग वि-

इस लिए बुध और शुक्र के पातों को उन के शीघ्रकेन्द्र में जोड़ देना चाहिए। इस प्रकार पातस्थान ठीक ज्ञात होगा।

उपपत्ति।

यहा पर आचार्य ने वासनाभाष्य में सब अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया है। तौभी अधिक सुगमता के लिए फिर उस का उपपादन किया जाता है —

शीघ्रोच्च – मध्यग्रह = शीघ्रकेन्द्र।

(शीउ–मग्र) + पठितचक्रोत्थपात = मध्यमपात। यह पात प्रतिमण्डल का सिद्ध हुआ। अब, मध्यग्रह + मन्दफल = मन्दस्पष्टग्रह। इन का योग करने से, शी उ + मफ + पठितचक्रोत्थपात = विक्षेपकेन्द्र। इसीलिए वासनाभाष्य में लिखा है कि पात में मन्दफल का व्यस्त संस्कार करना। इसलिए यह जो विक्षेपकेन्द्र सिद्ध हुआ है वह शीघ्रप्रतिवृत्त का वास्तव–विक्षेपकेन्द्र हुआ। परन्तु गणिताध्याय के ग्रहच्छायाधिकार में जो 'सितज्ञपातौ स्फुटौ स्वचलकेन्द्रयुक्तौ–' इस के स्थान में मन्दस्पष्ट में शीघ्रोच्च घटाकर जो शीघ्रकेन्द्र मानकर उसका और पातका योग किया है, वह स्वल्पान्तर से किया है। क्योंकि उस में मन्दफल का अन्तर रहजाता है। इसप्रकार –शीघ्रोच्च–मध्यग्रह–मन्दफल=शीघ्रकेन्द्र। और, पठितपात + शीघ्रोच्च–मध्यग्रह–मन्दफल=मध्यपात। और, मध्यग्रह + मन्दफल=मन्दस्पष्ट ने होता है। इसलिए दोनों का योग करने से पठितचक्रोत्थपात + शीघ्रोच्च=विक्षेपकेन्द्र। यह स्वल्पान्तर है क्योंकि यहापर मन्दफल का एक पक्ष में जोडने और दूसरे पक्ष में घटाने से तुल्य होनेपर नाश होजाता है। इसप्रकार 'ये चात्र पातभगणा पठिता –' इत्यादि उपपन्न होता है।

शीघ्रकेन्द्र सिद्ध करने के लिये मध्यमग्रह को शीघ्रोच में घटाना चाहिये और विक्षेप (शर) केन्द्र बनाने के लिये शीघ्रकेन्द्रभगणयुक्त पात में मन्दस्पष्ट ग्रह को जोड़ना चाहिये। यों तुल्य शोध्य क्षेप्य राशियों के नाश होने के कारण पातयुक्त शीघ्रोच्च से पूर्वाचार्योंने बुध शुक्र का शरसाधन किया। भगोल में शीघ्रप्रतिवृत्त और विमण्डल का सम्पात स्फुटपात है, इस कारण शीघ्रोच्च में मन्दस्पष्ट घटाने से जो मन्दफलान्तरित शीघ्रकेन्द्रभगण बनते हैं उनका और बुध शुक्र के मध्यम (गणितागत) पातों का योग स्फुटपात होता है। इस प्रकार 'चलात्–' इस श्लोक का आशय है ॥ २३। २४ ॥

इदानीं ग्रहगोले विशेषमाह—

ग्रहस्यगोले कथितापमण्डलं
प्रकल्प्य कक्षावलयं यथोदितम् ॥ २५ ॥

सत्यम् । अत्रोच्यते । येऽत्र ज्ञशुक्रयोः पातभगणाः पठितास्ते शीघ्रकेन्द्रभगणैर्युताः सन्तस्तद्भगणा भवन्ति । तथा च माधवीये सिद्धान्तचूडामणौ पठिता अतोऽल्पभगणभवः पातः स्वशीघ्रकेन्द्रेण युतः कार्यः । शीघ्रोच्चाद्ग्रहे शोधिते शीघ्रकेन्द्रम् । तस्मिन् सपाते क्षेपकेन्द्रकरणार्थं ग्रहः क्षेप्यः । अतस्तुल्यशोध्यक्षेपयोर्नाशे कृते शीघ्रोच्चपातयोग एवावशिष्यत इत्युपपन्नम् ।

किंच मन्दस्फुटोनं शीघ्रोच्चं प्रतिमण्डले चलकेन्द्रम् । तत्पाते क्षेप्तुं युज्यते । एवं कृते सति विक्षेपकेन्द्रं मन्दफलेनान्तरितं स्यात् । ग्रहच्छायाधिकारे सितज्ञपातौ स्फुटौ स्वतश्चलकेन्द्रयुक्तावित्यत्र मन्दस्फुटोनं शीघ्रोच्चं शीघ्रकेन्द्रं पाते क्षिप्तम् । अतस्तत्र मन्दफलान्तरमङ्गीकृतमित्यर्थः । इतरकेन्द्रस्यानुपपत्तेः । अतो मन्दफलं पाते न्यस्तं देयम् । यतोऽनुपातसिद्धं चलकेन्द्रं मध्यग्रहोनशीघ्रोच्चतुल्यं भवति । यत्तु भगोले क्रान्तिवृत्तं तत् कक्षावृत्तम् । तत्र यद्विमण्डलं तत्र स्फुटग्रहः । तत्स्फुटपातयोगोहि विक्षेपकेन्द्रम् । अतः स्फुटपातस्थाने संपातं कृत्वा ततस्त्रिभेऽन्तरे स्फुटीकृतैः परमविक्षेपांशैः प्राग्वदुत्तरे दक्षिणे च विन्यस्यम् । तथा न्यस्ते विमण्डले स्फुटग्रहस्थाने विक्षेपः स्फुटविक्षेपेण गणितागतेन तुल्यो दृश्यते । नान्यथेत्यर्थः ।

प्रभा ।

इमे श्लोकाः स्फुटार्थाः । वंशस्थेन्द्रवंशयोरुपजातिसंपादनार्थं कैश्चिदत्र 'पातकः' इति पाठः कल्प्यते ।

भाषाभाष्य ।

बुध और शुक्र के पातभगण जो लिखे हैं वे अपने शीघ्रकेन्द्रभगणों से युक्त करने से यथार्थ होते हैं। यह संस्कार गणित की सुगमता के लिए किया गया है।

द्वितीयं त्रैराशिकम् । आद्ये त्रिज्याहरो द्वितीये गुणस्तयोर्नाशे कृते केन्द्रज्यायाः परमशरगुणायाः कर्णो हरः । फलं कक्षावृत्तसूत्रयोस्तिर्यगन्तरम् । स स्फुटः शरः ।

प्रभा ।

वासनाभाष्यत एवात्र सर्वमवधेयम् । ज्ञभृग्वोः स्वशीघ्रकेन्द्रेण युतस्तु देय इत्युक्तिस्तु पूर्वोक्तविशेषपरमरणार्था ।

भाषाभाष्य ।

ग्रहगोलीयक्रान्तिवृत्त को कक्षावृत्त कल्पना करके उस में शीघ्रप्रतिवृत्त को बांधकर, उक्त शरतुल्य दूरी पर विमण्डल को स्थिर करना। इस में ग्रहों का पात निश्चित करना चाहिए । बुध और शुक का पात निजशीघ्रकेन्द्र के सहित समझना चाहिए।

उपपत्ति ।

पहले भगोल ही को ग्रहगोल मानकर पात की उपपत्ति दिखलाई । यदि भगोल के भीतर ग्रहगोल बांधने की इच्छा हो तो यथास्थान नाडीवृत्त और क्रान्तिवृत्तको बांध कर क्रान्तिवृत्त को ग्रह का कक्षावृत्त मानना और छेद्यकरीति से शीघ्रप्रतिमण्डल, विमण्डल बांधकर इन में मेषादि से विलोम गणितागतपात का दान करना । और पातस्थान में उक्त शीघ्रप्रतिमण्डल तथा विमण्डलका संपात करके उसके आगे छ राशिपर दूसरा संपात करना । और पातस्थान के आगे पीछे तीन तीन राशि के अन्तर पर प्रतिमण्डल से विमण्डल को पाठपठित परमशरांश के तुल्य उत्तर और दक्षिण की तरफ स्थिर करदेना । और विमण्डल में मेषादि से अनुलोम मन्दस्फुट ग्रह का दान करना । यह मन्दस्फुट ग्रह प्रतिमण्डल से उत्तर दक्षिण की तरफ जितने अन्तर पर दीखे उतनाही उस स्थान पर शर होगा । इस इष्टशर का ज्ञान पात और मन्दस्फुटग्रह के योग करने से होगा क्योंकि पात का विलोम और मन्दस्पष्ट का अनुलोम अङ्क न कियागया है । उक्त योग की शरसाधन के लिए केन्द्रसंज्ञा की है । इष्टशरसाधन के लिए अनुपात—त्रिज्यातुल्य विक्षेपकेन्द्रदोर्ज्या में पाठपठित परमशर मिलता है तो इष्टविक्षेपकेन्द्रदोर्ज्या में क्या? फल इष्टस्थान में प्रतिमण्डल और विमण्डल का अन्तर ।

$$\text{त्रि : पश :: इदो : इश । } \frac{\text{पश.इदो}}{\text{त्रि}} = \text{इश}$$

यह अन्तर शीघ्रकर्ण के अग्र में आया है । बिम्ब से भूकेन्द्र की दूरी को कर्ण कहते हैं। भूगर्भवासी प्रतिमण्डलस्थ ग्रह को कक्षामण्डल में कर्णमार्ग से देखता है, इस कारण इष्ट शर को भूगर्भाभिप्राय से स्पष्ट करने के लिए दूसरा अनुपात—कर्णाग्र में साधित

निबध्य शीघ्रप्रतिवृत्तमस्मिन्
त्रिमण्डलं तत्पठितैः शरांशैः ।
मध्योऽत्र पातो द्युसदां ज्ञभृग्वोः
स्वशीघ्रकेन्द्रेण युतस्तु देयः ॥ २६ ॥

भगोल एव तावद्ग्रहगोलः कल्प्यः । तत्र स्फुट एव पातः । अथ यदि तदन्तर्ग्रहगोलोऽन्यो निबध्यते तदा तत्र यथोक्तं विषुवद्वृत्तं क्रान्तिवृत्तं च बद्ध्वा तत्क्रान्तिवृत्तं कक्षामण्डलं प्रकल्प्य तत्र छेद्यकोक्तविधिना शीघ्रप्रतिमण्डलं बद्ध्वा तत्र प्रतिमण्डले गणितागतं पातं मेषादेर्विलोमं गणयित्वा तत्र चिह्नं कार्यम् । अथ त्रिज्यान्यासार्धमेवान्यद्वृत्तं राश्यङ्कं विमण्डलाख्यं कृत्वा तत्रापि मेषादेर्व्यस्तं पाताग्रे चिह्नं कृत्वा प्रतिमण्डलविमण्डलयोः पातचिह्ने प्रथमं संपातं ततो भार्धान्तरे द्वितीयं च संपातं कृत्वा पातादग्रतः पृष्ठतश्च त्रिभेऽन्तरे परमविक्षेपांशैः पठितैः प्रतिवृत्तादुत्तरे दक्षिणे च विमण्डलं विन्यस्यम् । तत्र मन्दस्फुटगत्या पारमार्थिको ग्रहो भ्रमति। अतो मेषादेरनुलोमं मन्दस्फुटो विमण्डले देयः । स तत्रस्थः प्रतिमण्डलाद्यावतान्तरेण विक्षिप्तस्तावांस्तत्प्रदेशे विक्षेपः । यतो वृत्तसंपातस्थे ग्रहे विक्षेपाभावः । त्रिभेऽन्तरे परमो विक्षेपः । मध्येऽनुपातेन । अतो वृत्तसंपातग्रहयोरन्तरं ज्ञेयम् । तदन्तरं पातग्रहयोगे कृते भवति । पातस्य विलोमगत्वात् । स योगः शरार्थं केन्द्रम् । यदि त्रिज्यातुल्यया केन्द्रज्यया परमः शरस्तदाभीष्टयानया क इति । फलं प्रतिमण्डलविमण्डलयोस्तिर्यगन्तरं स्यात् । विमण्डलस्थग्रहाद्यद्भूमध्यगं सूत्रं तद्भूग्रहान्तरम् । स च शीघ्रकर्णः । यदि भूगर्भात्कर्णाग्र एतावान् विक्षेपस्तदा त्रिज्याग्रे कियानिति

प्रभा ।

क्रान्तिपातचिह्नादनुलोमक्रमेण मेषादिराशीन् प्रकल्प्य तत्तदग्रेष्वहोरात्रवृत्तानि कल्प्यानि । तान्येवानुलोमविलोमक्रमेण मेषादिद्वादशराशीनां भवन्ति । एतदुक्तं भवति । नाडीवृत्तादुत्तरतो दक्षिणतश्च त्रीणि वृत्तानि कृतानि चेद्द्वादशराशीनां भवन्ति ।

भाषाभाष्य ।

क्रान्तिपात से अनुलोम तीस तीस अंश पर मेषादि राशियों की कल्पना करके उनके आगे अहोरात्रवृत्त को रखना चाहिए । नाडीवृत्त से उत्तर तीन और दक्षिण तीन अहोरात्र बांधना । वे ही क्रम, उत्क्रम से मेषादि बारह राशियों के अहोरात्रवृत्त होंगे ॥ २८ ॥

दानीमस्योपसंहारमाह—

एष भगोलः कथितः खेचरगोलोऽप्यमेव विज्ञेयः ॥ २९ ॥
अत्रापमण्डले वा सूत्राधारैरधश्च तस्यैव ।
शन्यादीनां कक्षा बध्नीयादूर्णनाभजालाभाः ॥ ३० ॥
बद्ध्वा भगोलमेवं यष्ट्यां यष्टिं खगोलनलिकान्तः ।
प्रक्षिप्य भ्रमयेत्तं यष्ट्याधारं स्थिरौ खदृग्गोलौ ॥ ३१ ॥

यथायं भगोलो बद्धस्तथैव ग्रहगोला अपि बध्नीयाः । किन्तु षां छेद्यकमन्तश्चालयितुं नायातीति बहिःस्थमेव दर्शनीयम् । थवात्र भगोले यदपमण्डलं तस्याधोऽधस्तान्निबद्धैः सूत्राधारैर्बद्ध्वा नैश्चरादीनां कक्षा दर्शनीयाः । एवंविधं भगोलं यष्ट्यां दृढं बद्ध्वा ष्ट्यग्रयोः प्रोते नलिकाद्वये निबद्धौ खगोलदृग्गोलौ कृत्वा भगोलभ्रमणं दर्शयेत् ।

इति श्रीभास्कराचार्यविरचिते गोलवासनाभाष्ये मिताक्षरे गोलबन्धाधिकारः समाप्तः । अथ ग्रन्थसंख्या १८० ॥

विक्षेप मिलता है तो त्रिज्याग्र में क्या? फल कक्षामण्डलीय इष्टस्थान में स्पष्टशर।

$$\text{क}:\frac{\text{पश.इदो}}{\text{त्रि}}::\text{त्रि}।\frac{\text{पश.इदो.त्रि}}{\text{क.त्रि}}=\frac{\text{पश.इदो}}{\text{क}}$$ ॥ २५ । २६ ॥

इदानीमहोरात्रवृत्तमाह—

ईप्सितक्रान्तितुल्येऽन्तरे सर्वतो
नाडिकाख्यादहोरात्रवृत्ताह्वयम् ।
तत्र बद्ध्वा घटीनां च षष्ट्याङ्कये-
दस्य विस्कम्भखण्डं द्युजीवा मता ॥ २७ ॥

नाडीवृत्तादुत्तरतो दक्षिणतो वा सर्वत इष्टक्रान्तितुल्येऽन्तरे यद्वृत्तं निबध्यते तदहोरात्रवृत्तम् । तेन वृत्तेन तस्मिन् दिने रविर्भ्रमतीत्यर्थः । तस्यवृत्तस्य व्यासार्धंद्युज्या ।

प्रभा ।

स्फुटार्थोऽयं श्लोकः ।

भाषाभाष्य ।

नाडीवृत्त से दक्षिण किंवा उत्तर इष्टक्रान्ति के समान दूरीपर, साठघटी से अङ्कित करके अहोरात्रवृत्त का निवेशन करना । इस वृत्त के व्यासार्ध को द्युज्या कहते हैं ।

इसी अहोरात्रवृत्त में सूर्य नित्य भ्रमण किया करता है ॥ २७ ॥

इदानीमन्यदाह—

अथ कल्प्या मेषाद्या अनुलोमं क्रान्तिपाताङ्कात् ।
एषां मेषादीनां द्युरात्रवृत्तानि बध्नीयात् ॥ २८ ॥
नाडीवृत्तोभयतस्त्रीणि त्रीणि क्रमोत्क्रमात् तानि ।

क्रान्तिपाताङ्कादारभ्य त्रिंशता त्रिंशता भागैरन्यान् मेषादीन् प्रकल्प्य तदग्रेपूक्तवदहोरात्रवृत्तानि बध्नीयात् । तानि च नाडीवृत्तस्योभयतस्त्रीणि त्रीणि भवन्ति । तान्येव क्रमोत्क्रमतः सायनांशार्कस्यद्वादशराशीनाम् ।

इदानीं लङ्कास्वदेशार्कोदययोरन्तरं चरकालमाह—

निरक्षदेशे क्षितिजाख्यवृत्त-
मुन्मण्डलं तज्जगुरन्यदेशे।
स्वे स्वे कुजेऽर्कस्य समुद्गमोऽस्मा-
च्चरार्धमर्कोदययोस्तु मध्ये ॥ २ ॥

स्पष्टार्थम्।

प्रभा।

क्षितिजाख्यवृत्तमेव निरक्षदेशेऽपून्मण्डलाभिख्यम्। स्वस्वदेशीय क्षितिजे रव्युदयात्तद्देशीयार्कोदयान्तरं चरखण्डसमानमिति सुव्यक्तम्।

भाषाभाष्य।

निरक्षदेश के क्षितिजवृत्त को उन्मण्डल कहते हैं। अपने अपने देश के क्षितिज मे सूर्य का उदय होताहै। इसलिये स्वदेश और निरक्ष के सूर्योदयकाल का अन्तर चरखण्ड के समान होता है ॥ २ ॥

इदानीं चरफलस्य धनर्णवासनामाह—

आदौ स्वदेशेऽथ निरक्षदेशे
सूर्योदयो ह्युत्तरयोऽन्यथातः।
ऋणं ग्रहेऽस्मादुदये स्वमस्मे
फलं चरोत्थं रविसौम्यगोले ॥ ३ ॥
याम्ये विलोमं खलु तत्र यस्मा-
दुन्मण्डलं स्वक्षितिजादधस्तात्।
नाड्याह्वयादुत्तरयाम्यभागौ
गोलस्य तावुत्तरयाम्यगोलौ ॥ ४ ॥

सुगमं पूर्वं व्याख्यातं च।

प्रभा।

इमौश्लोकौ स्फुटार्थौ। दयजानीन्द्रास्त्राऽन्द्रगी ॥

प्रभा ।

स्फुटार्थाः श्लोकाः । वासनाभाष्ये व्याख्याताश्च ।

इति प्रभायां गोलबन्धाधिकारः ।

भाषाभाष्य ।

इस प्रकार भगोल की स्थिति वर्णित हुई, योंही ग्रहगोलस्थिति भी जानना चाहिये । भगोलीय क्रान्तिवृत्त के नीचे क्रम से शनि आदि ग्रहों की कक्षा बड़े सूक्ष्मसूत्र से क्रान्तिवृत्त में बांधना । फिर भगोल को ध्रुवनलिका में दृढ़ करके, दोनों ध्रुवनलिकाओं में खगोल और दृग्गोलको पोकर, भगोलका भ्रमण दिखलाना चाहिए ॥ २९।३१ ॥

गोलबन्धाधिकार समाप्त हुआ ।

अथ त्रिप्रश्नवासना ।

तत्रादौ चरस्थानमाह—

उन्मण्डलक्ष्मावलयान्तराले
द्युरात्रवृत्ते चरखण्डकालः ।
तज्ज्यात्र कुज्याचरशिञ्जिनी स्या-
द्व्यासार्धवृत्ते परिणामिता सा ॥ १ ॥

क्षितिजोन्मण्डलयोर्मध्येऽहोरात्रवृत्ते यावान् कालः स चरखण्डकालः । तत्रोन्मण्डलादुभयतश्चरतुल्येऽन्तरे चिह्ने कृत्वा तयोर्निबद्धसूत्रस्यार्धं कुज्या । सैव त्रिज्यावृत्तपरिणता सती चरज्या स्यादिति त्रिप्रश्ने व्याख्यातम् ।

प्रभा ।

स्फुटार्थोऽयं श्लोकः । उपजातिश्छन्दः ।

भाषाभाष्य ।

उन्मण्डलवृत्त और क्षितिजवृत्त के बीच में अहोरात्रवृत्त के खण्ड को चरखण्ड कहते हैं । उसकी ज्या को कुज्या कहते हैं । और कुज्या त्रिज्यावृत्त में परिणत करने से चरज्या कहलाती है ॥ १ ॥

अर्थात् वहां उदय और अस्त सदा एकाकार होता है इसलिये दिन–रात मे कभी भेद नहीं पड़ता ॥ ५ ॥

इदानीं विशेषमाह—

षट्षष्टिभागाभ्यधिकाः पलांशा
यत्राथ तत्रास्त्यपरो विशेषः ॥ ६ ॥
लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत्
तावद्दिनं सन्ततमेव तत्र ।
यावच्च याम्या सततं तमिस्रा
ततश्च मेरौ सततं समार्धम् ॥ ७ ॥

यत्र देशे षट्षष्टे ६६ रधिकाः पलांशास्तत्रायं विशेषः । अर्कस्योत्तरा क्रान्तिर्यावत्कालं लम्बाधिका भवति तावत्कालं सन्ततं दिनमेव । याम्याक्रान्तिर्यावत् तावत् सन्ततं रात्रिरेव । तद्यथा । यत्र किल सप्ततिः ७० पलांशास्तत्र लम्बो विंशतिः २० । तत्र देशे विषुवद्वृत्तं दक्षिणक्षितिजादुपरिभागविंशत्योत्तरक्षितिजादधश्च तावता । यदा रवेरुत्तरा क्रान्तिर्भागविंशतिर्भवति । तदोत्तर क्षितिजे रविबिम्बमर्धोदितं भूत्वा मध्याह्ने दक्षिणक्षितिजादुपरि याम्योत्तरमण्डले भागचत्वारिंशतोन्नतं भवति । तदा त्रिंशद्घटिका दिनदलम् । अतो दिनं षष्टिः । रात्रिः शून्यम् । ततो द्वितीय दिन उत्तरक्रान्तेरधिकत्वादविरुत्तरक्षितिजं न स्पृशति । एवं प्रतिपर्ययं परमक्रान्ति यावदुपर्युपरि परिभ्रमति । एवं मिथुनान्त उत्तरक्षितिजादुपरिभागचतुष्टयं याति । पुनस्तेनैव क्रमेणावरोहति । विंशतिभागाधिका क्रान्तिर्यावत्तावत्कालं रविः सततं दृश्यः । तावद्दिनमेव । अनयैवयुक्त्या दक्षिणगोले क्षितिजादधःस्थेऽर्के सन्ततं रात्रिरिति । अत एव मेरौ षण्मासं दिनम् ।

भाषाभाष्य ।

सूर्योदय पहिले स्वदेश में उस के बाद निरक्षदेश में होता है । और अस्त पहिले निरक्ष में फिर स्वदेश में होता है। इस कारण चरफल उदय में ऋण और अस्त में धन उत्तर गोलमें कियाजाता है । और दक्षिणगोलमें उलटा संस्कार करना चाहिये । अर्थात् उदय में धन और अस्तमें ऋण क्योंकि वहां स्वदेशीय क्षितिजवृत्तसे उन्मण्डल नीचे है । नाडीवृत्त से उत्तर और दक्षिण गोलके हिस्सेको उत्तर और दक्षिण गोल कहते हैं ॥ ३।४॥

इदानीं दिननिशोर्लघुत्वमहत्त्वेहेतुमाह—

अतश्च सौम्ये दिवसो महान्स्या-
द्रात्रिर्लघुर्व्यस्तमतश्च याम्ये ।
द्युरात्रवृत्ते क्षितिजादधःस्थे
रात्रिर्यतः स्याद्दिनमानमूर्ध्वे ॥ ५ ॥

सदा समत्वं द्युनिशोर्निरक्षे
नोन्मण्डलं तत्र कुजाद्यतोऽन्यत् ।

क्षितिजादुपरिस्थेऽहोरात्रवृत्तखण्डे यावान् कालस्तावान् दिवसः यावांस्तदधःस्थे तावती रात्रिरिति सुगमम् ।

प्रभा ।

आदौस्वदेश—, इत्यादिपर्यालोचनेन सूर्योदयवशादुत्तरदक्षिणगोलयोर्दिनरात्र्योर्वृद्धिक्षयौ गोले स्फुटं विलोक्येते ।

भाषाभाष्य ।

इसप्रकार उदयवश उत्तरगोल में दिन बड़ा और रात छोटी होती है । इस से उलटा दक्षिणगोल में समझना चाहिये । अहोरात्रवृत्त का खण्ड क्षितिज के ऊपर और नीचे जैसा है, उसी प्रकार दिन और रात का मान होता है । और निरक्ष में दिन और रात बराबर होते हैं । क्योंकि वहां क्षितिज के सिवाय दूसरा उन्मण्डल नहीं है ।

+ सूर्योदय में [illegible] प्रयोजन पड़ता है । उसीका प्रकार यहां लिखा है। अर्थात् उदयकाल में उन्मण्डल ऊपर होने से ऋण और अस्त में नीचा होने से धन, इसप्रकार उत्तर [illegible] । और दक्षिण [illegible] में उदय में उन्मण्डल नीचे [illegible] और अस्त में ऊपर होने से [illegible] होता है।

कल्पना किया—

ख=खस्वस्तिक।

खखं=पूर्वापरा।

नानां=नाडीवलय।

उद=उत्तर दक्षिण क्षितिजबिन्दु।

उनांना=याम्योत्तरवृत्त।

खनां=अक्षांश=७०

नादं=लम्बांश=२०

र=उत्तरक्षितिज बिन्दुगत-रविबिम्ब।

र'=दक्षिण क्षितिजबिन्दु से याम्योत्तरवृत्तमें ४° अंश उन्नत रविबिम्ब।

नाउ=लम्बांश तुल्य उत्तरक्रान्ति में रात्रि।

उ'र'=लम्बांशाधिक उत्तरक्रान्ति में दिन।

नांद=लम्बांश तुल्य दक्षिणक्रान्ति में दिन।

दं'र्दं=लम्बांशाधिक दक्षिणक्रान्ति में रात्रि।

३६०: भूपरिधियोजन:: अक्षांशान्तर: इष्टयोजन।

इसप्रकार इष्टस्थानकी दूरी जानी जाती है॥ ६-७॥

इदानीं मेरुसंस्थानमाह—

विषुवद्वृत्तं द्युसदां क्षितिजत्वमितं तथाच दैत्यानाम्।
उत्तरयाम्यौ क्रमशो मूर्ध्नोर्ध्वगतौ ध्रुवौ यतस्तेषाम्॥ ८॥
उत्तरगोले क्षितिजादूर्ध्वे परितो भ्रमन्तमादित्यम्।
सव्यं त्रिदशाः सततं पश्यन्त्यसुरा असव्यगं याम्ये॥ ६॥

स्पष्टम्।

प्रभा।

त्रिदशास्तिस्रो जन्मसत्त्वाविनाशाख्याः, नतु मर्त्यानामिव वृद्धिपरिणामक्षयाख्यादशा येषां ते। देवा इत्यर्थः। शेषं स्फुटम्। आर्यागीतिः।

भाषाभाष्य।

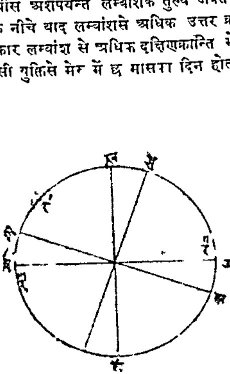
देव और दैत्यों को विषुवद्वृत्त क्षितिजरूप होताहै। क्योंकि उनके शिरपर ध्रुवों

भाषाभाष्य ।

जिस देश मे ६६ अंश से अधिक अक्षांश है, वहां दिन–रात की व्यवस्था भिन्न है । वहां पर सूर्य की उत्तर क्रान्ति जब तक लम्बांश से अधिक रहेगी तब तक सदा दिन ही रहेगा । और उसी प्रकार दक्षिण क्रान्ति जब तक अधिक रहेगी, उस समय तक सदा रात्रि ही रहेगी । इस प्रकार मेरुप्रदेश में छं मास का दिन होता है ।

उपपत्ति ।

जिसदेश में ७० अक्षांश है वहां लम्बांश २० होगे । क्योंकि ७० + २० = ९० । खस्वस्तिक से अक्षांश के तुल्य दक्षिण की तरफ विषुवद्वृत्त नत होगा और दक्षिण क्षितिजसे लम्बांशके तुल्य उन्नत होगा । इस स्थितिमें विषुवद्वृत्त उत्तर क्षितिजके नीचे २० अंश और दक्षिणक्षितिज के ऊपर २० अंश रहेगा । जब रवि की उत्तर क्रान्ति २० अंश होगी उस समय उत्तर क्षितिजमें रविविम्ब अर्धोदित होकर मध्याह्नमें दक्षिण क्षितिज के ऊपर याम्योत्तरवृत्तमें ४० अंश ऊंचा होगा । तब ३० घड़ीका दिनार्ध अर्थात् ६० घड़ी का दिनमान होगा और रात न होगी फिर दूसरे दिनसे उत्तर क्रान्ति ज्यों ज्यो बढ़ती जायगी त्यों त्यों सूर्य उत्तरक्षितिजके ऊपरही भ्रमण करेगा । इसप्रकार उत्तर परमक्रान्ति तक भ्रमणकरताहुआ रवि जब मिथुनान्त में पहुचैगा तब उत्तरक्षितिजसे ४ अंश ऊंचा होगा अर्थात् शून्य अंशसे लेकर बीस अंशपर्यन्त लम्बांशके तुल्य जबतक उत्तर क्रान्ति रही तबतक सूर्य क्षितिजके नीचे बाद लम्बांशसे अधिक उत्तर क्रान्तिमें क्षितिजके ऊपरही रहैगा । इसीप्रकार लम्बांश से अधिक दक्षिणक्रान्ति में सूर्य क्षितिजके नीचे ही भ्रमण करेगा । इसी युक्तिसे मेरु में छ मासका दिन होता है ।



श्वाद्यैर्दृष्टैस्तैरेवारोहणं कुर्वन्नपि देवैर्दृष्टस्तैरेव पुनरवरोहणं कुर्वन् किं न दृश्यत इति अतस्तदसत्।

भाषाभाष्य।

संहिताविशारदों ने उत्तरायणको देवताओं का दिन और दक्षिणायन को रात्रि माना है। जहां से सूर्य दिन करने को प्रवृत्त होताहै वहीं से दिन और जहां से रात्रि करने को चलता है वहीं से रात्रि यह फल कहने के अभिप्राय से है। तात्पर्य यह कि सायन मेष दि में रवि उदित होकर जब मिथुनान्त में पहुंचता है उस समय देवताओं का दिनार्ध वा दोपहर होताहै उसके बाद फिर सायन कन्या में अस्त होकर दैत्यभाग में उदित होता है, तब देवताओं के यहां रात्रि होती है। और दैत्यों के यहां सायनतुल मे उदित होकर जब मकरान्त में पहुंचता है उस समय दैत्यों के यहां दोपहर होताहै। उसके बाद फिर सायन मीन में अस्त होजाताहै, तब दैत्यों के यहां रात्रि रहती है। इस स्थिति में संहिताविशारदों ने फल के अभिप्राय से देवभाग में मध्याह्न के बाद अर्थात् कर्कराशि के आरम्भ से ही रात्रि मान ली है, क्योंकि वहां से अस्त के सम्मुख सूर्य चलकर अस्त होता है। और दैत्यभाग म मकरराशि के आरम्भ से ही दिनमान लियाहै, क्योंकि वहां से उदय के सम्मुख सूर्य चलकर देवभाग में उदय को प्राप्त होता है। इस प्रकार वास्तव में कर्क के आरम्भ से रात्रि और मकर के आरम्भ से दिन गोलयुक्ति से न होने पर भी यह कल्पना केवल कथन के प्रयोजन से है † क्योंकि यदि फलका प्रयोजन न हो तो आचार्य प्रश्न करते हैं कि, देवतालोग जिस क्रमसे सूर्य को चढते हुए देखते हैं, क्या उसी क्रम से उतरतेहुए न देखेंगे, अवश्यही देखेंगे॥ ११-१२॥

इदानीं पितृदिवसस्योदयास्तादिकालानाह—

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः
स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति।
पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वं
दर्शे यतोऽस्माद्द्युदलं तदैषाम्॥ १३॥
भार्धान्तरत्वान्न विधोरधःस्थं
तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम्।

† [illegible] ने भी इस कल्पना का फल [illegible] लिखा है। यथा—
'[illegible] सुरपराह्न [illegible] पुना [illegible]।
[illegible]॥"

की स्थिति रहती है। अर्थात् देवताओं के उत्तर और दैत्यो के दक्षिण ध्रुव शिर-पर दिखलाई देता है। उत्तरगोल में क्षितिजके ऊपर भ्रमण करताहुआ सूर्य देव-ताओं को अनुलोम और दैत्यों को विलोम दिखलाई देता है।

नाडीवृत्तको क्षितिजाकार रखकर मेरुकी स्थिति समझनी चाहिये ॥ ८-९ ॥

इदानीं दिनरात्रिस्वरूपे पितृदिनं चाह—

दिनं दिनेशस्य यतोऽत्र दर्शने
तमी तमोहन्तुरदर्शने सति।
कुपृष्ठगानां द्युनिशं यतो नृणां
तथा पितॄणां शशिपृष्ठवासिनाम् ॥ १० ॥

स्पष्टम्।

प्रभा।

तमी रात्रिः। 'रजनी यामिनी तमी' इत्यमरः। शेषं स्फुटम् वंश-स्थवृत्तम्।

इदानीं संहितोक्तस्याभिप्रायमाह—

दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं
निशेतरत्सांहितिकैः प्रकीर्तितम्।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं
निशा तथा तत्कलकीर्तनाय तत् ॥ ११ ॥
द्वन्द्वान्तमारोहति यः क्रमेण
तैरेव वृत्तैरवरोहतीनः।
यत्रैव दृष्टः प्रथमं स देवै-
स्तत्रैव तिष्ठन्न विलोक्यते किम् ॥ १२ ॥

सांहितिकानां न चेदयमभिप्रायस्तर्हि मेषादेरूर्ध्वं मिथुनान्तं

दूरस्थितत्वादाप्रलयं रविं पश्यति। दिनान्ते रव्यादीनुपसंहृत्य शेत इत्यर्थः।

प्रभा।

कल्पद्वयेन ब्रह्मणोऽहोरात्रं भवति सूर्यसिद्धान्ते यथा 'इत्थं युग सहस्रेण भूतसंहारकारकः। कल्पो ब्राह्ममहः—,इत्यादि।

भाषा भाष्य।

भूमि से ऊँचे बहुत दूरीपर ब्रह्मा निवास करते हैं। इसलिए प्रलयकाल तक सूर्य को सदा देखा करते हैं उनका उदय अस्त नहीं होता। और दिनान्त में शयन करते हैं। इसप्रकार दो हजार युग ब्रह्मा का अहोरात्र होता है। अर्थात् एक हजार युग दिन और उतनी ही रात्रि होती है।

ब्रह्मा के दिन में सृष्टि रहती है और रात्रिमें उसका नाश अर्थात् प्रलय हो जाता है॥ १५॥

इदानीमुदयवासनामाह–

योहि प्रदेशोऽपममण्डलस्य
तिर्यक्स्थितो यात्युदयं तथास्तम्।
सोऽल्पेन कालेन य ऊर्ध्वसंस्थो–
ऽनल्पेन सोऽस्मादुदया न तुल्याः॥ १६॥

य उद्गमे याम्यनता मृगाद्याः
स्वस्यापमेनापि निरक्षदेशे।
याम्याक्षतस्तेऽतिनतत्वमाशा
उद्यन्ति कालेन ततोऽल्पकेन॥ १७॥

कर्क्यादयः सौम्यनता हि येऽत्र
ते यान्ति याम्याक्षवशादृजुत्वम्।
कालेन तस्माद्बहुनोदयन्ते
तदन्तरे स्वं चरखण्डमेव॥ १८॥

विषुवदहोरात्रवृत्तानि लङ्कायां समपश्चिमगानि। राशिवलयं

कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति
शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम् ॥ १४ ॥

स्पष्टम् ।

भाषाभाष्य ।

पितरलोग चन्द्रके ऊपरी भागपर निवास करतेहुए चन्द्रको अपने नीचे मानते हैं। वे अमा को अपने शिर के ऊपर सूर्य को देखते हैं। इसलिये उसदिन उनका मध्याह्न होताहै। छ राशि के अन्तर पर चन्द्रके नीचे सूर्यके अवस्थान से पूर्णा को उन की अर्धरात्रि होती है। वहां पर कृष्णपक्षार्ध में सूर्य का उदय और शुक्लपक्षार्ध में अस्त होताहै। यह अर्थात् सिद्ध हुआ।

उपपत्ति ।

सांप्रत में यह निश्चय हुआहै कि चन्द्रमा एक कील में पृथ्वी के चारों तरफ घूमा करता है। वह एक मास अर्थात् २७ दिन, ७ घंटामें पृथ्वी की एकबार परिक्रमा पूरी करताहै। इस स्थिति से यह ज्ञात हुआ कि चन्द्र का एकभाग सूर्य के संमुख रहने से पंद्रह दिन तक प्रकाशित रहताहै और दूसरा भाग सूर्य के विपरीत दिशामें होने से कृष्ण रहताहै। उसी नियमसे हमारे यहां कृष्ण और शुक्लपक्ष का व्यवहार होताहै। जब हमारे सामने का चन्द्रगोलार्ध कृष्ण होने लगता है तब उसका दूसरा गोलार्ध जिस पर पितरों का निवास † है, वह शुक्ल होने लगताहै। यों जिसदिन हमारा हरयार्ध पूरा कृष्ण होजाता है उस दिन पितरोंका सब गोलार्ध शुक्ल होजाताहै। अर्थात् अमावास्या को उनके यहां खमध्य में सूर्य होने से मध्याह्न होता है। इसी नियम से जिस दिन हमारे यहां पूर्णा होताहै उस दिन पितरों के अर्धरात्रि होती है।

इसप्रकार हमारी अमावास्या और पूर्णा क्रमसे पितरों का मध्याह्न और अर्धरात्रि होनेसे यह सिद्ध हुआ कि हमारी कृष्णाष्टमीको पितरों के यहां सूर्योदय और शुक्लाष्टमी को उनके सूर्यास्त होताहै ॥ १३–१४ ॥

अथ ब्रह्मदिनोपपत्तिमाह—

यदातिदूरगतो द्रुहिणः क्षितेः
सततमाप्रलयं रविमीक्षते ।
भवति तावदयं शयितश्च त-
द्युगसहस्रयुगं द्युनिशं विधेः ॥ १५ ॥

तद्रहितत्रिंशद्भिः कन्यान्तो वा भपान्तो वा।
चरखण्डैरूनाढ्यास्तेन निरक्षोदयाःस्वदेशे स्युः ॥ २२ ॥
क्षितिजेऽजादिं कृत्वा गोलं भ्रमयन् प्रदर्शयेत् सर्वम्।
उक्तमनुक्तं चान्यच्छिष्याणां बोधजननार्थम् ॥ २३ ॥

उदयवासना स्फुटगत्यध्याये कथितैव। इह तु मेषादिं क्षितिजे कृत्वा गोलं भ्रमयन् क्रमेण यदुक्तं वक्ष्यमाणं च सर्वं दर्शयेत्। तत्र सर्वं दृश्यत इत्यर्थः। प्रभा।

भचक्रपादारितथिनाडिकाभिरित्यादि गोलस्थितिनिरीक्षणेन स्फुटमवगम्यते। ताभिश्चरोनाभिः पञ्चदशघटीभिः चरयुताभिः पञ्चदशघटीभिर्वारहितैस्त्रिंशद्भिः। भाषाभाष्य।

निरक्षदेश में क्रान्तिवृत्त के चारों पाद अलग अलग पञ्चदश घटिका में उदय और अस्त होते हैं। क्रान्तिवृत्त का प्रथम और द्वितीय अर्ध सर्वत्र तीसघटिका में उदित और अस्त हुआ करता है। मेषादि से मिथुनान्त अर्थात् क्रान्तिवृत्त का प्रथम पाद, पञ्चदश घटिका में उन्मण्डल का उल्लङ्घन करता है। परन्तु क्षितिजके नीचे होने के कारण चरखण्ड से न्यून पञ्चदश घटिका तुल्य काल प्रथमही वह क्षितिज का उल्लङ्घन करता है। कन्यान्त से धनु तक अर्थात् क्रान्तिवृत्त का तृतीय पाद पञ्चदश घटिका में उन्मण्डल में लगता है। और चरखण्ड युक्त पञ्चदश घटिका तुल्यकाल में पीछे वह क्षितिज में लगता है। मिथुनान्त से कन्यांत तक क्रान्तिवृत्त का द्वितीयपाद और धनु से मीनान्त तक चतुर्थपाद होताहै * तीस घड़ी में चार खण्ड प्रथम और तृतीयपाद सम्बन्धि घटादेने से शेष काल समान काल में उक्तदोनों पाद क्षितिज में लगते हैं। इसप्रकार निरक्षदेशीय उदयमान में चरखण्डयुत और रहित करने से स्वदेशोदय का मान होता है। क्षितिज में मेषादिका स्थापन करके, गोल घुमाकर यह सब व्यवस्था, उक्त अनुक्त सविस्तर शिष्यों के ज्ञान के लिये बतलाना चाहिये ॥ १९। २३ ॥

---

* श्रयोगामें अक्षांश २६।४८ पलभा ६।४ चराद्ध मेष ३५३। वृष ६३०। मि ७४२।

पण्डित पुरी में पलात्मक उदयमान —

मे.	२२०
वृ.	२६४
मि.	१६८
क.	४४६
सिं.	४०४
क.	३३८
तु.	३३८
वृ.	४०८
ध.	४४६
म.	१६८
कु.	२६४
मी.	२२०

घटात्मक मान

	घ.	पि.	से.	
मे.	१	२८	०	मी.
वृ.	१	१७	३६	कु.
मि	१	११	१२	म.
क.	२	१८	२४	ध.
सिं.	२	४१	३६	वृ.
क	२	१५	१२	तु.

तु मन्दरादौ परमक्रान्त्या विषुवन्मण्डलाद्दक्षिणतो मिथुनान्त उत्तरतोलग्नमतस्तिरश्चीनम् । तत्रापि मेषः स्वक्रान्त्या महत्या तिरश्चीन उदेति । अतोऽल्पकालोदयः । वृषभस्तदल्पयातस्तस्मात् किंचिदधिककालः । मिथुनस्तदल्पयातस्तदधिककालः । एवं निरक्षेऽपि न समा उदयाः । अथ ये मकरादयो याम्ये नतास्ते याम्याक्षवशादतिनता उद्गच्छन्ति स्वदेशेऽतोऽल्पकालोदयाः । ये तु कर्क्यादयः स्वस्वक्रान्त्या सौम्ये नतास्ते याम्याक्षवशादृजुत्वं गता उद्यन्ति । अतश्चिरकालोदयाः । लङ्कास्वदेशोदययोरन्तराले सर्वं चरखण्डमेव भवति । यतस्तत्क्षितिजयोरन्तराले चरम् ।

भाषाभाष्य ।

क्रान्तिवृत्तका जो भाग तिरछा है वह थोड़े कालमें और जो सीधा है वह अधिक समयमें उदयको प्राप्त होताहै। नाड़ीवृत्तसे दक्षिणदिशामें, निज क्रान्तिवश मकरादि राशिवलय झुके हैं (गोल देखो) परन्तु दक्षिण अक्षांश के वश से बहुतही नत होकर थोड़े समय में उदय को प्राप्त होतेहैं । और कर्क आदि राशिवलय जो उत्तर दिशा में झुके हैं वे दक्षिण अक्षांशवश सीधे होगए हैं । इसलिए अधिक काल में उदय को प्राप्त होतेहैं । निरक्ष और स्वदेश के उदय में चरखंडका अन्तर है । इसप्रकार निरक्षदेश क्या साक्ष कहीं उदय समान नहीं हैं ॥ १६ । १८ ॥

अथ चरखण्डैरूनाधिकत्वं गोलभ्रमणोपरि यथा प्रतीयते तथाह ।

भचक्रपादास्तिथिनाडिकाभिः
पृथक् समुद्यान्ति निरक्षदेशे ।
चक्रार्धमाद्यं च तथा द्वितीयं
सर्वत्रपूर्णाग्निमिताभिरेव ॥ १९ ॥

मेषादेर्मिथुनान्तो नाडीभिस्तिथिमिताभिरुद्वृत्ते ।
लगति कुजे तदधःस्थे प्रथमं ताभिश्चरोनाभिः ॥ २० ॥

कन्यान्ताद्धनुषोऽन्तस्तिथिमितनाडीभिरुद्वलये ।
लगति कुजे चोर्ध्वस्थे, पश्चात्ताभिश्चराढ्याभिः ॥ २१ ॥

तस्तत्र यथा कथितास्तथोदया न भवन्ति। यावत् सदोदितो रविस्तावदहोरात्रवृत्तं क्षितिजं न स्पृशति। अहोरात्रवृत्ते क्षितिजोन्मण्डलयोरन्तरं हि चरम्। अतस्तत्र कुज्याचरज्यादिकमसत्। शेषं स्पष्टम्।

भाषाभाष्य।

जिस देश में लम्बांश चौबीस अंश से कम हैं वहां उदय और चर के धन ऋण की व्यवस्था उक्त रीति से नहीं होती। उन सब देशों की स्थिति इस देश से भिन्न होने से नहीं कही गई। क्योंकि वहां मनुष्यों की गति ही नहीं है।

गोलस्थिति पर दृष्टि देने से सब बातें स्पष्ट होजाती हैं॥ २५॥

इदानीं लग्नशब्दव्युत्पत्त्योदयास्तमध्यलग्नस्थानान्याह—

यत्र लग्नमपमण्डलं कुजे
तद्गृहाद्यमिह लग्नमुच्यते।
प्राचि पश्चिमकुजेऽस्तलग्नकं
मध्यलग्नमिति दक्षिणोत्तरे॥ २६॥

स्पष्टम्।

प्रभा।

कौ पृथिव्यां जातमुत्पन्नं कुजं गर्भक्षितिजं तस्मिन्। यत्रापमण्डलं गृहाद्यं राश्यादिप्रदेशेन लग्नं तदिह लग्नमित्युदीर्यते। शेषं स्फुटमेव।

भाषाभाष्य।

पूर्वक्षितिज में क्रान्तिवृत्त का जो राश्यादि प्रदेश लगा रहता है उस को लग्न कहते हैं। और पश्चिम-क्षितिज में जो लगा रहता है उस को अस्त लग्न और याम्योत्तरवृत्त में मध्य लग्न कहते हैं॥ २६॥

अथ लग्नार्थमर्कस्य तात्कालिकीकरणवासनामाह—

लग्नार्थमिष्टघटिका यदि सावनास्ता-
स्तात्कालिकार्ककरणेन भवेयुरार्क्ष्यः।

अथास्तमयानाह—

येऽभ्युदेति समयेन येन त-
स्सप्तमोऽस्तमुपयाति तेन च ।
राशिरूर्ध्वमपमण्डलं कुजा-
दर्धमेव सततं यतः स्थितम् ॥ २४ ॥

यो राशिर्येन कालेनोदेति तेन तत्सप्तमोऽस्तं याति । ये मेषादीनामुदयास्ते तुलादीनामस्तमयाः । ये तुलादीनामुदयास्ते मेषादीनामस्तमया इत्यर्थः । यतोऽपमवृत्तं क्षितिजादुपर्यर्धमेव भवति । अर्धमधश्च । अतो राश्योरुदयमस्तमयं च गच्छतोस्तुल्यकालतोपपद्यते ।

प्रभा ।

स्फुटार्थोऽयं श्लोकः । कुजं गर्भक्षितिजम् ।

भाषाभाष्य ।

जो राशि जितने समय में उदित होता है, उससे सातवाँ राशि उतने समय में अस्त होता है । क्योंकि क्षितिज के ऊपर आधा भाग क्रान्तिवृत्त का सदा रहता है । अर्थात् मेष आदि राशियों का जो उदय है वही तुला आदि राशियों का अस्त काल है । और जो तुल आदि का उदयकाल है वही मेष आदि का अस्तकाल है । क्योंकि क्रान्तिवृत्त का आधा हिस्सा ऊपर और आधा नीचे हमेशा रहता है । इसलिये उदय और अस्तमें समानकालता होती है ॥ २४ ॥

इदानीं विशेषमाह—

यत्र लम्बजलधाजिनोनका-
स्तत्र नोदयचयाद्यमुक्रमत् ।
नान्यसंस्थिततयान्यथोदितं
येन नैष विषयो नृगोचरः ॥ २५ ॥

यस्मिन्देशे षट्षष्टि ६६ भागाधिकः पलस्तत्र केचन राशयः सदोदयाः केचन सदास्तमिताः केचन प्रान्तादुद्गच्छन्ति । अ-

काः कृताः स्युः। एवं तासां सावनानां नाक्षत्रीकरणार्थमर्कस्य तात्कालिकीकरणमुपपन्नम्।

ननु यद्येवं तर्हि किं सावना अङ्गीकृत्य नाक्षत्रीकरणप्रयासेन। किमु नाक्षत्रा एव नाङ्गीकृताः। सत्यम्। तदप्युच्यते। तत्र त्रिप्रश्ने छायार्थं ग्रहाणां स्वस्वसावनमेवोदितं ग्राह्यम्। तद्यथा। इष्टकाले स्वाहोरात्रवृत्ते यत्र ग्रहः स्थितः। यत्र च क्षितिजसङ्गस्तयोरन्तरे यावत्यो घटीविभागास्तावत्यः सावना नात्यस्ता हि क्षेत्रस्ताहि क्षेत्रविभागात्मिकाः। अथ चोदयकाले यत्र स्थितो ग्रह आसीत्। तत्कुजमध्ये यावत्यस्तावत्यो नाक्षत्रास्तास्तु कालविभागात्मिकाः। यथा पौर्णमास्यां छायाकरणे चन्द्रस्यासकृद्विधिनोदिता नाडिकास्ताश्छायार्थं न युज्यन्ते। यत्तु कैश्चिच्छायार्थमप्यसकृद्विधिनानीतास्तदसत्। अत एव वक्ष्यति।

चन्द्रप्रभार्थमसकृद्विधिनोदितं यत्
कैश्चित्कृतं खलु न सत् तदसावनत्वात्।
जानन्ति ये न निपुणं गणितं सगोलं
तेषां तु तन्त्रकरणव्यसनं वृथैव ॥

इति। छायायाः क्षेत्रात्मकत्वात् सावनाभिरेव साध्या। अयमर्थस्त्रिप्रश्ने व्याख्यात एव। एतत्सावनघटिकाप्रसङ्गाल्लग्नार्थमपि सावना अङ्गीकृता इत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

यदि इष्टघटिका सावन हैं तो तात्कालिक सूर्य से नाक्षत्र होंगी। राशियों के नाक्षत्रोदयकाल इष्टघटिकाओं में जो कि नाक्षत्रसम्बन्धि हैं उन में घटाना चाहिए। और यदि इष्टघटिका नाक्षत्री हैं, उस दशा में तात्कालिक सूर्य करने का कोई प्रयोजन नहीं है।

आर्कोदया हि सदृशीभ्य इहापनेया-
स्तात्कालिकत्वमथ न क्रियते यदार्यैः ॥ २७ ॥

ननु लग्नकरणार्थं या इष्टघटिकास्ताः सावना उत नाक्षत्राः। यदि सावनास्तर्हि नाक्षत्रा उदयाः कथं विसदृशास्ताभ्यो विशोध्याः। अतस्ताभिर्नाक्षत्राभिर्भवितव्यम्। तथा भोग्यकालसाधनार्थमर्कस्तात्कालिकः किं कृतः। यत उदयावधेरिष्टघटिकास्तथार्कोदयानन्तरमेव राशेर्भोग्यांशाः क्रमेणोद्गच्छन्ति। अत औदयिकार्कस्य भोग्यं गृहीतुं युज्यते न तात्कालिकस्य।

तथा प्रतीत्यर्थमुदाहरणम्। यत्र किल पञ्चाङ्गुला ५ विषुवती तत्र मेषादिगेऽर्के स्फुटमहोरात्रं चतुश्चत्वारिंशदसुभिरधिकाः षष्टिघटिकाः ६०।७।२। अथ उदयानन्तरमहोरात्रवृत्तसमेकाले ६०।७।२। यावत्तात्कालिकार्काल्लग्नं साध्यते तावदर्काग्निकं स्यान्न समम्। यावदौदयिकार्कात् क्रियते तावत् सममेव। अतोन्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रतीतेर्युक्तितश्चार्कस्तात्कालिकीकरणमयुक्तमिव प्रतिभाति। सत्यम्। अत एवोक्तं लग्नार्थमिष्टघटिका इत्यादि।

अत्रेष्टघटिकाः सावनास्तावदाचार्यैरङ्गीकृतास्तासां नाक्षत्रत्वं कर्तव्यम्। तच्चैवम्। यथा प्रागुक्तस्वाहोरात्रसम्बन्धिन्यो या गतिकलास्ताः स्वोदयासुभिःसंगुण्यगशिकलाभिर्विभज्य फलासुभिरधिकाः सावनतुल्या नाक्षत्राः षष्टिघटिका अहोरात्रवृत्ते नाक्षत्राः स्युः। तत औदयिकार्कस्य भोग्यासवः शोध्याः। एवं सत्याचार्येण लाघवार्थमिष्टघटीसम्बन्धिन्यो गतिकला अर्के प्रक्षिप्तास्ततो ये भोग्यासवस्त औदयिकार्कभोग्यासुभ्यो न्यूनाजातास्ते यावदिष्टघटिकाभ्यः शोध्यन्ते तावता इष्टघटीसम्बन्धिगतिकलासुभिरधि-

तब वह साधितकाल नाक्षत्र ही होगा सावन न होगा। यदि लग्न और औदयिक सूर्य से सावनकाल और तात्कालिक-सूर्य का साधन करना हो तो नीचे लिखे हुए अनुसार लाना चाहिए-

६० : रग :: सावदि.

इसप्रकार सावनघटिका सम्बन्धि सूर्यगति को उदयकाल के सूर्य में जोड़देने से तात्कालिक सूर्य के आसन्न होगा। इस से पुन तात्कालिक-सूर्य का साधन करना। यों ठीक सावनघटिका निश्चित होगी। अर्थात् असकृत्कर्म से तात्कालिक-सूर्य से सावनघटिकाओं का यथार्थ निश्चय होजायगा॥ २७॥

इदानीं देशविशेषेण राशीन् सदोदिताननुदितांश्चाह-

त्र्यंशयुङ्नवरसाः ६६। २० पलांशका
यत्र तत्र विषये कदाचन।
दृश्यते न मकरो न कार्मुकं
किं च कर्किमिथुनौ सदोदितौ॥ २८॥

यत्र साङ्घ्रिगजवाजिसंमिता- ७८। १५
स्तत्र वृश्चिकचतुष्टयं न च।
दृश्यतेऽथ वृषभाच्चतुष्टयं
सर्वदा समुदितं च लक्ष्यते॥ २९॥

यत्र तेऽथ नवतिः पलांशका-
स्तत्र काञ्चनगिरौ कदाचन।
दृश्यते न भदलं तुलादिकं
सर्वदा समुदितं क्रियादिकम्॥ ३०॥

अयमर्थस्त्रिप्रश्ने लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत् तावद्दिनं सन्ततमेव तत्रेत्यादिना सम्यक् कथित एव। यत्र वृश्चिकान्त क्रान्तितुल्यो लम्बस्तत्रैते पलांशाः ६६। २०। तत्र धनुर्मकरौ क्षितिजादधः स्थितावेव भ्रमतः। कर्किमिथुनौ तूपर्य्येव। यत्र तुला-

उपपत्ति ।

आचार्य ने वासनाभाष्य में सावनघटिकाओं के नाक्षत्रीकरण का कारण सविस्तर दिखलाया है । उस का सारांश इस प्रकार है —

यदि इष्टकाल सावन है तब तात्कालिक-सूर्य से लग्न का साधन करना चाहिए। और यदि नाक्षत्र है तब उदयकालिक-सूर्य से ही लग्नसाधन करना उचित है। उदयकाल में रवि लग्न के समान होता है। उस के अनन्तर राशियों के नाक्षत्रोदय होते हैं। इस लिए औदयिक सूर्य के बाद जो नाक्षत्रोदय (उदय को प्राप्त) होते हैं, उन को नाक्षत्र इष्टघटिका में घटा देना चाहिए। और जिस समय लग्न के लिए इष्टघटिका सावन हैं उस समय विजातीय सावन घटिकाओं से नाक्षत्रोदय नहीं घट सक्ते। इसी लिए उन सावन घटिकाओं का नाक्षत्रीकरण युक्तिसङ्गत हुआ। इसीलिए ही अर्क का तात्कालिकीकरण किया गया है। अर्थात् सूर्य को तात्कालिक करने से सावन घटिकाएं स्वतः नाक्षत्रघटिका होजाती हैं। वह इस प्रकार होती हैं—अपने अपने अहोरात्रवृत्त में, इष्टकाल में, जहां ग्रह स्थित है, और जो इष्टकाल में अहोरात्रवृत्त और क्षितिजवृत्त का योग है इन दोनों के अन्तर में अपने अहोरात्रवृत्त में जितनी घटिकाएं होंगी वे सावन घटिका हैं। उदयकाल में निज अहोरात्रवृत्त में जहां ग्रह स्थित हो वहां चिह्न करना, फिर उदय के अनन्तर इष्टकाल में जहां हो उस स्थान में चिह्न करना, इस चिह्न का और पूर्व क्षितिज में जहां चिह्न किया है उस का स्वाहोरात्रवृत्त में जो घटीरूप अन्तर है उस को नाक्षत्र घटिका कहते हैं। इस प्रकार यह बात स्पष्ट ज्ञात हुई कि सावन घटिकाओं की अपेक्षा नाक्षत्र घटिका इष्टघटी सम्बन्धि-गतिकलोत्पन्नासु के समान अधिक हैं। इस लिए सावन घटिकाओं में इष्टघटी सम्बन्धि गतिकलासुओं को जोड़ देने से सावन घटिकाएं नाक्षत्र होजायंगी।

गतिकलोत्पन्नासुओं के साधन के लिए अनुपात किया—

१८०० : स्वोदय : : गक :

फल गतिकला सम्बन्धि असु होंगे। इन को सावनघटिकाओं में जोड़ने से नाक्षत्र होती हैं। इस प्रकार सावन घटिकाओं का नाक्षत्र करना उपपन्न हुआ। परन्तु, यहां पर औदयिक सूर्य में ही लाघव से गतिकलाओं का जोड़ दिया गया है। गतिकलाओं के जोड़ने से ही औदयिक सूर्य तात्कालिक होजाता है। फिर उस से भोग्यकाल का साधन करना उचित है। तात्कालिक भोग्यासुओं से औदयिक भोग्यासु जितने अधिक हैं, उतने ही इष्टघटी सम्बन्धि गतिकलोत्पन्नासु हैं। इसी के समान ही इष्ट सावन और नाक्षत्र घटिकाओं का अन्तर है। इस प्रकार सावन घटिकाओं के नाक्षत्रीकरण के लिए सूर्य तात्कालिक किया गया है।

इस प्रकार यह बात भी स्पष्ट है कि तात्कालिक सूर्य और लग्न से जो काल साधन होगा वह सावन होगा। परन्तु यदि सूर्य और लग्न उदयकाल के होंगे

राशीनां पृथक् पृथक् स्वचरार्धानि चोच्यन्ते। निरक्षोदयासवो गगनभूभरपङ्कचन्द्रा १६७० इत्यादयो यत्र देशे यस्य राशेः स्वचरार्धसमाः स राशिस्तत्र देशे सदा दृश्य इत्यत्र का युक्तिः। अन्यथा दृश्यादृश्यं सर्वं युक्तिशून्यमुक्तम्। यद्येवं तर्हि यत्र षट्षष्टिः ६६ पलांशास्तत्र सर्वेषां स्वचरोदयसाम्यं स्यात्। युगपत् सर्वेषां सदा दृश्यत्वं मेरावपि न घटते।

भाषाभाष्य।

लल्लाचार्य का मत है कि निरक्षदेश के उदयासु जिस देश मे, जिस राशि के चरार्द्ध के समान होंगे, वह राशि उस देश में सदा उदित रहेगा। यदि यह नियम है तो ६६ अक्षांशवाले देश मे उदयासु और स्वचरार्धासु राशियों के समान होने से वहां सब राशिया एक समय में उदित होंगे। परन्तु इस प्रकार नहीं होता- इस लिए यह लल्लाचार्यकथन असङ्गत है।

उपपत्ति।

लल्लाचार्य का मत है कि निरक्षोदयासु जिस देश मे जिस राशि के चरार्ध के तुल्य होंगे वहां वह राशि सदा उदित रहेगा। लल्लाचार्य का श्लोक ऊपर प्रभा में लिखा है परन्तु यह अज्ञानमूलक है। क्योंकि ६६ अक्षाश देश में चरासु उदयासु के तुल्य होते हैं, परन्तु वहा सब राशि एक समय में उदित होते नहीं देखने मे आते। जैसा- मेषादिजीवाः-, इत्यादि विधि से एकादि राशियों की ज्याओं को परमाल्पद्युज्या से गुणकर निज द्युज्याओं का भागदेकर, फल का चाप करने से राशियों के निरक्षोदयासु होते हैं। $\frac{\text{मेज्या} \times \text{प द्यु}}{\text{द्यु}}$। अब ६६ अक्षांशवाले देश में साधन के लिए अनुपात किया-

$$\text{लज्या} : \text{अज्या} :: \text{क्राज्या} : \text{कुज्या} = \frac{\text{अज्या} \times \text{क्राज्या}}{\text{लज्या}},$$

$$\text{द्युज्या} : \frac{\text{अज्या} \times \text{क्राज्या}}{\text{लज्या}} :: \text{त्रि} : \text{चरज्या} = \frac{\text{अज्या} \times \text{क्राज्या} \times \text{त्रि}}{\text{द्युज्या} \times \text{लज्या}}$$

इसका चाप उक्त अक्षाशतुल्य देश में चर हुआ, और यह निरक्षोदय के समान है। क्योंकि, वहांपर अक्षज्या परमाल्पद्युज्या के और लम्बज्या जिनज्या के तुल्य होने से, चरज्या$=\frac{\text{पद्यु} \times \text{क्रा} \times \text{त्रि}}{\text{द्यु} \times \text{जिज्या}}$, इस रूपमें क्रान्तिज्या और त्रिज्या के गुणनमें

न्तक्रान्तितुल्यो लम्बस्तत्राष्टसप्ततिः सप्तदशकलाधिका ७८। १७ पलांशास्तत्र वृश्चिकादि चतुष्टयं क्षितिजादधो वृषभादिकमुपरि एवं मेरौ नवतिः ९० पलांशास्तत्र तुलादिषट्कमधो मेषादिकमुपरीति सर्वं भगोले भ्रामिते सति दृश्यते।

प्रभा।

त्र्यंशयुङ्नवरसा इत्यादयः स्फुटार्थाः। रथोद्धताछन्दः।

भाषाभाष्य।

जिसदेश में अक्षांश ६६। २०' हैं वहां धनु और मकर उदित हुए नहीं दीखते। और कर्क, मिथुन सदा क्षितिज के ऊपर रहते हैं और जहां ७८। १७' अक्षांश है वहां वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ क्षितिज के नीचे ही उदित होते हैं। और वृष से चार राशियां सदा क्षितिज के ऊपर उदित होते हैं। और जहां ९० अक्षांश हैं अर्थात् मेरु में, मेषादि छ राशि सदा उदित और तुलादि छ राशि अस्त रहती हैं।

उपपत्ति।

जिस देश में जिस राशि की दक्षिणक्रान्ति लम्बांश से अधिक है वह राशि उस देश में नहीं दिखलाई देता। इस लिए जिस देश में ६६। २०'' अक्षांश हैं वहां धनु और मकर की दक्षिणक्रान्ति लम्बांश से अधिक होने से ये दोनों राशि नहीं उदित होते। इसीप्रकार सब की गोलस्थिति है॥ २८। ३०॥

इदानीं लल्लोक्तस्य दृश्यादृश्यत्वलक्षणस्य दूषणमाह—

राशेर्यस्य निरक्षजोदयसमाः स्वीयाश्चरार्धासवो
दृश्यस्तत्र सदा स राशिरिति यत्त्रिर्युक्ति लल्लोदितम् +
यद्येवं रसषट् ६६ पलांशविषये सेऽप्यमी सर्वदा
दृश्याः स्युर्युगपच्चरोदयकृतीसाम्यादसत्तच्चतः॥ ३१॥

एकद्वित्रिराशीनां चराण्यधोऽधः शोधितानि तानि चरखण्डानि

+ लल्लाचार्य का वाक्य यों है—
यदा स्वचरार्धसमा जिनघ्नविषयोदयासवो राशेः।
दृश्यः स सदा तद्विद् दृश्यस्तदधोऽन्यथा नास्ति॥

उपपत्ति।

आचार्यका अभिप्राय यह है कि लल्लने जो ६६। ३० और ७५। ० में वृश्चिक मकर और कुम्भका न उदय होना दिखलायाहै सो हमारे मतसे ६६। २०। और ७८। १५ इन अक्षांशों में भी नहीं उदयको प्राप्त होते फिर इनको ३ अंश न्यून लिखने में क्या हेतु है? यह युक्ति विरुद्ध है और जहां ६६। ३० अक्षांश है वहां धनुरन्त और मकरादि के कुछ अंशों की क्रान्ति लम्बाधिक होने से वह भागमात्र नहीं उदित होता और भाग दक्षिण क्रान्तिके लम्बाधिक न होने से देखने में आता है। परन्तु लल्लने इन दोनोंका उदयही नहीं माना। जैसा कि ऊपर प्रभा में उनका श्लोक लिखा है। इसीप्रकार ७५ अक्षांश में भी समझना चाहिये॥ ३२॥

अथाक्षलम्बज्ञानार्थमाह—

यन्त्रवेधविधिनाध्रुवोन्नति-
र्यानतिश्च भवतोऽक्षलम्बकौ।
तौक्रमाद्विषुवदन्ह्यहर्दले
येऽथवानतसमुन्नतालवाः॥ ३३॥

चक्रयन्त्रेण ग्रहवेधवद्ध्रुवं विध्येत्। तत्र यन्त्रनेम्यां य उन्नतांशास्तेऽक्षांशाः। ये नतास्ते लम्बांशाः। अथवा विषुवद्दिनार्धे येऽर्कस्यनतोन्नतांशास्तेऽक्षलम्बांशाः। अथवा विषुवद्दिनार्धे येऽर्कस्य नतोन्नतांशास्तेऽक्षलम्बांशा इति युक्तियुक्तम्।

भाषाभाष्य।

वेधद्वारा जो ध्रुवका उन्नतांश और नतांश सिद्ध हो वही अक्षांश और लम्बांश कहलाता है। अथवा विषुवद्दिनके मध्याह्न में जो सूर्यका नतांश और उन्नतांश हो वह क्रमसे अक्षांश और लम्बांश होताहै।

उपपत्ति।

देशभेद से जहां वेध से ध्रुवकी जितनी उंचाई प्राप्तहो वहां उस देश का अक्षांश है। और खमध्य से अक्षांश के समान ही नाडीवृत्त दक्षिण झुका रहता है। इस अक्षांश को ९० में घटा देने से लम्बांश, अक्ष कोटिके समान होते हैं।

स्थानीय ध्रुवकी उंचाई उस स्थान के अक्षांश के समान किस प्रकार होती है, इसकी युक्ति इस प्रकार है—

जिनज्या का भाग देने से मेषादि-राशिज्या सिद्ध होती है। इस लिए चरज्या= $\frac{\text{मेज्या} \times \text{प सु}}{\text{सु}}$; इस का चाप निरक्षोदयासु के तुल्य सिद्ध होगया। पर यह लल्लाचार्य की युक्ति उपपत्तिशून्य है। एक समय में सब राशियों का उदय मेरु में भी नहीं होता ॥ ३१ ॥

इदानीमन्यद्दूषणमाह—

षट्षष्टिः सदला लवाः पलभवा यस्मिन्न तस्मिन् धनु-
र्नक्रश्चापि न वृश्चिको न च घटः पञ्चाद्र्यो ७५। ० यत्र च
दृश्यः स्यादिति यत् सदा प्रलपितं लल्लेन गोले निजे
गोलज्ञ त्रिलवोनितास्त उदिताः केनोच्यतां हेतुना॥३२॥

अत्र त्र्यंशयुङ्नवरसा इत्यादिभिर्भवितव्यम् । ६६ । २० । ७८ । १५ । एषां स्थाने एते ६६ । ३० । ७५ । ० त्रिभिस्त्रिभिरंशैरूनाः केन हेतुना लल्लेन निजे गोले पठिताः। हे गोलज्ञ तत्प्रोच्यताम्।

प्रभा।

आचार्येण त्र्यंशयुङ्नवरसेत्यादिना देशभेदेनाक्षांशान् स्थिरीकृत्य या राश्युदयव्यवस्था निरूपिता, तत्रैव देशे लल्लमतेनाक्षांशास्त्र्यंशोनाभवन्ति। तथाच तदुक्तिः—

'पञ्चभिरधिका सप्ततिरंशा यस्मिन् पलस्य विषये स्युः।
तत्र न वृश्चिककार्मुकमकरघटा दृश्यतां यान्ति ॥',
त्र्यंशोनाक्षांशकल्पनायां न किमपि बीजमित्याचार्याभिप्रायः।

भाषाभाष्य।

जिस देश मे ६६। ३० अक्षांश है वहां वृश्चिक और मकर नहीं उदित होते। और जहां ७५। ० अक्षांश है वहां कुम्भ उदय को नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार जो लल्लाचार्य ने अपने ग्रन्थ (शिष्यधीवृद्धिद) में कहा है सो हे गोलविशारद! उन्होंने किस कारण से अक्षांशों को तीन अंश न्यून लिखा है।

च्छेदको नतु नरः सलम्बवत् ॥ ३४ ॥

अस्य वासना त्रिप्रश्ने कथितैव।

प्रभा।

द्युनिशामण्डले अहोरात्रवृत्ते कुजादुन्नतं सावनं सावनकालो भवति। तस्य सावनोन्नतकालस्य ज्या द्युति.विधौ ग्रहाणांछायासाधने उपयुज्यते। अस्य ज्या अक्षवशतोऽत्तकर्णवत्तिर्यक्तिरश्चीना भवति। अतश्छेदक इत्युच्यते नतु नरः शङ्कुः यतः सलम्बवद्भवतीति स्फुटार्थः।

भाषाभाष्य।

क्षितिज से अहोरात्रवृत्त में जो ग्रहोंका उन्नतांश है वह सावन है। इस उन्नतचाप की ज्या ग्रहोंके छाया साधन के लिये उपयुक्त है। यह ज्या, अक्षांशवश, अक्षकर्ण के समान तिरछी होती है। इसको छेद कहते हैं शंकु नहीं। क्योंकि शंकु लम्बके समान सीधा होता है।

उपपत्ति।

जब सूर्य क्षितिज के ऊपर होताहै उस समय द्वादशागुल शंकुकी छाया और सूर्य के उन्नतांश की ज्या और उसकी कोटिज्या सिद्ध करना। फिर नीचे लिखे अनुपात से सब ग्रहोंकी छाया अलग अलग सिद्ध होजाती है।

रउज्या: दृग्ज्या. :१२: द्वादशांगुल शंकुकी छाया।

इसप्रकार सब ग्रह—नक्षत्रों की छाया सिद्ध होती है। यद्यपि भौमादि पञ्च तारा और नक्षत्रों की छाया प्रकाशमान नहीं होती जैसा कि सूर्य और चन्द्रकी स्पष्ट प्रतीत होती है, तो भी अन्य ग्रहों की छाया सिद्ध करने से उस ग्रह की दिशा मालुम होजाती है। छाया की लम्बाई और दिशा ज्ञात होनेपर छायाग्रसे शङ्कु मूल तक सूत्र ले जाने से ग्रह दिशा ज्ञात होसकेगी।

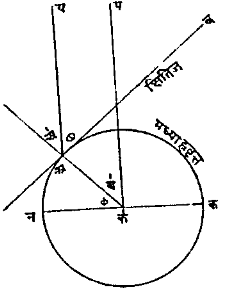
छायासाधन के लिये निर्दिष्ट काल सावन रहताहै। क्योंकि ग्रहोंके उन्नतांश निश्चय करने बिना छाया नहीं ज्ञात होसकती। और उन्नतांश अहोरात्र वृत्त के चाप का अंश है, जो क्षितिज और ग्रह के बीच में रहता है। परन्तु चाप में जो समय रहता है वह सावनकाल से भिन्न नहीं होसकता॥ ३४॥

'अ' वेधक-स्थान, न अ क स्थानीय-मध्याह्न वृत्त है, जो न और क बिन्दु पर विषुवद्वृत्त को काटता है। यदि अ प वेधानुसार ध्रुव दिशा है तब भूकेन्द्र से कं प रेखा ध्रुव दिशा मे खींचना। यह रेखा पूर्व अ प के समान होगी, क्योंकि ध्रुव इतनी ही दूरीपर स्थित है। वेधक का क्षितिज स्पर्शरेखा रूप अ व होगा।

अब यह बात सिद्ध करना चाहिये θ कि कोण जो ध्रुवकी उँचाई का मान है, न अ चाप वा, φ इस कोण के समान है। यह φ कोण अक्षांश केसमान है। इस स्थित में, अ प=कं प और अं=वं परन्तु θ, अं कोण की कोटि और φ, वं कोण कोटि है इस लिये θ=φ= या, ध्रुवकी उँचाई = अक्षांश।

इससे यह स्पष्ट है कि ध्रुवकी उँचाई में जिस क्रमसे भेद होगा उसी प्रकार अक्षांश में भी भेद होगा, जिस क्रमसे वेधकर्ता उत्तर या दक्षिण हटैगा ॥ ३२ ॥

क्षेत्र



इदानीं शङ्कानयनवासनां संक्षिप्तामाह—

उन्नतद्युनिशमण्डलेकुजात्
सावनद्युतिविशौ हि तज्ज्यका।
तिर्यगक्षनरतोऽक्षकर्णव-

शङ्कुरुन्नतलवज्यका भवे-
  द्दृग्गणश्च नतभागशिञ्जिनी ॥ ३६ ॥
भास्करेऽत्र सममण्डलोपगे
  यो नरः स समशङ्कुरुच्यते ।
कोणशङ्कुरथ कोणवृत्तगे
  मध्यशङ्कुरिति दक्षिणोत्तरे ॥ ३७ ॥
कुपृष्ठगानां कुदलेन हीनं
  दृङ्मण्डलार्धं खचरस्य दृश्यम् ।
कुच्छन्नलिप्ता नुरतो विशोध्याः
  स्वभुक्तितिथ्यंशमिताः प्रभार्थम् ॥ ३८ ॥

दृङ्मण्डले क्षितिजादुपरि ग्रहपर्यन्तं येंऽशास्त उन्नताः । खम-
दधस्ते नताः । उन्नतांशानां ज्या शङ्कुः । नतांशज्या दृग्ज्या ।
ः कुच्छन्नलिप्ताभिरूनः कार्यः । द्रष्टुः कुदलोच्छ्रितत्वात् ।
मर्थो ग्रहच्छायाधिकारे व्याख्यात एव ।

भाषाभाष्य ।

क्षितिज से दृङ्मंडल में ग्रह का जितना उन्नतांश हो उसकी ज्या को शङ्कु,
समध्य से जितना नतांश हो उसकी ज्या को दृग्ज्या कहते हैं । जब सूर्य
वृत्त में हो उस समय उसका शङ्कु समशङ्कु कहलाता है । इसी प्रकार
वृत्त में होने से कोणशङ्कु और दक्षिणोत्तरवृत्त में रहने से मध्यशङ्कु
जाता है । भूपृष्ठनिवासियों को ग्रहों का दृङ्मण्डल आधा दीखता है, परन्तु
छन्नकला उसमें कम रहती हैं । इसलिए छायासाधन के लिए शङ्कु में,
छन्नकला (ग्रहभुक्ति के पञ्चदशांश के तुल्य) घटाना चाहिए †

---

† भूगर्भ से भूपृष्ठनिवासी, भूव्यासार्ध के तुल्य ऊंचे रहते हैं । भूव्यासार्ध की कला को कुच्छन्न
कहते हैं । ग्रहों का जो शङ्कु सिद्ध होता है वह भूगर्भ से होता है परन्तु प्रयोजन में भूपृष्ठ से पड़ता
लिए छायासाधन में जो शङ्कु सिद्ध हो उसमें कुच्छन्नकला घटा देने से वह शङ्कु भूपृष्ठ से होगा।
का विशेष विवरण गणिताध्याय में आचार्य ने किया है । कुच्छन्नकला सिद्ध करने के लिए अनु
प्रकार है—गतियो ग घ भूव्यासा = $\frac{\text{ग घ} \times \text{भूव्यासा}}{\text{गतियो}}$ । इसमें भूव्यासार्ध मान का
न देनेसे $\frac{\text{ग घ}}{१५}$ = कुच्छन्नकला । इसीलिए लिखा है 'स्वभुक्तितिथ्यंशमिताः प्रभार्थम्।'

इदानीं केषांचिद्दूषणमाह—

चन्द्रभार्थमसकृद्विधिनोदितं यत्
केश्चित्कृतं खलु न सत्तदसावनत्वात्।
जानन्ति ये न निपुणं गणितं सगोलं
तेषां तु तन्त्रकरणव्यसनं वृथैव॥ ३५॥

व्याख्यातमेव।

प्रभा।

केश्चिल्लल्लादिभिः 'समयोऽसकृदेवमाप्यः' इत्यादि नारदग्रन्थे चन्द्रस्य छायासाधनार्थमसकृत्प्रकारेण य उदितकाल आनीतः स न समीचीनः तस्यासावनत्वात्। एवं स कालो ह्यसावनो नाक्षत्रो जातः, इष्यते तु सावन इति वैषम्यमितिभावः।

भाषाभाष्य।

किसी आचार्य ने चन्द्र-छाया साधन के प्रसङ्ग में चन्द्र के उदयकाल को असकृत्कर्म से स्पष्ट किया है। परन्तु यह उदयकाल सावन नहीं सिद्ध हुआ किन्तु नाक्षत्र होगया है इसलिए असकृत्कर्म ठीक नहीं है। जो पूरी तौर से गणित और गोलविषय को नहीं जानते उन लोगों का ग्रन्थ बनाने का व्यसन व्यर्थ ही है + ॥ ३५॥

इदानीं शङ्कुस्थानमाह—

दृष्टिमण्डलभवा लवाः कुजा-
दुन्नता गगनमध्यतो नताः।

+ इसका तात्पर्य यह है कि पूर्णा की चन्द्रछाया सिद्ध करने में किसी ने चन्द्र के उदितकाल (अर्थात् उदय से इष्ट घटीतक) का साधन असकृत्कर्म से किया है, अर्थात् तात्कालिक चन्द्र और लग्न से असकृत्कर्मद्वारा सिद्ध किया है। परन्तु यह उनकी भूल है। क्योंकि इस रीति से सावनकाल का साधन न होसकेगा। इस लिए चन्द्रछायासाधन में असकृत्कर्म ठीक नहीं है। यह रीति उस समय ठीक होसकती है जब चन्द्र औदयिक हो, न कि तात्कालिक। क्यों कि तात्कालिक चन्द्र से जो काल सिद्ध होगा वह सावनकाल एक बारगी ही सिद्ध होगा यहां असकृत्कर्म का क्या आवश्यक है? यह बात 'सूर्यसिद्धान्तविभाषा' के वासना भाष्य में स्पष्ट लिखी है।

इस क्षेत्र में, प्रथम यह ज्ञात रखना चाहिये कि 'ख' किसी ग्रह का किरण पृथ्वी पर पड़ा और बीच में वायुमण्डल में पड़कर सीधे मार्ग के बदले 'सं प ब' मार्ग से भूमि को पहुचा। यहा पर आघात मे 'प ब' भाग तिरछा होगया। 'प' वेधकर्ता का स्थान है, 'प ख' खमध्य से लम्ब रेखा है। इस 'सं प ब' किरणमार्ग और लम्ब रेखा से 'क' कोण उत्पन्न होता है। और 'र' किरणवक्रीभवन कोण उत्पन्न होता है। वास्तव में किरणमार्ग 'सपट' होना चाहिए, इसलिए किरणवक्रीभवनकोण 'क–र' के समान है। यहा पर अनुसन्धान से यह भी मानागया है कि उक्त लम्ब रेखा और किरणरेखाओं के सयोग से जो कोण उत्पन्न होता है उसकी ज्या में और किरणवक्रीभवन कोणज्या में नियत सम्बन्ध होता है। लम्बरेखा और किरणरेखा से उत्पन्न कोण की ज्या को यहा पर 'नतकोणज्या' नाम से समझना चाहिए। इसलिए उक्त परीक्षित नियम के अनुसार –

$$\frac{\text{ज्या नतको}}{\text{ज्या क्रिवको}} = \text{नियतसम्बन्ध} = \text{न}।$$

अब देखना चाहिए कि सूर्य का यथार्थ स्थान 'स' है। स मे सूर्य का किरण सप सीधी रेखा से न जाकर घनवायु के कारण स अ प मार्ग से तिरछा होकर जाता हुआ 'अ प' धनुष के आकार में होजाता है। इस स्थिति में 'प' वेधकर्ता को सूर्य अपने यथार्थ स्थानसे ऊचा प सं दिशा में दीख पड़ेगा। यहा पर प सं रेखा प अ धनुष की स्पर्शरेखारूप होती है।

इस प्रकार 'स प सं' कोण, सूर्य के यथार्थ दिशा और किरणवक्रीभवन से उत्पन्न दिशाओं के बीच में, किरणवक्रीभवन कहलाता है। इसका प्रभाव ग्रहन क्षत्रों पर पड़ने से, उनके उन्नतांश बढ़ते और खमध्य से नतांश घटते हैं। इस लिये वेधागत उन्नतांशों से किरणवक्रीभवन घटाने से वास्तव उन्नतांश सिद्ध होते हैं। जब ग्रह क्षितिज में होगा तब किरणवक्रीभवन का मान परम होगा। क्योंकि वहांपर पतनकोण परम होगा। इसलिए क्षितिज में परम–किरणवक्री भवन होता है, और खमध्य में वह शून्य होता है। क्योंकि खमध्यगत ग्रह के किरण लम्बरूप पड़कर वायुमण्डल का भेदन करते हैं, इसलिए वे तिरछे नहीं होते हैं। क्षितिज में परम–किरणवक्रीभवन का मान ३५ कला होता है। जब वायु की शक्ति और उसमें गरमी बढ़ती है उस समय किरणवक्रीभवन बढ़ता है।

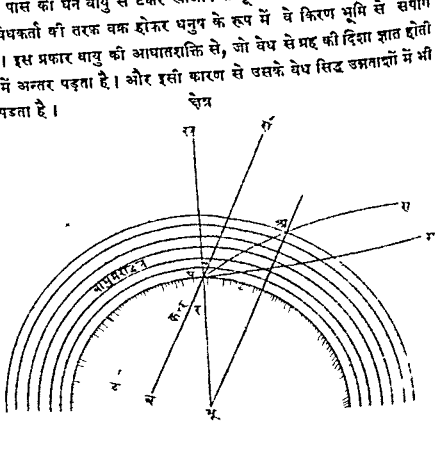
उपपत्ति ।

किरणवक्रीभवन, वा (Refraction) ।

वेध से ग्रहों के जो उन्नतांश और नतांश सिद्ध होते हैं वे वास्तविक नहीं होते। उनमें एक प्रकार का संस्कार किया जाता है तब वे यथार्थ होते हैं। इस संस्कार का नाम किरणवक्री-भवन है। इस संस्कार का नाम और नियम प्राचीन सिद्धान्तों में नहीं लिखा है। इसका ज्ञान युरोपियन ज्योतिषियों ने वेध से प्राप्त किया है। प्रसङ्गवश उपयोगी होने से यहां पर संक्षेप से इसका निरूपण किया जाताहै।

पृथ्वी जिस वायुचक्र से वेष्टित है उस वायुचक्र में होकर सब आकाशीय पदार्थों के किरण आकर नेत्र में लगते हैं, तब वे सब पदार्थ दिखलाई देते हैं। यह परीक्षा से सिद्ध हुआ है कि जब किसी घनपदार्थ के द्वारा किरण पृथ्वी पर आते हैं तब अपने मार्ग में सीधे नहीं आते, वक्र होकर आते हैं। क्योंकि पृथ्वी के आस पास की घन वायु से टक्कर खाजाने से भूमि पर तिरछे होकर गिरते हैं। अर्थात् वेधकर्ता की तरफ वक्र होकर धनुष के रूप में वे किरण भूमि से संयोग करते हैं। इस प्रकार वायु की आघातशक्ति से, जो वेध से ग्रह की दिशा ज्ञात होती है उस में अन्तर पड़ता है। और इसी कारण से उसके वेध सिद्ध उन्नतांशों में भी अन्तर पड़ता है।

क्षेत्र



क्षितिज में किरणवक्रीभवन ३५ कला होकर फिर क्रम से घटताजाता है और ४५ अंश उन्नतांश में केवल ५८ रहजाता है।

अब किरणवक्रीभवन का घटना और बढ़ना किस नियम से होता है, इस का निश्चय करना चाहिए। इसलिए यह सिद्ध करना चाहिए कि किरणवक्रीभवन उस क्रमसे बदलता है, जिस क्रमसे खमध्यनतांशकी स्पर्शरेखा बदलती है।

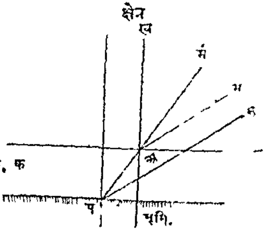
कल्पना किया, स अ प किसी ग्रहका 'प' वेधकर्ता तक किरणमार्ग है, तब उस ग्रह की दिशा 'प सं' होगी। 'ज' कोण और 'क' कोण का योग खमध्यनतांश के तुल्य होगा। और 'स अ सं' कोण किरणवक्रीभवन=क, के हैं।

अथ पूर्वरीति के अनुसार,

$$\frac{\text{ज्या नतको}}{\text{ज्याकिवको}}=\text{न},$$

वा, $$\frac{\text{ज्या (ज+क)}}{\text{ज्या क}}=\text{न};$$

यह, ज्या (ज+क)=ज्यान, क



ज्याज × को ज्याक + कोज्याज + ज्याक, = न ज्या ज.

परन्तु यहांपर 'क' कोण का मान बहुत छोटा है और त्रिकोणमिति के अनुसार किसी अति अल्पकोण की कोटिज्या = १ होती है और लम्ब, चाप और उसकी ज्या उसके वृत्तात्मक मान के तुल्य होते हैं।

∴ ज्या क = क

और कोज्या क = १; इसलिए ऊपर का समीकरण यों हुआ–

ज्या ज + क × कोज्या ज = न ज्या ज;

∴ क × को ज्या ज = न ज्यानज – ज्या ज = (न–१) ज्या ज;

∴ $$\text{क} = (\text{न}-१)\frac{\text{ज्या ज}}{\text{कोज्या ज}}, \text{ अथवा, क} = (\text{न}-१)\text{ स्प ज.}$$

यदि, न–१=क

तदन्तरैक्यं समवृत्तखेट-
मध्यांशजीवां भुवि बाहुमाहुः ॥ ४१ ॥
दृग्ज्यां श्रुतिं चाथ तयोस्तु कोटिं
पूर्वापरां वर्गवियोगमूलम्।

क्षितिजस्याहोरात्रवृत्तसंपातयोर्बद्धं सूत्रमुदयास्तसूत्रम्। ग्रहस्थानाल्लम्बः शङ्कुः। तस्य तलमुदयास्तसूत्राद्दक्षिणतो भवति। यतः क्षितिजादुपरि दक्षिणतोऽहोरात्रवृत्तं गतम्। अधस्तूत्तरतो गतम्। अतो निश्युत्तरं नृतलम्। अथ भुज उच्यते। उत्तरगोलेऽग्रोत्तरं नृतलं याम्यमतस्तेनोनाग्रा बाहुर्भवति। बाहुर्नाम शङ्कुमूलप्राच्यपरसूत्रयोरन्तरम्। यदाग्रा शङ्कुतलादूना तदा तयोरन्तरं दक्षिणं शङ्कुतलं बाहुः स्यात्। एवं समवृत्तप्रवेशादुपरि। दक्षिणगोले त्वग्रा याम्या शङ्कुतलं च याम्यं तयोर्योगे कृते बाहुः स्यात्। रविसममण्डलयोरन्तरांशानां ज्या बाहुः। तत्र या दृग्ज्या स कर्णः। तयोर्वर्गान्तरपदं पूर्वापरा कोटिः।

भाषाभाष्य।

क्षितिज में अहोरात्रवृत्त और सममण्डल के मध्यभाग की ज्या को अग्रा कहते हैं। यह अग्रा पूर्व पश्चिम दिशा में हुआ करती है। पूर्व और पश्चिम दिशाओं अग्राओं के अग्रमें जो सूत्र बांधा जाता है उसको उदयास्त-सूत्र कहते हैं। दिन में शङ्कुतल उदयास्त-सूत्र से दक्षिणदिशा में होता है। क्योंकि क्षितिज के ऊपर दक्षिणमें अहोरात्रवृत्त में स्थित रहता है। इसी प्रकार रात्रि में उत्तर दिशामें अहोरात्रवृत्त रहता है इसलिए शङ्कुतल उदयास्तसूत्र से उत्तर होता है। इस प्रकार शङ्कुतलकी स्थिति युक्तियुक्त कहीगई है।

उत्तर दिशा में अग्रा के अग्र होने से शङ्कुतल की दक्षिण दिशा और दक्षिण में होने से शङ्कुतल दक्षिण दिशा का होता है। इन दोनों शङ्कुतलों का योग-वियोग भुज

किरणवक्रीभवन-सारणी ।

वेधोन्नतांश.		मध्यम वक्रीभवन.		वेधोन्नतांश.		मध्यम वक्रीभवन	
°	′	′	″	°	′	′	″
०	०	३५	५४	११	०	४	४१
०	२०	३०	५२	१२	०	४	२५
०	४०	२७	२३	१३	०	४	५
१	०	२४	२५	१४	०	३	४७
१	३०	२०	५१	१५	०	३	१२
२	०	१८	९	२०	०	२	३१
२	३०	१६	१	२५	०	२	३
३	०	१४	१५	३०	०	१	४०
३	३०	१२	४८	३५	०	१	२२
४	०	११	३६	४०	०	१	९
५	०	९	४७	४५	०	०	५८
६	०	८	२३	५०	०	०	४८
७	०	७	२०	६०	०	०	३३
८	०	६	३०	७०	०	०	२१
९	०	५	४९	८०	०	०	१०
१०	०	५	१६	९०	०	०	०

इदानीमग्रासुदयास्तसूत्रं चाह—

क्ष्माजे द्युरात्रसममण्डलमध्यभाग-
जीवाग्रका भवति पूर्वपराशयोःसा ।
अग्राग्रयोः प्रगुणमत्र निबद्धसूत्रं
यत्तद्वदन्ति गणका उदयास्तसूत्रम् ॥ ३९ ॥

सूत्राद्दिवाशङ्कुतलं यमांशं
याम्यां गतं हि द्युनिशं कुजोर्ध्वे ।
अधश्च सौम्यां निशि सौम्यमस्मात्
सद्युक्तियुक्तं नृतलं निरुक्तम् ॥ ४० ॥

सौम्याग्रकाग्रान्नृतलं हि याम्यं
याम्याग्रकाग्रात्पुनरेव याम्यम् ।

सिद्ध होंगे उनमें प्रथम मेष का, दूसरा दो राशियों का, तीसरा तीन राशियों का होगा। इन मेंतीसरे मे दूसरा उदयकाल और दूसरे में पहिला घटा देने से अलग अलग निरक्षोदयासु सिद्ध होंगे।

ये क्रान्तिक्षेत्र गोलमें स्पष्ट दीखते हैं ॥ ४२–४४ ॥

अथाक्षक्षेत्राण्याह––

भुजोऽक्षभा कोटिरिनाङ्गुलोना
कर्णोऽक्षकर्णस्त्रिभुजं यथेदम्।
तथाक्षलम्बौ भुजकोटिरूपौ
त्रिज्या श्रुतिर्दक्षिणसौम्यवृत्ते ॥ ४५ ॥
उन्मण्डले प्रागपरोत्थसूत्रात्
क्रान्तिज्यका कोटिरथ द्युरात्रे।
कुज्या भुजोऽग्रा क्षितिजे च कर्णः
क्षेत्रं तथेदं त्रिभुजं प्रसिद्धम् ॥ ४६ ॥
अग्रा भुजः स्वे समना च कोटि–
र्द्युरात्रके तद्धृतिरत्र कर्णः।
भुजोपमज्या समना च कर्णः
कुज्योनिता तद्धृतिरेव कोटिः ॥ ४७ ॥
उद्वृत्तना दोरपमः श्रुतिः स्या–
दग्रादिखण्डं खलु तत्र कोटिः।
उद्वृत्तना कोटिरथाग्रकाग्र–
खण्डं भुजस्तच्छ्रवणः क्षितिज्या ॥ ४८ ॥
कोटिर्नरः शङ्कुतलं च बाहु–
श्छेदः श्रुतिस्त्यम्नसहस्रमेवम्।
उत्पाद्य सद्यः स्फुटगोलविद्ये–

कहलाता † यह भुज क्षितिज के ऊपर सममण्डल और ग्रहस्थान के अन्तर की ज्या–रूप है। ग्रहकी दृग्ज्या कर्ण और भुज–कर्ण का वर्गान्तर–मूल पूर्वापर कोटि होती है। ३६–४१ ॥

इदानीं क्रान्तिक्षेत्राण्याह–

क्षेत्राणि वक्ष्येऽपमसंभवानि
संक्षेपतोऽक्षप्रभवाणि चातः ॥ ४२ ॥
भुजोऽपमः कोटिगुणो द्युजीवा
कर्णस्त्रिभज्या त्रिभुजोपमोत्थे।
मेषादिजीवाः श्रुतयोऽपवृत्ते
तद्भूमिजे क्रान्तिगुणा भुजाः स्युः ॥ ४३ ॥
तत्कोट्यः स्वद्युनिशाख्यवृत्ते
व्यासार्धवृत्ते परिणामितानाम्।
चापेषु तासामभवस्ततो ये
तेऽस्रो विशुद्धा उदया निरक्षे ॥ ४४ ॥

स्पष्टम्। एषां क्षेत्राणामुपपत्तिः स्पष्टाधिकारे दर्शितैव।

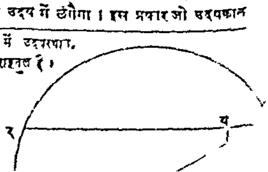
भाषाभाष्य।

अब संक्षेप से क्रान्तिक्षेत्र कहते हैं। अनन्तर अक्षक्षेत्र कहेंगे।

क्रान्तिज्या भुज, द्युज्याकोटि, त्रिज्याकर्ण यह प्रथम क्रान्तिक्षेत्र है। मेष, वृष, मिथुन इत्यादि राशियों की–ज्या क्रान्तिवृत्त में कर्ण होते हैं। और इनकी क्रान्ति ज्या ध्रुवमण्डल में भुज और निज अहोरात्रवृत्तों में कोटि होती हैं।

इन ज्याओंका त्रिज्यावृत्त में परिणामन करने से उनके चापोंका मान जो सिद्ध होगा उतना काल निरक्ष में राशियों के उदय में होगा। इस प्रकार जो उदयकाल

† इस क्षेत्र में, 'स' सूर्य, 'उ' क्षितिज में उदयस्थान,
'उद' उदयास्त सूत्र, 'उग' अग्रा, 'सद' शङ्कुतल है।
यहांपर 'सग' भुज है, उस कर्ण और
सग कोटि है। इसी अभिप्राय से 'दृग्ज्या
भुजो भाग–' इत्यादि लिखा है।



ये आठ अक्षक्षेत्र हैं। इसीप्रकार विद्वान् लोग और हजारों क्षेत्र कल्पना करके निज शिष्योंको भलीभांति बतलावें।

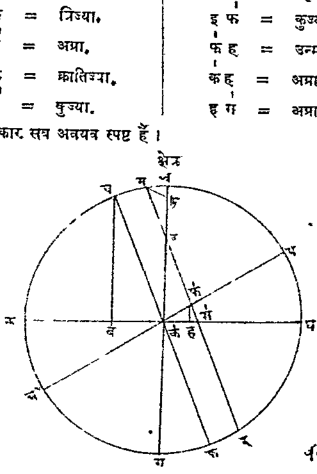
उपपत्ति।

ये सब क्षेत्र नीचे लिखे क्षेत्र में स्पष्ट प्रतीत होते हैं। सब क्षेत्र परस्पर में अनुपातीय हैं। इसलिए एकके ज्ञानसे अनुपातद्वारा सब ज्ञात होजाते हैं।

'अ क ग घ' स्थानीय मध्याह्नवृत्त है। क क' घ क्षितिज, अ खमध्य, 'प द' क्रम से उत्तर, दक्षिण ध्रुव, च क' फ नाड़ीवृत्त, 'प क' प' उन्मण्डल, म फ' द अहोरात्रवृत्त, च ब और फ' ह क्षितिजरेखा पर लम्ब हैं।

क' ब	= अक्षज्या,		क' इ	=	समशङ्कु.
च ब	= लम्बज्या,		इ ग	=	तद्धृति.
क' च	= त्रिज्या.		इ फ'	=	कुज्योनधृति.
फ ग	= अग्रा,		फ' ह	=	उन्मण्डलशङ्कु.
फ फ'	= क्रान्तिज्या,		क' ह	=	अग्रादिखण्ड,
फ' ग	= कुज्या.		ह ग	=	अग्राग्रखण्ड,

इसप्रकार सब अवयव स्पष्ट हैं।



ऩमेव
यो भूपृठ
शो लम्बितो
न्द्रग्रहेतु लम्ब-

श्छात्राय शास्त्रं प्रतिपादनीयम् ॥ ४६ ॥

अथक्षेत्राणां साधनानामाद्युपपत्तिस्त्रिप्रश्ने दर्शिता।

इति श्रीभास्करीये गोलभाष्ये मिताक्षरे त्रिप्रश्नवासना अत्र ग्रन्थसंख्या १६०।

प्रभा।

एवममुना प्रकारेण त्र्यस्राणां त्रिकोणक्षेत्राणां सहस्रं नानाविधमित्यर्थः। स्फुटा स्फीता गोलविद्या येषां तैः। सद्यः सत्वरमुत्पाद्याविष्कृत्य, छात्राय, छत्रं गुरोर्दोषाणामावरणं तच्छीलमस्येति, 'छत्रादिभ्यो णः' इति णः। तस्मै निजविद्यार्थिने इत्यर्थः। प्रतिपादनीयं विविच्यकथनीयमिति।

इति प्रभायां त्रिप्रश्नवासना।

भाषाभाष्य।

अब अक्षक्षेत्र कहते हैं।

(१) द्वादश कोटि, पलभाभुज, पलकर्ण कर्ण,

(२) लम्बज्या कोटि, अक्षज्याभुज, त्रिज्याकर्ण। यह क्षेत्र मध्याह्नवृत्त के धरातल में होता है।

(३) क्रान्तिज्या कोटि, कुज्या भुज, अग्राकर्ण।

(४) समशङ्कु कोटि, अग्राभुज, तद्धृतिकर्ण।

(५) कुज्योनतद्धृतिकोटि, क्रान्तिज्याभुज, सम शङ्कुकर्ण।

(६) अग्रादिखण्ड कोटि, उन्मण्डलशङ्कुभुज, क्रान्तिज्याकर्ण।

(७) उन्मण्डलशङ्कुकोटि, अग्राग्रखण्डभुज, कुज्याकर्ण।

(८) शङ्कुकोटि, शङ्कुतलभुज, छेद वा हृतिकर्ण।

इस क्षेत्रमें और (४) इसमें यह भेद है कि जब सूर्य समवृत्त में होगा। तब दोनों एक ही होंगी परन्तु जब सूर्य समवृत्त में नहीं अन्यत्र होगा उस समय कुछ नहीं अन्तर रहता नहीं भेद होगा इस लिए इस क्षेत्र को साम्य रीति से अलग, कहा गया है।

ये आठ अक्षक्षेत्र हैं। इसीप्रकार विद्वान् लोग और हजारों क्षेत्र कल्पना करके निज शिष्योंको भलीभांति बतलावें।

उपपत्ति।

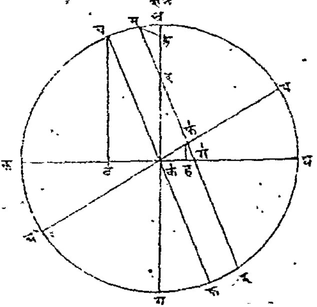
ये सब क्षेत्र नीचे लिखे क्षेत्र में स्पष्ट प्रतीत होते हैं। सब क्षेत्र परस्पर में अनुपातीय हैं। इसलिए एकके ज्ञानसे अनुपातद्वारा सब ज्ञात होजाते हैं।

'अ क ग घ' स्थानीय मध्याह्नवृत्त है। क क घ क्षितिज, अ खमध्य, 'ध ध' क्रम से उत्तर, दक्षिण ध्रुव, च क फ नाडीवृत्त, 'धकध उन्मण्डल, म फ द अहोरात्रवृत्त, च ध और फ ह क्षितिजरेखा पर लम्ब है।

क ध	=	अक्षज्या,
च ध	=	लम्बज्या,
क च	=	त्रिज्या,
फ ग	=	अग्रा,
फ फ	=	क्रांतिज्या,
फ ग	=	कुज्या.
क इ	=	समशङ्कु.
इ ग	=	तद्धृति,
इ फ	=	कुज्योनधृति,
फ ह	=	उन्मण्डलशङ्कु,
क ह	=	अग्रादिखण्ड,
ह ग	=	अग्राग्रखण्ड,

इसप्रकार सब अवयव स्पष्ट हैं।

क्षेत्र



...नमेव
...या भूपृष्ठ
...भो लम्बितो
...लम्ब-

एक क्षेत्र के तीन अवयवों से अनुपातद्वारा दूसरे के अवयव ज्ञात होजाते हैं + इस विधि की विशेष व्याख्या आचार्य ने गणिताध्याय में की है ॥४८–४९॥

त्रिप्रश्नवासना समाप्त हुई।

अथ ग्रहणवासना। चन्द्रार्कग्रहणयोः स्पर्शौ मोक्षे च दिग्व्यत्ययस्योपपत्तिमाह–

> पश्चाद्भागाज्जलदवदधः संस्थितोऽभ्येत्य चन्द्रो
> भानोर्बिम्बं स्फुरदसितया छादयत्यात्ममूर्त्या।
> पश्चात्स्पर्शो हरिदिशि ततो मुक्तिरस्यात एव
> क्वापिच्छन्नः क्वचिदपिहितो नैष कक्षान्तरत्वात् ॥ १ ॥

अर्कादधश्चन्द्रकक्षा। यथा मेघोऽधःस्थः पश्चाद्भागादागत्य रविं छादयति। एवं चन्द्रोऽपि शीघ्रत्वात् पश्चाद्भागादागत्य रविं छादयति। ततःपश्चात् स्पर्शः। निःसरति चन्द्रे पूर्वतो मोक्षो रवेः। अत एव कक्षाभेदात् क्वचिदर्कश्छन्नो दृश्यते क्वचिदेष न छन्नः। यथाधःस्थे मेघे कैश्चिद् रविर्न दृश्यते कैश्चिद् दृश्यते प्रदेशान्तरस्थैः।

प्रभा।

स्फुरत् प्रत्यक्षायितमसितं श्यामं यस्यास्तया। छादयति आवृणोति। मुक्तिः, मुच् भावे क्तिन्। मोक्षः।

+ इन अनुपातीय क्षेत्रों से बहुत से गोलीयत्रिकोणमिति सम्बन्धि प्रश्नों के उत्तर सहज में सिद्ध होजाते हैं। उदाहरण—किसी नक्षत्र का [illegible] और [illegible] ज्ञात है। उस स्थान का [illegible] क्या होगा? [illegible]

तब, [illegible] $=\sqrt{अ^2+(ब-क)^2}$,

और, [illegible] $\sqrt{अ^2+(ब-क)^2}$ [illegible]

[illegible] $=\dfrac{अ\times ति}{\sqrt{अ^2+(ब-क)^2}}$

[illegible]

[illegible] से सिद्ध होजाते हैं।

भाषाभाष्य।

जिस प्रकार मेघ सूर्यको ढँकलेता है वैसेही–चन्द्र पीछे की तरफ से आकार सूर्यबिम्ब को अपनी श्याममूर्ति से ढँकलेता है। इसलिए सूर्यग्रहण में पश्चिम दिशा मे स्पर्श और पूर्व दिशामें मोक्ष होता है। चन्द्र सूर्य के कक्षाओं के भेद से सूर्य किसी देश में आच्छादित दीखताहै और कहीं नहीं जैसे जिनके दृक् सूत्र में मेघ आजाता है उनको सूर्य नहीं दीखता औरोंको दीखता रहताहै। अर्थात् देशभेद से सूर्य ग्रहण होता है, एकबारमें सब देशोंमें नहीं हुआ करता॥ १॥

इदानीं नतिलम्बनयोः कारणमाह–

पर्वान्तेऽर्कं नतमुडुपतिच्छन्नमेव प्रपश्ये–
दूभूमध्यस्थो न तु वसुमतीपृष्ठनिष्ठस्तदानीम्।
तद्दृक्सूत्राद्धिमरुचिरधो लम्बितोऽर्कग्रहेऽतः
कक्षाभेदादिह खलु नतिर्लम्बनं चोपपन्नम्॥ २॥

समकलकाले भूभा लगति मृगाङ्के यतस्तयाम्लानम्।
सर्वे पश्यन्ति समं समकक्षत्वान्न लम्बनावनती॥ ३॥

पूर्वाभिमुखो गच्छन् कुच्छायान्तर्यतः शशी विशति।
तेन प्राक् प्रग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽस्य निःसरतः॥ ४॥

भानोर्बिम्बपृथुत्वादपृथुपृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा।
दीर्घतया शशिकक्षामतीत्य दूरं वहिर्याता॥ ५॥

अनुपातात् तद्दैर्घ्यं शशिकक्षायां च तद्बिम्बम्।
भूभेन्दोरन्यदिशि व्यस्तः क्षेपः शशिग्रहे तस्मात्॥ ६॥

दर्शान्तकाले रविं पूर्वतः पश्चिमतो वा नतं चन्द्रेण छन्नमेव प्रपश्यति भूमध्यस्थो द्रष्टा। यतो दर्शान्ते समौ भवतः। यो भूपृष्ठ स्थो स तदार्कं छन्नं न पश्यति। यतस्तदृष्टिसूत्राच्चन्द्रोऽधो लम्बितो भवति। अतःकक्षाभेदाल्लम्बनं नतिश्चोपपद्यते। चन्द्रग्रहे तु लम्ब-

ननत्योरभावः। यतःसमकलकाले भूभाचन्द्रे लगति। तथा छन्नं सर्वे विदेशान्तरस्था अपि नतमपि तं चन्द्रं समं पश्यन्ति। यतस्तत्र छाद्यछादकयोरेकैव कक्षा जाता। तथा भूभा तावत् पूर्वाभिमुखमर्कगत्या गच्छति। चन्द्रश्च स्वगत्या। स शीघ्रत्वात्पूर्वाभिमुखो गच्छन् भूभां प्रविशति। तेन तस्य प्राक् स्पर्शः। भूभाया निःसरतः पश्चान्मुक्तिः। भानोर्बिम्बं विपुलं पृथ्वी लघुः। अतो भूभा सूच्यग्रा भवति। दीर्घत्वे चन्द्रकक्षामतीत्य दूरं गता। तदैर्घ्यमनुपातात्साध्यते। चन्द्रकक्षाप्रदेशे भूभा चन्द्रबिम्बं चेति सर्वं ग्रहणे प्रतिपादितमेव।

प्रभा।

दर्शप्रतिपदोर्वा पूर्णिमाप्रतिपदोः सन्धिः पर्वेत्युच्यते। वसुमतीपृष्ठनिष्ठः भूपृष्ठस्थ इति। मृग अङ्को यस्यासौ मृगाङ्कः शशी। विशति, विश, प्रवेशने वर्तमाने लट्। प्रभा, प्रपूर्वकाद्भाधातोर्भावे अङ् छाया। इन्दोः सकाशाद्भूमान्यदिशि भवति ततः क्षेपः शरो व्यस्तोदय इत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

भूगर्भनिवासी नत सूर्य को पूर्वान्तकाल में आच्छन्न देखते हैं, परन्तु उस समय भूपृष्ठवासी नहीं देखते, क्योंकि उनके दृक्सूत्र से चन्द्र लम्बित रहता है इसप्रकार कक्षाओं के भेदसे लम्बन और नति उपपन्न होते हैं।

जिस समय सूर्य और चन्द्र की स्फुट कला समान होती है, उस समय भूभा चन्द्रबिम्ब में प्रवेश करती है। उससे चन्द्रबिम्ब मलिन, निस्तेज सबको समान दिखाई देती है। क्योंकि लम्बन और नतिका अभाव होने से चन्द्रग्रहण सब देशों में दिखाई देता है। चन्द्र पूर्वाभिमुख गमन करता हुआ भूछाया में प्रवेश करता है इसी लिए चन्द्रग्रहण में प्रथम पूर्व दिशामें ग्रहणका आरंभ और पश्चिम दिशा में मोक्ष होता है।

सूर्यबिम्ब के बड़े और भूबिम्बके छोटे होने से भूमिकी छाया सूची के समान सूक्ष्माग्र होती है । और लम्बी होने के कारण चन्द्रकक्षा के बाहर दूर चली जाती है ।

इस भूभा की लम्बाई और चन्द्रकक्षा में भूभा का प्रमाण अनुपात से सिद्ध होता है । चन्द्रसे विपरीत दिशा मे भूभा होती है इसलिए शरका दान विपरीत होता है ।

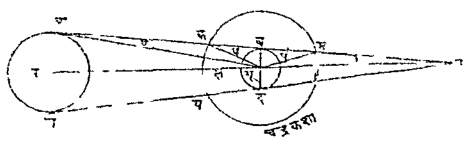
उपपत्ति ।

चन्द्रकक्षा में भूभाबिम्ब का साधन आचार्य ने गणिताध्याय मे लिखा है । उसका निरूपण यथास्थान होगा । यहापर सुगमता के लिए वही बात प्रकारान्तर से क्षेत्रद्वारा लिखी जाती है ।

(१) चन्द्रकक्षा में भूछाया के व्यास का साधन इसप्रकार हैं । भूछाया का कोणात्मक व्यास म न चाप है । उसका कोणार्ध म भ प जो भूकेन्द्र में म न चाप के सम्मुख है ।

अब, अ=भूकेन्द्र । प=सूर्य का परमलम्बन भ अ क । पं=चन्द्रका परम लम्बन भ म च, वा, भ क च । स=सूर्य व्यासार्ध से उत्पन्न भूकेन्द्रग कोणमान स ग अ । θ=भ च व, भूछाया कोणार्धम.न ।

क्षेत्र,



इस क्षेत्र में क्षेत्रमिति (अ १ प्र. ३२) से सिद्ध हुआ—

अ+θ=पं; ∴ अ=पं−θ.

इसीकारण से, θ=स−प;

∴ अ=पं−(स−पं)=प+पं−स 1

परन्तु 'प' पं और स का मान ज्ञात है, इसलिए २ अ, म न चाप का सम्मुख भूकेन्द्रग कोण निश्चित हुआ ।

इसी प्रकार चन्द्रप्रवेशकाल सम्बंधि भूछाया का व्यासार्ध अर्थात् 'कय' भी सिद्ध होसकता है । वह व्यसार्ध 'पं–प+स' के समान है । क्योंकि क्षेत्रमिति (अ १ प्र, ३२) में—

क भ स=पं+θ=पं-प+स,

(२) ऊपर के क्षेत्रमें भ व अर्थात् भूकेन्द्र से भूछायाग्र तक भूभा की लम्बाई है । इसका मान भी भूव्यासार्ध और भूछायाकोणार्ध मान ज्ञात होनेसे सुगमहै । जब, θ कोण छोटा (अर्थात्=स–प) है उस स्थिति में कल्पना होसकती है कि भूव्यासार्ध किसी वृत्तके चाप के समान है जिसका केन्द्र और व्यासार्ध व; और व है । इसप्रकार सिद्ध होता है—

$$\frac{\theta''}{*२०६२६६''}=\frac{त्रि}{भव};$$

$$\therefore भव=\frac{२०६२६५''त्रि}{\theta''}=\frac{२०६२६६''त्रि}{स-प}।$$

यहां पर भूव्यासार्ध ४००० मील 'स' रविव्यासार्ध–कला १६' वा ९६"० और 'प' रविका लम्बन ८"मानने से–

$$भव=\frac{२०६२६५+४०००}{९६०-८}\text{ मील} = ८६०,००० \text{ मील प्रायः}$$

भूभा की ऊँचाई सिद्ध होती है ॥ २—६ ॥

इदानीं छादकनिर्णयमाह–

छादकः पृथुतरस्ततो विधो–
र्र्धखण्डिततनोर्विषाणयोः ।
कुण्ठता च महती स्थितिर्यतो
लक्ष्यते हरिणलक्षणग्रहे ॥ ७ ॥

अर्धखण्डिततनोर्विषाणयो–

---

* एक परिधि में १,२९६,००० विकला निश्चित हुई है । इसलिए $\frac{१२९६०००}{३.१४१६}$ विकला व्यास के समान परिधिखण्ड में हुई । और $\frac{१२९६०००}{२×३.१४१६}$=२०६२६५" विकला त्रिज्यातुल्य परिधिखण्ड सिद्ध होती है ।

स्तीक्ष्णता भवति तीक्ष्णदीधितेः।
स्यात् स्थितिर्लघुरतो लघुः पृथक्
छादको दिनकृतोऽवगम्यते ॥ ८ ॥
दिग्देशकालावरणादिभेदा-
न्नच्छादको राहुरिति ब्रुवन्ति।
यन्मानिनः केवलगोलविद्या-
स्तत्संहितावेदपुराणबाह्यम् ॥ ९ ॥
राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कं
शशाङ्कगश्छादयतीनबिम्बम्।
तमोमयः शम्भुवरप्रदानात्
सर्वागमानामविरुद्धमेतत् ॥ १० ॥

अर्कच्छादकाच्चन्द्रच्छादकः पृथुतरोऽवगम्यते। कुतः। यतोऽर्धखण्डितस्येन्दोर्विषाणयोः कुण्ठता दृश्यते स्थितिश्च महती। अर्कस्य पुनरर्धखण्डितस्य तीक्ष्णता विषाणयोःस्थितिश्च लघ्वी। एतत्कारणद्वयान्यथानुपपत्त्यार्कस्यच्छादकोऽन्यः। स च लघुः। एवं रवीन्द्वोर्न छादको राहुरिति वदन्ति। कुतः। दिग्देशकालावरणादिभेदात्। एकस्य प्राक् स्पर्शः। इतरस्य पश्चात्। रवेः क्वापि ग्रहणमस्ति क्वापि नास्ति। क्वापि दर्शनादग्रतः क्वापि पृष्ठतः। अतो राहुकृतं न ग्रहणम्। नहि बहवो राहवः। एवं के वदन्ति। केवलगोलविद्यास्तदभिमानिनश्च। इदं संहितावेदपुराणबाह्यम्। यतः संहितासु राहुरष्टमो ग्रहः। स्वर्भानुर्ह वा आसुरः सूर्यं तमसा विव्याधेति माध्यन्दिनी श्रुतिः।

सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः।

सर्वं भूमिसमं दानं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥

इत्यादिपुराणवाक्यानि। अतोऽविरुद्धमुच्यते। राहुरनियतगति स्तमोमयो ब्रह्मवरप्रदानाद्भूभां प्रविश्य चन्द्रं छादयति चन्द्रं प्रविश्य रविं छादयतीति सर्वागमानामविरुद्धम् ।

प्रभा ।

अतिशयेन पृथुरिति पृथुतरः । अर्धं खण्डितं तनुः शरीरं बिम्बं यस्य सः तस्य । विषाणयोः शृङ्गयोः कुण्ठता मान्द्यं तथा स्थितिश्च महती भवति । एवं चन्द्रोपरागे स्थितिः । तीक्ष्णाः खराः दीधितयोरश्मयो। यस्य रवेरित्यर्थः। विषाणयोरतीक्ष्णता स्थितिश्च लघ्वी। एवं सूर्याचन्द्रमसोरूपरागे स्थितिभेदाच्छादकस्य पार्थक्यं स्फुटमवबुध्यते। केवला गोलविद्या येषान्ते गोलैकपक्षपातिन इत्यर्थः। संहिताश्च वेदाश्च पुराणानि च तेभ्यो बाह्यं बहिर्भूतं विरुद्धमिति यावत्। अयमर्थः संहितावेदपुराणेषु राहुकृतं ग्रहणं दृश्यते यथा हि ऋग्वेदस्य चतुर्थाष्टके द्वितीयाध्यायस्य द्वादशवर्गे—

'यं वै सूर्यं स्वर्भानु—

स्तमसा विध्यदासुरः ।

अत्रयस्तमन्वविन्द—

न्नह्यन्ये अशक्नुवन् ॥'

एवमन्यत्रापि। यद्यपि वराहमिहिराचार्येण बृहत्संहितायां राहुचाराध्याये सविशेषं राहुर्निराकृतस्तथाप्याचार्योक्तिः प्रौढिवादमूलिकेति न हि सर्वैरुरीकृता। इत्थं च प्रकृते वासनाभाष्ये यदाचार्यैः समाहितं तदेव सर्ववादिसम्मतमिति ।

भाषाभाष्य।

चन्द्रग्रहण मे छादक बड़ा होता है इसलिए चन्द्र के दोनों शृङ्ग मन्द और ग्रहणका स्थितिकाल बड़ा होता है। इसीप्रकार सूर्यग्रहण में छादक के छोटा होने से सूर्य के शृगाग्र तीखे होते हैं और ग्रहणस्थितिकाल छोटा होता है। इस से चन्द्रसे सूर्य का छादक भिन्न ज्ञात होता है।

दिशा, प्रदेश, काल और आवरण के परस्पर भेद होने से बहुत से मानी और गोल के पक्षपाती विद्वान् राहु को छादक नहीं कहते। परन्तु यह मत वेद, पुराण और संहिता के मतसे विरुद्ध है इसविषय में सर्वसम्मत पक्ष यह है कि ब्रह्मा के वरदान से राहु चन्द्रमण्डल में प्रविष्ट होकर सूर्य का और भूभा में प्रवेश करके चन्द्र का आच्छादन करता है॥ ७–१०॥

इदानीं ते लम्बनावनती कुतो हेतोः कुत इति कुदलेन साध्येते इत्यस्य प्रश्नस्योत्तरमाह–

यतः कर्धोच्छ्रितो द्रष्टा चन्द्रं पश्यति लम्बितम्।
साध्यते कुदलेनातो लम्बनं च नतिस्तथा॥ ११॥

स्पष्टम्।

प्रभा।

भूपृष्ठनिष्ठो द्रष्टा भूव्यासार्धेनोच्छ्रितः स्वदृक्सूत्राद्विधुमधो लम्बितं पश्यतीति लम्बननती भूव्यासार्धेन साधिते इति।

भाषाभाष्य।

भूपृष्ठनिवासी द्रष्टा अपने दृक्सूत्र से चन्द्रको लटका हुआ देखता है इसलिए भूव्यासार्ध से लम्बन और नति का साधन किया जाता है॥ ११॥

इदानीं गोलावबोधार्थं छेद्यकप्रकारेण लम्बनमाह–

इष्टापवर्तितां पृथ्वीं कक्षे च शशिसूर्ययोः।
भित्तौ विलिख्य तन्मध्ये तिर्यग्रेखां तयोर्ध्वगाम्॥ १२॥
तिर्यग्रेखायुतो कल्प्यं कक्षायां क्षितिजं तथा।

ऊर्ध्वरेखायुतौ सार्धं दृग्ज्याचापांशकैर्नतौ ॥ १३ ॥
कृत्वार्केन्दू समुत्पत्तिं लम्बनस्य प्रदर्शयेत् ।
एकं भूमध्यतः सूत्रं नयेच्चण्डांशुमण्डलम् ॥ १४ ॥
द्रष्टुर्भूपृष्ठगादन्यद्दृष्टिसूत्रं तदुच्यते ।
कक्षायां सूत्रयोर्मध्ये यास्ता लम्बनलिप्तिकाः ॥ १५ ॥
गर्भसूत्रेसदा स्यातां चन्द्रार्कौ समलिप्तिकौ ।
दृक्सूत्राल्लम्बितश्चन्द्रस्तेन तल्लम्बनं स्मृतम् ॥ १६ ॥
दृग्गर्भसूत्रयोरैक्यात्खमध्ये नास्ति लम्बनम् ।

स्पष्टार्थमपि स्वल्पमात्रं व्याख्यायते । कुदलेनोच्छ्रितो द्रष्टा दृङ्मण्डले स्वस्थानोन्नतं ग्रहं पश्यति । अतस्तज्ज्ञानार्थं पृथिवी व्यासार्धस्य योजनानि कक्षाव्यासार्धस्य च योजनान्येकेन केन चिद्धरेण छित्त्वा तेन प्रमाणेन भित्तौ विलिखेत् । एतदुक्तं भवति । भूव्यासः कुभुजङ्गसायकभू १५८१ मितानि योजनानि । एतानि केनचिन्महता हरेण छिन्नानि । तद्दलं भूव्यासार्धम् । तेनैव छेदेन चन्द्रार्ककक्षाव्यासार्धे छिन्ने । ते तद्व्यासार्धे भवतः । एवं कृत्वा भित्तावुत्तरपार्श्वे विन्दुं कृत्वा तस्माद्विन्दोर्भूव्यासार्धेन भूवृत्तं कृत्वा कक्षाव्यासार्धाभ्यां कक्षावृत्ते च कार्ये । तस्माद्विन्दोरूर्ध्वरेखा तिर्यग्रेखा च कार्या । तिर्यग्रेखा यत्र कक्षायां लग्ना तत्र क्षितिजं कल्प्यम् । ऊर्ध्वरेखा यत्र लग्ना तत्र खमध्यं कल्प्यम् । एवं चन्द्र कक्षायां रविकक्षायां च । ते च कक्षे भगणांशे ३६० रङ्कनीये ते चन्द्रार्कयोर्दृङ्मण्डले । अथ दर्शान्तेऽर्कस्य या दृग्ज्या तच्चा पांशैः खमध्यान्नतो विन्दुः कार्यः । एवं चन्द्रकक्षायामपि तावद्भि व नतांशैः । तौ विन्दू रविचन्द्रौ कल्प्यौ । अथ भूमध्याद्रविविन्दु

गामिनी रेखा कार्या सा रेखा चन्द्रं भित्त्वा रविं याति। अथ भूपृष्ठगाद्द्रष्टुरन्या रेखा रविविम्बं नेया सा रेखा चन्द्रे न लगति। तयोः सूत्रयोरन्तरे चन्द्रकक्षायां याः कला दृश्यन्ते ता लम्बनलिप्ताः। अथवा द्रष्टुश्चन्द्रविन्दूपरिगता रेखा रविकक्षायां नेया तत्र सूत्रयोरन्तरे याः कला दृश्यन्ते ता वा लम्बनलिप्तास्तुल्या एव भवन्ति। भूगर्भाद्या नीता रेखा तद्गर्भसूत्रम्। समकलौ चन्द्रार्कौ तत्र सदैव भवतः। अथ या रेखा द्रष्टूरविविम्बं नीता तद्दृक्सूत्रमुच्यते। दृक्सूत्राच्चन्द्रो लम्बितो भवति। अतस्तल्लम्बनम्। अथ यदा चन्द्रार्कौ खमध्ये भवतस्तदा गर्भदृष्टिसूत्रयोरैक्यमतस्तत्र लम्बनाभावः। इयं दृङ्मण्डले लम्बनस्योपपत्तिर्दर्शिता।

भाषाभाष्य।

भूव्यासार्ध और कक्षायोजन के व्यासार्धों को किसी एक इष्ट अङ्कसे अपवर्तित करके भीत में लिखना। उस में पूर्वापर और याम्योत्तर रेखा करनी। याम्योत्तर रेखा और कक्षावृत्त का जहां सम्पात हो वह क्षितिज और पूर्वापर रेखाके साथ कक्षावृत्त का जहां सम्पात हो वह खमध्य कल्पना करना। सूर्य और चन्द्र को निज कक्षावृत्तों में दृग्ज्याचापांश के तुल्य लम्बित कल्पना करके लम्बनकी उपपत्ति दिखलाना।

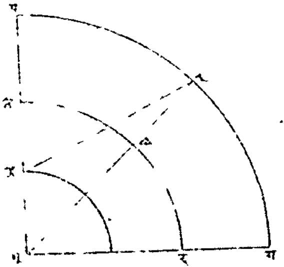
भूगर्भ से एक सूत्र सूर्यविम्ब को लेजाना, दूसरा भूपृष्ठ से वहीं लेजाना, इन सूत्रों को दृक्सूत्र कहते हैं। इन का कक्षावृत्त में जो अन्तर है वह लम्बनकला है। गर्भसूत्र में सूर्य, चन्द्रकलात्मक समान होवे हैं। परन्तु दृक्सूत्र से चन्द्र लम्बित रहता है इसलिए उसको लम्बन कहते हैं। और खमध्य में गर्भसूत्र और दृक्सूत्र के एक होनेसे लम्बन का अभाव होता है।

उपपत्ति।

(१) यहांपर वासनाभाष्य के लेखानुसार लम्बन की स्थिति दिखलाई जाती है। 'भू' पृथिवी, 'द्र' पृष्ठवासी द्रष्टा, क द और प ग चन्द्र, सूर्य के दृङ्मण्डल, 'च' और 'र' विन्दुओं में गये हुये। 'क' चन्द्रगोलीय खस्वस्तिक और 'प' सूर्य-

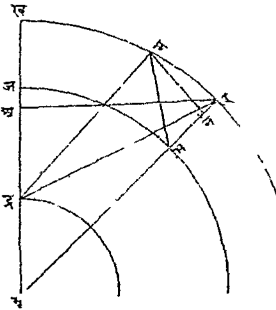
गोलीय। अब भूगर्भ से रविबिम्ब तक भूचर सूत्र करने से चन्द्र और सूर्य एकही दृक्सूत्र में सिद्ध हुये। परन्तु 'द्र' भूपृष्ठ से रविबिम्ब तक पृष्ठदृक्सूत्र करने पर चन्द्रमा इस दृक्सूत्र से निजकक्षा में लम्बित ज्ञात हुआ। यही सूर्य से चन्द्र का लम्बन है। जब सूर्य प बिन्दु पर आवेगा उससमय चन्द्र क बिन्दु पर होगा, तब भूगर्भसूत्र और दृक्सूत्र एकाकार होने से खमध्य में लम्बन का अभाव सिद्ध होता है। इसप्रकार रवि से चन्द्र का लम्बन दृङ्मण्डलगत आचार्य ने दिखलाया है। रवि और चन्द्र का अलग लम्बन सिद्ध करके उनका अन्तर करने पर भी यही लम्बन सिद्ध होता है, जैसा कि आचार्य ने अपने भाष्य में कहा है। यह दृङ्मण्डलीय लम्बन खमध्य से उत्पन्न होता है। इसे उन्नतांश सम्बन्धि साधारण लम्बन समझनाचाहिए।

क्षेत्र।



(२) इस लम्बन का पूरा विवरण इसप्रकार है—कल्पना किया 'द्र' भू-पृष्ठस्थ द्रष्टा, ज, खमध्य, ज स रविगत दृङ्मण्डल। 'द्र' केन्द्र से 'भूस' व्यासार्धं से एक ख म र वृत्त किया, जो द्र जं और द्र स रेखाओं को खरबिन्दुओं में काटता है। अब भू द्र के तुल्य एक 'म स' रेखा की यों ख म और ज स चाप समान होगें। 'स' के गर्भीय नतांश ज स हैं और पृष्ठीय नतांश ख र, ज स से अधिक, वा, म र चाप के तुल्य अधिक है। इसलिए ग्रहका 'र' स्पष्टस्थान, म र चाप के तुल्य दृङ्मण्डल में अवनत सिद्ध हुआ। इसप्रकार 'म र' ग्रहका साधारण लम्बन हुआ। यों यह बात स्पष्ट प्रतीत हुई कि दृङ्मण्डलीय नतांश लम्बन संस्कृत ग्रहके स्पष्ट नतांश होते हैं।

क्षेत्र।



इस लम्बन का साधन इसप्रकार होता है—द्र र रेखा पर एक म न लम्ब और ख ज पर र अ लम्ब खींचना। अब कल्पना किया—

प=भूस, वा, द्र र।
ह=भू द्र, वा, म स।
ल=म र, वा, लम्बन।

न=ज स, वा, ख म=दृङ्मण्डलीय नतांश।

और न+ल=खर= स्पष्ट नतांश।

म न=ज्याल, और रअ=ज्या (न+ल)

अब, द्र र अ और स म न त्रिभुजों में,

द्र र : र अ=सम : म न,

अथवा, त्रि : ज्या (न+ल)=ह : ज्याल;

$\therefore$ ज्याल=$\frac{\text{ह}\times\text{ज्या}(\text{न}+\text{ल})}{\text{त्रि}}$

इसप्रकार यह स्पष्ट है कि जब ज्या (न+ल)=त्रि वा, न+ल=९०° उस समय लम्बन परम होगा। यदि परम लम्बन ज्या=पं,

ज्याप=ह और $\therefore$ ज्या पं=$\frac{\text{ज्या प}\times\text{ज्या (न+ल)}}{\text{त्रि}}$

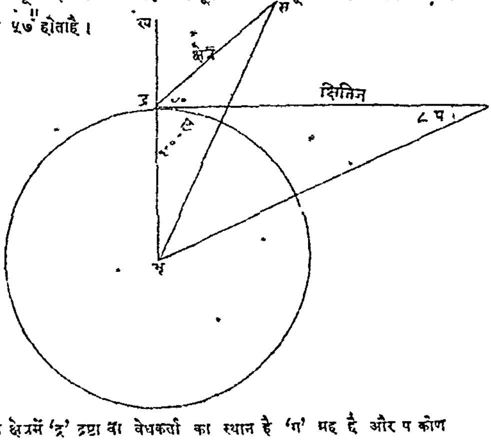
लम्बन का मान साधारण रीति से इतना छोटा है कि ज्या और चाप में कुछ अन्तर विशेष नहीं पड़ता। इस रीति से यदि ज्याल=ल और ज्यापं=पं हा त्रिज्या;

$\therefore$ ल=$\frac{\text{पं}\times\text{ज्या (न+ल)}}{\text{त्रि}}$;और भी, ग्रह की नतांशज्या=ज्या (न+ल) के है,

$\therefore$ ल=$\frac{\text{पं}\times\text{ज्या न}}{\text{त्रि}}$। इसप्रकार परम लम्बन को नतांश ज्या से गुणकर फल में त्रिज्या का भाग देने से लम्बन सिद्ध हुआ। आचार्य ने लम्बनसाधन गणिताध्यायमें किया है।

(३) जिसप्रकार ग्रह क्षितिज में रहताहै तब लम्बन परम होताहै। क्योंकि

खमध्यमें शून्य होकर क्रमसे बढ़ताहै। सूक्ष्म रीति से सूर्यका परमलम्बन ८" और चन्द्रका ५७" होताहै।



इस क्षेत्रमें 'द्र' द्रष्टा वा वेधकर्ता का स्थान है 'ग' ग्रह है और प कोण क्षितिज में लम्बन का मान है।

त्रिकोणमिति का सिद्धान्त है कि प्रतित्रिभुज में हरएक भुजसे उसके सम्मुख कोण की ज्या समान गुणित होती है। जैसे द्र भू स त्रिभुज में—

ज्या द्र स भू : ज्या द्रभू स :: द्र भू : भू स :

द्र स भू किसी नक्षत्र का लम्बन है और भू द्र स कोण १८०—खमध्यनतांशके समान है। ये दोनों क्रमसे—

द्र स भू=ल.

भू द्र स=१८० – ख,

भूव्यासार्ध=त्रि,

नक्षत्रदूरी=भूस,

इसप्रकार,

ज्याल ज्या (१८०–ख) :: त्रि, भू स,

अथवा,

ज्या १८०-ख=खमध्यनतांश ज्या,

$$\therefore \text{ज्या ल} = \frac{\text{त्रि.}}{\text{भूस}} \text{ज्यान}$$

जब ग्रह क्षितिजमें होगा, उससमय, नतांश=९०=१ और लम्बन परम होगा।

$$\therefore \quad \text{ज्यापल} = \frac{\text{त्रि}}{\text{भूस}} \text{ज्या९०} = \frac{\text{त्रि}}{\text{भू स}}; \text{इसप्रकार} \quad \text{ज्याल} = \text{ज्या पल} \times \text{ज्यान}$$

अथवा, लम्बन=परम लम्बन×स्पष्टनज्या,

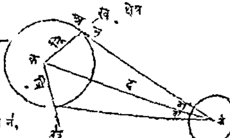
यहा यह बात स्पष्ट प्रतीत हुई कि स्पष्ट ख मध्यनतांश ज्या में जिसप्रकार अन्तरहोगा उसी क्रमसे ग्रह नक्षत्रों के लम्बन * मे भी होता जायगा॥ १२-१६॥

---

* चन्द्रमा का परम लम्बन प्रकारान्तर से सुगम है। किसी एक समय में उत्तर और दक्षिण गोल में दो स्थान निश्चय करके चन्द्र का मध्याह्न नतांश वेध से सिद्ध करना।

उत्तर गोल में —
'अ' निश्चित बिंदु,
ख समय,
दक्षिणगोल में —
'ब' निश्चितबिंदु,
ख' समय.

क ख और क ख' समय सम्मुख रेखा। 'न' और 'न'' उत्तर, दक्षिण गोल में चन्द्र नतांश और प=परम लम्बन.



पहले उपपत्ति से सिद्ध हुआ है —

$$\text{ज्या ल} = \frac{\text{त्रि}}{\text{भू स}} \text{ज्यान} = \text{ज्यापल} \times \text{ज्यान};$$

और,

$$\text{ल}' = \frac{\text{त्रि}}{\text{भूस}} \text{ज्या न}' = \text{ज्या पल} \times \text{ज्या न}',$$

$$\therefore \text{ल}' + \text{ल} = \text{ज्या पल} (\text{ज्या न} \times \text{ज्या न}')$$

$$\therefore \text{ज्या पल} = \frac{\text{ल} \times \text{ल}'}{\text{ज्या न} \times \text{ज्या न}'}; \text{इसप्रकार परम लम्बन सिद्ध हुआ।}$$

इदानीं नत्युपपत्तिमाह—

अथ याम्योत्तरायां तु भित्तौ पूर्वोक्तमालिखेत् ॥ १७ ॥
ये कक्षामण्डले तत्र ज्ञेये दृक्क्षेपमण्डले।
त्रिभोनलग्नदृग्ज्या या सदृक्क्षेपो द्वयोरपि ॥ १८ ॥
तच्चापांशैर्नतौ विन्दू कृत्वा वित्रिभसंज्ञकौ।
तल्लम्बनकलाः प्राग्वज्ज्ञेयास्ता नतिलिप्तिकाः ॥ १९ ॥
कक्षयोरन्तरं यत्स्याद्वित्रिभे सर्वतोऽपि तत्।
याम्योत्तरं नतिः सात्र दृक्क्षेपात् साध्यते ततः ॥ २० ॥

इदमेव छेद्यकं याम्योत्तरायां भित्तौ पूर्वपार्श्वे लिखित्वा नत्युपपत्तिर्दर्शनीया। ये तत्र कक्षामण्डले ते दृक्क्षेपमण्डले। दर्शान्ते त्रिभोनलग्नस्य या दृग्ज्या स दृक्क्षेपः। द्वयोरपि तावान्। ब्रह्मगुप्तमते तु तच्चापांशा वित्रिभलग्नशरसंस्कृताश्चन्द्रदृक्क्षेपचापांशाः स्युः। तयोर्वृत्तयोः खार्धात्स्वस्वदृक्क्षेपचापांशैर्नतौ विन्दू कार्यौ। तौ च वित्रिभसंज्ञौ। ततःप्राग्वद् भूमध्याद् भूपृष्ठाच्च सूत्रे प्रसार्य लम्बनलिप्तिका ज्ञे यास्ता नतिलिप्तिकाः। नतिर्नाम चन्द्रार्ककक्षयोर्याम्योत्तरमन्तरम्। तद्वित्रिभलग्नस्थाने यावत् सर्वतोऽपि तावदेव भवति। अतो दृक्क्षेपात्साधिता नतिः।

भाषाभाष्य।

दक्षिणोत्तर भीतमें पूर्वलिखित भूमि और सूर्य, चन्द्र की कक्षा लिखना। सूर्य और चन्द्र के कक्षावृत्तों को दृक्क्षेपवृत्त कल्पना करना। त्रिभोन लग्न की जो दृग्ज्या (नतांशज्या) होगी वह सूर्य, चन्द्र का एकही दृक्क्षेप होगा। दृक्क्षेपवृत्तमें खमध्य से निज दृक्क्षेपांश के तुल्य नत वित्रिभ विन्दु की कल्पना करनी। फिर पूर्वरीति के अनुसार लम्बनकला का साधन करना, वही नतिकला होगी। सूर्य और चन्द्र की कक्षाओं का अन्तर जितना वित्रिभ विन्दु में होता है वही अन्तर सब प्रदेशों

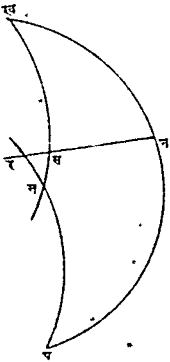
में रहताहै । सूर्य चन्द्र की कक्षाओं का दक्षिणोत्तर अन्तर नति कहलाती है । इस लिए नति उनके दृक्क्षेपों से सिद्ध की जाती है ।

उपपत्ति ।

जब ग्रह दृङ्मण्डल में लम्बित रहता है उससमय उसका निजकक्षावृत्त से जो दक्षिण या उत्तर अन्तर रहताहै उसको नति कहते हैं ।

कल्पना किया, 'ख' खमध्य, 'न' त्रिभोन लग्न और ख न प उसका दृङ्मण्डल है । 'न स र' क्रांतिवृत्त और 'प' उसका केन्द्र है । ख स त रविगत दृङ्मण्डल और प त र कदम्बप्रोतवृत्त 'त' स्पष्ट रविस्थान में गया हुआ । इस स्थिति में 'सर' स्पष्ट लम्बन और 'त र' नति होगी ।

क्षेत्र



इस 'त र' नति का साधन इसप्रकार है:—

ख न=त्रिभोनलग्ननतांश, ख स=रविनतांश । अब ख न स और ख

१ गोलीय त्रिभुजों में—

ज्या ख स : ज्या ख न=ज्या स त : ज्या र त,

$$\therefore \text{ज्या र त} = \frac{\text{ज्या स त} + \text{ज्या ख न}}{\text{ज्या ख स}}$$

अब ज्या स त और ज्या र त के स्थान में, यदि स्वल्पमान होने से, चाप का ही ग्रहण करलिया तो यों हुआ—

$$\text{र त} = \frac{\text{स त} \times \text{ज्या ख न}}{\text{ज्या ख स}};$$

परन्तु,

$$\text{स त} = \frac{\text{प} \times \text{ज्या ख स}}{\text{त्रि}}$$ यह पहिले लम्बन के विवरण में सिद्ध होचुका है

$$\therefore \text{र त} = \frac{\text{प} \times \text{ज्या ख न}}{\text{त्रि}}$$ =नति, यह सिद्ध हुआ। इस से 'परलम्बन लिप्ताघ्नी त्रिज्याप्ता—, इत्यादि आगे का प्रकार उपपन्न होता है।

* यहां स्पष्ट प्रतीत होता है कि चन्द्र की नति में सूर्य की नति घटा देने से उक्त विधि के अनुसार सूर्य से चन्द्र का लम्बन सिद्ध होजायगा। और यह लम्बन, त्रिभोन लग्न की स्थिति में, सूर्य और चन्द्र के लम्बनान्तर के समान होगा।

ग्रहण के समय में चन्द्रमा का शर बहुत छोटा होता है, इसलिए चन्द्रक्रांतिवृत्त से बहुत दूर नहीं रहता। इसकारण यहांपर चन्द्र का लम्बन और नति का साधन, विमण्डलानुबद्ध चन्द्र के क्रान्तिवृत्त सम्बन्धि स्थान से दिया गया है।

आचार्य ने नतिसाधन के विशेष प्रकार गणिताध्याय में लिखे हैं। इसलिए उनकी व्याख्या यथास्थान होगी॥ १७—२०॥

इदानीं स्फुटलम्बनार्थमाह—

यत्र तत्र नतादर्कादधश्चन्द्रावलम्बनम्।
तद्दृग्वृत्तेऽन्तरं चन्द्रभान्वोः पूर्वापरं तु तत्॥ २१॥
पूर्वापरं च याम्योदग्जातं तेनान्तरद्वयम्।
अत्रापमण्डलं प्राची तत्तिर्यग्दक्षिणोत्तरा॥ २२॥
यत्पूर्वापरभावेन लम्बनाख्यं तदन्तरम्।
यद्याम्योत्तरभावेन नतिसंज्ञं तदुच्यते॥ २३॥

नतिलिप्ताभुजः कर्णो दृग्लम्बनकलास्तयोः ।
कृत्यन्तरपदं कोटिः स्फुटलम्बनलिप्तिकाः ॥ २४ ॥
परलम्बनलिप्ता ४ ६ घ्नी त्रिज्याप्ता रविदृग्ज्यका ।
दृग्लम्बनकलास्ताः स्युरेवं दृक्क्षेपतो नतिः ॥ २५ ॥
गत्यन्तरस्य तिथ्यंशः परलम्बनलिप्तिकाः ।
गतियोजन ११ ४ ५६ तिथ्यंशः कुदलस्य ७ ६ ३ ० ५ यतो मितिः ॥ २६ ॥
स्युर्लम्बनकलानाड्यो गत्यन्तरलवोद्धृता ।
प्रागग्रतो खेश्चन्द्रः पश्चात्पृष्ठेऽवलम्बितः ॥ २७ ॥
शीघ्रेऽग्रगे युतिर्याता गम्या पृष्ठगते यतः ।
प्रागृणं तद्धनं पश्चात् क्रियते लम्बनं तिथौ ॥ २८ ॥
याम्योत्तरं शरस्तावदन्तरं, शशिसूर्ययोः ।
नतिस्तथा तया तस्मात्संस्कृतःस्यात्स्फुटः शरः ॥ २९ ॥
स्पष्टार्थमिदं ग्रहणवासनायां व्याख्यातं च ।

भाषाभाष्य ।

खमध्य से किसी प्रदेश में लम्बित सूर्य से जो चन्द्रमा. का लम्बन है वह सूर्य और चन्द्रका दृङ्मण्डलगत पूर्वापर अन्तर होता है । इसप्रकार पूर्वापर और याम्योत्तर ये दो अन्तर हुए । क्रान्तिवृत्त यहां पर पूर्वापरहै और उसका दक्षिणोत्तरवृत्त (कदम्बवृत्त) दक्षिणोत्तर है । (यहां यह स्पष्ट होताहै कि पूर्वापर अन्तर क्रान्तिवृत्त में और दक्षिणोत्तर उसके दक्षिणोत्तरवृत्त में रहता है) । पूर्वापर अन्तर को लम्बन और दक्षिणोत्तर अन्तरको नति कहते हैं । नतिकलाभुज, दृग्लम्बनकलाकर्ण और दोनों का वर्गान्तर मूल स्पष्ट लम्बन कला कोटि होती है । रवि की दृग्ज्या को परम लम्बन की कलामें गुणकर त्रिज्याका भागदेने से दृग्लम्बन कला सिद्ध होती है, इसीप्रकार दृक्क्षेपसे नति भी सिद्ध होती है । सूर्यचन्द्र की गति के अन्तर के पन्द्रहवें भाग के समान परमलम्बन की कला होती है । क्योंकि उन्हीं के योजनात्मक गति के पन्द्रहवें भागके समान भूव्यासार्ध का मान होता है ।

चन्द्रकी लम्बनकला में गत्यन्तर के अंशों का भाग देने से, घटिकात्मक लम्बन होगा । यदि चन्द्रमा त्रिभोनलग्न से पूर्व हो तब वह सूर्य से आगे होगा । और जब

पश्चिम दिशा में है, उससमय सूर्य से पीछे लटका रहेगा। यदि सूर्य से चन्द्र आगे है, उससमय चन्द्र की शीघ्रगति के कारण दोनों का योग पहिले होचुका समझना चाहिए। और जब सूर्य से पीछे हो तब योग आगे होनेवाला समझना चाहिए। इसप्रकार त्रिभोनलग्न से पूर्व चन्द्र हों तो तिथि में लम्बन का संस्कार ऋण और पश्चिम हो तो धन करना चाहिए। सूर्य चन्द्र का याम्योत्तर अन्तर शर होता है और नति भी याम्योत्तरही होती है। इसलिए शरका नति में संस्कार करने से चन्द्र का स्पष्टशर (सूर्य से) होता है।

उपपत्ति।

पहिले लिखे क्षेत्र में, र स त समकोणत्रिभुज मान लेने से, र त=आधार, स त=कर्ण, स र=लम्ब वा कोटि। इसप्रकार, स र=$\sqrt{\text{स त}^2 - \text{र त}^2}$; वा स्पष्ट लम्बन। इसलिए 'नतिलिप्ताभुजः–, इत्यादि प्रकार उपपन्न हुआ।

अथवा, ख न स, स त र सजातीय त्रिभुजों से अनुपात किया–

$$\text{दृग्ज्या : दृक्क्षेपज्या :: दृग्लंज्याः}=\frac{\text{दृक्क्षे}\times\text{दृलं}}{\text{दृज्या}}=\text{नति।}$$

अथवा,

$$\text{त्रि : पलंज्या :: दृग्ज्याः}=\frac{\text{पलं}\times\text{दृग्ज्या}}{\text{त्रि}}=\text{दृग्लम्बन। इसप्रकार परल-}$$

म्बनलिप्ताघ्नी—, यह विधि उपपन्न हुई।

फिर अनुपात किया—

$$\text{दृग्ज्या : दृक्क्षेज्या :: दृग्लं : नति}$$

$$\text{परन्तु दृग्लम्बन}=\frac{\text{प लं}\times\text{दृग्ज्या}}{\text{दृज्या}};\ \therefore\ \frac{\text{पलं}\times\text{दृग्ज्या}\times\text{दृक्क्षे}}{\text{त्रि}\times\text{दृग्ज्या}}=\frac{\text{प लं}\times\text{दृक्क्षे}}{\text{त्रि}}$$

इसप्रकार 'एवं दृक्क्षेपतो नतिः।' उपपन्न हुआ।

गर्भक्षितिजसे पृष्ठक्षितिज भूव्यासार्ध योजन के तुल्य ऊंचा रहता है। इसलिए क्षितिज में कुछनलिप्ता के समान परम लम्बन होताहै। कुछनलिप्तासाधन के लिए अनुपात—

$$\text{गतियो' ग अ क :: भूव्यायोः}=\frac{\text{ग अक}\times\text{भू व्यायो}}{\text{गतियो}},$$ यहां भूव्यासार्ध

और गतियोजन में भूव्यासार्धयोजन का अपवर्तन देने से, $\frac{\text{ग अं}}{१५}$=कुछनलिप्ता।

इसलिए 'गत्यन्तरस्य निघ्नंश.—, यह प्रकार उपपन्न हुआ।

पुनः अनुपात किया—

ग अं: ६० : : दृग्लक: $= \frac{\text{६०} \times \text{दृग्लक}}{\text{ग अं}}$, इस में ६० का अपवर्तन देने से गत्यन्तर कला के स्थानमें गत्यन्तर के अंश हुए।

$\frac{\text{लक}}{\frac{(\text{ग अं})}{\text{६०}}}$ = घटिकात्मक लम्बन। इसप्रकार 'स्थूलंम्बनकला—' इत्यादि प्रकार उपपन्न हुआ॥ २१—२९॥

अथ वलनवासनामाह–

तुलाजाद्योर्हि संपाते विषुवत्क्रान्तिवृत्तयोः।
स्यातां याम्योत्तरे भिन्ने परक्रान्त्यन्तरे च ते॥ ३०॥
आयनं वलनं तत्र जिनांशज्यासमं ततः।
एकैवायनसन्धौ तु तयोः स्याद्दक्षिणोत्तरा॥ ३१॥
एकैव तद्वशात्प्राची तत्र नो वलनं ततः।
तदन्तरेऽनुपातेन खेटकोटिक्रमज्यका॥ ३२॥
जिनज्याघ्नी द्युजीवाप्तायनदिग्वलनं भवेत्।
एवमेव हि संपाते विषुवत्समवृत्तयोः॥ ३३॥
उन्मण्डलं भवेत्तत्र विषुवद्दक्षिणोत्तरा।
क्षितिजं समवृत्तस्य पलज्या च तदन्तरम्॥ ३४॥
क्षितिजेऽक्षज्यया तुल्यमाक्षनं वलनं ततः।
तयोरेकैव याम्योदङ् न मध्ये वलनं ततः॥ ३५॥
नतक्रमज्यया साध्यमन्तरे त्वनुपाततः।
नतं खाङ्काहतं भक्तं द्युदलेनाप्तभागकैः॥ ३६॥
क्रमज्याक्षज्यया क्षुण्णाद्युज्याभक्ताक्षजं भवेत्।
प्राक् सौम्यं पश्चिमे याम्यं तच्चापैक्यान्तरात्स्फुटम्॥३७॥

प्रभा।

एते श्लोका आयनाक्षवलनसाधनविधिनिरूपका वासनाभाष्ये व्याख्याताः। एषामाशयो वासनाप्रपञ्चे व्यक्ततरो भविष्यति। अत्रास्माभिः प्रसङ्गवशेनैते मूलश्लोका विभज्य व्याकृताः।

भाषाभाष्य।

मेष और तुलके आदि में जो विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्त का संपात है (दृग्गोल पर दृष्टि देनी चाहिए) उसमे उनके दक्षिणोत्तरवृत्त भिन्न है। और वे परम क्रान्तिके तुल्य अन्तर * पर हैं। इसलिए वहांपर आयनवलन चौबीस अंश के समान होता है। अयनसन्धि में नाडीवृत्त और क्रान्तिवृत्तके दक्षिणोत्तरवृत्त एकही होवे हैं। इसलिए उनका पूर्वापर भी एकही होगा इसकारण वहां आयनवलन का अभाव होगा। जब ग्रह अयनबिन्दु और विषुवद्विन्दु के बीच में, क्रान्तिवृत्त के किसी स्थान में होगा, उस समय अनुपात से, ग्रहकोटिज्या को परमक्रान्तिज्या से गुणकर द्युज्या का भाग देने से आयनवलन सिद्ध होगा।

इसीप्रकार समवृत्त और विषुवद्वृत्त के संपात में स्थानीय क्षितिज और उन्मण्डल, क्रमसे दोनों वृत्तों के दक्षिणोत्तर होंगे; और उनका अन्तर अक्षज्या के तुल्य होगा। इसलिए क्षितिज के पूर्व और पश्चिम बिन्दु में, अक्षज्या के तुल्य आक्षवलन होगा। मध्याह्न में समवृत्त और विषुवद्वृत्त का दक्षिणोत्तर एकही होता है इसलिए वहां आक्षवलन का अभाव होता है। बीच में अनुपातद्वारा नतज्या से सिद्ध करना चाहिए। + नतांशों को ९० से गुणकर दिनार्ध का भाग देने से जो फल मिले उसकी ज्या को अक्षज्या से गुणकर ग्रहद्युज्याका भागदेने से प्राप्त फल आक्षवलन होता है। यदि नत पूर्व है, तब आक्षवलन उत्तर दिशाका होगा। और जब पश्चिम है, उस समय दक्षिण होगा। इसप्रकार आयन और आक्षवलन जब एकही दिशा के हों तब उनका योग और भिन्न दिशाओं का अन्तर स्पष्टवलन होता है।

---

* अन्तर शब्द से यहांपर दो महावृत्तों का, त्रिज्यावृत्त में चापात्मक अन्तर समझना चाहिए।

+ यहांपर नत से समवृत्त के चाप का ग्रहण है जो खमध्य और ग्रहगत समवृत्त के मध्य में उत्पन्न होता है।

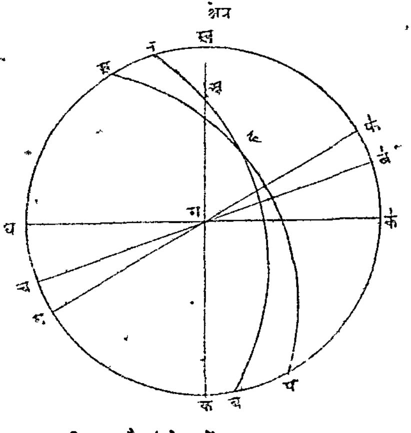
उपपत्ति ।

वेधकर्ता, ग्रह का वेध अपने सम्मुख सममण्डल के अनुरोध से करता है। इसलिए वेधकर्ता का पूर्वापर सममण्डल होता है। सममण्डल से इष्ट नत काल में ग्रह का वेध करने से, वेधकर्ता के, क्रान्तिवृत्तगत ग्रहकी दृश्यपरिधि के पूर्वबिन्दु से जो क्रान्तिवृत्त का चलन होता है उस को वलन कहते हैं। यह वलन, आचार्यने दो भागों में विभक्त करके साधन किया है। एक आक्षवलन, दूसरा आयनवलन कहलाता है। सममण्डल से विषुवन्मण्डल, जिस दिशा में जितना चलित हो, उस दिशा का वह चलन–मान आक्षवलन है। और विषुवन्मण्डलसे क्रान्तिमण्डल का जिस दिशामें जितना चलन हो, उस दिशा का वह चलन–मान आयनवलन है। इन दोनों वलनों के संस्कार से स्पष्टवलन होता है। अर्थात् सममण्डल से क्रान्तिमण्डल का चलन सिद्ध होताहै।

ग्रहोत्पन्न त्रिज्यावृत्त में ग्रहगत समप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त के संपात से उत्पन्न कोण के सम्मुख चाप का मान आक्षवलन होताहै। और इसीप्रकार ग्रहगत कदम्बप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त के संपात से उत्पन्न कोणका, ग्रहोत्पन्न त्रिज्यावृत्त में सम्मुख चाप का मान आयनवलन होता है। इन दोनों चापों का यथासम्भव योग वा अन्तर से, ग्रहोत्पन्न त्रिज्यावृत्त में, ग्रहगत कदम्बप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के संपात से उत्पन्न कोण का, चापरूप मान होता है। इसको स्पष्टवलन कहते हैं।

सिद्धान्त की परिभाषा के अनुसार, किसी वृत्त के किसी स्थान से आगे ९० अंश पर जो स्थान होगा वह पहिले स्थान से पूर्व दिशा में होगा। और उसी स्थान से पीछे ९० अंश पर जो स्थान होगा, वह उस से पश्चिम समझा जायगा। और एक वृत्त का जो दक्षिणोत्तरवृत्त होगा, उस में दक्षिण तरफ जो ९० अंश पर स्थान होगा वह दक्षिण स्थान होगा। और बाईं तरफ उतनेही अन्तर पर उत्तर स्थान होगा। इस परिभाषाके अनुसार, क्रान्तिवृत्तगत ग्रहस्थान के पूर्वबिन्दु का, ग्रहगत दक्षिणोत्तरवृत्त के पूर्वबिन्दु से जो चलन है, वह वलन है। परन्तु ग्रहगत दक्षिणोत्तरवृत्त ग्रह से ९० आगे समवृत्त को काटेगा, इसलिए क्रान्तिवृत्त के पूर्वबिन्दुका जो चलन है वह समवृत्तगत पूर्वबिन्दु से वलन है। यह वलन सब दिशाओं में समान फल उत्पन्न करताहै। जब क्रान्तिवृत्तगत पूर्वबिन्दु, समवृत्तगत पूर्वबिन्दु से उत्तर है, तब उत्तर वलन और यदि दक्षिण है, तब दक्षिण वलन होताहै।

नीचे लिखे क्षेत्र में वलन की स्थिति स्पष्ट प्रतीत होती है।



ख ग क=क्रान्तिवृत्त और ‘ग’ उसमें ग्रहस्थान।

न ह घ=नाडीवृत्त और ‘अ’ सायन मेषादि।

स ह फ=समवृत्त, ‘ह’ समवृत्त और नाडीवृत्त का संपातबिन्दु।

स ह=सममण्डलीय नतकाल। घकं=कदम्बप्रोतवृत्त, चगवं=ध्रुवप्रोतवृत्त और म ग फं=समप्रोतवृत्त।

अत्र,

फ व चाप=व ग फ=आक्षवलन।

व क चाप=क ग व=आयनवलन।

फ क चाप=क ग फ=स्पष्टवलन।

अथवा,

‘न’ क्रान्तिवृत्तगत ग्रह का पूर्वबिन्दु,

'न' नाडीवृत्तगत ग्रहका पूर्वबिन्दु ;

'स' समवृत्तगत „ „ „

इसलिए, स न, न ख और स ख=आक्ष, आयन और स्पष्टवलन के। इनका साधन इस प्रकार है—

ग्रभु=ग्रह भुजांश.

प=परमक्रान्ति.

क्रा=क्रान्ति.

स=अक्षांश.

अय=आयनवलन.

अक्ष=आक्षवलन.

स्प=स्पष्टवलन.

न=नतकाल.

अब, न अ ख गोलीय त्रिभुज में,

ज्या ख न अ : ज्या न अ ख=ज्या ख अ : ज्या न ख,

अथवा, को ज्या क्रा : ज्या प=कोज्या ग्रभु : ज्या अ य,

$\therefore$ ज्या अ य= $\dfrac{\text{ज्या प} \times \text{कोज्या ग्रभु}}{\text{कोज्या क्रा}}$, इसलिए '... खेट कोदिक जिनज्याघ्नी द्युजीवाप्तायनदिग्वलनं भवेत् ॥'

यह प्रकार उपपन्न हुआ। यह वलन उत्तर दक्षिण होता है; जिधर 'ख' बिन्दु न बिन्दु से हो।

अब, न ह स गोलीय त्रिभुज में;

ज्या स न ह : ज्या न ह स : =ज्या स ह : ज्या स न;

यहां पर, ज्या स न ह=ज्या ख न अ=को ज्या क्रा,

ज्या न ह स=ज्या अ,

और, ज्या स ह=ज्या न

$\therefore$, को ज्या क्रा : ज्या अ=ज्या न : ज्या अक्ष;

$\therefore$ ज्या अक्ष= $\dfrac{\text{ज्या अ} \times \text{ज्या न}}{\text{को ज्या क्रा}}$, इसलिए 'नतं स्वाङ्गाहतं— क्रमज्याक्षज्ययाक्षुण्णा द्युज्याभक्ताक्षजं भवेत् ॥ यह प्रकार उपपन्न हुआ। यह

वलन भी 'न' विन्दु के 'ख' विन्दु से उत्तर–दक्षिण स्थिति में, उत्तर–दक्षिण होता है।

यहां पर, स्पष्टवलन=स ख=स न + न ख। जब 'न' विन्दु स और ख के बीच में स्थित हो। और जब 'न' स और ख के आगे हो, तब आयन और आक्ष के अन्तर के समान स्पष्टवलन होता है। यह स्पष्टवलन भी दक्षिण–उत्तर होता है। जिस क्रम से 'ख' विन्दु 'स' विन्दु के उत्तर–दक्षिण होवे।

वलन का प्रयोजन ग्रहण के परिलेख में पड़ता है। गणिताध्याय में इसका वर्णन होगा ॥ ३०––३७ ॥

एवमेव च संपातो यः क्रान्तिसमवृत्तयोः।
परमं तत्र तत्कालवलनैक्यान्तरं स्फुटम् ॥ ३८ ॥
अग्रतः पृष्ठतस्तस्मात् क्रान्तिवृत्ते त्रिभेऽन्तरे।
तयोर्याम्योत्तरैकत्वात् तत्र नो वलनं स्फुटम् ॥ ३९ ॥
न स्पष्टवलनाभावस्तत्र स्यादुत्क्रमज्यया।
क्रमज्यया ततः कार्यं दार्ढ्यार्थं कथ्यते पुनः ॥ ४० ॥
सर्वतः क्रान्तिसूत्राणां ध्रुवे योगो भवेद्यतः।
विषुवन्मण्डलप्राच्या ध्रुवे याम्या तथोत्तरा ॥ ४१ ॥
सर्वतः क्षेपसूत्राणां ध्रुवाज्जिनलवान्तरे।
योगः कदम्बसंज्ञोऽयं ज्ञेयो वलनबोधकृत् ॥ ४२ ॥
तत्रापमण्डलप्राच्या याम्या सौम्या च दिक् सदा।
कदम्बभ्रमवृत्तं च बध्नीयात् परितो ध्रुवात् ॥ ४३ ॥
गोले तु जिनतुल्यांशैस्तत्र ज्या क्रान्तिशिञ्जिनी।
सर्वतः समवृत्ताच्च याम्योदक्कुजसङ्गमे ॥ ४४ ॥
तत्तिर्यग्गतसूत्राणां योगः स समसंज्ञकः।
समध्रुवकदम्बानामुपरिष्टचरान्नयेत् ॥ ४५ ॥
सूत्राणि वृत्तरूपाणि वलनानि तदन्तरे।

अभ्रजं वलनं मध्ये स्यात्समध्रुवसूत्रयोः ॥ ४६ ॥
कदम्बध्रुवसूत्रान्तरायनं च त्रिभे ग्रहात् ।
कदम्बसमसूत्रान्तः स्फुटं सर्वदिशां च तत् ॥ ४७ ॥

प्रभा ।

लल्ल-श्रीपत्यादिभिः प्राचीनगणकैरुत्क्रमज्यया वलनानयनं स्वस्व निबन्धेपूपनिबद्धम् । परं क्रमज्यामन्तरा साधनमज्ञानमूलकमित्याचार्यैः प्रकृते बहुधा प्रतिपादितम् । एवमेव च संपात इत्यादयः श्लोकाः स्फुटार्थाः । गोलस्थितिविचारणया सुबोधाः ।

भाषाभाष्य ।

जब ग्रह क्रान्तिवृत्त और समवृत्त के सपातबिन्दु में हो, तब स्पष्टवलन, आयन और आक्षवलन के सयोग वा वियोग से उत्पन्न, परम होता है । परन्तु संपातबिन्दु से, तीन राशि आगे वा पीछे, क्रान्तिवृत्त में ग्रहबिन्दु रहनेपर स्पष्ट वलन का अभाव होता है । क्योंकि वहा पर समवृत्त और क्रान्तिवृत्त का दक्षिणोत्तरवृत्त एक होजाता है (गोल पर दृष्टि देनी चाहिए) । परन्तु यदि क्रमज्या छोडकर उत्क्रमज्या से वलन सिद्ध कियाजाय, तब उक्त स्थान में स्पष्टवलन का अभाव नहीं होगा । इसलिए वलन क्रमज्या से ही साधन करना चाहिए । इसी बात की दृढता के लिए फिर कहते हैं—सब क्रान्तिसूत्रों का ध्रुवबिन्दु, योग होता है । इसलिए, स्पष्ट है कि विषुवद्वृत्त के धरातल में, लम्बरूप उत्तर और दक्षिणरेखा में पूर्व और पश्चिम रेखाओं पर लम्ब होकर, ध्रुवबिन्दु में मिलेंगी । और सब क्षेपसूत्र, क्रान्तिवृत्त के केन्द्रकदम्ब में सयुक्त होते हैं, ध्रुवबिन्दु से २४ अश दूर है । यही कदम्ब, वलन को उत्पन्न करता है ।

कदम्ब में, दक्षिणोत्तर रेखायें, क्रान्तिवृत्तीय धरातल मे पूर्वापर रेखाओं लम्बभूत होकर सदा मिली रहती हैं । ध्रुवबिन्दु को केन्द्र मानकर, २४ व्यास से ध्रुवकी चारों तरफ वृत्त बनाना । इसका नाम कदम्बभ्रमवृत्त है, इसमें कद भ्रमण किया करता है । इसवृत्त मे ज्या क्रान्तिज्या के समान होती है । समा का दक्षिणोत्तरवृत्त, मध्याह्नवृत्त और क्षितिजवृत्त के सपातबिन्दु मे मिलता है यह सपातबिन्दु समस्थान कहलाता है । यह क्षितिज उत्तर और दक्षिण बिन्दु

अब ग्रह के ध्रुव और कदम्ब में वृत्ताकार सूत्र करना, जो समस्थान में मिलें। इन वृत्तों के बीच में तीनों वलन स्पष्ट दिखलाई देंगे। अर्थात् सम और ध्रुववृत्तों के बीच में आक्षवलन, कदम्ब और ध्रुव के बीच में, आयनवलन और कदम्ब समसूत्रों के बीच में स्पष्टवलन। ये वलन ग्रह से तीन राशि के अन्तर में, सब दिशाओं में समान होते हैं।

उपपत्ति।

+ लल्ल, श्रीपति आदि प्राचीन आचार्यों ने वलन के साधन में, ग्रह की कोटि ज्या को छोड़कर उस की उत्क्रमज्या का ग्रहण किया है। और क्रान्ति कोटिज्या को छोड़कर सत्रिराशिग्रहोत्क्रमज्या से साधित क्रान्तिज्या और आक्षवलन के साधन में, नतांशज्या के स्थान में उसकी उत्क्रमज्या और क्रान्तिकोटिज्या के स्थान में पूर्वोक्त क्रान्तिज्या का ग्रहण किया है। यह सब गोलस्थिति के विरुद्ध होने से आचार्य ने इस की परम्परा दूर करने को कई प्रकार की गोलस्थिति दिखलाई है, जैसी ऊपर भाष्य में लिखी है। इसीतरह की आगे और भी दिखलाई जाती हैं। ये सब गोलमें प्रत्यक्ष प्रतीत होती हैं॥ ३८-४७॥

अथवा परितः खेटात् खाङ्कभागान्तरे न्यसेत्।
त्रिज्यावृत्तं ततस्तत्र विषुवत्समवृत्तयोः॥ ४८॥
मध्येऽक्षवलनं विद्याद्विषुवत्क्रान्तिवृत्तयोः।
अन्तरं चायनं क्रान्तिसमवृत्तान्तरे स्फुटम्॥ ४९॥

+ स्पष्टं दिक्कालजनिता क्रमशोऽयनाभि क्षुषाऽऽभा पलभवश्चवलन भवेत्।
घातानि पूर्वनतपश्चिमया फलानि सौम्यनराप समवहि पृथक्दमय॥
भाभा मध्याशिभिन्नयात्भुज्या अस्ता तत आयक्रमज्या।
तज्या धनु मनिग्रहद्युदिहृस्यात् येषा विगतस्य निजादिशि स्यात्॥
अपक्रमक्षेपपलोद्भवाना ध्रुति क्रमादक्षदिशा फलानाम्।
काया वियोगान्यदिशा वधो ज्या माभा भौमा वलनस्य जीवा॥ २३—२६॥

लल्लाचार्य।

पाताकभ पलगुणाभिगतात् विभ पकालादथ कार्मुक यत्।
उदक्च याम्य च कपालयोस्तु तदायमाशावलन वदन्ति॥
त्रिज्यासहिताद्य मा गतो व्यत्नर्जीमारविनमपचाप मस्कृत सेयुगा यत्।
पलवलनमनेन सम्पकाद्रे स्यामन्याशिनियम भित्र्विशहन यत्॥

श्रीपति।

तत्रापमण्डलं प्राची तस्या याम्योत्तरः शरः ।
वलनानयने क्षेपः क्षिप्तो यैस्ते कुबुद्धयः ॥ ५० ॥
नक्रादिश्च कदम्बश्च स्यातां याम्योत्तरे समम् ।
आयनं वलनं तस्मान्नायनादौ प्रजायते ॥ ५१ ॥
ततो भ्रमति गोले स मकरादिर्यथा यथा ।
तथा तथा भ्रमत्येष कदम्बो निजमण्डले ॥ ५२ ॥
कुम्भादावथ मीनादौ याम्योदग्वलयस्थिते ।
जायते वलनं तद्वत् सौम्यसूत्रकदम्बयोः ॥ ५३ ॥
अन्तरं शिञ्जिनीरूपं कदम्बभ्रममण्डले ।
अयनाद्गतकालांशक्रमक्रान्तिज्यका हि सा ॥ ५४ ॥
उत्क्रमज्या यतो बाणः शिञ्जिनी तु क्रमज्यका ।
सत्रिभार्कात् क्रमक्रान्तिज्यातो वलनमायनम् ॥ ५५ ॥
येऽक्रमुत्क्रमक्रान्त्या भ्रान्त्या तैर्नाशितं हि तत् ।
युक्त्यानयेत्र विज्ञेयमक्षजं चक्रमज्यया ॥ ५६ ॥
परोक्तैरन्यथानूद्यः परान् न प्रदूषयेत् ।
तस्यैव दूषणं तद्धि न दोषोऽतोऽन्यदूषणे ॥ ५७ ॥

प्रभा ।

'अथवा परितः—', इत्यादयः श्लोकाः स्फुटाः । परोक्तैरिति अस्यायमर्थः—यः कोऽपि स्वमतं परमताद्विरुद्धं सिद्धान्तयन्परमतं न दूषयति, तत्तस्यैव दूषणम् । यस्तु परमतं दूषयित्वा स्वमतं प्रकाशयति स न दोषभाक् । अत्राचार्येण प्राचीनगणकदूषणानि प्रदर्श्य तद्विरुद्धं स्वमतमुपन्यस्तमिति न दोषभागितेति तत्त्वम् ।

भाषाभाष्य।

अथवा ध्रुवस्थानमें ग्रहको कल्पना कर, उसको केन्द्र मानकर ९० अंश पर एक वृत्त करना। तब इस वृत्त में, विषुवद्वृत्त और समवृत्त के सपातबिन्दुओं के बीचमें आक्षवलन जानना चाहिए। और इसीवृत्त में नाडीवृत्त और क्रान्तिवृत्त के सपातबिन्दुओं के मध्यमें आयनवलन और क्रान्तिवृत्त समवृत्त के बीच में स्पष्टवलन जानना चाहिए। इस स्थिति मे क्रान्तिवृत्त का धरातल पूर्वापर और शर उसका याम्योत्तर होता है। जिन लोगोंने (लल्ल श्रीपति सदृश) वलन के साधन मे शर को जोड़ा है। उनकी दुर्बुद्धिके लिए क्या कहें। मकरादि और कदम्ब, एक समय मे याम्योत्तरवृत्त में पहुचते हैं। इसलिए अयनादि मे आयनवलन नहीं होता। जिसप्रकार गोलमें मकरादि भ्रमण करता है उसीप्रकार कदम्ब, अपने छोटे वृत्त में भ्रमण किया करता है।

जब कुम्भादि अथवा मीनादि याम्योत्तरवृत्त में आते हैं। उस समय क्रान्तिवृत्त और याम्योत्तरवृत्त के मध्य में, कदम्ब भ्रमवृत्त मे ज्यारूप अन्तर आयन वलन होताहै। यह वलन क्रान्तिज्या के समान होताहै, जो याम्योत्तरवृत्त से मकरादि के गतकाल ज्या से उत्पन्न होती है। उत्क्रमज्या बाणाकार और क्रमज्या अर्धचाप की ज्या होती है (इसलिए कदम्ब से याम्योत्तरवृत्त की अन्तर की उत्क्रमज्या से वलनका यथार्थ मान सिद्ध नहीं होसकता जैसा कि लल्ल आदि ने कहा है) सूर्य में तीन राशि जोडकर उसकी क्रान्तिज्या से वलनसाधन करना चाहिए।

इस वलनसाधन को जिन्होंने उत्क्रमज्या से कहा है वे सब भ्रम में पड़कर इसका नाश किया है। इसी युक्तिसे आक्षवलन का भी क्रमज्या से ही साधन करना चाहिए।

जो मनुष्य दूसरे की उक्ति से विरुद्ध अपनी उक्ति प्रकट करता है और उस के दोषों को नहीं दिखलाता, वह दोषभागी होता है। परन्तु जो दूसरे के दोषों को प्रकट करके अपना मत उसके विरुद्ध प्रकट करता है वह दोषी नहीं होता। प्रयोजन यह है कि आचार्य ने इस स्थान में प्राचीनों के दोषों को खुलासा कहकर अपना मत उसके विरुद्ध प्रकट किया है, इसलिए आचार्य स्वय दोषी नहीं हैं॥ ४८—५७॥

उत्क्रमज्या निरासोऽयमन्यथा वाथ कथ्यते।
जिनांशैर्जिनवृत्ताख्यं कदम्बात्परितो न्यसेत्॥ ५८॥
क्रान्तियाम्योत्तरं वृत्तं कदम्बद्वयकीलयोः।
प्रोतं कृत्वा चलं न्यस्तं द्वन्द्वान्ते स्याद् ध्रुवोपरि॥ ५९॥

द्वन्द्वान्ताच्चाल्यतेंऽशैर्यैस्तैरेव चलति ध्रुवात् ।
जिनवृत्ते तदंशानां तत्र ज्या क्रान्तिशिञ्जिनी ॥ ६० ॥
आयनं सैव वलनं द्युज्याग्रे जायते ग्रहात् ।
ग्रहध्रुवान्तरे यस्माद् द्युज्याचापांशकाः सदा ॥ ६१ ॥
त्रिज्यावृत्ते यतो देयं तत्रातः परिणाम्यते ।
एवमक्षांशकैर्वृत्तं समाख्यात् परितो न्यसेत् ॥ ६२ ॥
समकीलकयोः प्रोतं तथा याम्योत्तरं चलम् ।
तत्तत्खेटोपरि न्यस्तं यैरंशैः खार्धतो नतम् ॥ ६३ ॥
समवृत्तेऽक्षवृत्ते च तैरेव स्यान्नतं ध्रुवात् ।
समवृत्तनतांशज्याक्षज्यापरिणताक्षजम् ॥ ६४ ॥
द्युज्याग्रे वलनं शश्वत् त्रिज्याग्रे परिणाम्यते ।
उपपत्त्यानया सम्यक् समवृत्तनतांशजम् ॥ ६५ ॥
वलनं स्यात्तथा वक्ष्ये स्वाहोरात्रनतादपि ।

भाषाभाष्य ।

अब फिर प्रकारान्तर से उत्क्रमज्या का निराकरण दिखलाया जाता है:— कदम्ब को केन्द्र मानकर २४ की त्रिज्या से कदम्ब के चारों तरफ वृत्त करना । और क्रान्तिवृत्त का याम्योत्तरवृत्त दोनों कदम्बों में घूमता हुआ करना । यह वृत्त जब मिथुनान्त की ज्या में लाया जायगा, तब ध्रुवबिन्दुपर होगा । यह चलवृत्त मिथुनान्त से जितने अंश आगे जायगा, ठीक उतने ही अंश, ध्रुवबिन्दुसे जिन २४ वृत्त में भी जायगा । जिनवृत्त में उन (चलेहुए) अंशों की ज्या, क्रान्तिज्या के समान होती है । यही ग्रहसे द्युज्याग्र में आयन वलन होता है । क्योंकि ग्रह और ध्रुव के बीच में सदा द्युज्याचापांश रहते हैं । ये क्रान्तिचापांश त्रिज्या के समान होते हैं । (गोल देखना चाहिए) परन्तु यह फल द्युज्याग्र में होता है, इसलिए त्रिज्यावृत्त में परिणामन किया जाता है ।

जिसप्रकार कदम्बसे परमक्रान्तितुल्य व्यासार्ध से जिनवृत्त किया गया है, वैसाही समस्थान को केन्द्र मानकर स्थानीय अंशांशतुल्य व्यासार्ध से समस्थान के चारोंतरफ वृत्त करना । (इस को अक्षवृत्त कहते हैं) समवृत्त का दक्षिणोत्तर

वृत्त, दोनों समभागों मे घूमता हुआ करना । इस चलवृत्त को ग्रह के ऊपर लेजाने पर खमध्य से ग्रह का जितना नतांश होगा उतना ही ध्रुवबिन्दुसे समवृत्त और अक्षवृत्त में नतांश होंगे । ग्रह की समवृत्तनतज्या को अक्षवृत्तमें परिणामन करने से आक्षवलन होताहै । जैसा आयनवलन में परिणामन किया गया है, वैसा ही द्युज्याग्रसम्बन्धि आक्षवलन को त्रिज्यावृत्तमें परिणामन करना चाहिए । इसी उपपत्ति से समवृत्तीयनतांशज्या से भी सूक्ष्म रीतिसे वलन सिद्ध होसकता है ।

अब आगे अहोरात्रवृत्त के नतांश मे भी वलनसाधन कहते हैं ॥ ५८–६५ ॥

अग्रान्त्यतलयोर्योगः समदिक्त्वेऽन्यथान्तरम् ॥ ६६ ॥
तत्त्रिज्यावर्गविश्लेषपदभक्ताक्षशिञ्जिनी ।
नतासुदोर्ज्ययाक्षुण्णा वलनं पलजं स्फुटम् ॥ ६७ ॥
नतं खाङ्काहतं भक्तं द्युदलेनाप्तभागकैः ।
क्रमज्याक्षज्यया क्षुण्णा स्थूलं वा द्युज्यया हृता ॥ ६८ ॥
द्युज्यावृत्तापवृत्तेऽस्ये न्यसेद्वा रविमण्डलम् ।
द्युज्याग्रे वलनं तद्यदन्तरं वृत्तयोस्तयोः ॥ ६९ ॥
बिम्बान्तबिम्बमध्योत्थक्रान्तिमौर्व्योस्तदन्तरम् ।
अर्कदोर्भोग्यखण्डघ्नं बिम्बार्धं तत्त्वदस्रहृत् ॥ ७० ॥
जिनज्याघ्नं त्रिभज्याप्तमेवं स्यादन्तरं हि तत् ।
बिम्बार्धहृत् त्रिभज्याप्तमेवं त्रिज्यागतं भवेत् ॥ ७१ ॥
गुणहारकबिम्बार्धत्रिज्यानाशे कृते सति ।
भोग्यखण्डं जिनांशज्यागुणं तत्त्वाश्विभाजितम् ॥ ७२ ॥
सत्रिभार्कान् क्रमक्रान्तेस्तत्तुल्यं जायतेऽथवा ।
क्रमक्रान्तेरिदं वीक्ष्य भ्रान्तिं त्यजत बालिशाः ॥ ७३ ॥
नाभितं छत्रवद्बिम्बं तिर्यक्क्रान्तिस्तु सा समा ।
तत्र द्युज्यानुपातो यस्तत्तिर्यक्करणाय सः ॥ ७४ ॥

भाषाभाष्य ।

अग्रा और शंकुतल का, एक दिशा में योग और भिन्नदिशा में अन्तर करना। इसप्रकार भुज सिद्ध होता है। इस भुज और त्रिज्यावर्ग के अन्तरमूल को, नतासुज्या से गुणकर अक्षज्या का भाग देने से आक्षवलन होता है। अथवा, नतकाल को ९० से गुणकर दिनार्ध का भाग देने से जो फल मिले उस की ज्या को अक्षज्या से गुणकर द्युज्या का भाग देने से, प्रकारान्तर से स्थूल आक्षवलन होता है।

अथवा, अहोरात्रवृत्त और क्रान्तिवृत्त के संपातबिन्दु में रविबिम्ब की कल्पना करनी। उक्त दोनों वृत्तों के मध्य में जो रविबिम्बका चाप है, वह दोनों वृत्तों का अन्तर है। यह अन्तर आयनवलन है। यह बिम्बकेन्द्र और बिम्बान्त की क्रान्तिज्याओं के अन्तर के समान है। इसका साधन यों है.–रविबिम्ब व्यासार्ध को, रविभुजज्या के भोग्यखण्ड से गुणकर २२५ का भाग देना। फिर इस फलको २४ से गुणकर त्रिज्या का भाग देने से जो फल मिलेगा वह बिम्बमध्य और अन्तकी क्रान्तिज्याओं का अन्तर होगा। इस अन्तर को फिर त्रिज्या से गुणकर बिम्बव्यासार्ध का भाग देने से, त्रिज्यावृत्तसम्बन्धि फल होगा। पहिले अनुपात में बिम्बव्यासार्ध गुणक था, अब भाजक हुआ। इसलिए आपस में अपवर्तित होकर शेष अनुपात का स्वरूप, भोग्यखण्ड गुणित जिनज्या और २२५ भाजक रहता है।

यह फल-परिमाण सत्रिभ-सूर्य की क्रान्ति के समान होता है, अर्थात् सूर्य से ९० अंश पर क्रान्तिवृत्त में जो ग्रह होगा उस की क्रान्ति के समान होगा। इस लिए हे अज्ञानियो ! यह सब क्रमज्या की स्थिति सविस्तर देखकर अपनी भ्रान्तियों को छोड़ो। जब रविबिम्ब, खमध्य से छतरी की तरह दक्षिण वा उत्तरकी तरफ झुका हुआ दिखलाई देता है। तब वह सत्रिभ ग्रह की क्रान्ति तिरछी होती है। इसकारण यहां जो द्युज्या से अनुपात किया गया है, वह सत्रिभग्रह क्रांति-रूप आयनवलन के तिर्यक् बनाने के लिए है।

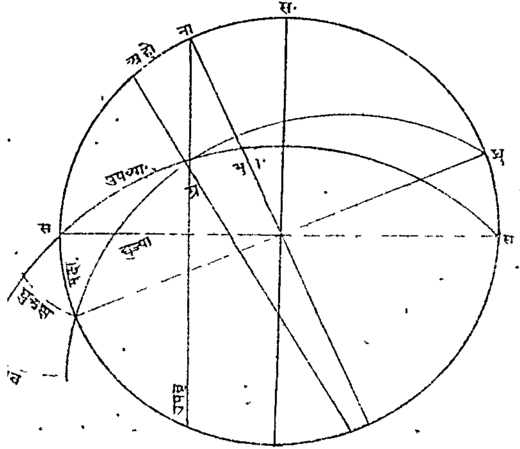
उपपत्ति।

आचार्य ने आगे वासनाभाष्य में इन प्रकारों की उपपत्ति स्वयं लिखी है। परन्तु वे उपपत्तियां यहीं लिखी जाती हैं। जिससे आगे वासनाभाष्य के व्याख्यान का आवश्यक न रहे।

(१) ग्रहण के समय में सूर्य का शंकु, शंकुतल और अग्रा सिद्ध करके भुज का साधन करना। ग्रह और समवृत्त का दक्षिणोत्तर अन्तर भुजके समान होता है (गोल देखना चाहिए)। जिसप्रकार विषुवद्वृत्त से क्षिण तिम्नार्ध उत्तरक्रान्तिदज्या के समान अन्तर पर द्युज्यावृत्त होता है, वैसे ही यहां पर समवृत्त से भुजतुल्य

अन्तर पर एक वृत्त करना इसका नाम उपवृत्त है। इसका व्यासार्ध $\sqrt{\text{त्रि}^2 - \text{भुज}}$ के समान होता है। द्युज्यावृत्त और उपवृत्त के संपातबिन्दुओं में ज्यारूप रेखा करनी। इसका अर्ध उपवृत्त में नतांशज्या होगी। यही अहोरात्रवृत्त की भी होगी। परन्तु उक्त दोनों वृत्तों का मान परस्पर मे भिन्न है। इसलिए दोनो वृत्तों में ज्या के अंश भिन्न होंगे।

क्षेत्र।



अब साधन के लिए अनुपात—

$$\text{त्रि} : \text{नतज्या} :: \text{द्यु} := \frac{\text{न ज्या} \times \text{द्यु}}{\text{त्रि}} = \text{अहोरात्रवृत्त वा, उपवृत्त}$$

नतांशज्या।

$$\text{उप} : \frac{\text{न ज्या} \times \text{द्यु}}{\text{त्रि}} :: \text{अक्ष} := \frac{\text{न ज्या} \times \text{द्यु} \times \text{अक्ष}}{\text{उप} \times \text{त्रि}} = \text{समवृत्त, वा}$$

अक्षवृत्तनतांशज्या।

$$द्यु : \frac{न ज्या \times द्यु \times अक्ष}{उप \times त्रि} :: त्रि := \frac{न ज्या \times द्यु \times अक्ष \times त्रि}{द्यु \times उप \times त्रि} =$$

$\frac{न ज्या \times अक्ष}{उपज्या}$ = आक्षवलन ज्या यह आचार्य के मत से सूक्ष्म आक्षवलन ज्या है।

इसप्रकार 'अमान्तलयोर्योग:—' '६६–६७' उपपन्न हुआ।

(२) जो पहले समस्थान को केन्द्र मानकर अक्षवृत्त बनाया है, उसी में वलन की उपपत्ति फिर प्रकारान्तर-से कहते हैं।

का मध्याह्न में सूर्य से समस्थान को सूत्र लेजाने से वह ध्रुवबिन्दु में होकर जाता है। इसलिए विपुवद्वृत्त और समवृत्त की एकही याम्योत्तर रेखा होने से उस समय वलन का अभाव होता है। फिर मध्याह्न से नत सूर्य को समस्थान से सूत्र लेजाने पर वह सूत्र सममण्डल में जहां लगता है उस बिन्दुसे खमध्य तक जितने अंश होते हैं, उतने ही अक्षवृत्त में, सम और ध्रुवसूत्रों के बीचमें होते हैं। इन अंशों की ज्या के समान सम और ध्रुवसूत्रों का अन्तर होता है।

जब ग्रह याम्योत्तरवृत्त में रहता है उस समय नतकाल और समवृत्त नतांश शून्य होता है। और जब ग्रह क्षितिज में रहता है। तब समवृत्त नतांश ९० होते हैं और नतकाल दिनार्ध के समान होता है। समवृत्त नतांश की ज्या अक्षवृत्त में, अक्षज्या के तुल्य होती है। इसप्रकार सममण्डलीय नतांश से वलन का साधन उचित हुआ। उसके साधन के लिए स्थूल अनुपात किया—

$$दिनार्धन : ९० समन :: इ न. = \frac{९० सन \times इन}{दिनार्ध न} = इष्ट समवृत्तीय$$

नतांश।

$$त्रि \quad समन \quad . \quad अक्ष = \frac{९० \quad सन \times इन \times अक्ष}{दिनार्धन \; . \; त्रि} = द्युज्यामें$$

आक्षवलन।

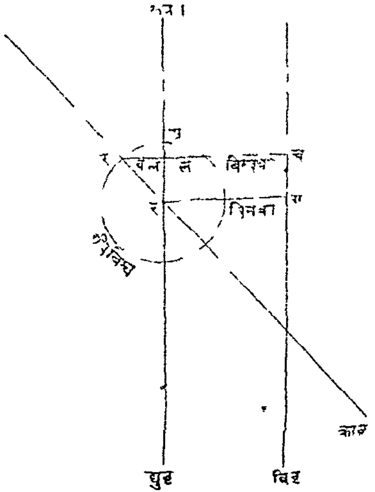
$$द्यु \quad यह फल \; . \; त्रि := \frac{९० \; स न \times इन \times अक्ष \times त्रि}{द्यु \times त्रि \times दिनार्धन} = \frac{९० \times सन}{दिनार्धन}$$

= इनज्या, (क)

$$\therefore \frac{इ न \times अक्ष.}{द्यु।} = आक्षवलनज्या।$$ (ख) इसप्रकार, (क) और (ख) मिलकर 'नतं खाङ्काहतं भक्तं द्युदलेनाप्रभागकै।' इत्यादि (श्लो० ६८) प्रकार उपपन्न हुआ। यहां पर क्षेत्र पूर्वलिखित समझना चाहिए।

(३) अब फिर प्रकारान्तर से वलन का साधन और उत्क्रमज्या का खण्डन दिखलाते हैं।

क्रान्तिवृत्त अहोरात्रवृत्त के सम्पातविन्दु में रविबिम्ब की कल्पना करनी। बिम्बपरिधि में जहां क्रान्तिवृत्त और अहोरात्रवृत्त का स्पर्श हो, उन दोनों स्पर्शबिन्दुओं का दक्षिणोत्तर अन्तर वलन होता है। यह वलन, रविबिम्ब की मध्य क्रान्ति और बिम्बान्तक्रान्ति अर्थात् जहां रविबिम्बपरिधि और क्रान्तिवृत्त का सम्पात हो, इन दोनों क्रान्तियों के अन्तर के समान होता है।



इस क्षेत्र में रवि की बिम्बमध्यक्रान्ति और बिम्बान्तक्रान्ति क्रमसे र म और र च है। इनका अन्तर र ल है। यही वलन है। इसी अन्तर के साधन के लिए रवि के बिम्बव्यासार्ध से अनुपात किया—

२२५ भोग्य बिज्या $= \dfrac{\text{भोग्य} \times \text{बिज्या}}{२२५}$ = दोर्ज्यान्तरज्या। यहां पर

भोग्यखण्डको स्पष्ट * करने के लिए अनुपात किया—

त्रि : २२५ इ को : $=\frac{२२५\times इ को}{त्रि}$ =स्पष्ट भोग्यखण्ड। पहिले भोग्यखण्ड के स्थान में इस स्पष्ट भोग्यखण्ड का स्वरूप ग्रहण करने से अन्तरज्या का स्वरूप हुआ। $\frac{२२५\times इ को\times विज्या}{त्रि\times २२५}=\frac{इ को\times विज्या}{त्रि}$= अन्तरज्या। यह अन्तर क्रान्तिज्याओं के अन्तर के समान होता है। इसलिए क्रान्तिसाधन के लिए अनुपात किया—

$$त्रि \quad ज्या २४ \quad अज्या = \frac{ज्या २४ \times अज्या}{त्रि}।$$

$$परन्तु\ अस्पष्ट\ अन्तरज्या=\frac{भोख\times विज्या}{२२५},$$

$$\frac{भोख\times विज्या\times ज्या २४}{२२५\times त्रि}=बिम्बव्यासार्धे\ में\ वलन।$$

यहां पर 'अर्कद्दोर्भोग्यखण्डघ्न—, 'जिनज्याघ्न त्रिभज्याप्तम—, यह उपपन्न हुआ।

परन्तु यह वलन बिम्बीय त्रिज्या का है, इसलिए त्रिज्यावृत्त में परिणामन के लिए अनुपात किया—

$$विज्या \quad यह फल \quad त्रि = \frac{भोख\times विज्या\times ज्या २४ \times त्रि}{२२५\times त्रि\times विज्या}=\frac{भोख\times ज्या २४}{२२५}$$

=त्रिज्यावृत्तीय वलन। इसप्रकार यहां 'बिम्बार्धहृदिभज्याघ्नम्—, 'गुणहारकाबिम्बार्धत्रिज्यानाशे—, यह पूरा प्रकार (७०—७२) उपपन्न हुआ।

(४) जब ग्रहविषुवद्वृत्त में स्थित होगा तब भूकेन्द्र से ग्रहबिम्ब तक सूत्र लेजाने से वह त्रिज्यासूत्रकोटि रूप सीधा होगा और ग्रहबिम्ब उसके ऊपर ठीक छत्रके आकार में होगा। और जब ग्रह अपनी क्रान्तिवश सेपात में पहुँचेगा उस समय त्रिज्यासूत्र कर्णरूप होगा और बिम्बसे भूमि में लम्बसूत्र शुज्याकोटि और क्रान्तिज्या भुज होगा। जब त्रिज्यासूत्र कर्णरूप होगा तब उसके ऊपर का बिम्ब

* भोग्यखण्ड के स्पष्ट करने की विधि और उसकी उपपत्ति गणिताध्याय में यथास्थान मिलेगी।

तिरछा होगा इसलिए वलनज्या भी कर्णरूप होगी। पहिले जो क्रान्त्यन्तररूप वलन सिद्ध किया है वह लम्बरूप त्रिज्यासूत्र की स्थिति में कोटिरूप हुआ है। और अब बिम्बके झुकाव में यह अन्तर कर्णरूप होजायगा। इसलिए उसके साधन के लिए अनुपात किया —

द्युको त्रि क्राअंको.

पूर्वसाधित अन्तरस्वरूप= $\frac{\text{प क्रा} \times \text{को ज्या}}{\text{त्रि}}$ । इसलिए उसके स्थान में इस का ग्रहण करने पर हुआ $\frac{\text{प क्रा} \times \text{को ज्या} \times \text{त्रि क}}{\text{द्यु को} \times \text{त्रि क}} = \frac{\text{प क्रा} \times \text{को ज्या}}{\text{द्यु को}}$ =वलन।

इसप्रकार 'नामितं छत्रवद्विम्बम्—', 'अत्र द्युज्यानुपातोय —' (७४) इत्यादि विशेष उपपन्न हुआ।

अथ वलनेषु दृक्कर्मणि चोत्क्रमज्यानिराकरणाय मूलसूत्रेऽपि बहूक्तं तथापि किंचिदिहोच्यते। विषुवद्वृत्तं समवृत्तं प्रकल्प्य दक्षिणोत्तरवृत्तस्थे ग्रह आयनवलनस्योपपत्तिप्रतीत्यर्थं पृथग्दर्शयेत्। अपमण्डलप्राच्यपराया एकः कदम्बो याम्यान्यः सौम्यादिक्। एवं विषुवद्वृत्तप्राच्यपरायां ध्रुवौ। यदा मकरादिर्याम्योत्तरवृत्ते तदैव कदम्बोऽपि। अतो विषुवत्क्रान्तिवृत्तयोरेकैव याम्योदिक्। तथा दक्षिणोत्तरवृत्तस्य कुम्भादेश्च मध्ये स्वाहोरात्रवृत्ते पञ्चगुणाङ्कचन्द्रा १६३५ असवो वर्तन्ते। ते षष्ट्युद्धृताः कालांशाः स्युः २७।१५। अथ कुम्भादिर्यावद्दक्षिणोत्तरवृत्तं नीयते तावत् कदम्बो निजमण्डले चक्रांशाङ्किते तावद्भिरेव कालांशै २७।१५ र्दक्षिणोत्तरवृत्तसम्पातात् प्रत्यगवलम्बते। कदम्बयाम्योत्तर सूत्रयोरन्तरं वलनम्। सा च तेषामंशानां कदम्बवृत्ते ज्या। अतः क्रमज्या। उत्क्रमज्या तु बाणरूपा भवति। कदम्बवृत्ते या ज्या सा क्रान्तिज्या। अतस्तेषामंशानां क्रमक्रान्तिज्या वलनम्। अथवैकराशेः क्रमक्रान्तिज्या त्रिज्यागुणा द्युज्याहृता तथापि सैव भवति।

भाषाभाष्य ।

इस वासनाभाष्य का अभिप्राय पहले श्लोकों में संक्षेप से आचुका है । इस लिए व्याख्या की आवश्यकता नहीं है । गोल पर विचारने से ही ये बातें स्पष्ट प्रतीत होती हैं ।

अथत्रान्यप्रकारेणोत्क्रमज्यानिराकरणं द्युज्यानुपातश्च प्रतिपाद्यते । क्रान्तिवृत्तेऽर्कस्थानेऽर्कविम्बं मुद्रिकाकारं विन्यस्य विम्बपरिधौ यत्र स्वाहोरात्रवृत्तं लग्नं यत्र च क्रान्तिवृत्तं तयोरन्तरं यद्दक्षिणोत्तरं तत्तत्र विम्बे प्राच्यपरयोर्वलनम् । तच्चार्कक्रान्तेर्विम्बार्धकलायुतस्यार्कस्य क्रान्तेश्चान्तरम् । अतस्तस्यानयनम् । रविदोर्ज्यायां क्रियमाणायां यद्भोग्यखण्डं तेन मानार्धकला गुण्याः शरद्विदस्रै २२५ र्भाज्याः । फलं दोर्ज्ययोरन्तरं स्यात् । तत्र तावत्स्फुटभोग्यखण्डज्ञानायानुपातः । यदि त्रिज्यातुल्यायां कोटौ प्रथमं ज्यार्धं शरद्विदस्रा भोग्यखण्डं तदाभिमतायामस्यां किमिति । फलं स्फुटं भोग्यखण्डम् । तेन गुणितं विम्बार्धं शरद्विदस्रैर्भाज्यम् । एवं स्थिते शरद्विदस्रमितयोर्गुणहरयोर्नाशे कृते विम्बार्धस्य कोटिज्या गुणस्त्रिज्या हरः । फलं दोर्ज्ययोरन्तरम् । ततः क्रान्त्यर्थमनुपातः । यदि त्रिज्यया जिनज्या लभ्यते तदानेन दोर्ज्यान्तरेण किमिति । फलं क्रान्त्यन्तरम् । तद्विम्बव्यासार्धे वलनम् । अथान्योऽनुपातः । यदि विम्बव्यासार्धवृत्त एतावद्वलनं तदा त्रिज्याव्यासार्धवृत्ते किमिति । अत्र त्रिज्यातुल्ययोर्गुणहरयोस्तथा विम्बार्धमितयोश्च तुल्यत्वान्नाशेकृते कोटिज्याया जिनांशज्या गुणस्त्रिज्या हरः । फलं कोटिक्रमक्रान्तिज्या । तत्त्रिज्यावृत्ते वलनम् । एवं विषुवद्वृत्तस्थित एव ग्रहे । यतो भूमध्यात् खस्वस्तिकस्थविम्बमध्यं प्रति यत्सूत्रं नीयते तत्त्रिज्यासूत्रं दण्डवत् । तदुपरिस्थं विम्बं छत्र

वत्समन्तात्सममेव। यत्तत्परितस्त्रिज्यावृत्तं यत्र च वलनज्या देया तदपि भूसममेव स्थितम्। अतस्तत्र तथागतमेव वलनम्। यदा किल मेषान्ते ग्रहस्तदा तत्क्रान्त्या खस्वस्तिकादुत्तरे नतं विम्बं स्यात्। त्रिज्यासूत्रं तदा कर्णरूपम्। विम्बमध्याच्च लम्बसूत्रं ध्रुवयष्ट्यन्तं द्युज्या। सा तत्र कोटिः। क्रान्तिज्या भुजः। यथा किंचित् कर्णस्थित्या धृते दण्डे छत्रमपि तत्स्पर्धिन्यां दिशि कर्णरूपं भवति। तत्र वलनज्यापि कर्णरूपिण्या भवितव्यम्। यत्पूर्वमानीतं क्रान्त्यन्तरं लम्बसूत्रप्रतिस्पर्धि तत्कोटिरूपं जातम्। तस्य कर्णकरणायानुपातः। यदि द्युज्या कोट्या त्रिज्याकर्णस्तदानया किमिति। पूर्वं कोटिज्याया जिनज्या गुणस्त्रिज्या हरः। इदानीं त्रिज्या गुणो द्युज्या हरः। अत्रापि त्रिज्यातुल्ययोर्गुणहरयोर्नाशे कृते कोटिज्या जिनज्यागुणा द्युज्यया भक्ता वलनं स्यादित्युपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

यह वासनाभाष्य 'द्युज्यावृत्तापवृत्तैक्ये—' यहां से लेकर 'अत्र द्युज्यानुपातो य —' इस श्लोक तक उपपत्तिविषयक है। उपपत्ति पहले लिखी जाचुकी है।

युक्त्यानयैव विज्ञेयमक्षजं च क्रमज्ययेति। यथायनवलनज्ञानार्थं ध्रुवात्परितो जिनभागैः कदम्बभ्रमवृत्तं विबद्धं तथा याम्योत्तरक्षितिजयोर्यः संपातः स समसंज्ञकः। तस्मादप्यक्षांशैः परितोऽक्षवलनज्ञानार्थं वृत्तं बध्नीयात्। तत्किलाक्षवलयसंज्ञम्। तदपि त्र्यंशोऽङ्क्यम्। तत्राक्षवलनोपपत्तिर्दर्शनीया। तद्यथा। मध्याह्नेऽर्कात्समचिह्नं प्रतिनीयमानं वृत्ताकारं सूत्रं ध्रुवचिह्नलग्नं याति। अतस्तत्र विषुवत्समवृत्तयोरेकैव याम्योत्तरा। वलनाभाव इत्यर्थः। अथ यदि दिनार्धान्नतं सूर्यं कृत्वा समचिह्नात्सूर्यं प्रतिनीयमानं

सूत्रं यत्र सममण्डले लगति तत्स्वस्तिकयोर्मध्ये यावन्तोंऽशास्तावन्त एवाभवृत्ते समसूत्रध्रुवयोर्मध्ये भवति। यतस्तत्समवृत्तानुकारं वृत्तम्। तेषां भागानामक्षवलये यावती क्रमज्या तावदेव समसूत्रध्रुवयोरन्तरम्। अथ क्षितिजस्थेऽर्के क्षितिजमेव समसूत्रम्। तत्राक्षवृत्ते समवृत्ते च नवतिर्नतांशाः। तेषां ज्याक्षवलयेऽक्षज्यातुल्या स्यात्। अतः सममण्डलगतैर्नतांशैर्वलनं साधयितुं युज्यते। ते तु महायासेन ज्ञायन्ते। न तु सुखेन। अतस्तज्ज्ञानार्थं स्थूलोऽनुपातः सुखार्थं कृतः। यदि दिनार्धतुल्येन स्वाहोरात्रनतेन नवतिः सममण्डलनतांशा लभ्यन्ते तदेष्टेन किमिति। लब्धनतांशानां या क्रमज्या साक्षज्यावृत्ते परिणाम्यते। यदि त्रिज्यावृत्त एतावती ज्या तदाक्षज्यावृत्ते कियतीति। लब्धं किल वलनज्या स्यात्। परं सा द्युज्याग्रे न त्रिज्याग्रे। यतः समसूत्रध्रुवयोरन्तरं तत्। ग्रहध्रुवयोर्मध्ये द्युज्या चापांशा एव वर्त्तन्ते। यदि द्युज्यावृत्त एतावती तदा त्रिज्यावृत्ते कियतीति। एवं सति पूर्वत्रैराशिके त्रिज्या हरः इदानीं गुणः। तुल्यत्वात्तयोर्नाशे कृते नतांशज्यया अक्षज्या गुणो द्युज्या हरः। फलं स्थूला वलनज्या स्यात्।

भाषाभाष्य।

इस वासनाभाष्य में 'प्राग्ग्राह्यं स्वयुदलेन भक्तम्—' इत्यादि श्लोकसे गणिताध्याय में जो आक्षवलन सिद्ध किया है और उसी के अनुरूप यहा पर पहले 'नतं प्राग्ग्राह्यत भक्तम्—' इस श्लोक में जो साधन किया है, उसी की सविस्तर गोलस्थिति दिखलाई है। यह सब पहले लिखी जाचुकी है।

अथ सूक्ष्माण्युच्यते। ग्रहणकालेऽर्कस्य शङ्कुः शङ्कुतलमग्रा च साध्या। अग्राशङ्कुतलयोः समदिशोरैक्यमन्यथान्तरं स किल बाहुः पूर्वं प्रतिपादित एव। ग्रहसमवृत्तयोरन्तरं ज्यारूपं दक्षिणोत्तरं

बाहुतुल्यं स्यात्। तथा विषुवद्वृत्तादुत्तरतो दक्षिणतो वा क्रान्ति ज्यान्तरे द्युज्यावृत्तं तथा समवृत्तादपि बाहुवशादुत्तरतो दक्षिणतो वा बाहुतुल्येऽन्तर उपवृत्तं कल्प्यम्। तदपि भांशैरङ्क्यम्। बाहु-वर्गोनत्रिज्यावर्गस्य पदं तस्मिन् वृत्ते द्युज्यावद्व्यासार्धम्। अथ द्युज्यावृत्तोपवृत्तयोर्यौ प्राक्पश्चात्संपातौ तयोर्जीवावद्यत्सूत्रंनि बध्यते तस्यार्धमुपवृत्ते नतांशानां ज्या। सैवाहोरात्रवृत्तनतांशा नां भुजज्या। अथ तदानयनम्। नतासूनां या भुजजीवा सा द्यु ज्यावृत्ते परिणाम्यते। यदि त्रिज्यावृत्त एतावती तदा द्युज्यावृत्ते कियतीति। एवमुपवृत्तनतांशज्या भवति। ततो यद्युपवृत्तव्या-सार्धे एतावती तदाक्षज्याव्यासार्धे कियतीति। ततो द्युज्याग्र एता वती वलनज्या तदा त्रिज्याग्रे कियतीति। अत्र प्रथमेऽनुपाते त्रि-ज्या हरो द्युज्या गुणः। तृतीयेऽनुपाते त्रिज्यागुणो द्युज्या हरोऽत-स्तुल्यत्वात्तयोर्नाशे कृते नतासूनां भुजज्याक्षजीवया गुणितोप वृत्तव्यासार्धेन भक्ता सा सूक्ष्मा वलनज्या स्यात्। अत उक्तमग्रानृत-तयोर्योग इत्यादि।

भाषाभाष्य।

इस वासना भाष्य में—अग्रानृतलयोर्योग —, से वलनं पलजं स्फुटम्।, तक सूक्ष्म आक्षवलनसम्बन्धि उपपत्ति है। यह पहले लिखी जाचुकी है।

अथ दृष्टान्तः। यत्र किल वृषभान्तक्रान्तितुल्योऽक्षः २०। १८। तत्र वृषभान्तस्थोऽर्को दिनार्धे खस्वस्तिके भवति। तदा क्रान्तिवृत्तं दृङ्मण्डलाकारं स्यात्। सत्रिगृहोऽर्को -राशिपञ्चकं सिंहान्तः। स च तदा क्षितिजे वर्तते तत्प्राच्यपरयोरन्तरं क्षितिजे स्पष्टं वलनं दृश्यते। सा च सिंहान्तस्याग्रा। तत्कथं स त्रिगृहा-

कौत्क्रमक्रान्तिर्वलनम्। अतोऽसत् । अस्मदानयनं विना नेद-मग्रारूपं वलनमुत्पद्यत इत्यर्थः।

भाषाभाष्य ।

अब दृष्टान्तों से उत्क्रमज्या का निराकरण दिखलाते है —जिस देश में वृषकी क्रान्ति के समान अक्षांश हो वहां पर वृषभान्त की क्रान्तिके दिन मध्याह्न में सूर्य खस्वस्तिक में होगा, और क्रान्तिवृत्त दृङ्मण्डलाकार होगा । उससमय सत्रिभ सूर्य क्षितिज में होगा । उसका और प्राक्स्वस्तिक का अन्तर क्षितिज में अग्रा के समान प्रत्यक्ष वलन होता है (दृग्गोल देखना चाहिए) परन्तु यह वलन सत्रिभ ग्रह की क्रमक्रान्ति के समान होता है उत्क्रम के नहीं । इसप्रकार क्रमज्या से ही वलनसाधन करना उपपत्ति से सिद्ध है ।

वृषभान्त की क्रान्ति के दिन सूर्य को खमध्य में कल्पना करके उसपर दृङ्मण्डल करना यही क्रान्तिवृत्त होगा । इसका क्षितिज में जहां संपात होगा उस बिन्दु से प्राक्स्वस्तिकबिंदु तक ग्रहोत्पन्न त्रिज्यावृत्त (क्षितिज) में अन्तर आक्षवलन स्पष्ट दिखलाई देता है । यही इस वासनाभाष्य के दृष्टान्त का सार है ।

अथान्यो महान् दृष्टान्तः। यत्र देशे पञ्चषष्टिभागा ६६ अक्षा-स्तत्र मेषादौ क्षितिजस्थे सर्वेऽपि राशयः समकालमेव क्षितिजस्था भवन्ति। तदा क्रान्तिवृत्तमेव क्षितिजं भवतीत्यर्थः। तत्र ये वृषभादौ मिथुनादौ वा स्थिते रवौ परमं त्रिज्यातुल्यमेव वलनं स्यात् । यतः क्रान्तिवृत्तप्राच्युत्तरा जाता तथा त्रिज्या सति तदा रवेर्दक्षिणस्यां दिशि स्पर्शः। चन्द्रस्योत्तरस्यामिति एतदुक्तं भवति। तत्र देशे तस्मिन् काले तस्य त्रिज्यातुल्य-वलनस्यान्यथानुपपत्यास्मदीयमेव वलनानयनं समीचीन-तत्र देशेऽक्षज्या ३१४०। मेषादिगे रवौ द्युज्या ३४३८ । स-सत्रः ०। क्षितिजस्थेऽर्के नतघटिकाः १५। आयनवलन-२४। आक्षवलनचापांशाः ६६ । स्फुटवलनस्य चापांशाः

वृषादिगे रवौ द्युज्या ३३६६। चरज्यासवः १६७०। नत घटिकाः १६।३८। आयनवलनचापांशाः २१।४ अक्षजस्य ६८।५६ स्फुटवलनस्य चापांशाः ९०। मिथुनादिगे द्युज्या ३२१८ चरासवः ३४६५। नतघटिकाः २४।३७। आयनवलनांशाः १२।३२ अक्षजस्य ७७।२८ स्फुटस्य ९० एवं सर्वत्र।

अत एव प्रतिवादिनं प्रत्याह—

यत्खस्वस्तिकगे रवौ भवलये दृग्वृत्तवत्संस्थिते
प्रत्यक्षं वलनं कुजे, त्रिभयुतार्काग्रासमं दृश्यते।
त्वं चेदुत्क्रमजीवयानयसि तत्ताहक् सखे गोलवित्—
मन्ये तर्ह्यमलं तदेव वलनं धीवृद्धिदाद्योदितम्॥
यत्राक्षोऽङ्गरसा लवा दिनमणेस्तत्रोदयं गच्छतो
मेषे वा वृषभेऽपि वाप्यनिमिषे कुम्भे स्थितस्यापि वा।
स्पर्शो दक्षिणतस्तदा क्षितिजवत् स्यात्क्रान्तिवृत्तं यत—
स्तद्ब्रूह्युत्क्रमजीवयात्र वलनं व्यासार्धतुल्यं कथम्॥

अनेनैवोत्क्रमज्या निराकरणेन दृक्कर्मापि क्रमज्यया साध्यम्। निमूलत्वाद्दृक्कर्मणोऽतस्तयोरेकैव वासना।

इति श्रीभास्करीये सिद्धान्तशिरोमणिगोलवासनाभाष्ये मिता ग्रहणवासना।

भाषाभाष्य।

फिर भी दृष्टान्त से उत्क्रमज्या का खण्डन और क्रमज्या का विधान सिद्ध करते हैं:—

जिस देश में अक्षांश ६६ हैं उस देश में जब मेषादि क्षितिज में होगा तब छः राशियां एक बार एक समय में क्षितिज में होंगी। वहां पर मेष वृष या

मिथुन में जब सूर्य रहेगा तब स्पष्टवलन त्रिज्या के तुल्य होगा। अर्थात् उस स्थिति में समवृत्त से क्रान्तिवृत्त का प्रद्योतरूप त्रिज्यावृत्त में त्रिज्या के तुल्य अन्तर होता है।

दृग्गोल पर ध्यान देना चाहिए। कल्पना किया क्षितिजवृत्त ही ६६ अक्षांश में क्रान्तिवृत्त है और प्राक्स्वस्तिक में, मेषादि में रवि है। रवि से त्रिज्यावृत्त याम्योत्तरवृत्त ही है। उसमें समवृत्त और क्षितिजरूप क्रान्तिवृत्त का दक्षिणोत्तर अन्तर, गोल में स्पष्टवलन स्पष्ट दिखलाई देता है। यह अन्तर ९० के तुल्य है। यह त्रिज्यातुल्य वलनक्रमज्या से ही सिद्ध होता है। उत्क्रमज्या से नहीं। यही सब आचार्य ने गणित से भी दिखलाया है।

इसप्रकार ऊपर के दोनों दृष्टान्तों का अभिप्राय आचार्य ने श्लोकबद्धकर दिया है। इन दोनों श्लोकों का अर्थ सरल है गणिताध्याय के चन्द्रग्रहणाधिकार के अन्त के दोनों श्लोक हैं, इसलिए यहांपर मूल में नहीं लिखे।

जिसप्रकार वलन + का साधन क्रमज्या से होता है वैसेही आगे दृक्कर्म का भी साधन क्रमज्या से ही करना चाहिए। क्योंकि वलनही दृक्कर्म-संस्कार का मूल है।

ग्रहणवासना समाप्त हुई।

अथोदयास्तवासना। तत्रादावुदयेऽन्ते च दृक्कर्मकारणमाह–

क्रान्तिवृत्तग्रहस्थानचिह्नं यदा
स्यात्कुजे नो तदा खेचरोऽयं यतः।
स्त्रेपुणोत्क्षिप्यते नाम्यते वा कुजा—
त्तेन दृक्कर्म खेटोदयास्ते कृतम्॥ १॥
नैव बाणः कुजेऽसौ कदम्बोन्मुख—
स्ततस्तमुत्क्षेपणं नामनं च द्विधा।
आयनं चाक्षजं तेन कर्मद्वयं

+ आचार्य ने जिन क्षेत्र स्थितियों से वलनों के साधन किये हैं इन साधनों के सिवाय सिद्धान्ततत्त्वविवेक में कई विशेष प्रकार और क्षेत्रस्थितियां बहुत उपयोगी हैं। और आचार्य ने सर्वत्र की स्थूलता भी लिखी है। उनका लिखना यहांपर उपयोगी था, पर विस्तारभय से नहीं लिखागया। सिद्धान्ततत्त्व विवेक के अनुवाद में सब विषयों का निरूपण किया जाएगा।

तत्प्रपञ्चः पुनः संविविच्योच्यते ॥ २ ॥

स्पष्टम् ।

प्रभा ।

अथेदानीं दृक्कर्मवासनां प्रारभमाणो दृक्कर्मकारणं निर्दिशति । यदा यस्य ग्रहस्य क्रान्तिवृत्तगतं स्थानं कुजे भवति तदा स ग्रहो न भवति । यतः स स्वशराग्रे वर्त्तमानस्तद्वशेन कुजात्कदाचिदुन्नमितः कदाचिच्च नमितो भवति । अतः क्रान्तिवृत्तगतं स्थानं यदा क्षितिजे भवति तदा कियता कालेन प्राक्पश्चाद्वा तत्र ग्रहोभविष्यतीति तदर्थं दृक्कर्मसंस्कारः खेटोदयास्ते कृतः । यदा हि क्रान्तिवृत्तगतं ग्रहस्थानं क्षितिजे भवति तदा तस्य शरः क्षितिजे न मिलति यतोऽसौ कदम्बाभिमुखो भवति । तस्मादायनाक्षभेदेन द्विधा दृक्कर्मावश्यकम् ।

भाषाभाष्य ।

जिस समय क्रान्तिवृत्तगत ग्रहस्थान क्षितिज में लगता है उस समय वह ग्रह नहीं लगता । क्योंकि ग्रह अपने शरवश कभी क्षितिज के ऊपर और कभी नीचे रहता है । इसलिए ग्रह कितने समय के बाद क्षितिज में आवेगा, इसके लिए उदय और अस्त में दृक्कर्म-संस्कार किया गया है । जब क्रान्तिवृत्तगत ग्रहका स्थान क्षितिज में लगता है तब उस ग्रहका शर क्षितिज के साथ नहीं मिलता । क्योंकि वह कदम्बाभिमुख होता है । शर का, क्षितिज से, कभी ऊपर और कभी नीचे होना दो प्रकारका है । अर्थात् एक क्रान्तिवृत्तकी तिरछाई से और दूसरा स्थानीय अक्षांशवश । इसलिए दृक्कर्म दो प्रकार का है, एक आयन और दूसरा आक्ष । अब इन दोनों की साधनविधि और विशेष फिर विचारपूर्वक कहते हैं ॥ १–२ ॥

अथ तत्कर्माह–

क्षितिजे वलने येस्तस्तद्दशादिषुणा ग्रहः ।
याम्येन नाम्यते क्ष्माजात् सौम्येनोन्नाम्यते तथा ॥ ३ ॥
तद्व्यस्तं वलने याम्ये व्यस्तं प्रत्यक्कुजेऽप्यतः ।
आयनं त्रिज्यया चेत्स्यादस्पष्टेन शरेण किम् ॥ ४ ॥

लम्बज्ययाक्षजं चेत्स्याद्वलनं किं स्फुटेषुणा ।
इति त्रैराशिकाल्लब्धे त्रिज्याघ्ने द्युज्ययोद्धृते ॥ ५ ॥
तत्रापेक्यान्तरप्राणैः कुजात्खेटो नतोन्नतः ।
तैः प्राणैर्यत्क्रमाल्लग्नं नतात्खेटात्प्रजायते ॥ ६ ॥
उत्क्रमेणोन्नताच्च तद् ग्रहोदयलग्नकम् ।
उक्तव्यत्ययतः प्रत्यगस्तलग्नं सषड्ग्रहात् ॥ ७ ॥
शरे महति भानान्तु चरार्धं मध्यमापमात् ।
शरस्फुटात्तथा कृत्वा तत्रापेक्यान्तरासुभिः ॥ ८ ॥
विभिन्नैकदिशोर्विद्यादक्षजेन नतोन्नतम् ।
आयनाक्षजयोर्योगवियोगाल्लग्नमुक्तवत् ॥ ९ ॥

अत्र गोले यथोक्तं क्रान्तिमण्डले विमण्डले च ग्रहं दत्त्वा विमण्डलस्थग्रहोपरि द्युज्यावृत्ते च बद्धे यथेयं दृक्कर्मोपपत्तिः सुखेन बालैरपि बुध्यते तथायं सूत्रपाठः कृतोऽतः सुगमा । तथा ग्रहच्छायाधिकार इयमुपपत्तिः सम्यक्कथितैव ।

प्रभा ।

ये क्षितिजे वलने आयनाक्षवलने तद्वशाद् ग्रहो याम्येन इषुणा स्वशरेण क्षमाजात्कुजान्नाम्यते सौम्येनोन्नाम्यते । अर्थात् प्राक्कुजे सौम्यायनवलने सौम्येषुणा ग्रह उन्नाम्यते याम्येषुणा नाम्यते । तथा याम्ये वलने तद्व्यस्तं भवत्यर्थात् प्राक्कुजे याम्यायनवलने,सौम्येषुणा ग्रहो नाम्यते याम्येषुणा उन्नाम्यते । अतः प्रत्यक्कुजेऽपि व्यस्तम् र्थात् प्रत्यक्कुजे सौम्यायनवलने सौम्येषुणा ग्रहो नाम्यते, याम्येषुणा उन्नाम्यते । एवं याम्यायनवलने सति सौम्येषुणा उन्नाम्यते याम्येषुणा नाम्यत इत्यर्थः । आयनं त्रिज्यया चेत्स्यादित्यादीनामर्थाः स्फुटा एव ।

भाषाभाष्य।

क्षितिज में जो आयन और आक्षवलन होते हैं उनके वश क्षितिज से ग्रह अपने शर से, सौम्यायनवलन में, उत्तरशरद्वारा उन्नामित और दक्षिणशरद्वारा नामित होता है। और याम्यायनवलन में उलटा होता है। अर्थात् उत्तर शर से नामित और दक्षिणशर से उन्नामित होता है। यह स्थिति पूर्व क्षितिज की हुई। इससे उलटी पश्चिम क्षितिज में होती है। अर्थात्, सौम्यायनवलन में, अपने उत्तर शर से ग्रह नामित और दक्षिण से उन्नामित होताहै। इसीप्रकार याम्यायन वलन में उत्तर शर से उन्नामित और दक्षिण से नामित होता है। यह स्थिति निरक्षदेश मे समझनी चाहिए। साक्षदेश में इसप्रकार है। पूर्व क्षितिज मे, सौम्य आक्षवलन में उत्तर शर से ग्रह उन्नामित और दक्षिण शर से नामित होता है। और पश्चिम क्षितिज में, याम्यावलन में, उत्तर शर से ग्रह उन्नामित दक्षिण शर से नामित होताहै। इसप्रकार उन्नामन और नामनका नियम है।

यदि त्रिज्या से आयनवलन मिलता है तब मध्यम शर मे क्या मिलेगा? और लम्बज्या में यदि आक्षवलन मिलता है तब स्पष्टशर में क्या? इन त्रैराशिको से जो फल मिलै उनको त्रिज्या से गुणाकर द्युज्याका भागदेना। जो फल मिलैं उनके चापज्याओं के, यथासम्भव, योग वा अन्तर से जो असु उत्पन्न हो, उस असु के समान काल में क्षितिज से ग्रह नत और उन्नत होता है। इन असुओं से नत ग्रह से क्रमलग्न और उन्नत से उत्क्रमलग्न जो होगा, वह ग्रहका उदयलग्न होगा। इस विधि से विपरीत छराशि-सहित सूर्य से अस्तलग्न साधन करना चाहिए।

जिन नक्षत्रों के शर बहुत बडे है। उनके दृक्कर्म काल भिन्नरीति से सिद्ध होते हैं। उनकी मध्यम क्रान्ति से और स्पष्टशर से चर सिद्ध करना। इनके चापों के यथासम्भव योग वा अन्तर से जो असु उत्पन्न हों, उस असु के समान काल करके, आक्षदृक्कर्मद्वारा, ग्रह उन्नामित वा नामित होता है। आयन और आक्षदृकर्मों के योग वा अन्तर से, उक्त विधि के अनुसार ग्रहका उदय वा अस्तलग्न सिद्ध करना चाहिए।

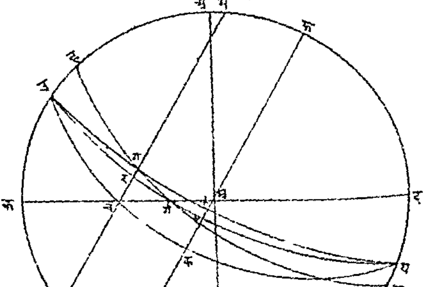
उपपत्ति।

आचार्य ने गणिताध्याय के ग्रहच्छायाधिकार में आयन और आक्षदृकर्म का उपपत्ति सविस्तार लिखी है। यहा पर केवल सूत्ररूप मे संक्षेपसे दिखलाई है। सुगमता के लिए यहा भी विचार किया जाता है।

कल्पना किया, अ द व क मध्याह्नवृत्त है कस द क्षितिज, 'अ' खस्वस्तिक, 'स' क्षितिज का पूर्वबिन्दु और कसगँ विषुववृत्त है। 'उ' उत्तरध्रुव, 'ध' दक्षिण ध्रुव, 'ग' ग्रहस्थान और 'गं' क्रान्तिवृत्तीय ग्रहस्थान है। द ग गं ज ग्रहगत कदम्ब प्रोतवृत्त, इसलिए गगं शर होगा। न ग भ ग्रहका अहोरात्रवृत्त। इसलिए स्पष्टशर, गर ज्या।

जब क्रान्तिवृत्त–गत ग्रहस्थान क्षितिज में है तब नीचे लिखे क्षेत्र से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्रह अपने शर 'ग गं' से या तो क्षितिज से उन्नामित है वा नामित। परन्तु ग्रह का उन्नामन किंवा नामन एकवारगी सिद्ध करना कठिन है, इसलिए इसके दो भाग करके सिद्धकिये हैं। प्रथम भाग क्षितिज में ध्रुवप्रोतवृत्त तक चर है। यह उन्नामन किंवा नामन ग्रह के स्पष्टशर से होता है, जो कि गर है। और उन्नामन और नामन का दूसरा भाग, ध्रुवप्रोतवृत्त और कदम्बप्रोतवृत्त का अन्तर रग है। यह ग्रह के मध्यमशर 'गं ग' से सिद्ध किया जाता है। इन दोनों भागों के योग किंवा वियोग से, क्षितिज से ग्रहका यथार्थ उन्नामन किंवा नामन सिद्ध होता है। जब स्थानीय अक्षांश उत्तर है और ग्रहका क्रान्तिवृत्तगत स्थान पूर्व क्षितिज में है तब आक्षवलन उत्तर होगा। और ध्रुवप्रोतवृत्त क्षितिज से उत्तर में उन्नामित होगा। इसकारण जब आक्षवलन है, तब ग्रह, पूर्वक्षितिज से उन्नामित होगा; यदि उसका शर उत्तर है। और जब शर दक्षिण होगा, उस समय क्षितिज से नामित होगा। स्थानीय अक्षांश जब दक्षिण है तब उक्त नियम के विपरीत आक्षवलन दक्षिण होगा। अर्थात्, जब आक्षवलन दक्षिण होगा तब ध्रुवप्रोतवृत्त क्षितिज से नामित होगा और उत्तर शर वश ग्रह क्षितिज के नीचे नामित होगा। यदि दक्षिण शर है, तब क्षितिज के ऊपर उन्नामित होगा।

क्षेत्र।



जब ग्रह का भुजांश मेषादि छ राशियों के अन्तर्गत है तब यह स्पष्ट है कि आयनवलन उत्तर होगा। और ग्रहगत ध्रुवप्रोतवृत्त के ऊपर उत्तर कदम्ब होगा। इसलिए जब आयनवलन उत्तर होगा, तब ग्रह अपने मध्यमशर उत्तर या दक्षिण से, ध्रुवप्रोतवृत्त से उन्नामित किंवा नामित होगा। इसके विपरीत, जब आयनवलन दक्षिण है, तब ग्रह ध्रुवप्रोतवृत्त से, नामित वा उन्नामित होगा; जैसा ग्रह का शर होगा। क्योंकि जब आयनवलन दक्षिण है, तब उत्तर कदम्ब ध्रुवप्रोतवृत्त के नीचे रहता है और दक्षिण कदम्ब ऊपर रहता है।

इसीप्रकार जब ग्रह पश्चिम क्षितिज में हो तब ध्रुवप्रोतवृत्त, जो क्रान्तिवृत्तगत ग्रहस्थान में गया हुआ है क्षितिज के ऊपर उत्तर दिशा में रहता है। परन्तु आक्षवलन दक्षिण होता है। इसलिए पूर्वक्षितिज की स्थिति से पश्चिम क्षितिज में विपरीत होती है। जब ग्रह का भुजांश मेषादि छ राशियों के बीच में होता है, तब आयनवलन उत्तर और उत्तर कदम्ब ध्रुवप्रोतवृत्त के नीचे होता है। इसलिए ग्रह के उत्तर शर में नामन और दक्षिण में उन्नामन होता है। और जब ग्रह भुजांश तुल आदि छ राशियों के अन्तर्गत होता है, उस समय आयनवलन दक्षिण और उत्तर कदम्ब ध्रुवप्रोतवृत्त के ऊपर होता है। इसकारण ग्रह का उन्नामन तभी होता है जब उस का शर उत्तर होता है। और नामन तब होता है जब उसका शर दक्षिण होता है। इसप्रकार पश्चिम क्षितिज में, इस स्थिति के विपरीत होता है।

अब, ग्रह के उन्नामन में उसके उदयकाल और नामन में, ग्रह कितने समय में क्षितिज में उदय होगा, इसका साधन करते हैं।

ऊपर लिखे क्षेत्र में च उ र कोण वा पॅप विषुवद्वृत्तचाप प बिन्दु में र तक ग्रह का उन्नामन काल है। और र से ग तक उन्नामन काल का मान, ग उ र कोण वा पप विषुवद्वृत्त चाप है। इन प प और पप कालों में प्रथम पप का साधन किया जाता है।

ग गं र त्रिभुज में, गगं = ग्रहशर, ग ग र = आयनवलन ग र गं = समकोण।

∴ र : ज्या गगंर = ज्या गगं : ज्यारग ;

अथवा,

त्रि : आवज्या = ज्याशर : ज्यारग, $= \frac{\text{आवज्या} \times \text{ज्याशर}}{\text{त्रि}}$ = आयनवलन =

ज्यारग । इसलिए ' आयन त्रिज्यया चेत्–, सिद्ध हुआ । फिर, उगर और उर्प प त्रिभुजों में,

ज्याउग : ज्यारग = ज्या उर्प : ज्यापर्प,

यहां पर, ज्याउग = क्रान्तिकोटिज्या, और उर्प = त्रिज्या,

$\therefore$ ज्यापर्प $= \frac{\text{त्रि} \times \text{ज्यारग}}{\text{क्राकोज्या}}$ = आयनवलनज्या, त्रिज्याग्र में ।

इसलिए ' ... त्रिज्याघ्ने द्युज्ययोद्धृते । ' यह उपपन्न हुआ ।

अब इसी प्रकार कंप के साधन के लिए यह प्रकार है:—

गंरच त्रिभुज में, गर = स्पष्टशर, रगंच = आक्षवलन, और र च गं = अक्षांश कोटि ।

$\therefore$ ज्या गंचर ज्या रगंच : ज्यागंर : ज्या रच

अथवा,

अक्षांको आक्षवलनज्या . स्पश . रच = $\frac{\text{आक्षज्या} \times \text{स्पश}}{\text{अक्षांको}}$ = आक्षवलनज्या।

इसप्रकार ' लम्बज्ययाप्तज चेत्स्याद्वलनं किं स्फुटेषुणा ।' यह उपपन्न हुआ । यह आक्षवलन द्युज्याग्रमें होता है ।

फिर, उचर और उर्प त्रिभुजों में—

$\because$ ज्या उच ज्याचर = ज्याउर : ज्याकंप;

यहां पर, ज्याउच = क्रान्तिकोज्या, और ज्याउर = त्रिज्या,

$\therefore$ ज्याकंप $= \frac{\text{त्रि} \times \text{ज्याचर}}{\text{क्राकोज्या}}$ = आक्षवलन, त्रिज्याग्र में ।

इसप्रकार ' . . . त्रिज्याघ्ने द्युज्ययोद्धृते—, । यहप्रकार, आक्षवलन साधन में, उपपन्न हुआ ।

इसप्रकार साधितकाल यदि दोनों उन्नामन वा नामन सम्बन्धि हों तो, इसकाल में, क्षितिज से ग्रह उन्नामित अथवा नामित होगा । यदि एक उन्नामनकाल दूसरा नामनकाल हो, तब इन के अन्तर से शेष काल तुल्य काल में, क्षितिज में ग्रह उन्नामित वा नामित होता है । इसप्रकार दृक्कर्मकाल का साधन होता है ।

जब ग्रह क्षितिज में होता है तब क्रान्तिवृत्त का जो बिन्दु उदयक्षितिजमें लगा

रहता है, वह उस ग्रहका उदय लग्न होता है। ग्रह के उदयकाल साध के लिए उदयलग्न का साधन आवश्यक है। उदयलग्नसाधन की विधि इसप्रकार है:— यदि ग्रह दृक्कर्मकाल से नामित है, तब यह स्पष्ट है कि जब ग्रह उदय क्षितिज में आवेगा, उस समय उसका क्रान्तिवृत्तीय प्रदेश क्षितिज से दृक्कर्मकाल के तुल्य उन्नामित होता है। इसकारण, इस स्थान को सूर्य कल्पना करके दृक्कर्मकाल से उदय लग्न साधित करना। परन्तु यदि ग्रह दृक्कर्मकाल से, क्षितिज से उन्नामित हो, तब उसका क्रान्तिवृत्तीय स्थान उसी काल में नामित होगा। इसलिए दृक्कर्म से जो लग्न होगा, वह ग्रहका उदयलग्न होगा।

क्रान्तिवृत्त का जो प्रदेश पूर्वक्षितिज में लगा है, वह जब पश्चिम क्षितिज में लगेगा तब वह अस्तलग्न कहलावेगा। ग्रह का अस्तकाल जानने के लिए उसका अस्त लग्न पहिले जानना आवश्यक है। यदि ग्रह अस्त क्षितिज से दृक्कर्मकाल से नामित हो, तब ग्रह क्षितिज में जिससमय पहुचेगा, तब उसका क्रान्तिवृत्तीयस्थान दृक्कर्मकाल के तुल्य क्षितिज से ऊचा रहेगा। और इसीकाल से, छ राशियुक्त सूर्य पूर्वक्षितिज से नमित रहेगा। इसलिये छराशि सहित ग्रह का क्रान्तिवृत्त–प्रदेश को सूर्यमानकर, दृक्कर्मकाल से जो लग्न सिद्ध होगा वह ग्रहका अस्तलग्न होगा। पर यदि ग्रह पश्चिम क्षितिज से नामित होगा तब उसका छराशिसहित क्रान्तिवृत्तीय प्रदेश पूर्वक्षितिज से दृक्कर्मकाल करके उन्नत होगा। इसलिए इसविधि से जो लग्न सिद्ध हुआ है वह अस्तलग्न होगा।

यहा पर जो पक्ष दृक्कर्मकाल का साधन, गंरच त्रिभुज से सिद्ध किया है, वह ठीक नहीं है। क्योंकि उस त्रिभुजम ग चर कोण अक्षांश कोटि के समान स्वीकृत किया गया है परन्तु यह वास्तव में उसके तुल्य नहीं हो सकता। यदि उसका शर छोटा हो तो इस दृक्कर्मकाल में विशेष बाधा नहीं है। परन्तु, यदि ग्रहका शर बडा है, उस समय पक्ष दृक्कर्मकाल ठीक नहीं है। उस स्थान में इस का साधन यों है:—पूर्वलिखित क्षेत्र में 'र' कोई नक्षत्र मान लिया और ग क्रान्तिवृत्त का सपातबिन्दु। और नक्षत्रात ध्रुवप्रोतवृत्त गप उस समय नक्षत्र का मध्यमशर होगा। रच, स्पष्टशर और र प स्पष्टक्रान्ति होगी।

अब, सर्व चरार्ध का साधन गंप मध्यमक्रान्ति और शक चरार्ध का साधन ग अथवा चर से सिद्ध करना फिर इनका अन्तर करना। यह पक्ष वा सक–

सप=पक के होगा। परन्तु यह अन्तर ग और र के विपुवद्वृत्त के एक ही प्रदेश में रहने से होता है। यदि भिन्न स्थानों में होंगे, तब पक दोनों चरार्धों के योग तुल्य होगा। इसप्रकार 'शरे महति भाना तु—, इत्यादि विशेष सिद्ध होता है—

अथ शरस्य स्पष्टीकरणमाह—

सत्रिराशिग्रहद्युज्यानिघ्नास्त्रिज्योद्धृतः शरः।
स्फुटोऽसौ क्रान्तिसंस्कारे दृक्कर्मण्यक्षजे तथा ॥ १०५ ॥

अथ संक्षिप्तो गौणप्रकारः। मुख्यस्तु पूर्वं व्याख्यात एव। तथापीह युक्तिमात्रमुच्यते। विपुवदवृत्तात्क्रान्तिर्ध्रुवाभिमुखी। क्रान्त्यग्राच्छरः कदम्बाभिमुखः। कथं तेन तिर्यक्स्थेन संस्कार्या। अतः क्रान्त्यग्रे यद्द्युज्यावृत्तं तस्य शराग्रस्य च यदन्तरमृजु तेन संस्कृता सती स्फुटा भवति। तच्चान्तरं कोटिरूपम्। शरः कर्णरूपः। तद्ग्रान्तरपदं द्युज्यावृत्ते भुजः। एतत्त्र्यस्रं दिग्वलनजक्षेत्रसम्भवम्। तत्र सत्रिराशिग्रहक्रान्तिः कदम्बध्रुवसूत्रयोरन्तरम्। तज्ज्या भुजः। तद्द्युज्याकोटिस्त्रिज्या कर्णः। यदि त्रिज्ययेयं कोटिस्तदा शरेण केत्युपपन्नम्। कोटिरूपस्यैव शरस्य ध्रुवोन्मुखस्य ज्ययाक्षजं दृक्कर्म कर्तुं युज्यते। शेषोक्तिः स्पष्टार्था।

भाषाभाष्य।

शर तीन राशियुक्त ग्रह की द्युज्या से गुणकर त्रिज्याका भाग देने से स्पष्ट होता है। यह क्रान्तिसंस्कार और आयन आक्षदृक्कर्म में उपयुक्त होता है।

उपपत्ति।

स्पष्टशर का साधन दो प्रकार से गणिताध्याय के ग्रहछायाधिकार में किया गया है। उनमें प्रथम प्रकार सूक्ष्म और दूसरा स्थूल माना है। वही दूसराप्रकार यहां पर दिखलाते हैं।

स्पष्टशर करने का प्रयोजन यह है कि ग्रह अपने शरवश क्रान्तिवृत्त से इधर उधर रहता है। और ग्रहकी क्रान्तिध्रुवप्रोतवृत्त में नाडीवृत्त और क्रान्तिवृत्त का इष्टस्थान में अन्तररूप होती है। परन्तु जब ग्रह अपने शराग्र में है उस समय यह अन्तर उसकी वास्तविक क्रान्ति न होगी। इसलिए इस शररूप अन्तर का उक्त दोनों वृत्तों के अन्तररूपक्रान्ति में संस्कार करना उचित हुआ। परन्तु शर कदम्बाभिमुख है उसको ध्रुवाभिमुख क्रान्ति में, विजातीय होने से जोड़ घटाय, नहीं सकते। इसलिए कदम्बवृत्तगत शरका ध्रुववृत्त में परिणामन करते हैं इस परिणामन से ध्रुवप्रोतवृत्त में जो शर होताहै उसी को स्पष्टशर कहते हैं। और कदम्बवृत्तगत शर को मध्यशर कहते हैं। अब इस स्पष्टशर और क्रान्ति का यथासम्भव संस्कार करने से नाडीवृत्त से शराग्र तक ग्रहकी, दक्षिणोत्तर स्पष्ट क्रान्ति होती है। इसी स्पष्टक्रान्तिसाधन के लिए शरको स्पष्ट किया है।

कल्पना किया, न द = नाडीवृत्त, ध = ध्रुवस्थान, दग = क्रान्तिवृत्त और ग = ग्रहस्थान है। गस = मध्यमशर, गक = स्पष्टशर है। स = शराग्रगत ग्रह गकंल और कसगं क्रमसे स्थानीय और बिम्बीय अहोरात्रवृत्त। सक = बिम्बीयभुज सक = कंग = ग्रह भुज। इस प्रकार, सकग और सकंग दिग्वलन—सम्बन्धि त्रिभुज हैं। क्योंकि सगक कोण आयनवलन के समान है। अर्थात् स्पष्टशर कोटि, मध्यमशर कर्ण और दोनों का वर्गमूल द्युज्यावृत्त में भुज। इसी त्रिभुज को वासनाभाष्य में दिग्वलनज त्र्यस्र लिखा है। सगक कोण का मान आयन-वलन के साथ बदलता जायगा। और ९०° के शरमान में स्पष्ट और मध्यम दोनों शर एकही होंगे, अथवा २७०° भुजांश में दोनों एकाकार होंगे।

सगक समकोण त्रिभुज मानने से और सगक कोण का तीन राशियुक्त ग्रह क्रान्तिमान, स्वीकार करने से, क्योंकि सत्रिभ ग्रहक्रान्ति आयनवलन के आसन्न होती है। और सकग = त्रिज्या।

∴ ज्या सकग : कोज्या सगक : : गस : गक;

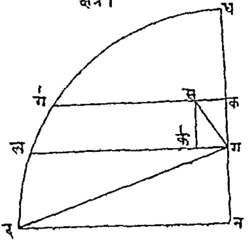
अथवा,

त्रि : यीष्ट : : गस : गक; क्योंकि, सत्रिभग्रहक्रान्ति कोटि वा द्युज्याकी यष्टिसंज्ञा है।

$\therefore \frac{\text{यष्टि} \times \text{गस}}{\text{त्रि}} = \text{गक} = \text{स्पष्टशर}$ । इसलिए 'सनिराशिमह द्युज्यानिघ्न –'

यह प्रकार उपपन्न हुआ † ॥ १० ॥

क्षेत्र ।



अथ ब्रह्मगुप्तादिभिः किं स्पष्टोनोक्त इत्याशङ्क्याह—

ब्रह्मगुप्तादिभिः स्वल्पान्तरत्वान्न कृतः स्फुटः ।
स्थित्यर्धपरिलेखादौ गणितागत एव हि ॥ ११ ॥
नक्षत्राणां स्फुटा एव स्थिरत्वात्पठिताः शराः ।

---

† यह स्पष्टशर का साधन स्थूल है । श्रीबापूदेव शास्त्रीजीने अपने शाधित सिद्धान्तशिरोमणि के, इस श्लोक की टिप्पणी में लिखा है—

' परमाल्पद्युज्यीवाप्तो महद्युज्योद्धृत शर इति पाठ साधु ।'

अर्थात् शर परमाल्पद्युज्या से गुणकर महद्युज्या का भाग देनेसे स्पष्ट होता है । इसप्रकार में केवल यष्टि के साधन में विशेष है । इस यष्टि से शर स्पष्ट करने से उक्त विधि की स्थूलता निकल जाती है । सनिभ ग्रहकी क्रान्ति का था आयनवलनज्या के वर्गका त्रिज्यावर्ग में घटाकर मूल लेनेसे यष्टि होती है परन्तु आयनवलनज्या सदा सनिभग्रहक्रान्तिज्या के समान नहीं होती । यहा स्थूलता है ।

द्यु प द्यु त्रि $= \frac{\text{पद्यु} \times \text{त्रि}}{\text{द्यु}} = \text{यष्टि}$,

त्रि यष्टि मशर $= \frac{\text{यष्टि} \times \text{मशर}}{\text{त्रि}} = \frac{\text{पद्यु} \times \text{त्रि} \times \text{मशर}}{\text{त्रि} \times \text{द्यु}} = \frac{\text{पद्यु} \times \text{मशर}}{\text{द्यु}}$;

इस प्रकार उक्त विधि उपपन्न हुई

दृक्कर्मणायनेनैषां संस्कृताश्च तथा ध्रुवाः ॥ १२ ॥
स्पष्टार्थम्।

भाषाभाष्य।

ब्रह्मगुप्त आदि आचार्यों ने स्वस्थान्तर होनेसे शर को स्पष्ट नहीं किया। और ग्रहण प्रसंग में, स्थित्यर्धसाधन और परिलेख में गणित से सिद्ध शरसे ही उपयोग किया है। नक्षत्रों के स्थिर होने से उनके शर स्पष्टही लिखेहुए हैं। और इन के ध्रुवक आयनदृक्कर्म-संस्कृत लिखेहुये हैं। आयन दृक्कर्म संस्कार से सब ग्रह-नक्षत्र निरक्षदेश के सिद्ध होजाते हैं। फिर उनको स्वदेशीय करने में केवल आक्षदृक्कर्म का संस्कार करना पड़ता है ॥ ११। १२ ॥

अथ सदूषणानुपहसन्नाह—

क्रान्तिसूत्रे शरं केचिन्मन्यन्ते ते कुबुद्धयः।
यद्येवमायनं तैश्च दृक्कर्मान्यैश्च किं कृतम् ॥ १३ ॥
किं स्पष्टे वालने सूत्रे दत्तो मध्यशरश्च तैः।
कोटिवद्वालनात्सूत्रात्स्पर्शमुक्तिशरौ च किम् ॥ १४ ॥
किं च कृत्वा शरं कोटिं स्थित्यर्धानयनं कृतम्।
तादृक् चेत्स शरस्तेन नानुपातेन सिद्ध्यति ॥ १५ ॥

यदि क्रान्तिसूत्रे शरस्तदा ध्रुवाभिमुखः स्यात। निरक्षदेशे क्षितजस्थो ध्रुवाभिमुखशराग्रस्थो ग्रहः क्षितिजं न त्यजति। नामनो न्नामनाभावात्। किं तत्रायनदृक्कर्मणा। अथवाचार्यैः कृतं ये न मन्यन्ते तैरपि कृतं भ्रान्तत्वात्। तथा परिलेखे बिम्बमध्यात् स्पष्टवलनाग्रोपरिगतं सूत्रं क्रान्तिवृत्तप्राची। तस्याः कोटिवच्छरः किं दत्तः। तत्पक्षे ध्रुवसूत्रे नेयः। शेषं स्पष्टम्।

भाषाभाष्य।

कोई ध्रुवप्रोतवृत्त में शरको मानते हैं। परन्तु यह उनकी दुर्बुद्धि है। यदि ध्रुवप्रोतवृत्त मे ही मानें तब ध्रुवाभिमुखशर होने से निरक्षदेश में ग्रह क्षितिज

को नहीं छोड़ेगा । क्योंकि वहां ध्रुव के क्षितिज में रहने से नामन वा उन्नामन का अभाव होगा । यदि इसप्रकार की स्थिति है तब उनके मतसे आयन दृक्कर्म संस्कार क्यों कियाजाता है ? यह संस्कार व्यर्थ होगा । और कदम्बप्रोतवृत्तरूप स्पष्टवलनसूत्र में मध्यशर का दान कोटिरूप क्यों किया । उनके मतसे ध्रुवसूत्र में देना चाहिए । और वलनसूत्र से स्पर्श और मोक्षकालिकशर कोटिरूप क्यों दिये इनको भी ध्रुवसूत्र में देना था और शरको कोटिमानकर स्थित्यर्ध का साधन कैसे किया ? यदि शर ध्रुवप्रोतवृत्त में मानागया तब अनुपात से सिद्ध न होगा ॥ १३ । १५ ॥

अथोत्क्रमज्यानिवृत्तिमाह—

दृष्टिकर्मवलनं च केनचि-
दभ्रान्तितः कथितमुत्क्रमज्यया ।
तत्कृतं तदनुगैस्ततोऽपरै-
रन्धपूरुषपरं परोपमैः ॥ १६ ॥
ब्रह्मगुप्तकृतिरत्र सुन्दरी
सान्यथा तदनुगैर्विचार्यते ।
नोद्धता कृतिरथोद्धतास्तु वा
मामिका सुगणका विचार्यताम् ॥ १७ ॥

अत्र ब्रह्मगुप्तकृतिः सुन्दर्यपि चतुर्वेदाचार्यैरन्यथा व्याख्यात तथात्मन औद्धत्यशङ्कां मत्वोक्तम् । हे सुगणका इयं मामिका कृति नोद्धता । अथ वास्तूद्धता । सम्यग्विचार्यताम् । अत्र रथोद्धता छन्दोनामापि सूचितम् ।

प्रभा ।

केनचिद्भ्रान्तितः दृक्कर्म तथा वलनं चोत्क्रमज्यया साधनाया दिष्टम् । तदनन्तरं तदनुगतैरन्धपूरुपपरं परोपमैरन्धपुरुषवदनालोच्य तन्मार्गगैस्तदानयनमुत्क्रमज्यया कृतमित्यर्थः । ब्राह्मस्फुटसिद्धा

ब्रह्मगुप्ताचार्यकृतमानयनं साधु तथापि तदनुगैश्चतुर्वेदाचार्यैः स्वटीकाया तदानयनमन्यथा व्याख्यातमिति। शेषं भाष्ये स्फुटमेव।

भाषाभाष्य।

किसीने भ्रम से दृक्कर्म और वलन का साधन उत्क्रमज्या से करना कहा उसके बाद दूसरोंने अन्धपरम्परा से उसी मतको मानकर उत्क्रमज्या से साधन किया। परन्तु भला बुरा का विचार न किया। यद्यपि ब्रह्मगुप्त की विधि ठीक है, तोभी चतुर्वेदाचार्य ने उसका अर्थ उलटा किया है। इस विषय मे मेरी साधन विधि कैसी है, हे मुज्ञगणक! उसका विचार आपलोग ही करें॥ १६–१७॥

अथ व्यभिचारमाह—

उत्क्रमज्याविधानेन दृक्कर्मवलनं तथा।
यत्तैरुक्तं न तत्तथ्यं व्यभिचारोऽत्र कथ्यते॥ १८॥

जिनाल्पकाक्षांशगुणत्रिभज्या-
घातो जिनज्याविहृतोऽस्य चापम्।
तेन त्रिभोनेन समः प्रतीच्यां
प्राक् सत्रिभेण द्युचरः कुजे चेत्॥ १६॥

दृङ्मण्डलाकारतयापवृत्तं
तद्याम्यसौम्यं क्षितिजं तदा स्यात्।
क्षिप्तोऽपि खेटः परमेषुणात्र
याम्योत्तरत्वात् क्षितिजं न जह्यात्॥ २०॥

दृक्कर्मसंभूतफलद्वयस्य
नाशो भवेदत्र धनर्णसाम्यात्।
नैवोत्क्रमज्याविधिनात्र साम्यं
दृक्कर्म.कार्यं क्रमजीवयातः॥ २१॥

तथैवनाशो वलनद्वयस्य
साम्याद्दिगन्यत्ववियोजनेन।

न साम्यमत्रोत्क्रमजीवया स्यात्
क्रमज्ययातो वलनं विधेयम् ॥ २२ ॥

यत्र चतुर्विंशतिभागेभ्योल्पोऽक्षस्तत्राक्षज्यात्रिज्ययोर्घातो जिनांशज्याभक्तः। फलस्य यावच्चापं तावतो भुजस्य क्रान्तिज्योत्तराक्षज्यासमा भवतीत्यर्थः। तद्यथा। अक्षांशाः। २०। ३८। एषां ज्या १२१०। अस्यास्त्रिज्यागुणाया जिनज्याहृतायाश्चापं राशिद्वयम् २। अनेन सत्रिभेण समो ग्रहो ५ यदा पूर्वक्षितिजे। अथवा वित्रिभेण ११ समः प्रत्यक्क्षितिजे ग्रहो भवति। तदा वृषभान्तः स्वस्वरितके। अतो दृङ्मण्डलाकारं क्रान्तिवृत्तं स्यात्। अस्य क्रान्तिवृत्तस्य क्षितिजप्रदेशे क्षितिजमेव दक्षिणोत्तरं स्यात्। यतस्तदा कदम्बः क्षितिजे वर्तते। अतः क्षितिजस्थो ग्रहः परमेणापि शरेण कदम्बोन्मुखेन विक्षिप्तः क्षितिजं न त्यजति। क्रान्तिवृत्तग्रहस्थानमेवोदयलग्नं स्यात्। एवं दृक्कर्मफलयोर्धनर्णयोः साम्यं भवति। उत्क्रमज्याविधानेन तयोर्न साम्यं स्यात्। अतः क्रमज्ययैव कर्तव्यम्। एवं तत्रैव वर्तमानस्यार्कस्य वलनाभावः। वलनयोर्भिन्नदिशोः साम्यात्। उत्क्रमज्यया नैव साम्यमित्यर्थः। अथ यत्खस्वरितकगो खाविति श्लोकद्वयं पूर्वं व्याख्यातमेव।

भाषाभाष्य।

जिन पूर्वाचार्यों ने उत्क्रमज्या से दृक्कर्म और वलन सिद्ध किया है। वह ठीक नहीं है। यहां पर उदाहरणद्वारा उस विधि की असंगति दिखलाई जाती है।

जिस स्थान में अक्षांश २४ से कम है, उस देश में अक्षांशज्या को त्रिज्या से गुणकर परमक्रान्तिज्या का भागदेने से जो चापात्मकफल मिले, उस में तीनराशि घटाने से वा जोडने से क्रमसे ग्रह पश्चिम और पूर्वक्षितिज में होगा। उस समय क्रान्तिवृत्त दृङ्मण्डल होगा और उसका दक्षिणोत्तरवृत्त क्षितिज ही होगा। इसलिए ग्रह अपने परमशर से भी क्षितिज से इधर उधर नहीं होसकता। क्योंकि

शर याम्योत्तर होने से, क्रान्तिवृत्तपर लम्बभूत है। इस स्थितिमे, आयन और आँक्षदृक्कर्म आपस में धन ऋण होने से नष्ट होजाते हैं। अर्थात् उक्त संस्कार का अभाव होता है। परन्तु यह अभाव उत्क्रमज्या से सिद्ध नहीं होसकता, इसलिए दृक्कर्मसाधन में सदा क्रमज्या से ही करना चाहिए। इसी प्रकार इस स्थान में आयन और आक्षवलन, भिन्नदिशाओं के तुल्य होते हैं, इसलिए उनका अन्तर करने से नाश होजाताहै पर यदि उत्क्रमज्या से साधन कियाजाय तब उक्त दोनों वलन तुल्य न होंगे। इसलिए वलनका साधन क्रमज्या से करना चाहिए।

उपपत्ति।

जिस देश में अक्षांश चौबीस अंशसे कम है वहा पर ग्रह का भुजांश सिद्ध करते हैं। जिसकी उत्तर क्रान्ति अक्षज्या के समान होवे।

अनुपात किया—

ज्या २४ त्रि अक्षज्या $= \frac{\text{त्रि} \times \text{अक्षज्या}}{\text{ज्या } २४}$; इस फलका चाप जो हो उतने ही भुजांश की क्रान्तिज्या अक्षज्या के समान होती है। अर्थात् उत्तर क्रान्तिज्या जिस दिन अक्षज्या के समान होगी, तब क्रान्तिवृत्त दृङ्मण्डलाकार होगा। उक्तफल में, तीन राशि जोड़ने से पूर्वक्षितिज में और घटाने से पश्चिम क्षितिज में ग्रह होता है इसप्रकार दृङ्मण्डलाकार क्रान्तिवृत्त का क्षितिजही दक्षिणोत्तर होताहै, कदम्ब क्षितिज में कहता है। क्षितिजग्रह अपने शर से इधर उधर चालित भी क्षितिजको नहीं छोड़ता। उस समय क्रान्तिवृत्तगत ग्रहस्थान ही उदयलग्न होताहै। और दोनों दृक्कर्मों का धन, ऋण होने से नाश होजाता है। इसीतरह वलनों का भी नाश होताहै ॥ १८। २२ ॥

अथ तन्मतिभ्रमे कारणमाह—

गर्वाद्रसराभस्यात् परविश्वासात् प्रमादतश्चापि।
मुह्यन्त्यपि मतिमन्तः किं मन्दोऽन्यैस्तथाचोक्तम् ॥ २३ ॥
गणयन्ति नापशब्दं न वृत्तभङ्गं क्षयं न चार्थस्य।
रसिकत्वेनाकुलिता वेश्यापतयः कुकवयश्च ॥ २४ ॥

स्पष्टम्।

इति श्रीभास्करीये गोलभाष्ये मिताक्षर उदयास्तदृक्कर्मवासना।

प्रभा।

प्रथमश्लोकस्तु स्फुट एव। द्वितीयो द्व्यर्थवाची। यथा वेश्यापति पक्षे, अपशब्दो दुर्वाच्यं, वृत्तभङ्गो, दुष्कीर्त्तिः अर्थक्षयो धनक्षयः। रसिकत्वेनाकुलिता व्यग्राः सन्तो न गणयन्तीति सर्वत्रान्वेति। एवं कुकवयोऽपि कवितायामपशब्दं, छन्दोभङ्गमर्थक्षयमर्थापुष्टिं रसिकत्वेनाकुलिता न गणयन्ति। एताः सर्वा अशुद्धीः प्रमादवशेन न विचारयन्तीत्यर्थः।

इति प्रभायां दृक्कर्मवासना।

भाषाभाष्य।

गर्व उत्कट इच्छा, दूसरे का विश्वास और प्रमाद (भ्रम) से बुद्धिमान् लोग भी भटक जाते हैं, मन्दमतियों का तो कहनाही क्या है। कहा भी है कि वेश्यागामि, और कुकवि रसकी आकुलता से भले बुरे का विचार नहीं करते। जैसा वेश्यागामि, वेश्या के कहेहुये दुर्वचन, दुर्यश और द्रव्य के खर्च का विचार नहीं करते। कुकवि अपनी कविता में बुराशब्द, छन्द का भंग और अर्थकी अपुष्टि का विचार नहीं करते। इसप्रकार दूसरे श्लोक का अर्थ है ॥ २३–२४ ॥

भाषाभाष्य में दृक्कर्मवासना समाप्त हुई।

अथ शृङ्गोन्नतिवासना। तत्र शुक्लत्वे कृष्णत्वे च कारणमाह–

तरणिकिरणसङ्गादेष पीयूषपिण्डो
दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति।
तदितरदिशि बाला कुन्तलश्यामलश्री-
र्घट इव निजमूर्त्तिच्छाययैवातपस्थः ॥ १ ॥

सूर्यादधस्थस्य विधोरधस्थ-
मर्धं नृदृश्यं सकलासितं स्यात्।
दर्शेऽथ भार्धान्तरितस्य शुक्लं
तत्पौर्णमास्यां परिवर्तनेन ॥ २ ॥

कक्षाचतुर्थे तरणेर्हि चन्द्र-
कर्णान्तरे तिर्यगिनो यतोऽब्जात्
पादोनपञ्चाष्ट ८५। ४५ लवान्तरेऽतो
दलं नृदृश्यस्य दलस्य शुक्लम् ॥ ३ ॥
उपचितिमुपयाति शौक्ल्यमिन्दो-
स्त्यजत इनं व्रजतश्च मेचकत्वम्।
जलमयजलजस्य गोलकत्वात्
प्रभवति तीक्ष्णविषाणरूपतास्य ॥ ४ ॥
यद्याम्योदक्तपनशशिनोरन्तरं सोऽत्र बाहुः
कोटिस्तूर्ध्वाधरमपि तयोर्यश्च तिर्यक्स कर्णः।
दोर्मूलेऽर्कः शशिदिशि भुजोऽग्राच्च कोटिस्तदग्रे
चन्द्रः कर्णो रविदिगनया दीयते तेन शौक्ल्यम् ॥ ५ ॥

स्पष्टम्। अस्य वासना पूर्वं कथितैव। तथापि किंचिदिहोच्यते। प्राग्वद्भित्तेरुत्तरपार्श्वे चन्द्रकक्षां रविकक्षां च विलिख्य तत्रोर्ध्वरेखां तिर्यग्रेखां च कृत्वा चन्द्रकक्षोर्ध्वरेखासंपाते चन्द्रबिम्बं विलिख्येदं दर्शयेत्। तिर्यग्रेखाया उपरि चन्द्रकक्षाव्यासार्धमितेऽन्तरेऽन्यां तिर्यग्रेखां कुर्यात्। सा रेखा प्रत्यग्रविकक्षायां यत्र लग्ना तत्र स्थित एवार्के ऊर्ध्वरेखावच्छिन्नचन्द्रबिम्बार्धं पश्चिमतः शुक्लं भवति। तस्यार्धमधस्तनं मनुष्यदृश्यम्। तत्रस्थेऽर्के व्यर्केन्दुः सपादचतुर्भागोनं राशित्रयं भवति २।२५।४५ एतावत्येव व्यर्केन्दुभुजे बिम्बार्धं पश्चिमं पूर्वं वा शुक्लं भवितुमर्हति। न त्रिभे।

प्रभा।

एष पीयूषपिण्डोऽमृतपिण्डश्चन्द्रः तरणेः सूर्यस्य यः किरणसङ्घः

संमेलनं तस्माद्दिनकरदिशि यस्यां दिशि चन्द्राद्रविरस्ति तद्दिशि... । चन्द्रिकाभिः स्वद्युतिभिश्चकास्ति शोभते । तदितरदिशि बालाकुन्तलश्यामलश्रीः, कुन्तलःकेशः ‘ चिकुरः कुन्तलो वालः ’ इत्यमरः । बालाकुन्तलस्येव श्यामला कृष्णा श्रीः शोभा यस्य सः । निजमूर्तिच्छायया चन्द्रः । आतपस्थो घट इव चकास्ति । एतदुक्तं भवति । यथा आतपस्थस्य घटस्य दिनकरदिशि यो भागः स उज्ज्वलोऽन्यश्च कृष्णो दृश्यते तथैव चन्द्रस्यापीत्यर्थः । दर्शे सूर्यादधस्थस्य विधोश्चन्द्रमस ऊर्ध्वमर्धं शुक्लं तथाधस्थमर्धं मनुष्यदृश्यं सकलमसितं कृष्णं भवति । अथ भार्धान्तरितस्य षड्राश्यन्तरितस्य पौर्णमास्यां परिवर्तनेनोर्ध्वमर्धमसितं तथाधस्तनं शुक्लं भवति । एवं चन्द्रात् पादोनपञ्चाष्टलवान्तरितस्य खेरितर्यक्स्थत्वान्नृदृश्यस्य दलस्य भागस्य दलमर्धं शुक्लं भवति । इनं रविं त्यजत इन्दोः शौक्ल्यमुपचितिं वृद्धिमुपयाति प्राप्नोति । तथैवेनं व्रजत इन्दोर्मेचकत्वं श्यामलत्वं ‘ कालश्यामलमेचकाः । ’ इत्यमरः । उपचितिमुपयाति । अस्य जलमयजलजस्य, जलमयश्चासौजलजश्च तस्य गोलरूपत्वाच्चीक्षणविषाणरूपता प्रभवति । शृङ्गयोस्तैक्ष्ण्यं रविकरस्पर्शवशेन भवतीत्यर्थः । शेषं स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

यह अमृतपिण्ड चन्द्र सूर्यकिरणों के संयोगसे अपनी चांदनी से, सूर्यकी तरफ प्रकाशित होताहै । और दूसरी तरफ नवीन स्त्री के केशों के तुल्य अपनी काली छाया से , धूप में रक्खे हुए घड़े की भांति शोभित होता है । अर्थात् जैसे धूप में धरे हुए घड़े का सूर्य के संमुखवाला भाग प्रकाशित और दूसरे तरफवाला अपनी परछाईं से काला रहताहै, वैसेही चन्द्र का सूर्य संमुखवाला भाग चमकीला और दूसरा काला रहताहै । अमावास्या को सूर्य के नीचे चन्द्र का मनुष्य को दिखलाई देनेवाला नीचला हिस्सा सब काला होजाता है । और अमाके बाद छ राशि के अन्तर मे, पूर्णिमा को चन्द्रका वही नीचे का भाग चमकीला होजाता है । सूर्य की चौथी कक्षा में , भूमि से चन्द्रकर्ण के तुल्य दूरी पर, चन्द्र ८५ । ४५ अंश के अन्तर में, सूर्य तिरछा होता है । इसलिए यहां पर मनुष्य को चन्द्रबिम्ब जितना दिखलाई देता है उसका चौथाई हिस्सा चमकीला होता है । और सूर्य से जितनाही चन्द्र हटता है उतनाही चन्द्र में शुक्ल बढ़ता है । और

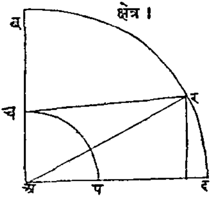
सूर्य के पास होताजाता है तब उसका शुक्ल क्रम से घटता जाता है। जलमय चन्द्र के गोल होने से उसके शृंग (शुक्लवश) नोकदार होते हैं। सूर्य चन्द्र का दक्षिणोत्तर अन्तरभुज, पूर्वापर अन्तर कोटि और तिरछा अन्तर कर्ण होता है। भुज के मूल में सूर्य होता है, भुज चन्द्र की तरफ होता है। भुजके अग्रसे कोटि होती है, जिसके अग्रमें चन्द्र होता है। और चन्द्र से रवि की दिशा में कर्ण होता है। इसी कर्ण से चन्द्र में शुक्ल पहुंचता है।

उपपत्ति।

(१) अमावास्या को सूर्य और चन्द्र एक सूत्र मे नीचे ऊपर होते हैं। इसलिए चन्द्रमा का नीचला भाग जो मनुष्यों को दिखलाई देना चाहिए, वह सब काला हो-जाता है। फिर अमाके बाद जब सूर्य चन्द्र का छ राशिका अन्तर होता है अर्थात् पूर्णिमा को वही चन्द्रका नीचे का भाग प्रकाशित होता है। इसप्रकार प्राचीनों के मत से सूर्य चन्द्रके ९० अंश के अन्तर पर, मनुष्यों को जो चन्द्र का भाग दिखलाई देता है उसके चतुर्थांश में शुक्ल होता है। परन्तु यहापर आचार्य के मतसे ८५। ४५ अंश परही चतुर्थांश शुक्ल होजाता है ९० अश पर नहीं। इसका पूरा साधन गणिताध्याय के शृङ्गोन्नति अधिकार में है। यहापर केवल सक्षेप से स्थिति दिखलाई है।

कल्पना किया, अ भूमि, बरद सूर्यकक्षा, चय चन्द्रकक्षा। अब, आचार्य के मतसे जब रवि 'र' विन्दु में होगा तभी चन्द्रबिम्ब का दृश्य अर्ध शुक्ल होजायगा। और जब रवि 'द' स्थान में होगा अर्थात् ९० पर, उससमय दृश्यार्ध से अधिक शुक्ल होगा। पर प्राचीनों के मतसे यहीं अर्ध विम्ब शुक्ल होताहै। परन्तु वर वृत्त चतुर्थांश से रद चाप के तुल्य कम है।

क्षेत्र।



वर चाप का साधन इसप्रकार है। अचर समकोण त्रिभुज में, अच चन्द्र-कक्षा व्यासार्ध और अर रविकक्षा व्यासार्ध का मान है। इसका योजनात्मक मान सिद्धान्त के अनुसार—

अच=५१५६६;

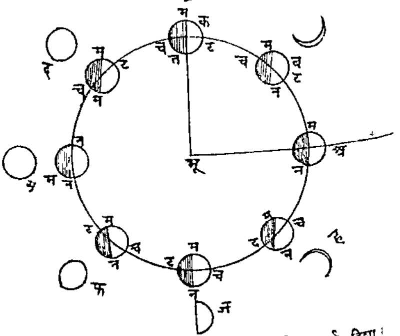
अर=६८९३७७;

$$\text{अब, कोज्याचअर}=\frac{\text{अच}}{\text{अर}}=\frac{५१५६६}{६८९३७७}='०७४८=\text{कोज्या } ८५, ४३$$

∴ घरचाप=८पू।· ४५ स्थूलता से हुआ। इसीलिए 'पादोन पट्काष्टलवान्तरे' माना है।

(२) चन्द्र के शुक्ल का वृद्धिक्षय आकाश में स्पष्ट देखने में आता है। अमावास्या के बाद पूर्णातक जिसप्रकार शुक्ल बढ़ता है उसका क्षेत्र नीचे लिखा है। कल्पना किया, अकदम चन्द्रकक्षा है। 'भू' भूमि और 'स' सूर्य है। और अपनी कक्षामें चन्द्रबिम्ब भ्रमण करता, है।

क्षेत्र।

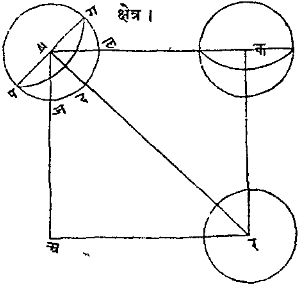


इस क्षेत्र में चन्द्र की आठ स्थिति दिखलाई हैं। मन रेखा सूर्य दिशा रेखा पर लम्बरूप है। इस से चन्द्र का शुक्ल और कृष्ण भाग का अर्ध होता है सब बिम्बों का अर्ध आपस में समान है। और चट रेखा से चन्द्र के उस भाग का अर्ध होता है जो वेधकर्त्ता की तरफ है।

जब चन्द्र अमा को अ बिन्दु में सूर्य के साथ योग करता है तब उसका कृष्णभाग भूमि की तरफ रहता है, इसलिए वेधकर्ता को नहीं दीखता। फिर चार पांच दिनके बाद जब चन्द्र 'ब' स्थान में होगा उससमय पश्चिम दिशा में सूर्यास्त के बाद, लिखाहुआ स्वरूप दिखलाई देगा। जब 'क' स्थान में, सूर्य से ९० पर होगा तब अर्ध-शुक्ल होगा। और 'द' स्थान लिखा रूप होगा और जब 'म' स्थान में, पूर्णा को होगा उस दिन चन्द्रका प्रकाशित भाग भूमिकी तरफ होजायगा और पूरा बिम्ब शुक्ल होगा।

पूर्णा के बाद यह शुक्लका वृद्धिक्षय फिर 'फ' 'ज' 'ह' के क्रमसे क्षीण होकर अन्तमें अमा को 'अ' विन्दु में पहुचकर पूरा विम्ब क्षीण होजाता है। यही अभिप्राय ' उपचितिमुपयाति-' इस श्लोक का है।

(३) इसक्षेत्र में, र=रवि, च=चन्द्रमा, और, अर=भुज, अच=कोटि, चर=कर्ण । अब कर्ण के अग्रपर एक गचप समकोणोत्पादक रेखा की।



इस रेखा से चन्द्र के शुक्लशृङ्ग की दिशा ज्ञात होगी। और जचद भुज समुख कोण गचल कोण के समान होगा । यों सपूर्ण कोण के मान से, उत्तर शृङ्गाग्र उन्नत और दक्षिण नत होताहै। जब चन्द्र 'क' स्थान में होगा तब शृङ्गों की उचाई निचाई न होगी । क्योंकि इस स्थान में कर्णरेखा से शुक्ल खण्डित होजाता है। जब सूर्य चन्द्र से उत्तर है तब उत्तर और दक्षिण होने पर दक्षिण शृङ्ग ऊचा होता है। चन्द्रमा मे कर्णमार्ग से शुक्ल पहुचता है। इसप्रकार ' यथा स्योदकतपनशशिनो -' इत्यादि श्लोक का साराश है गणिताध्याय में यह विषय सविस्तर लिखा है ॥ १-५ ॥

अथाध्यायोपसंहारश्लोकमाह—

ईषदीषदिह मध्यगमादौ
ग्रन्थगौरवभयेन मयोक्ता।
वासना मतिमता सकलोह्या
गोलबोध इदमेव फलं हि ॥ ६ ॥

हि यस्मात् कारणात् गोले ज्ञात इदमेव फलं यदश्रुतापि वासनोह्यते।

इति श्रीभास्करीये सिद्धान्तशिरोमणिगोलभाष्ये मिताक्षरे शृङ्गोन्नतिवासनाध्यायः। ग्रन्थसंख्या १८॥

प्रभा।

इह तन्त्रे मध्यानां गमो ज्ञानं यत्र तदादौ तदादिप्रकरणे मया ग्रन्थगौरवभयेन ईषदीषत् किञ्चित् किञ्चित् संक्षेपेणेत्यर्थः या वासनोक्ता सा मतिमता बुद्धिमता सकला संपूर्णा ज्ञेयेत्यर्थः। संक्षिप्तार्थो विशिष्यावधेय इति तत्त्वम्। हि यस्माद्गोलबोधस्येदमेव फलमिति।

इति प्रभायां शृङ्गोन्नतिवासना।

भाषाभाष्य।

इस ग्रन्थ में मध्यमाधिकार आदि अधिकारों में जो ग्रन्थ गौरव के भय से थोड़ी थोड़ी उपपत्तियां लिखी हैं, उनको बुद्धिमान् लोग स्वयं पूरी तौर से समझ लेवें। क्योंकि गोलके ज्ञानका यही फल है॥ ६॥

भाषाभाष्य में शृङ्गोन्नतिवासना समाप्त हुई।

अथ यन्त्राध्यायो व्याख्यायते। तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह।

दिनगतकालावयवा ज्ञातुमशक्या यतो विना यन्त्रैः।
वक्ष्ये यन्त्राणि ततः स्फुटानि संक्षेपतः कतिचित्॥ १॥
गोलो नाडीवलयं यष्टिः शङ्कुर्घटीचक्रम्।
चापं तुर्यं फलकं धीरेकं पारमार्थिकं यन्त्रम्॥ २॥

स्पष्टम्।

प्रभा।

यतो यस्माद् दिनस्य गताः ये कालावयवास्ते यन्त्रैर्विना (सूक्ष्मत्वात्) ज्ञातुमशक्या भवन्ति। ततस्तस्मात्संक्षेपतः कतिचित्स्फुटानत्य-

भिचारितानि यन्त्राणि वक्ष्ये। शेषं स्फुटम्। ब्रह्मगुप्तस्तु यन्त्रारम्भे 'गोलस्य परिच्छेदः कर्तुं यन्त्रैर्विना यतोऽशक्यः' इति कारणमाह।

भाषाभाष्य।

काल के सूक्ष्म अवयवों का ज्ञान विना यन्त्र के अशक्य है। इसलिए संक्षेप से, कुछ यन्त्रों का वर्णन कहते हैं। उन (यन्त्रों) के नाम ये हैं—गोल, नाडी-वलय, यष्टि, शङ्कु, घटी, चक्र, चाप, तुर्य, फलक और धी। परन्तु इन सब यन्त्रों में एक धी यन्त्र सब से उत्तम है॥ १–२॥

अथ प्रथमं गोलयन्त्रमाह—

अपवृत्तगरविचिह्नं क्षितिजे धृत्वा कुजेन संसक्ते।
नाडीवृत्ते विन्दुं कृत्वा धृत्वाथ जलसमं क्षितिजम्॥ ३॥
रविचिह्नस्यच्छाया पतति कुमध्ये यथा तथा विधृते।
उडुगोले कुजविन्द्वोर्मध्ये नाड्यो ह्युयाताः स्युः॥ ४॥

यथोक्तविधिना खगोलान्तर्भगोलं वद्ध्वा तत्र क्रान्तिवृत्ते मेषादे रारभ्य रविभुक्तराशिभागाद्यं दत्त्वा तदग्रे यच्चिह्नं तदपवृत्तगरवि-चिह्नमुच्यते। भगोलं चालयित्वा रविचिह्नं क्षितिजे धार्यम्। तथा धृते सति क्षितिजं प्राच्यां विषुवन्मण्डले यत्र लग्नं तत्र खटिकया विन्दुः कार्यः। ततः क्षितिजवृत्तं जलसमं यथा भवति तथा गोलयन्त्रं स्थिरं कृत्वा भगोलस्तथा चाल्यो यथा रविचिह्नस्य छाया भूगर्भे पतति। तथा कृते सति विषुवद्वृत्ते क्षितिजविन्द्वोर्मध्ये यावत्यो घटिकास्तावत्यस्तस्मिन् काले दिनगता ज्ञेयाः। अपवृत्ते मेषादेरा रभ्य प्राक् क्षितिजपर्यन्तं यद्राशिभागाद्यं तल्लग्नं ज्ञेयम्। इति गोलयन्त्रम्।

प्रभा।

एवं लल्लोऽपि 'अथ लग्नकालसिद्ध्यै पूर्वापरपारिकरोक्तैर्नवभिः

निर्मापयेद्भगोलं प्राग्विधिना क्रान्तिवृत्तमिह ॥ तस्य बहिश्चखगोलं समवृत्तक्षितिजदक्षिणोत्तरगैः उन्मण्डलेन च तथा ध्रुवयष्ट्या पूर्वं वत्मभुवा ॥ वष्ट्याङ्कयेद्भगोलं प्रागपराणीतराशिं चक्रांशैः कुर्य्याद् दृढं खगोलं श्लथं भगोलं च नलिकाभ्याम् ॥ यस्मिन्नंशे सविता तत्र शलाकां क्षिपेदपवृत्ते नाडीवृत्तस्थां तामुदये क्षितिजाद्रविवशेन ॥ भ्रमयेच्छैश्वत्तद्यथा न केन्द्रं त्यजेच्छलाकाभा । रविचिह्नक्षितिजान्तर मुदितांशास्तृणकुजान्तरा घटिकाः ॥ इति ॥

भाषाभाष्य ।

क्रान्तिवृत्त में जो रविस्थान, अर्थात् मेषादि से भुक्त राश्यादि प्रदेश है उसको क्षितिज में लाकर नाडीवृत्त और क्षितिज के संपात में चिह्न करना । फिर क्षितिज को जलके समान समतल करके गोलयन्त्र को स्थिर करना । फिर भगोल को ऐसा चलाना जिसमें रविचिह्न की छाया भूगर्भ में पड़े । इस स्थिति में विषुवद्वृत्त और क्षितिजविन्दुके बीच में जितनी घड़ी हों वे दिनकी गतघटिका होती हैं । और मेषादि से लेकर पूर्वक्षितिजपर्यन्त क्रान्तिवृत्त में जो राश्यादि अवयव हों वह लग्न है ।

उपपत्ति ।

खगोल के भीतर भगोल बनाकर अर्थात् जो गोल बन्धाधिकार में, क्षितिज, मध्याहवृत्त, समवृत्त, उन्मण्डल आदि खगोलीय स्थिरवृत्त हैं और क्रान्तिवृत्त, अहोरात्रवृत्त, रविमण्डल, ध्रुवप्रोतवृत्त आदि भगोलीयवृत्त हैं इनको राश्यादि से अङ्कित करके यथास्थान चल स्थिर बांधकर दिक्साधन करके गोलको स्थापित करना इसप्रकार आकाशीय, गोलस्थिति दृष्टान्त गोलमें परिणत होती है तब घटिका और लग्न जानने में गोल युक्तिही वासना है ॥ ३-४ ॥

अथ नाडीवलयमाह—

अपवृत्ते कुजलग्ने लग्नं चाथो खगोलनलिकान्तः ।
भूस्थं ध्रुवयष्टिस्थं चक्रं पट्या निजोदयैश्चाङ्क्यम् ॥ ५ ॥
व्यस्तैर्यष्टीभायामुदयेऽर्के न्यस्य नाडिका ज्ञेयाः ।
इष्टच्छायासूर्यान्तरेऽथ लग्नं प्रभायां च ॥ ६ ॥
केनचिदाधारेण ध्रुवाभिमुखकीलकेऽत्र धृते ।
अथवा कीलच्छायातलमध्ये स्युर्नता नाड्यः ॥ ७ ॥

अत्र चारुदारुमयमिष्टप्रमाणं चक्राकारं समं नेम्यां षष्टिघटिकाङ्कं यन्त्रं खगोलमध्यस्थायां ध्रुवयष्टौ पृथ्वीमध्यस्थाने प्रोतं कार्यम्। तथा स्वोदयप्रमाणैर्मेषादिराशिभिरसमैरुभयपार्श्वयोः षड्वर्गेण च बुद्धिमताङ्कनीयम्। तैश्चोदयैर्विलोमैरङ्क्यम्। मेषात् पश्चिमतो वृषो वृषात् पश्चिमतो मिथुन इत्यादि। स चाङ्कनप्रकारः सर्वतोभद्र-यन्त्रे यथा मया पठितः।

वृत्तौ चक्रभागैस्तदन्तर्घटीभिः
स्वदेशोदयैश्चाङ्कयेदस्य पार्श्वम्।
प्रतिस्वोदयं खाग्निभिः क्षेत्रभागै-
स्त्रिभागाभिधैर्द्वादशांशैर्नवांशैः॥
त्रिभागैर्द्विभागैस्तथा स्वस्वनाथैः
प्रयत्नेन षड्वर्गमेवं विभज्य॥

एवं यन्त्रं कृत्वा यस्मिन् दिने तेन कालज्ञानं तस्मिन् दिने ...त्वानौदयिको रविस्तद्भुक्तान् राशीन् मेषादेर्दत्त्वा भुज्यमान-...शेर्भागान् क्षेत्रभागेषु दत्त्वाग्रे रविचिह्नं कार्यम्। तस्मिन् दिने ...दयकाले यष्टिच्छाया या पश्चिमतो गता तस्यां छायायां रवि-...ङ्कं यथा भवति तथा यन्त्रं स्थिरं कार्यम्। ततोऽनन्तरं रविर्यथा ...थोपरि याति तथा तथा छायाधो गच्छति। छायार्कचिह्नयोर्मध्ये ... घटिकास्तथा दिनगता ज्ञेयाः। तथा यष्टिच्छायायां यो राशिर्ये ...क्षेत्रांशास्तल्लग्नं ज्ञेयम्। स च षड्वर्गः। अथवा किं खगोलान्तः...ेन यष्टिप्रोतेन। चक्रान्तरिष्टं प्रमाणं कीलकं प्रोतं कृत्वा स ...ीलको ध्रुवाभिमुखो यथा भवति तथा केनचिदाधारेण चक्रं स्थिरं ...ार्यम्। तथा कृत इष्टकाले कीलच्छाया यत्र लगति तस्य

यन्त्राधश्चिह्नस्य च मध्ये नतनाडिका ज्ञेयाः । इतिनाडीवलयम्।

प्रभा ।

अपवृत्त इत्यादयः श्लोका भाष्ये स्फुटार्थाः। पड्वर्गाङ्कनश्लोके त्रिभागशब्दस्त्रिंशांशवाची ।

भाषाभाष्य ।

अथ नाडीवलय यन्त्र कहते हैं.—काष्ठका चक्राकार यन्त्र बनाकर उसमें साठ घड़ी अङ्कित करके खगोलीय ध्रुवयष्टि में पो देना । और स्वदेशके राश्युदयों से विलोम अर्थात् मेष से पश्चिम वृष, वृष से मिथुन आदि और होरा, द्रेष्काण, नवांश द्वादशांश, त्रिंशांश से अङ्कित करना । फिर जिस दिन वेध करना हो उस दिन और- यिक सूर्य के भुक्तराशियों को क्रान्तिवृत्त में मेषादि से अङ्कित करके वर्तमान राशि के भुक्त अंशों को अङ्कित करना और उनके आगे सूर्यचिह्न कल्पना करना। बाद उदयकाल में यह सूर्यचिह्न जिसप्रकार ध्रुवयष्टि की छाया में हो वैसा यन्त्र को घुमाकर स्थिर करना । सूर्योदय के समय यष्टिच्छाया यन्त्रपाली में पश्चिम की तरफ पड़ती है बाद जैसा जैसा सूर्य ऊंचा होताहै वैसी यष्टिकी छाया यन्त्र- पाली में नीचे की तरफ जाती है मध्याह्न में ऊर्ध्वाधर रूप होती है । इस छाया और रविचिह्न के बीच में जितनी घटी हों वे दिनकी गतघटिका होंगी । और ध्रुव- यष्टिकी छाया में जो राशि हो वही लग्न है ।

* अथवा खगोल के भीतर ध्रुवयष्टि की कल्पना न करके केवल चक्र को ही किसी आधार से स्थिर करके उसके-मध्य में ध्रुवाभिमुख कील गाड़ देना । इसप्रकार इष्टकाल में कीलछाया जहां चक्रकी परिधि में पड़े उस छाया के और चक्रके ठीक अधोगत चिह्न के बीचमें नतघटिका होंगी ॥ ५–७ ॥

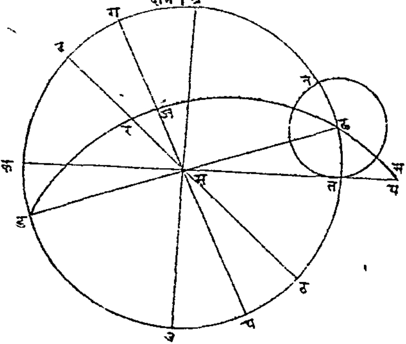
* महाराज सवाई जयसिंह की बनवाई जयपुर की वेधशाला में इसप्रकार का एक नाडीवलययन्त्र है । इस में उत्तर और दक्षिण दोनों गोल की स्थिति दिखलाई है । वर्तमानकाल में राजकी आज्ञा से कतिपय ज्योतिषियों ने इस यन्त्रालय का शोधन किया है । इसलिए उक्त यन्त्र अब शुद्ध दशा में है । इसका कील छोटा और कम मोटा है इसलिए उसकी छाया सम्यक् न होने से ठीक परिधि में स्पष्ट प्रतीत न होने से वेध के अनुपयुक्त है । और घटिकाओं का अङ्क न भी स्थूल होने से सूक्ष्म विभाग नहीं ज्ञात होते । इस में सात आठ पुराने बड़े श्लोक भी लिखे हैं । जिनका इस यन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

नोट।

यही नाडीवलययन्त्र भूमि में रखने से पलभायन्त्र के स्वरूप को प्राप्त होताहै। पलभायन्त्र काल ज्ञान के लिये बहुत उपयोगी है इसलिए उसका सोपपत्तिक साधन यहा लिखाजाता है—

कल्पना किया, 'अइउक'=याम्योत्तरमण्डल। गच=विषुवद्वृत्त। ड, ढ, ध्रुवचिह्न। 'ढ' ध्रुवचिह्न से अक्षांश के तुल्य त्रिज्यासे 'इमन' वृत्त किया। 'इ' समस्थान। 'र' सूर्य। सूर्यगतध्रुवप्रोतवृत्त=डजढम, मसइय=क्षितिजधरातल।

क्षेत्र।



अब इस क्षेत्र में, सूर्यगत 'डरढ' 'य' विन्दु में क्षितिजरेखासे सपात करता है। इसलिए ध्रुवप्रोतवृत्त 'य' विन्दु से समस्थान तक 'इय' भुजहुआ। 'ढइ' अक्षांशकोटि और ध्रुवप्रोतवृत्त में ध्रुवसे क्षितिज तक 'ढय' कर्ण यह चापत्रिभुज हुआ। यहां पर 'ढ' ध्रुवविन्दुगत 'ढग' याम्योत्तरवृत्त और 'ढज' ध्रुववृत्तों का नाडीवृत्तमें परमान्तर 'गज' नतकाल है। 'ढ' कोण का मान है और 'इम' अहोरात्रवृत्त में परिणत नतकाल है। इसप्रकार कोटिकर्ण के सपात से उत्पन्न 'ढ' कोण नतकाल का और 'ढइ' अक्षांश का ज्ञान होने से 'इय' भुज की स्पर्शरेखा का ज्ञान लम्बकोणान्तर्गत गोलीय त्रिकोणमिति के 'चापजाये कोणलग्नभुजन्या कोणमाहति त्रिज्याभक्त छाया कोणसम्मुखभांडुजा॥' इस सिद्धान्त से—

$$\frac{\text{स्पनत} \times \text{ज्या ढइ}}{\text{त्रि}} = \text{स्प इय},$$

फिर त्रिज्यामासार्ध में गणितागत नतकाल की स्पर्शरेखा मिलती है जो अक्षज्या व्यासार्ध वृत्त में; अहवृत्त में त्रिज्यावृत्त—प्रवृत्त के स्पर्श चिह्नसे स्पर्शरेखा खण्डरूप नतकाल कर्णरूपी

•

नोट।

होती है वही त्रिज्यावृत्त में उक्त दोनों वृत्तों के स्पर्शबिन्दु से घटीविभागरूप अथवा (घण्टा) विभागरूप अन्तरांश की स्पर्शरेखा होती है। उसका चाप क्षितिजवृत्त में सूर्यगत ध्रुवप्रोत और उत्तर समस्थान का अन्तरांशरूप 'इय' भुज होगा।

अथवा उक्त ग्रन्थ के ' कोणज्यका कोणलग्नबाहुकोटियाहता। त्रिज्याभक्ता फलं चायकोणान्यहा भवेत् '॥ अनुसार—

$$\frac{\text{ज्या नत}\times\text{कोज्या अक्ष}}{\text{त्रि}}=\text{कोज्या 'य' कोण।}$$

$$\therefore \sqrt{\text{त्रि}^{२}-\text{कोज्या}^{२}\text{ य}}=\text{ज्या य कोण।}$$

और, ज्याय : ज्या द इ :: ज्या द : इय

$$\therefore \frac{\text{ज्या द इ}\times\text{ज्याद}}{\text{ज्या य}}=\text{इ य।}$$

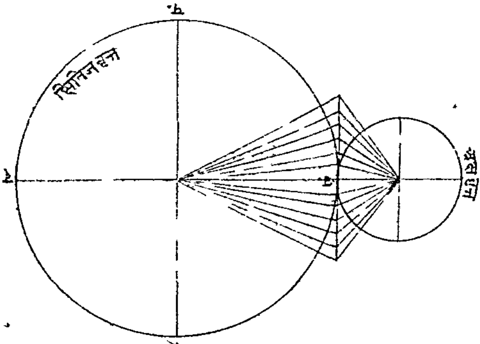
उक्त वासना से निकली रीति।

समतल पाषाण में इष्ट व्यासार्ध से वृत्त बनाकर उसको पूर्वापर और याम्योत्तररेखासे अङ्कित करना। याम्योत्तर—रेखा को उत्तर की तरफ बढ़ाकर उसमें केन्द्र कल्पना करके स्थानीय अक्षांश ज्या के तुल्य व्यासार्ध से एक ऐसा वृत्त बनाना जो पहिले वृत्तके उत्तर बिन्दु को स्पर्श करे। फिर इस वृत्त को भी पूर्वापर, तथा याम्योत्तर—रेखा से अङ्कित करना। इसप्रकार दोनों वृत्तों की याम्योत्तरा एक होजायगी और पूर्वापर रेखा समानान्तरा होंगी। इनके समानान्तर दोनों वृत्तों के स्पर्श बिन्दु में जानेवाली एक स्पर्शरेखा करनी। और छोटे वृत्त में स्पर्शबिन्दु के दोनों तरफ स्थानीय परम दिनमान के आधे के तुल्य घड़ी, अथवा घण्टारूप विभाग करना। वे नतकाल के विभाग होंगे। छोटे वृत्तके केन्द्र से उसके हर एक विभागों में होकर जानेवाली स्पर्श—रेखा तक रेखा करनी। वे छेदन—रेखा होंगी। उनके और स्पर्शरेखाके हर एक संपातबिन्दु से बड़े वृत्त के केन्द्र तक रेखा करनी। और ये रेखा बड़े वृत्तको जिस जिस स्थान में काटें वहां घड़ी अथवा घण्टारूप विभाग जानना। सूक्ष्मकाल जानने के लिए हरएक घड़ी अथवा घण्टा में पल, अथवा मिनट की कल्पना करनी। और बड़े वृत्त के परिधि से बाहर की रेखाओं तथा छोटे वृत्तको मार्जित कर देना और उस बड़े वृत्त की रेखाओं को दृढ़ करना। फिर स्थानीय—अक्षांश स्पर्शरेखा कोटि, त्रिज्या भुज, और छेदन रेखा कर्ण—ऐसा धातुमय दृढ़ क्षेत्र बनवाकर उसे बड़े वृत्तके केन्द्र में इस ढंग से मजबूत जमा देना कि जिसमें अक्षांश स्पर्शरेखा उत्तरबिन्दु के ऊपर ठीक लम्बरूप रहे। लम्ब के अग्र से वृत्त के केन्द्रतक जो छेदनरेखा है उसी को 'ध्रुवाभिमुख—कील' कहते हैं। इस कील की छायाग्र की परिधि में जहां पड़े वहां से पश्चिम की तरफ गत, और पूर्व की तरफ गम्य काल (घटी, अथवा घण्टा) जानना।

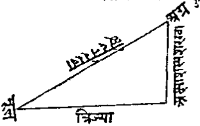
यह यन्त्र १०° अक्षांश छोड़कर सारे भूमण्डल में उपयोग देसकता है। इसी के भिन्नभिन्न जयपुर—यन्त्रशाला में सम्राट् आदि कतिपय यन्त्र शिलशकाकार खड़े हैं। यह यन्त्र धातु का भी बन सकता है।

नोट में।

देत ।



पलभायन्त्रके शङ्कुकाआकार।



अथ घटिकामाह—

घटदलरूपा घटिता घटिका ताम्रीतले पृथुच्छिद्रा ।
द्युनिशनिमज्जनमित्या भक्तं द्युनिशं घटीमानम् ॥ ८ ॥

अत्र दशभिः शुल्वस्य पलैरित्यादि यद् घटीलक्षणं कैश्चित्कृतं तद्युक्तिशून्यं दुर्घटं चेत्येतदुपेक्षितम् । इष्टप्रमाणाकारसुषिरं पात्रं घटीसंज्ञमङ्गीकृतम् । द्युनिशनिमज्जनसंख्यया यदि षट्त्रिंशच्छतानि पानीयपलानि लभ्यन्ते तदैकेन निमज्जनेन किमिति त्रैराशिकम् । इति घटीयन्त्रम् ।

प्रभा ।

घटिता रचिता । द्यु च निशा च द्युनिशम् अहोरात्रः तस्मिन् यन्निमज्जनं घटिकाया जलेनिमग्नत्वं तस्य या मितिः संख्यया मानं तया । 'दशभिः—' इति तल्लस्य प्रथमः प्रकारः । द्वितीयस्तु 'अथवा स्वेच्छाघटितं घटीप्रमाभिः प्रमाधितं भूयः । त्रैराशिक सिद्धंवाङ्गुलंवद्गुरु विपुलरन्धं यत् ॥ इष्टदिनार्धघटीभिः सममथवापं निमज्जति घटी स-षष्ट्या शतैस्त्रिभिर्वा विंशतिलघ्वक्षरासूनाम् ॥ इति ॥

भाषाभाष्य ।

आधे घड़े के आकार का एक ताम्र का घटिकायन्त्र बनाकर, उसके बीच में छेद करना और उसको जलमें छोड़ देना । दिन रात के बीच में जितनी बार वह जल में डूबे उस संख्याका अहोरात्र में भाग देने से एक बार डूबने का काल सिद्ध होगा ।

उपपत्ति ।

यह घटीयन्त्र अहोरात्र में जितनी बार जलमें डूबे उस संख्या को गिनकर अनुपात करना चाहिए । यदि साठ बार डूबे तो घड़ी के डूबने का प्रमाण एक एक घड़ी का होगा । और यदि दिन रात में चौबीस बार डूबे तो अढ़ाई घड़ी । एक घटा हर दफे डूबने का काल होगा । इसप्रकार अनुपात किया—यदि अ-

रात्र की संख्या में, ३६०० पानीय पल मिलते हैं तो एक बार में क्या ? फल घटी के डूबने का समय हुआ +

घटिका में छोटे बड़े छेदके अनुसार जलमें डूबने की संख्या कम ज्यादा होगी। इस घटिकायन्त्र का कालज्ञान के लिए बहुत प्रचार है ॥ ८ ॥

अथ शङ्कुमाह—

समतलमस्तकपरिधिर्भ्रमसिद्धो दन्तिदन्तजः शङ्कुः ।
तच्छायातः प्रोक्तं ज्ञानं दिग्देशकालानाम् ॥ ९ ॥

स्पष्टम् । इति शङ्कुयन्त्रम् ।

प्रभा ।

तलं च मस्तकं च तलमस्तके । समे तलमस्तके यस्य स चासौ परिधिश्च । दन्ती हस्ती तस्य दन्तजः, भ्रमसिद्धः भ्रमो लोहकाष्ठ घटितो यन्त्रविशेषः 'खराद' इति हिन्दीभाषायां प्रसिद्धम् । एवं विधः शङ्कुः स च प्रायो द्वादशाङ्गुलः क्रियते । शेषं स्फुटम् । 'भ्रमसिद्धः सममूलाग्रपरिधिरतिसुगुरुसारदारुमयः । रज्जुव्रणराजीलाञ्छनरतथा समतलं शङ्कुः । इति लल्लः ।

भाषाभाष्य ।

जिसका ऊपर और नीचे समधरातल हो ऐसा खराद पर चढाहुआ हाथी के

+ यहां वासनाभाष्यमें जो आचार्य न 'दशभि शुल्बस्य पलै —' इत्यादि । लिखकर प्राचीन घटीयन्त्रका खण्डन किया है वह लल का कल्पित है ।

दशभि शुल्बस्य पलै पात्र कलशार्धसंनिभ घटितम् ।
हस्तार्ध मुखव्यास समगम्भृत्त दलोच्छ्रायम् ॥
सम्यशमापकत्रयकृतनलयासमसवृत्तयाहेम्न ।
चतुरङ्गुलया विद्ध मज्जति विमले जले नाड्या ॥,

श्रीपति क ये श्लोक हैं ।

'शुल्बस्य दिग्भिर्विहित पलर्यत् षडङ्गुलाच द्विगुणायतास्यम् ।
तदम्भसा षष्टिपलै प्रपूर्य पात्र घनार्धप्रमित घटी स्यात् ॥
सम्यशमाषत्रयनिर्मिता या हेम्न शलाका चतुरङ्गुला स्यात् ।
विद्ध तया प्राकृनमत्र पात्र प्रपूर्यते नाडिकयाम्बुना तत् ॥'

दांत का शङ्कु होता है। यह शङ्कु द्वादशाङ्गुल वा इष्टाङ्गुल का समझना चाहिए। इसको दिक्साधन करके स्थापित करने से, इसकी छाया से दिशा, देश और काल का ज्ञान होता है † ॥ ९ ॥

अथ चक्रमाह—

चक्रं चक्रांशाङ्कं परिधौ श्लथशृङ्खलादिकाधारम्।
धात्री त्रिभ आधारात् कल्प्या भार्धेऽत्र खार्धं च ॥ १० ॥
तन्मध्ये सूक्ष्माक्षं क्षिप्त्वार्काभिमुखनेमिकं धार्यम्।
भूमेरुन्नतभागास्तत्राक्षच्छायया भुक्ताः ॥ ११ ॥
तत्खार्धान्तश्च नता उन्नतलवसंगुणीकृतं द्युदलम्।
द्युदलोन्नतांशभक्तं नाड्यः स्थूलाः परैः प्रोक्ताः ॥ १२ ॥

धातुमयं दारुमयं वा समं चक्रं कृत्वा तन्नेम्यां शृङ्खलादिराधारः शिथिलः कार्यः। चक्रमध्ये सूक्ष्मं सुषिरमाधारात् सुषिरोपरि गामिनी लम्बवदूर्ध्वरेखा कार्या। तन्मत्स्यतोऽन्या तिर्यग्रेखा चात्र

---

† आचार्य के मत से शङ्कु नीचे और ऊपर का भाग गोल है। अर्थात् यों परन्तु ऐसे शङ्कु की छाया वृत्तपालि में मोटी पड़ती है इसलिए सूक्ष्म अवयवों का ज्ञान ठीक नहीं होता। यदि सूच्यग्र शङ्कु बनाकर उपयोग में लायाजाय तो अधिक सुभीता पड़े। ब्रह्मसिद्धान्त में भी लिखा है 'मूलेऽद्यङ्गुलविपुल सूच्यग्रो द्वादशाङ्गुलोच्छ्राय।' जयपुर की वेधशाला में, पुराने शङ्कुयन्त्र का एक पत्थरका बड़ा भारी चौतरा बनाहुआहै। इसके मध्य में शङ्कु के लिए गढ़ा बना है। इसपर जो वृत्त पाषाण का है उसका व्यास प्राय १२ गज और ६ इंच है। वृत्त के चतुर्थांश में २४ भाग हैं। प्रतिभाग में १५। १५ हिस्से हैं। फिर इनमें हर एक में दश दश हिस्से हैं। और इन में भी हर एक में तीन तीन विभाग हैं। अंतिम विभाग में कला और असु समान होते हैं। यह यन्त्र बहुत पुरानाहै। इस के उपयोगमें प्राचीन आचार्योंने हजारों श्लोक लिखे हैं। आश्चर्य है कि इस यन्त्र का सुधार और शङ्कुस्थापन नहीं हुआ। शायद इसका उपयोग न समझा होगा। यदि यह साफ चिकना किया होता तो ज्याखण्ड कल्पनाकरने से इष्टज्या कोटिज्याउत्क्रमज्या आदि सहजही ज्ञातहोती। और इनसे स्पर्शरेखा आदि गणितसे सिद्ध होतीं। गणित करने में मूलग्रहण के प्रसङ्ग में कहीं स्थूलता आजाती है सो भी इसमें दूर होजाती।

गणितागत समच्छाया, कोणच्छाया, मध्यच्छाया, इष्टच्छाया और इनके छायाकर्णकी तुलना और भ्रमण की रीति की आलोचना भी इस यन्त्र से अनायास ज्ञात होजाती।

कार्या । तच्चक्रं परिधौ भगणांशैरङ्कयित्वाधारात्रिभ इति नवति भागान्तरे तिर्यग्रेखा तत्परिधिसंपाते धात्री क्षितिः कल्प्या भार्धेऽन्तर ऊर्द्धरेखा नेमिसंपाते खार्धं कल्प्यम् । सुषिरे सूक्ष्मा शलाका प्रवातव्या। सा चाक्षसंज्ञा । तच्चक्रमर्काभिमुखनेमिकं च यथा भवति तथाधारे धार्यम् तथा धृतेऽक्षस्य छायापरिधौ यत्र लगति तत्कुजचिह्नयोरन्तरे येंऽशास्ते खेरुन्नतांशाः । ये छायाखार्धयोरन्तरे ते नतांशा ज्ञेयाः । एवमत्र नतोन्नतांशज्ञानमेव भवति । अतोऽन्यैर्घटिका अप्यानीताः । तद्यथा । तस्मिन् दिने गणितेन मध्यंदिनोन्नतांशान् दिनार्धमानं च ज्ञात्वानुपातः कृतः । यदि मध्यंदिनोन्नतांशैर्दिनार्धनाड्यो लभ्यन्ते तदैभिः किमित्येवं स्थूला घटिकाः स्युः ।

प्रभा ।

एते श्लोकाः स्फुटार्थाः। 'मध्यदिवसोन्नतांशैर्दिनार्धनाडीर्वदन्ति तु- ...या ये । ते मूर्खास्तच्छाया इष्टच्छायासमा न यतः' इत्यनेन घटीसाधनं ...षितं ब्राह्मस्फुटसिद्धान्ते ।

भाषाभाष्य ।

किसी काष्ठ वा धातु का वृत्ताकार चक्रयन्त्र बनाकर उसकी परिधि तीन सौ साठ ...शोंसे अङ्कित करना । और ढीली जंजीर वा किसी और आधार से रखना । ...र्थात् इस चक्रयन्त्र को किसी जंजीर में लटका देना चाहिए या दो खम्भों के ...च में किसी नलिका में पोकर लटका देना चाहिए, जिससे इष्टदिशामें घूम ...के। आधार से अर्थात् जंजीर में जो यन्त्र का प्रदेश लगा है उससे तीन राशि ... अन्तर अर्थात् यन्त्रगत दक्षिणोत्तर-रेखासंपात में भूमि कल्पना करनी । और ...ह राशिके अन्तर पर अर्थात् ऊर्द्धरेखा और परिधि के संपातमें खमध्य कल्पना ...रना । फिर केन्द्र में एक सूक्ष्म शलाका पोदेनी । बाद में यन्त्रको सूर्यकी तरफ ...सप्रकार करना जिसमें इस शलाका की छाया यन्त्र की परिधि में पड़े । जिस ...न्दु में छाया पड़े, उसके और क्षितिज के बीचमें सूर्य के उन्नतांश और खमध्य

से नतांश होवे हैं। दिनार्ध को उन्नतांश से गुणकर मध्याह्न के नतांशों का भाग देनेसे स्थूल दिनकी गतघड़ी सिद्ध होती हैं। ऐसा और लोगोंने कहा है।

उपपत्ति।

* चक्रयन्त्र से सूर्यका नतांश और उन्नतांश वेधसे ज्ञात होता है। इस यन्त्र से किसप्रकार वेध होता है। यह ऊपर लिखा है कई आचार्यों ने उन्नतांश सिद्ध करके अनुपात से दिनकी गतघड़ी भी सिद्ध की है। जैसा, यदि मध्याह्नसम्बन्धि उन्नतांश में दिनार्धघटी मिलती हैं, तब इष्ट उन्नतांश में क्या ? इसप्रकार इष्ट उन्नतांशमें दिनकी गतघड़ी सिद्ध होंगी। परन्तु यह स्थूल घड़ी हैं क्योंकि, दिनार्ध : दिनार्धोन्नतांश : : इघ : इउन इसप्रकार जो इष्टोन्नतांश होंगे उनकी छाया वेधानीत इष्टकालिक छाया के तुल्य न होगी ॥ १०—१२ ॥

अथ वेधेन ग्रहज्ञानमाह—

पैत्रर्क्षपुष्यान्तिमवारुणाना-
भृक्षद्वयं नेमिगतं यथा स्यात्।
दूरेऽन्तरेऽल्पेषु भखेचरौ वा
तथात्र यन्त्रं सुधिया प्रधार्यम् ॥ १३ ॥

नेमिस्थदृष्ट्याक्षगतं प्रपश्येत्
खेटं च धिष्ण्यस्य च योगताराम्।
नेम्यङ्कयोरक्षयुजोस्तु मध्ये
येंऽशाः स्थिता भध्रुवको युतस्तैः ॥ १४ ॥

प्रत्यक्स्थिते मेऽथ पुरः स्थिते तै-
र्हीनो ध्रुवः स्यात्खचरस्य भुक्तम् ॥

तत्र यन्त्रस्याधो नेम्यां दृष्टिं कृत्वोर्ध्वनेम्या मुक्तर्क्षाणां म भद्वितयं युगपन्नेमिगतं यथा स्यात्तथा यन्त्रं स्थिरं कृत्वा ने धिष्ण्ययोरेकतरं स्थानमङ्कयेत्। ततोऽग्रे पृष्ठतो वा दृष्टिं चालयि

---

* चक्रयन्त्र बहुत पुराना है। इसका नाम सूर्यसिद्धान्त में भी आया है यही चक्रयन्त्र [illegible] के योग से यन्त्रराज के स्वरूप को प्राप्त होता है॥

ग्रहं विध्येत् । ग्रहः प्रायोक्षगतो दृश्यते । अक्षमूलस्य ग्रहस्य चान्तरं शरो ग्रहावधिः । अक्षमूलं नेम्यां यत्र लग्नं दृश्यते तत्स्थानमप्यङ्कयम् । अथ भग्रहाङ्कयोर्मध्ये येंऽशास्तैर्भध्रुवो युतः स्फुटग्रहो भवति । यदा ग्रहात्पश्चिमस्थं नक्षत्रम् । यदा पूर्वस्थं नक्षत्रं तदा भध्रुवो हीनः स्फुटग्रहो भवति । अथवाल्पशरं नक्षत्रं रोहिण्याद्यं ततो दूरेऽन्तरे यदा ग्रहस्तदा तावेवविद्धा प्रोक्तवद् ग्रहज्ञानम् । इति चक्रयन्त्रम् । प्रभा ।

पैत्रर्क्षेति । मघापुष्यरेवतीशततारकाणामर्थादासां योगताराणां शराभावात्क्रान्तिवृत्तधरातलेऽवस्थानात्तथा वेधेन चक्रयन्त्रस्य क्रान्तिवृत्त धरातलगतत्वमिति ज्ञेयम् । अल्प इषुर्यस्य तादृशं यद्भं खेचरश्च तौ । अत्र यथा यथा शराल्पता तथा तथा सूक्ष्मता, इतोऽन्यथाभावे स्थूलता । शेषं भाष्ये स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

मघा, पुष्य, रेवती और शतभिष इन नक्षत्रों मे दो नक्षत्र एक कालमें, जिस प्रकार वेध करने से यन्त्र की नेमि में आवें वैसा यन्त्र स्थिर करना । अथवा जो अल्पशरवाले ग्रह और नक्षत्र हों । वे यन्त्र की नेमि में जिसप्रकार आवे वैसा यन्त्र स्थिर करना । फिर यन्त्र की नेमिगतदृष्टि से नक्षत्र का जो स्थान नेमि मे आवे वहा चिह्न करना । ग्रह का वेधसे जो स्थान सिद्ध हो वहा भी चिह्न करना । इसप्रकार ग्रह और नक्षत्र के चिह्नित स्थानों में जो अश हों उनको नक्षत्र ध्रुवक में जब ग्रहसे नक्षत्र पश्चिम हो तब जोडने और पूर्व हो तब घटाने से ग्रह स्पष्ट होता है । यन्त्रकील जहा नेमि में लगाहो उस स्थान से ग्रहचिह्न तक शर होता है । इसप्रकार चक्रयन्त्र से वेधद्वारा ग्रह का ज्ञान होता है । सबको वेध करके प्रत्येक विषय की प्रतीति करनी चाहिए ॥ १३ । १४ ॥

अथ चापं तुर्यगोलं चाह—

दलीकृतं चक्रमुशन्ति चापं
कोदण्डखण्डं खलु तुर्यगोलम् ॥ १५ ॥

स्पष्टम्। अत्र यन्त्रेषु गोलो गोल एव। नाडीवलयं विषुवद्वृत्तम्। तयोर्घटिकाज्ञाने गोलयुक्तिरेव वासना। सम्यग्ध्रुवाभिमुखयष्टिके गोले धृते यथोक्ताः स्वत एव घटिका ज्ञायन्त इत्यर्थः। यत्तु नाडीवलयं चक्रं कृत्वा यष्ट्यां प्रोतं तत् पञ्चगोङ्कनार्थमेव। यत्तु चक्रं तदृदृङ्मण्डलम्। तत्र नतोन्नतांशज्ञानमेव गोलयुक्त्या भवति। दृङ्मण्डले क्षितिजादुपरि यैर्भागैरविर्भवति तैरेव पश्चिमक्षितिजादधःकीलकच्छाया लगतीत्यर्थः। ग्रहवेधे यद्दृक्क्षेपधिष्ण्यं नेमिस्थं कृत्वा यन्त्रं धृतं तत् क्रान्तिवृत्ताकारवस्थानार्थम्। अतस्तत्रापि गोलयुक्तिरेव वासना। इति चापतुर्ये।

प्रभा।

कोदण्डं धनुः। शेषं स्फुटम्। धनुस्तुरीययन्त्रयोः प्रयोजनमिन प्रतिपादितम्। किंतु तदुद्देशमात्रम्। अतश्चक्रप्रकृतिकत्वाच्चदतिदेशेन प्रयोजनं बोध्यम्।

भाषाभाष्य।

वृत्तका आधा चाप और चापका आधा तुर्य यन्त्र कहाजाता है। यहां तक जो यन्त्र कहे हैं उनका सक्षेप से वासनाभाष्य में फिर स्थिति और उपयोग लिखा है इसकी व्याख्या का कोई विशेष प्रयोजन नहीं है ॥ १५ ॥

अथ फलकयन्त्रार्थमाह—

दृङ्मण्डलेऽत्र स्फुटकाल उक्तः
सुखेन नान्यैर्यतितं मयातः।
सद्गोलयुक्तेर्गणितस्य सारं
स्पष्टं प्रवक्ष्ये फलकाख्ययन्त्रम् ॥ १६ ॥

स्पष्टम्।

प्रभा।

अन्यैराचार्यैः सुखेनात्र दृङ्मण्डलीयोन्नतांशान् विद्ध्वा ग्रहाणां स्फुटकालो नोक्तः। अतः सती समीचीना गोलयुक्तिर्यत्र तादृशस्य गणितस्य सारं फलकाख्ययन्त्रं प्रवक्ष्ये।

भाषाभाष्य।

पूर्वाचार्यों ने सुख से दृङ्मण्डलगत उन्नतांश का वेध करके ग्रहों का स्पष्टकाल नहीं सिद्ध किया। इसलिए हम उत्तम गोल युक्ति का और गणित का सारभूत फलकयन्त्र कहते हैं। अर्थात् इस यन्त्र में हम सब नई युक्ति दिखलावेंगे ॥ १६ ॥

इदानीमभीष्टदेवतानमस्कारपूर्वकमाह—

नित्यं जाड्यतमोहरं सुमनसामुल्लासनं सप्रभं
निष्क्लेशं समयावबोधनविधौ प्रोद्बोधितज्योतिषम्।
सेव्यं मण्डलमध्यगं सुकृतिभिर्यन्त्रं स्फुटं वच्म्यहं
नत्वैतद्गुणमेव देवममलं श्रीभास्करं भास्करः ॥ १७ ॥

वच्मि कथयामि। किम्। यन्त्रम्। किं विशिष्टम्। स्फुटमव्यभिचारि। कः। कर्ताहं भास्करः। किं कृत्वा। नत्वा प्रणिपत्य। कम्। भास्करं सूर्यम्। किं विशिष्टम्। मण्डलमध्यगं सूक्ष्मरूपावस्थानम्। पुनः किं विशिष्टमिति प्रतिविशेषणं संवध्यते। नित्यमविनाशिनम्। तथा जाड्यतमोहरं शैत्यतमोहरम्। तथा सुमनसां कमलादीनामुल्लासनम्। तथा सप्रभं सदीप्तिकम्। तथा निष्क्लेशं निरायासम्। क। समयावबोधनविधौ कालज्ञानविधाने। प्रोद्बोधितज्योतिषमुल्लासिततारकम्। यदेतत्तारकाणां तेजस्तद्रवितेजः संजनितमेवेत्यर्थः। तथा सेव्यमुपास्यम्। कैः। सुकृतिभिः पुण्यकृद्भिः।

अथैतान्येव विशेषणानि यन्त्रे व्याख्यायन्ते। किं विशिष्टं यन्त्रम्। जाड्यतमोहरम्। जाड्यं मौढ्यं तदेव तमो हरतीति जाड्यत-

मोहरम् । कदा । नित्यं प्रत्यहम् । तथा सुमनसां विदुषामुल्लासनम् तथा सप्रभं छायासहितम् । तथा निष्क्लेशं समयाववोधनविधौ अत्र सुखेन कालज्ञानं भवतीत्यर्थः । तथा प्रोद्बोधितज्योतिर्पि मुज्ज्वलीकृतज्योतिः शास्त्रम् । तथा सुकृतिभिः सुगणकैः सेव्यम् तथा मण्डलमध्यगम् । मण्डलं मध्यगं यस्येति मण्डलमध्यगमन्त लिखितवृत्तमित्यर्थः । तथामलमिति ।

प्रभा ।

आचार्येण स्फुटं पक्षद्वयेऽपि व्याख्यातोऽयं श्लोकः ।

भाषाभाष्य ।

इस श्लोक का अर्थ दो प्रकार का है । एक सूर्यपक्ष में दूसरा यन्त्र के । क्रम से दोनों पक्षमें जैसाः–नित्य अविनाशी और प्रतिदिन, शीत और अज्ञाननाशक कमलों को और विद्वान्ज्योतिषियों को आनन्ददायक, शोभा और छायासहित, काल-ज्ञान में क्लेशनाशक, ग्रह नक्षत्र और ज्योतिषशास्त्र के प्रकाशक, पुण्यवान् और ज्योतिषियों से सेवित, मण्डल में सूक्ष्मरूप से वर्तमान और वृत्तसहित, निर्दूषण श्रीसूर्यभगवान् को प्रणाम करके, इन्हीं उक्त लक्षणों से सहित फलकयन्त्र को मैं (भास्कराचार्य) कहता हूं ॥ १७ ॥

इदानीं यन्त्रलक्षणमाह—

कर्तव्यं चतुरस्रकं सुफलकं खाङ्गाङ्गुलैर्विस्तृतं
विस्ताराद्द्विगुणायतं सुगणकेनायाममध्ये तथा ।
आधारः रजधशृङ्खलादिघटितः कार्या च रेखा तत–
स्त्वाधारादवलम्बसूत्रसदृशी सा लम्बरेखोच्यते ॥ १८ ॥

लम्बं नवत्य ९० ङ्गुलकैर्विभज्य
प्रत्यङ्गुलं तिर्यगतः प्रसार्य ।
सूत्राणि तत्रायतसूत्ररेखा
जीवाभिधानाः सुधिया विधेयाः ॥ १९ ॥

आधारतोऽधः खगुणा ३० ङ्गुलेषु
ज्यालम्बयोगे सुषिरं च सूक्ष्मम्।
इष्टप्रमाणा सुषिरे शलाका
क्षेप्याक्षसंज्ञा खलु सा प्रकल्प्या॥ २०॥
षष्ट्यङ्गुलव्यासमतश्च रन्ध्रात्
कृत्वा सुवृत्तं परिधौ तदङ्क्यम्।
षष्ट्या घटीनां भगणांश ३६० कैश्च
प्रत्यंशकं चाम्बुपलैश्च दिग्भिः॥ २१॥
अग्रे सरन्ध्रा तनुपट्टिकैका
षष्ट्यङ्गुला दीर्घतया तथाङ्क्या।

अत्रादौ धातुमयं श्रीपर्ण्यादिदारुमयं वा फलकं चतुरस्रं श्लक्ष्णं समं कर्तव्यम्। तच्च नवत्यङ्गुलविस्तारं द्विगुणविस्तारदैर्घ्यम्। तत्समीपे दैर्घ्यमध्ये तस्याधारः शिथिलः शृङ्खलादिः कार्यः। आधारे धृतं यन्त्रं यथा लम्बमानं स्यात्तथा धृते फलक आधारादधः सूत्रमवलम्बरेखा कार्या। सा च लम्बसंज्ञा। तं लम्बं नवतिभागं कृत्वा भागे भागे तिर्यग्रेखा दीर्घा कार्या। तिर्यक्त्वं तु लम्बभवान्मत्स्यात्। सा रेखा ज्यासंज्ञा ज्ञेया। आधारादधस्त्रिंशदङ्गुलान्तरे या ज्या तस्या लम्बस्य च संपाते सुषिरम्। तत्रेष्टप्रमाणा शलाका क्षेप्या। साक्षसंज्ञा। तस्माद्रन्ध्रात् त्रिंशदङ्गुलेन कर्कटकेन वृत्तरेखा कार्या। सा षष्टि ६० घटिकाभिर्भगणांशकैः षडग्निसंख्यैः ३६० प्रत्यंशं दशभिर्दशभिः पानीयपलैश्चाङ्क्या। अथ ताम्रादिमयी वंशशलाकामयी वा पट्टिका षष्ट्यङ्गुला ६०

दीर्घतया तैरेव फलकाङ्गुलैस्तथैवाङ्किता कार्या। सा पट्टिकार्धाङ्गुल-विस्तृता। एकस्मिन्नग्रेऽङ्गुलविस्तृता कुठाराकारा कार्या। तत्रविस्तार-मध्ये छिद्रं कार्यम्। अक्षप्रोतायाः पट्टिकाया लम्बोपरि धृताया एकं पार्श्वं यथा लम्बरेखां न जहाति तथा सरन्ध्रा कार्येत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

अब फलकयन्त्र का लक्षण कहते हैं:—बुद्धिमान् ज्योतिषी को, फलकयन्त्र चौकोर ९० अङ्गुल चौड़ा और चौड़ाई से दूना लम्बा १८० अङ्गुल बनाना चाहिए। और लम्बाई के बीच में ढीली जंजीर आदि कोई आधार कल्पना करना जिस में यन्त्र लटका रहे और इष्टदिशा में घूम सके। और आधार से एक लम्ब-सूत्र की भांति रेखा करनी, इसको लम्बरेखा कहते हैं। इस लम्बको अङ्गुल के तुल्य ९० विभाग करके प्रतिअङ्गुलों में सूक्ष्म रेखाएं करनी, इन रेखाओं को ज्यारूप समझना चाहिए। आधार से ३०-अङ्गुल पर जहां लम्बरेखा और ज्या का योग हो, वहां पर एक सूक्ष्म छिद्र करके उसमें एक इष्टप्रमाण से कील छोड़देना। इसका नाम अक्ष कल्पना करना चाहिए। फिर इस छिद्र को केन्द्र मान कर, तीस अङ्गुल के व्यासार्ध से एक वृत्त करना। इसकी परिधि को साठ घड़ी तीन सौ साठ अंश और प्रति अंशों को दश पानीय पलों से अङ्कित करना। फि[र] एक छोटी पट्टी, साठ अङ्गुल लम्बी, उक्त विधि के अनुसार अङ्कित करके, ए[क] तरफ छेद करके उक्त कील में पो देना चाहिए।

जैसा कि वासनाभाष्य में लिखा है, यह पट्टी आधा अङ्गुल चौड़ी एक तर[फ] और दूसरी तरफ अङ्गुलभर चौड़ी करना जिसमें कुल्हाड़ी के समान हो। इ[स] तरफ छेद करके अक्ष में ऐसा पोना चाहिए जिसमें उक्त लम्बरेखा पर प[ट्टी] लेजाने पर, इसका एक भाग ठीक लम्बरेखा पर होवे॥ १८-२१॥

इदानीं यन्त्रोपकरणमाह—

यत्खण्डकैः स्फूलचरं पलाद्यं

(१६)

तद्गोकुहस्त्याचरराशिजिनीह॥ २२॥

यत्खण्डकोत्थं चरार्धं पानीयपलात्मकं तस्यैकोनविंशति १

भागोऽत्र चरज्या ज्ञेया। तानि चरखण्डानि दिङ्नागसत्र्यंश गुणे १०। ८। $\frac{३}{२०}$। विनिघ्नी पलप्रभाः स्युश्चरखण्डकानीति। तानि यथा सार्धचतुरङ्गुले ४। ३० पलभादेशे ४५। ३६। १५।

अत्रोपपत्तिः। खण्डकैश्चरसाधनेकथितैव। तच्चरं रूपतश्चरज्यारूपमेवागच्छति। तच्च पानीयपलात्मकम्। अतस्तत्षड्गुणितभस्वात्मकं स्यात्। ततोऽनुपातः। यदि त्रिज्याव्यासार्धे एतावती चरज्या तदा त्रिंशद्व्यासार्धे कियतीति। अत्र त्रिंशच्चरज्याया गुणकस्त्रिज्या हरः। अतः षड्भिस्त्रिंशता च त्रिज्यापवर्तने कृते जात एकोनविंशतिर्हरः १९। रूपं १ गुणः। फलमत्र यन्त्रे चरज्योपपन्नम्।

भाषाभाष्य।

जो चरखण्डों से पलादि स्थूल चर सिद्ध हो उसमें १९ का भाग देने से फल चरज्या के तुल्य होता है।

उपपत्ति।

अब यन्त्रका स्वरूप वर्णन करके, उससे वेध करने के सहायक चर आदि का साधन दिखलाते हैं—चर के साधन मे प्रथम अनुपात यह है,

लज्या ॱ. अज्या : मेषादिक्राज्या ,

अथवा,

१२ पभा :. मेषादिकाज्या , फल कुज्या हुई। फिर अनुपात किया,

धु कुज्या त्रि ; फल चरज्या हुई। इसका चाप चर कलात्मक हुआ। यह विधि है। परन्तु आचार्य ने गणिताध्याय में एक, दो, तीन राशियों के सूक्ष्म चर साधन के लिये जो प्रकार लिखा है, वही यहा भी चर साधन में लिखा है।

जिस स्थान में एक अङ्गुल की पल भा है, वहा १०, ८, ३$\frac{१}{२}$ पलात्मक चर खण्ड होते हैं। इन तीनो खण्डों को पलभा से गुणने से सूक्ष्म चर खण्ड होंगे,

जिस स्थान की पलभा ८ अंगुल से बड़ी नहीं है। अब ये पलात्मक चर छ में गुणने से असुरूप होंगे। यह ३४३८ त्रिज्या में सिद्ध होते हैं। परन्तु फलकयन्त्र के लिये ३० अङ्गुल त्रिज्या में परिणामन करना चाहिये।

३४३८ : १० × ६=६० :: ३० अंगु:=$\frac{६० \times ३०}{३४३८}$=फलकयन्त्र में एक राशि सम्बन्धि चर होगा। परन्तु, उक्तरूप में, १० को ६ × ३०=१८० से गुण कर ३४३८ के भाग में, त्रिज्या का अपवर्तन देने से हर स्थान में १६ हुये और गुणक स्थान में रूप १ हुआ। इसलिये 'यत्खण्डकैः स्थूल चरं पलाद्यम्-' यह प्रकार उपपन्न हुआ ॥ २२ ॥

इदानीं यष्टिसाधनमाह—

वेदा ४ भवाः ११ शैलभुवो १७ धृतिश्च १८
विश्वे १३ च बाणाः पलकर्णनिघ्नाः।
अर्कोद्धृताः स्युः क्रमशः स्वदेशे
राश्यर्धलभ्यानि हि खण्डकानि ॥ २३ ॥
तैः क्रान्तिपाताढ्यरवेर्भुजज्या
षष्ट्युद्धृताक्षश्रवणेन युक्ता।
दिग्घ्नी कृताप्ता भवतीह यष्टिः
सा पट्टिकायां सुषिरात्प्रदेया ॥ २४ ॥

४।११।१७।१८।१३।५ एतानि खण्डकानि निरक्षदेशे पलकर्णगुणानि द्वादशभक्तानि स्वदेशे भवन्ति। पञ्चदशभिः पञ्चदशभिर्भागैरेकैकं लभ्यते। एवं तैः खण्डकैः सायनांशार्काद्भुजज्या साध्या। सा षष्टिभक्ता पलकर्णयुता ततो दशगुणा चतुर्भक्ताङ्गुलात्मिका यष्टिर्भवति। सा यष्टिःपट्टिकायां सुषिराद्देया। यष्टिमितान्यङ्गुलानि पट्टिकायां रन्ध्रादारभ्य गणयित्वाग्रे चिह्नं कार्यमित्यर्थः।

अत्रोपपत्तिः। अत्र सुषिरोपरि या ज्या रेखा सा मध्यरेखेति ज्ञातव्या। इह किल दृढमण्डलाकारे धृते यन्त्रे कीलच्छाया यत्र परिधौ लगति तन्मध्यरेखयोरन्तरे य उन्नतभागास्तेषां ज्योन्नतज्या। मध्यरेखाछाययोर्मध्ये यावन्त्यङ्गुलानि तावन्त्यङ्गुलानि नतज्येत्यर्थः सैवेष्टकाले शङ्कुः। स एव पलकर्णगुणो द्वादशहृत इष्टहृतिः स्यात। सा त्रिज्यागुणा द्युज्यया भक्तेष्टान्त्यका स्यात्। अथ त्रिज्योत्तर गोले चरज्यया युता दक्षिणे हीना सत्यन्त्या स्यात्। अन्त्याया इष्टान्त्यकोनाया यच्छेषं सा नतकालस्योत्क्रमज्या स्यात्। अतस्तस्या उत्क्रमचापे कृते नतकालो ज्ञायत इति किल गोले कालज्ञानवासना। इदं धूलीकर्म यन्त्रादेवोपसंहर्तु यष्टिः कृता। तत्र तावद्राश्यर्धे भुजे द्युज्या ३४१८ राशौ ३३६६। सार्धे राशौ ३२६२ राशिद्वये ३२१८। सार्धराशिद्वये ३१६१ राशित्रये ३१४१। यदा किल द्वादशाङ्गुलशङ्कुस्त्रिज्यया गुण्यत आभिर्द्युज्याभिः पृथक् पृथग्विभज्यन्ते तावत् सर्वत्र द्वादशाङ्गुलानि लभ्यन्ते। अधो वेदा इत्यादीनि व्यङ्गुलानि। उपरितनान् द्वादशपरित्यज्यैषामेवान्योऽनुपातः। एतान्येव स्वदेशे पलकर्णगुणानि द्वादशहृतानि पञ्चदशभागलभ्यानि खण्डकानि कल्पितानि। तैः खण्डकैः सायनांशार्कस्य भुजज्या व्यङ्गुलात्मिका भवति। अतः पष्ट्युद्धृता। इयमक्षकर्णेऽतो योज्या। यतो य उपरित्यक्ता द्वादश ते यावदक्षकर्णेन गुण्यन्ते द्वादशाभिर्विभज्यन्ते तावदक्षकर्ण एव लभ्यते। एवं द्वादशाङ्गुलस्यशङ्कोरिष्टान्त्या जाता। इयं धूली कर्मोपसंहारार्थं त्रिंशदङ्गुलस्य शङ्कोः

परिणामिता। तत्रानुपातः। यदि द्वादशाङ्गुलस्येयं तदा त्रिंश-
दङ्गुलस्यकेति। अत्र गुणकभाजकौ त्रिभिरपवर्त्य गुणकस्थाने
दश १० भागहारे चत्वारः ४ कृताः। एवमनुपातेन त्रिंशदङ्गुल-
शङ्कोरिष्टान्त्या यष्टिसंज्ञा भवतीत्यर्थः। यदि त्रिंशच्छङ्कोर्यष्टि-
मितेष्टान्त्या तदेष्टशङ्कोः कियतीति। एवमिष्टशङ्कुर्यष्ट्या गुण्य-
स्त्रिंशता भाज्यः। फलमिष्टान्त्येति स्थितम्। तदर्थं सायष्टिः प-
ट्टिकायां दत्ता तदग्रे चिह्नं च कृतम्।

भाषाभाष्य।

४ । ११ । १७ । १८ । १३ । ५ इन खण्डों को पलकर्ण से गुण कर बारह का भाग देने से, स्वदेश में खण्ड होते हैं। ये खण्ड पन्द्रह पन्द्रह अंश सम्बन्धि होते हैं। अर्थात् सूर्य के भुजांश होते हैं। इन खण्डों से सायन सूर्य की भुजज्या सिद्ध करके, साठ का भाग देना। फिर फलको पलकर्ण में जोड़कर और दशसे गुणकर चार का भाग देना। फल अङ्गुलात्मक यष्टि होगी। इस यष्टि को फलक यन्त्र के बीच के छेद से दान करना। अर्थात् बीच के छेद से यष्टि के तुल्य अङ्गुल पट्टीमें गिनकर उसके आगे चिह्न करना चाहिये।

उपपत्ति।

यष्टि साधन की उपपत्ति इस प्रकार है:—फलकयन्त्र को दृङ्मण्डलाकार रखकर वेध करने पर यन्त्रगत कीलकी छाया परिधि के जिस स्थान में लगे वहां से मध्यरेखा तक ग्रह के उन्नतांश होते हैं। जैसा, नीचे लिखे क्षेत्र में अ केन्द्र से घ अ द मध्यरेखा है, अ ग यष्टि है। अब कल्पना किया कि कील की छाया वृत्ति परिधि में 'क' चिह्न पर लगी, तब 'क घ' सूर्य का उन्नतांश होगा। उसकी ज्या शङ्कु 'कं प' होता है। यह इष्टशङ्कु है, इस से उन्नतकाल साधन के लिये अनुपात किया:—

१२ : प क :: इ श : इष्टदृति. $= \frac{\text{प क} \times \text{इ शं}}{१२}$, इसको त्रिंशामे गुण कर

बुज्या का भाग देने से इष्टान्त्या हुई—

द्यु : $\frac{\text{प क} \times \text{इ शं}}{१२}$: : त्रि: इष्टान्त्या$=\frac{\text{प क} \times \text{इ शं} \times \text{त्रि}}{१२ \times \text{द्यु}}$ ।

यह त्रिज्या व्यासार्ध में इष्टान्त्या सिद्ध हुई । परन्तु यहां तीस ३० अङ्गुलकी त्रिज्या मानकर वृत्त कियागया है, इसलिये इस इष्टान्त्या का उसमें परिणामन के लिये अनुपात किया:—

$$\text{इ शं} : \frac{\text{प क} \times \text{इ शं} \times \text{त्रि}}{१२ \times \text{द्यु}} :: ३० := \frac{\text{पक} \times \text{इ शं} \times \text{त्रि} \times ३०}{१२ \times \text{द्यु} \times \text{इ शं}} ।$$

अब यहां पर यह जानना चाहिये कि निरक्षदेश में पलभा शून्य होने से पलकर्ण द्वादशाङ्गुल ही होता है । इसलिये त्रिज्या और द्वादशके गुणन में निज राशि सम्बन्धि द्युज्याओं का भाग देने से फल सर्वत्र द्वादश अङ्गुलही आता है अत, $\frac{\text{प क} \times \text{इ शं} \times \text{त्रि} \times ३०}{१२ \times \text{द्यु} \times \text{इ शं}} = \frac{\text{प क} \times \text{त्रि} \times ३०}{१२ \times \text{द्यु}}$ इसमें 'प क'=१२के हैं ।

$\therefore \frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{द्यु}}$=१२ अङ्गुल सर्वत्र उपलब्ध होते हैं । इनको छोड़कर व्यङ्गुलात्मक फलका ग्रहण किया, ४ । १५ । ३२ । ५० । ६३ । ६८ इनका अन्तर, ४ । ११ । १७ । १८ । १३ । ५ हुआ । यह फल व्यङ्गुलात्मक है इसलिये साठ का भाग देकर अङ्गुलात्मक कर लिया । ये निरक्ष में राश्यर्ध १५ अंश सम्बन्धि द्युज्या खण्ड होते हैं ।

पहले अनुपात के स्वरूप में $\frac{३०}{\text{द्वा}}$ शेष रहा है । उससे फिर अनुपात किया:—

द्वा : $\frac{३०}{\text{द्वा}}$: : इपक : $=\frac{३० \times \text{इपक}}{\text{द्वा} \times \text{द्वा}}$=स्वदेशीय द्युज्याखण्ड

अर्थात् द्वादशपलकर्णदेश में यदि ४... इत्यादि खण्ड मिलते हैं तब इष्टपलकर्ण देश में क्या ? यों अनुपात करनेसे, $\frac{\text{इपक} \times ४...}{\text{द्वा}}$ 'पलकर्णनिघ्ना अर्कोद्धृताः स्यु. क्रमशः स्वदेशे । ' यह उपपन्न हुआ । अब इन खण्डों पर से सायन सूर्य की भुजज्या सिद्ध करने में ' अंशमितैर्दशाप्तम्–' के स्थान में १५ अंश का भागदेना चाहिये, क्योंकि द्युज्याखण्ड १५ सम्बन्धि सिद्ध किये गये हैं ।

अब पहले जो द्वादश अङ्गुल को छोड़ दिया था उसका भी स्वदेशीय फल में संस्कार करना चाहिये । उसके लिये अनुपातः

द्वा द्वा इ प क : $= \frac{\text{द्वा} \times \text{इ प क}}{\text{द्वा}} =$ इ प क ।

इस 'इ प क, को $\frac{\text{३०} \times \text{इ प क}}{\text{द्वा} \times \text{द्वा}}$ इस पूर्व साधित फल में जोड़ने से हुआ

$\frac{\text{३०} \times \text{इ प क} + \text{द्वा} \times \text{इ प क}}{\text{द्वा} \times \text{द्वा}} = \frac{\text{३०} \times \text{इ प क} + \text{इ प क}}{\text{द्वा}}$, हर अंशोंमें१२का

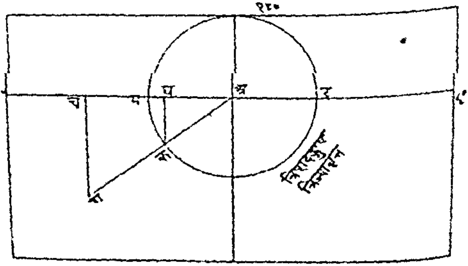
अपवर्तन देने से हुआ $\frac{\text{१०} \times \text{इ प क} + \text{इ प क}}{\text{४}}$ यहा पर '$\times$ इ प क' का

स्वदेशीय फल समझना चाहिये । इसलिये $\frac{\text{१०} (\text{फ} + \text{इ प क})}{\text{४}} =$ यष्टि= ३०

अङ्गुलशङ्कु की इष्टान्त्या । यों 'दिग्घ्नी कृताप्ता भवतीह यष्टि ।' यह उपपन्न हुआ

त्रिज्या में चरज्या को उत्तर गोलमें जोड़ने और दक्षिण गोल में घटाने से अन्त्या होती है । अन्त्या में इस साधित इष्टान्त्या को घटादेने से नतकाल की उत्क्रमज्या होती है । उसका उत्क्रमचाप नतकाल होता है । इस प्रकार फलक यन्त्र से कालज्ञान होताहै ॥ २३ । २४ ॥

फलकयन्त्र ।



इदानीं यष्टिप्रयोजनमाह—

धार्यं तथा फलकयन्त्रमिदं यथैव

तत्पार्श्वयोर्लगति तुल्यमिनस्य तेजः।

छायाक्षजा स्पृशति तत्परिधौ यमंशं

तत्रांशके मतिमता तरणिः प्रकल्प्यः॥ २५॥

अक्षप्रोतां रविलवगतां पट्टिकां न्यस्य तस्मा—

द्यष्टेरग्रादुपरि फलकेऽधश्च गोलक्रमेण।

यत्नाद्देयश्चरदलगुणस्तत्र या ज्या तयात्र

छिन्ने वृत्ते तलगघटिकाः स्युर्नता लम्बकान्ताः॥ २६॥

तद्यन्त्रमाधारेऽवलम्बमानं तथा धार्यं यथा यन्त्रोभयपार्श्वयोस्तुल्यकालमेवार्कतेजो लगति। अर्काभिमुखनेमिकं दृङ्मण्डलाकारमित्यर्थः। तथा धृते सुषिरे प्रोतस्याक्षस्य छाया वृत्तपरिधौ यस्मिन्नंशे लगति तत्रांशेऽर्कः कल्प्यः। अथाक्षप्रोतैव पट्टिका रविचिह्ने स्थाप्या। तथा धृतायां पट्टिकायां यत्पूर्वं कृतं यष्टिचिह्नं तस्मादुपर्युत्तरगोले। दक्षिणगोलेतु तदधश्चरज्या मितान्यङ्गुलानि फलके गणयित्वा तत्र चिह्नं कार्यम्। चिह्नस्थाने या ज्या रेखा सा वृत्ते यत्र लग्ना तस्मादधोवृत्ते लम्बरेखावधेर्यावत्यो घटिकास्तावत्यस्तत्काले नता ज्ञेयाः। तद्विचिह्नं यदि रेखयोर्मध्ये स्थितं तदा तदनुसारिणीं तत्रान्यां रेखां प्रकल्प्य नाड्यो ज्ञेयाः।

अत्रोपपत्तिः। अत्रोत्तरगोले सुषिरादुपरि दक्षिणे तदधश्चरज्यामितान्यङ्गुलानि दत्त्वा तदग्रे चिह्नं कार्यम्। तदन्त्याग्रं ज्ञेयम्। एवं वृत्तस्याधो व्यासार्धं चरज्यया युतोनं कृतं भवति। अतः

सान्त्या। अथ वृत्तपरिधौ यत्र छाया लग्ना तन्मध्यरेखयोरन्तरं किल शङ्कुः। छायोपरि पट्टिकायां न्यस्तायां यत्र यष्टिचिह्नं तन्मध्यरेखयोरन्तरमिष्टान्त्या। यदि त्रिज्याग्रे शङ्कुतुल्यो विप्रकर्षस्तदा यष्ट्यग्रे कियानित्येवं त्रैराशिकं कृतं भवति। सा द्युदलेऽन्त्यायाः शोध्या। अन्त्याग्रं तु चरज्यया मध्यज्याया उत्तरगोल उपरि दक्षिणेऽधो वर्तते। अतो यष्ट्यग्रादुपर्यधश्चरज्या दत्ता। तदग्रे या ज्यारेखा तयावच्छिन्नेऽगोवृत्तखण्डे बाणरूपमन्त्याया अवशेषं भवति। अतस्तदुत्क्रमज्यायाश्चापं नतघटिका भवन्ति। तस्या ज्यारेखायाः सकाशाल्लम्बरेखावधि नतघटिका वृत्ते विगणय्य ग्राह्या इत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

इस फलक यन्त्र को इसप्रकार रखना चाहिये जिस में इस यन्त्र के दोनों तरफ समानकाल में सूर्य का तेज लगै। इस स्थिति में यन्त्रमध्य–कीलकी छाया जहां वृत्तपरिधि में लगै वहां सूर्य कल्पना करना चाहिये। फिर कील में पोई हुई पट्टी को सूर्यचिह्न में स्थिरकरने पर पट्टिका चिह्न जो पूर्व किया गया है उससे उत्तर गोलमें ऊपर और दक्षिण गोलमें नीचे, चरज्या के तुल्य अङ्गुल फलक में गिनकर चिह्न करना। चिह्नपर की ज्यारेखा जहां वृत्त में लगी हो वहां से नीचे लम्बरेखातक जितनी घटी हों, वे उस समय की नतघटिका होती हैं।

उपपत्ति।

उत्तर गोलमें यन्त्र छिद्र से ऊपर दक्षिण गोल में नीचे चरज्याङ्गुलका दान कर के उसके आगे चिह्न करना वह अन्त्या का अग्र होगा। इसप्रकार वृत्तका ति-र्यक व्यासार्ध गोलवश चरज्या से युक्त और वियुक्त होता है इसी कारण वह अन्त्या होगी। और वृत्तपरिधि में जहां छाया लगी है उसका और वृत्तमध्यरेखा का अन्तर इष्टशङ्कु होगा। छाया के ऊपर पट्टी लेजाने से जिस स्थान पर यष्टि चिह्न होगा, उसका और मध्यरेखा का अन्तर इष्टान्त्या होगी। इस स्थिति में वहां पर यदि त्रिज्याग्र में शङ्कुतुल्य अन्तर प्राप्त होता है तो यष्टि के अग्र में क्या? यह अनुपात उत्पन्न होता है।

भक=त्रिज्या। अग=यष्टि । कघ=इष्टशङ्कु । गन्न=इष्टान्त्या ।

∴ त्रि य श इ अ

इष्टान्त्या को अन्त्या में घटा देने से उत्क्रमज्यारूप अन्त्या शेष बचेगा उसका चाप करने से नत घटिका होंगी ॥ २६ ॥

एवं छायादर्शनात्कालज्ञानमुक्त्वेदानीमेतावत्यभीष्टे काले नते क छाया लगिष्यतीत्येतदर्थमाह—

लम्बादेया विनतघटिकास्तज्ज्यकात्तश्चरज्या
व्यस्ता देया भवति च तथा यापरा तत्र मौर्वी ।
धार्य्या पट्टी स्पृशति हि यथा तज्ज्यकां यष्टिचिह्नं
पट्टीस्थाने निपतति तदाऽक्षस्य नूनं प्रभास्य ॥ २७ ॥

अधस्तनाल्लम्बवृत्तसंपातादूर्ध्वं वृत्ते नतघटिका गरयाः । तदग्रे या ज्यारेखा तस्या अथ उत्तरगोले दक्षिणे तु तदुपरिफलके चरज्यामितान्यङ्गुलानि गणयित्वाग्रे चिह्नं कार्यम् । तत्र या ज्या रेखा तस्यां रेखायां पट्टीस्थितयष्टिचिह्नं यथा लगति तथाऽक्ष-भोतैव सा पट्टी धार्य्या पट्टीस्थाने तस्मिन् कालेऽक्षस्य छाया पतिष्यतीति ज्ञेयम् ।

अत्रोपपत्तिः कथितप्रकारवैपरीत्येन । यदस्य यन्त्रस्य नवत्यङ्गुलविस्तारस्तद्द्विगुणं दैर्घ्यमुक्तं तत्सर्वदेशाभिप्रायेण । अथवा यावदेव स्वदेश उपयोगि तावदेव बुद्धिमता कार्यम् । तद्यथा । वृत्तमध्यरन्ध्रादुपरि परमचरज्यामितारेखाद्यधश्चाष्टत्रिंशत् । एवं षट्चत्वारिंश ४६ दङ्गुलानि विस्तारे । परमयष्टिमितान्यङ्गुलानि द्विगुणानि षट्सप्ततिर्दैर्घ्ये । एतावता कुरुक्षेत्रपर्यन्तं यावत् कालज्ञानं स्यात् । इति फलकयन्त्रम् ।

भाषाभाष्य।

नीचले लम्बरेखा और वृत्तसम्पात के ऊपर वृत्त में नतघटिकाओं की गणना करनी और नतघटिकाओं के अग्रगत ज्यारेखा से नीचे उत्तरगोल में, ऊपर दक्षिण गोल में, फलक में चरज्याङ्गुलों की गणना करके उनके आगे चिह्न करना। और वहां जो ज्या रेखा होवे उस पर पट्टीगत यष्टिचिह्न जिस प्रकार आवे उसी प्रकार यन्त्रकील में पोई हुई पट्टी को स्थिर करना। तब उस काल में कील की छाया अवश्य पट्टी में पड़ेगी॥ २७॥

अथ यष्टियन्त्रमाह—

त्रिज्याविष्कम्भार्धवृत्तं कृत्वा दिगङ्कितं तत्र।
दत्त्वाग्रां प्राक् पश्चाद्द्युज्यावृत्तं च तन्मध्ये॥ २८॥
तत्परिधौ षष्ट्यङ्कं यष्टिर्निष्टद्युतिस्ततः केन्द्रे।
त्रिज्याङ्गुला निधेया यष्ट्यग्राग्रान्तरं यावत्॥ २९॥
तावत्या मौर्व्या यद्द्वितीयवृत्ते धनुर्भवेत्तत्र।
दिनगतशेषा नाड्यः प्राक् पश्चात्स्युः क्रमेणैवम्॥ ३०॥

सभायां भूमौ त्रिज्यामिताङ्गुलेन कर्कटेन वृत्तं दिगङ्कितं च कृत्वा तत्र प्राक् पश्चादग्रा गोलवशादुत्तरा दक्षिणा वा ज्यार्धवद्देया अग्राग्रयोर्बद्धं सूत्रमुदयास्तसूत्रमुच्यते। अथ तस्यैव वृत्तस्य मध्ये द्युज्यामितेन कर्कटेनान्यद्वृत्तं कृत्वा नाडीषष्ट्याङ्कनीयम्। ततस्त्रिज्यामिताङ्गुलाया ऋजुयष्टेर्मूलं केन्द्रलग्नं कृत्वाग्रमर्काभिमुखं तथा धार्यं यथा यष्टिर्निष्टच्छाया स्यात्। ततःप्राच्यां दिशि त्रिज्यावृत्तेयदग्राग्रचिह्नं तस्य यष्ट्यग्रस्य च मध्यमृजुशलाकयामित्वा सा शलाका द्युज्यावृत्ते जीवावद्धार्या। न ज्यार्धवत्। ततः शलाकाग्रयोर्मध्ये धनुषि यावत्यो घटिकास्तावत्यस्तदा दिनगता ज्ञेयाः। एवं पश्चि-

माग्राग्रयष्ट्यग्रयोर्मध्ये शलाकया दिनशेषा ज्ञेयाः। दिनशेषोनं दिनमानं दिनगतनाड्यो भवन्ति। यतस्तदैक्यं दिनमानम्।

अत्रोपपत्तिर्गोलयुक्त्यैव। यष्टिस्त्रिज्या। यद्भुवि वृत्तं लिखितं तत्क्षितिजम्। तत्र पूर्वतः पश्चिमतश्चाग्रा। अग्राग्रयोरुपरिगता रेखोदयास्तसूत्रम्। अग्राग्रे उदितो रविर्यथायथाहोरात्रवृत्तगत्योपरि गच्छति तथा तथा केन्द्रे निवेशितमूलाया यष्टेरग्रे भ्राम्यमाणो यष्टेर्नष्टद्युतिःस्यात्। यतो यष्ट्यग्रे रविः। अग्राग्रादर्कं यावदहोरात्रवृत्ते यावत्यो घटिकास्तावत्यो दिनगता भवन्ति। तत्राकाशे द्युज्यावृत्तं लेखितुं नायाति। अतोऽग्राग्रयष्ट्यग्रयोरन्तरं शलाकया मित्वा गृहीतम्। ततो भुवि लिखिते द्युज्यावृत्ते तया शलाकया ज्यारूपया धनुषि घटिकाज्ञानं युक्तियुक्तम्।

भाषाभाष्य।

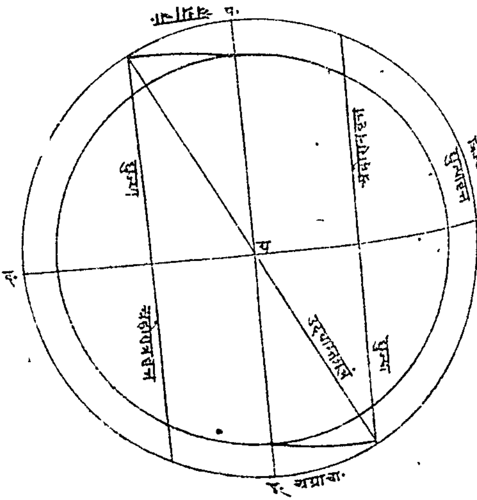
त्रिज्या व्यासार्ध से एक वृत्त बनाकर उसको पूर्वापर और याम्योत्तर रेखा से अङ्कित करना। और पूर्व, पश्चिम में अग्रा का दान करके उनके अग्र में सूत्र बांधना वह उदयास्त सूत्र होता है। और वृत्तमध्य में एक द्युज्या व्यासार्ध से वृत्त बनाकर उसको साठ घड़ी से अङ्कित करना। फिर त्रिज्या तुल्य यष्टि को वृत्त केन्द्र में स्थापित करके, यष्टि के अग्र को सूर्य के सम्मुख इस प्रकार करना जिसमे यष्टि की छाया का अभाव होवे। इस स्थिति में अग्रा के अग्र से यष्टि के अग्र तक किसी वस्तु से माप कर उसको द्युज्यावृत्त में पूर्णज्या के सदृश रखना। पूर्णज्या के चाप में जितनी घड़ी हों वे दिन की गत घड़ी पूर्व कपाल में और दिन शेष घड़ी पश्चिम कपाल में होती हैं।

उपपत्ति।

यहां पर जो त्रिज्यावृत्त किया गया है वह क्षितिजवृत्त है। यष्टि त्रिज्या के तुल्य है। अग्राग्र में सूर्य उदित होकर अहोरात्र में भ्रमण करता है। उस समय केन्द्र में यष्टि रखकर उसको सूर्य के सम्मुख करने पर यष्टि की छाया का

अभाव होता है। क्योंकि यष्टि के अग्र में सूर्य रहता है। अग्राग्र से अहोरात्र वृत्तगत सूर्य तक जो घड़ी होती है वह दिन की गत घड़ी होती है। आकाश में द्युज्यावृत्त नहीं लिख सकते इस कारण भूमि में लिख कर घटिकाओं का ज्ञान किया गया है। यदि एक दिन में द्युज्या स्थिर कल्पना कीजाय तो इस विधि से काल ज्ञान होगा॥ २८। ३०॥

क्षेत्र।



अथान्यदाह—

यष्ट्यग्राल्लम्बो ना ज्ञेया दृग्ज्या नृकेन्द्रयोर्मध्ये ।

नष्टच्युतेर्यष्टेरग्रादधो यावान् लम्बस्तावांस्तस्मिन् काले शङ्कुः। शङ्कुकेन्द्रयोर्मध्ये दृग्ज्या ज्ञेया। शङ्कुप्राच्यपरयोरन्तरं बाहुः। प्रागपराशान्तरं बाहुरिति वक्ष्यति।

भाषाभाष्य।

यष्टि के अग्र से जो लम्ब होगा वह उस काल में शंकु होगा। शंकुमूल और केन्द्र के बीच में दृग्ज्या और शंकु पूर्वापर सूत्र का अन्तर भुज होता है। इस प्रकार क्षेत्र स्थिति होती है।

केवलदिग्ज्ञाने सत्यक्षभामाह—

उदयेऽस्ते यष्ट्यग्रप्राच्यपरामध्यमग्रा स्यात्॥ ३१॥

शङ्कूदयास्तसूत्रान्तरमर्कगुणं नरोद्धृतं पलभा।

उदयकालेऽस्तकाले वा यष्टिर्नष्टच्युतिर्ध्रियमाणा सकलैव भूलग्ना स्यात्। एवं यष्ट्यग्रप्राच्यपरयोरन्तरं त्रिज्यावृत्ते ज्यार्धवत् स्थितम्। साग्रा ज्ञेया। ततः प्राग्वदुदयास्तसूत्रमिष्टकाले शङ्कुश्च शङ्कूदयास्तसूत्रयोरन्तरं द्वादशगुणं शङ्कुना भक्तं पलभा स्यात्।

अत्रोपपत्तिस्त्रैराशिकेन। तद्यथा। यद्यस्य शङ्कोः शङ्कूदयास्तसूत्रयोरन्तरं शङ्कुतलं भुजस्तदा द्वादशाङ्गुलस्य शङ्कोः क इति। फलं विषुवती भवति।

भाषाभाष्य।

उदयकाल वा अस्तकाल में यष्टि के अग्र और प्राच्यपरसूत्र के अन्तर में अग्रा होती है। इष्ट शंकु और उदयास्त सूत्र के अन्तर को बारह से गुणकर शंकु का भाग देने से पलभा होती है।

उपपत्ति।

शंकु और उदयास्त सूत्र का अन्तर शंकुतल होता है। शंकुकोटि, शंकुतल-

भुज, दृग्ज्याकर्ण यह क्षेत्र उत्पन्न होता है। अब यहां पर केवल दिशा को जान कर पलभा के लिये अनुपात किया—

$$\text{शंको : शंकुतल : : द्वाको :} = \frac{\text{शंकुतल} \times \text{द्वा को}}{\text{शंको}} = \text{पलभा।}$$

इस लिए उक्त प्रकार उपपन्न हुआ ॥ २१ ॥

अथोद्यन्तमर्कमदृष्ट्वापि—

भुजयोरेकान्यदिशोरन्तरमैक्यं रविघ्नम् ॥ २२ ॥

शङ्क्वन्तरहृत् पलभा प्रागपराशानरान्तरं वाहुः।

स्पष्टार्थम्।

अत्रोपपत्तिः। यत्र देशे विषुवती ४। तत्रोत्तरगोले प्रथमशङ्कुस्त्रिंशदङ्गुलो दृष्टः। तस्य याम्यो भुजः पञ्चाङ्गुलः। अन्यश्च षट्त्रिंशदङ्गुलः। तस्य याम्यो भुजः सप्ताङ्गुलः। अत्राग्रया विना किल शङ्कुतलं न ज्ञायते। किन्तु भुजाग्रयोर्यावदन्तरं शङ्कुतलयोरपि तावदेवान्तरं भवति। तच्छङ्कुतलं कल्पितम् २। कारण। शङ्क्वन्तरतुल्यस्य शङ्कोः ६। यद्यस्य शङ्कोरिदं शङ्कुतलं तदा द्वादशाङ्गुलस्य किमिति। फलं पलभा ४।

यही बात यहां आचार्य ने पलभा ४ अङ्गुल कल्पना करके उदाहरण से दिखलाया है। और प्रकारान्तर से समीकरण से भी लिखा है ॥ ३२ ॥

इदानीं दिग्देशकालानामज्ञाने केवलार्कदर्शनादेव सर्वमाह—

यष्ट्या शङ्कुत्रितयं ज्ञात्वा वा कथ्यते सर्वम् ॥ ३३ ॥

आद्यन्तशङ्कुशिरसोस्तिर्यक्सूत्रं निबध्य तत्सक्ते।
मध्यमशङ्क्वग्राद्बद्धे सूत्रे भूमिं पृथङ्नेये ॥ ३४ ॥

भूचिह्नद्वितयोपरि सूत्रं तत्रोदयास्तसूत्रं स्यात्।
तत्केन्द्रान्तरमग्रा सूत्रादग्रान्तरे ततः प्राची ॥ ३५ ॥

प्राग्वदतोऽक्षच्छाया तच्छ्रुतिविहृताग्रकार्कसंगुणिता।
क्रान्तिज्या त्रिज्याघ्नी जिनभागज्योद्धृता दोर्ज्या ॥ ३६ ॥

त्रिज्यावृत्तं विलिख्य प्राग्वद्यष्ट्या शङ्कुत्रितयमभीष्टे काले ज्ञात्वा प्रथमतृतीयशङ्क्वग्रयोरेकं सूत्रं तिर्यग्बद्ध्वा मध्यस्थशङ्कोरग्रेऽन्यसूत्रस्यैकमग्रं बद्ध्वा तत्सूत्रं तिर्यक्सूत्रलग्नं यथा भवति तथा प्रथमशङ्क्वभिमुखमधः कर्णगत्या त्रिज्यावृत्तपरिधिं नीत्वा तत्र पूर्वभागे चिह्नं कार्यम्। ततोऽन्यत्सूत्रं तदेव वा तृतीयशङ्क्वभिमुखमनेनैव प्रकारेण नीत्वा वृत्तपश्चिमभागे चिह्नं कार्यम्। तयोश्चिह्नयोरुपरि गतं सूत्रमुदयास्तसूत्रं स्यात्। सूत्रकेन्द्रयोरन्तरमग्रा। उदयास्तसूत्रादग्रातुल्येऽन्तरे केन्द्रोपरि प्राच्यपरा रेखा कार्या। ततः शङ्कूदयास्तसूत्रान्तरमित्यादिना पलभाज्ञानम्। शेषं स्पष्टम्।

अत्र गोलेऽहोरात्रवृत्ते यथोक्तं क्षितिजसंपातयोरुदयास्तसूत्रं बद्ध्वा तस्मिन्नेवाहोरात्रवृत्ते चिह्नत्रयं कृत्वा तानि शङ्क्वग्राणि प्रकल्प्याद्यन्तचिह्नयोस्तिर्यक्सूत्रं च निबध्य मध्यसूत्रात् निर्गमसू-

त्रैसक्रमशःसूत्रं नीयमानमुदयास्तसूत्र एव लगतीत्युपपत्तिर्दर्शनीया। ततोऽग्रादिक्पलभाज्ञानं युक्तियुक्तम्। पलभाज्ञाने तद्देशाज्ञानम्।

प्रभा।

आद्यन्तौ यौ शङ्कू तयोः शिरसी अग्रे तयोः। तत्सके आद्यन्तशङ्कुशिरोबद्धतिर्यक्सूत्रसंलग्ने। भूमि भूलिखितत्रिज्यावृत्तपरिधिम्। तत्केन्द्रान्तरम्। उदयास्तसूत्रवृत्ते केन्द्रयोरन्तरम्। शेषं स्फुटम्।

भाषाभाष्य।

अथवा यष्टि से सूर्य के तीन शकु सिद्ध करके उनसे कालज्ञान करना। आदि और अन्त के शकुओं के अग्र में सूत्र बाधना और इस सूत्र से सलग्न बीच के शकु के अग्र से कर्णाकार दो सूत्र पूर्व और पश्चिम दिशा में भूलेखित त्रिज्यावृत्त परिधि में लेजाकर वहा पर चिह्न करना। इन दोनों चिह्नों के बीच में जो सूत्र होगा वह उदयास्तसूत्र होगा। वृत्तकेन्द्र और उदयास्तसूत्र का दक्षिणोत्तररूप अन्तर अग्रा होती है उदयास्तसूत्र से अग्रा के तुल्य अन्तर पर पूर्वापर रेखा होती है। अब पूर्वरीति से पलभा सिद्ध करके अग्रा को द्वादश से गुणकर पलकर्ण का भाग देने से क्रान्तिज्या होती है। फिर क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणकर परम क्रान्तिज्या का भाग देनेसे सूर्य की भुजज्या होती है।

उपपत्ति।

गोल मे अहोरात्रवृत्त और क्षितिज के सपात मे बँधा हुआ सूत्र उदय स्त सूत्र होगा—अहोरात्रवृत्त मे ही तीन प्रकार के शकु कल्पना करके उनमें सूत्र गया है। और मध्यशकु से जो पूर्व और पश्चिम मे सूत्र गया है वह मे उदयास्तसूत्र में ही लगता है। इस सपात से पूर्वापर सूत्र तक होती है। अग्रा के ज्ञान से, दिशा, पलभा, क्रान्ति आदि का ज्ञान है॥ ३३। ३६॥

कालज्ञानमाह—

तद्धनुराद्ये चरणे वर्षस्यार्कः प्रजायतेऽन्येषु।

भार्द्धाच्च्युतः सभार्द्धो भगणात्पतितोऽब्दचरणानाम्॥३८
ऋतुचिह्नैर्ज्ञानं स्याद्दतुचिह्नान्यग्रतस्ततो वक्ष्ये।
भात्रितयाद्भाभ्रमणं नसदस्माद्दिक्पलाद्यं च ॥ ३८ ॥
छायातोऽग्रातो वा भानुः संक्रान्तिपात एव स्यात्।
पातोनः स्फुटभानुः स्फुटभानूनो भवेत् पातः ॥ ३९ ॥

अत्राग्रातस्तच्छ्रुतिविहृताग्रकार्कसंगुणितेत्यादि विलोमविधिना या स्फुटार्कदोर्ज्या नीता तस्या यद्धनुः स रविर्भवति। एवं वर्षस्य प्रथमचरणे। द्वितीये भार्धाच्च्युतस्तृतीये स भार्धश्चतुर्थे भगणात् पतित इति व्यस्तविधिः। वर्षचरणज्ञानमृतुचिह्नैः।

अत्रान्यैराचार्यैर्भात्रितयाद्दिग्ज्ञानं दिग्ज्ञाने भाभ्रमरेखां चोत्पाद्य केन्द्रभाभ्रमरेखयोर्यद्याम्योत्तरमन्तरं सा मध्यच्छाया। ततः क्रान्तिज्या। विलोमविधिना तस्या रविरक्षश्चैवं ... भङ्गार्थं यत्कृतं तदसत्। कुतः। यद्भात्रितयाद्भाभ्रमणं तदपि तावदसत्। अन्यान्यभाग्रहणादन्यथान्यथा भाभ्रमरेखा स्यादिति निपुणैरवलोक्यम्। भाभ्रमनाशे दिक्पलादिकमपि न घटते। अतो यष्ट्या शंकुत्रितयं ज्ञात्वेत्यादिना महाप्रश्नभङ्गो युक्तः।

अत्र किलाग्रातो रविर्ज्ञातः। योऽत्राग्रातश्छायातो वा रविर्ज्ञायते स संक्रान्तिपात एव स्यात्। अतः पातोनो रविर्भवति। ...ऊन पातो भवतीति युक्तियुक्तम्। ...स्फुटरवेर्मध्यमो मध्यमाद्दहर्गणात् कल्पगतमिति कालज्ञानम्। इति यष्टियन्त्रम्।

भाषाभाष्य।

सूर्यकी भुजज्या जो पूर्व सिद्ध की है उसका धनु करने से वर्ष के प्रथम में स्पष्ट सूर्य होता है। द्वितीय चरण में छः राशिमें घटाने, तीसरे में छः जोड़ने और चौथे चरण में बारह राशि मे घटाने से स्पष्टसूर्य होता है।

चरणों का ज्ञान ऋतुओं से होता है। ऋतुओं का वर्णन आगे कहाजायगा।
* पूर्वाचार्यों ने लिखा है कि द्वादशांगुलशंकु की छाया उस वृत्त में भ्रमण करती है, जो वृत्त उक्त शंकु की तीनप्रकार की छायाओं के अग्रमें उत्पन्न होता है। परन्तु यह अशुद्ध रीति है। इसलिये उक्तवृत्त में जो पूर्व पश्चिम आदिरेखा और अक्षांश आदि सिद्ध होंगे, वे सबभी अशुद्ध होंगे।

छाया अथवा अग्राकीज्या से जो सूर्य सिद्ध होगा वह सायन होगा। इसलिये सूर्य में अयनांश घटादेने से स्पष्ट (निरयण) सूर्य होगा। और सूर्य को घटाने से अयनांश शेष बचेंगे ॥ ३७। ३८ ॥

इदानीं धीयन्त्रं विवक्षुरादौ तत्प्रशंसामाह—

अथ किमु पृथुतन्त्रैर्धीमतो भूरियन्त्रैः
स्वकरकलितयष्टेर्दत्तमूलाग्रदृष्टेः।
न तदविदितमानं वस्तु यद्दृश्यमानं
दिवि भुवि च जलस्थं प्रोच्यतेऽथ स्थलस्थम् ॥ ४० ॥

स्पष्टार्थम्।

प्रभा।

अथ पूर्वोक्तानन्तरम्। धीर्मतिर्विचने यस्यासौ धीमान् तस्य। पृथूनि

---

* यहा पर आचार्य ने लल्ल, श्रीपति आदि आचार्यों न जो मात्रम की रीति लिखी हे उसकी असङ्गति दिखलाकर अपनी विधि लिखी है।

लल्लाचार्य का प्रकार यों है—

'छायात्रयाग्रभवयोर्मुखपुच्छरन्ध्रयोर्योगो यमस्य दिगुदग्युदलग्रभागे।
यत्र ध्रुवो धनपतेर्दिगतो भवेद्वा तन्मत्स्यपुच्छमुखरन्ध्रसिद्धसिद्धौ ॥
यो मत्स्यपुच्छमुखनिर्गतरज्जुयोगस्तस्माद् प्रभानियचिह्नशिरोऽवगाहि।
वृत्तं लिलेख विजहाति हि तस्य रेखां छाया तु लार्थितिमिनामलवशजा स्त्री ॥'

श्रीपति का प्रकार यों है—

'छायात्रयाग्रोद्भवमत्स्यमध्यस्पृक्सूत्रयोर्यत्र युति प्रदेशे।
याम्योत्तरा शङ्कुतलात्ककुप्सा क्रमेण सौम्येतरगोलयोः स्यात् ॥
मत्स्योदरद्वयगसूत्रयुतेश्च तस्या भात्रयस्पृगिति यद्भ्रमणाद वृत्तम्।
छायां न तत्परिधिमुज्झति मध्यशङ्कोर्मध्यस्य भागमिव सानुगति क्वचित् ॥'

परन्तु यह बात परीक्षा से सिद्ध हुई है कि यहाँ की छाया दीर्घवृत्त में भ्रमण करती है।

विस्तृतानि यानि तन्त्राणि शास्त्राणि तैः। भूरीणि प्रचुराणि पूर्वोक्तविविधयन्त्राणि तैः। किमु इति विकल्पे। धीमन्तस्तु स्वल्पोपकरणैरेव सर्वं विदन्ति न हि तेषां कृते विविधयन्त्रकल्पनमुपयोगावहमित्याचार्यः स्वल्पोपकरणं धीयन्त्रं विवक्षुस्तमेव प्रशंसति। अथ स्थलस्थं वस्तु प्रथमं धीयन्त्रेण विद्ध्वोच्यते शेषं स्फुटमेव।

भाषाभाष्य।

बुद्धिमानों को बड़े ग्रन्थ और बहुतसे यन्त्रों से क्या प्रयोजन है? अर्थात् उनको केवल धीयन्त्र से ही सब काम करने चाहिएं। हाथमें लकड़ी लेकर, उसके मूलमें दृष्टि देकर वेध करने से जो वस्तु भूमि आकाश और जलमें दिखलाई देवे उसका मान ज्ञात होजाता है। अब प्रथम भूमि में स्थित वस्तुओं की वेधविधि कहते हैं॥ ४०॥

अत्र प्रश्नः—

वंशस्य मूलं प्रविलोक्य चाग्रं
तत्स्वान्तरं तस्य समुच्छ्रयं च।
यो वेत्ति यष्ट्यैव करस्थयासौ
धीयन्त्रवेदी वद किं न वेत्ति॥ ४१॥

स्पष्टार्थम्।

प्रभा।

तत्स्वान्तरं, वंशस्य निजस्य चान्तरम्। किं न वेत्ति? सकलमेव तस्य विदितं भवति।

भाषाभाष्य।

जो हाथ में यष्टि लेकर बास का मूल और अग्रवेधकर अपना और बास का अन्तर और ऊँचाई जान लेता है, वही वह धीयन्त्रविशारद क्या नहीं जानता? अर्थात् वह सब कुछ जानता है॥ ४१॥

अथ यष्ट्या ध्रुववेधेन पलभामाह—

यष्ट्यग्रमूलसंस्थं विद्धा ध्रुवमग्रमूलयोर्लम्बौ।
बाहुर्लम्बान्तरभूर्लम्बोच्छ्रायान्तरं कोटिः॥ ४२॥
कोटिर्द्वादशगुणिता बाहुविभक्ता पलप्रभा ज्ञेया।

अत्र समायां भूमौ स्थित्वा गणकेन वेधः कर्तव्यः। यष्ट्यग्रमूलसंस्थमिति। यष्टेरग्रे मूले चैकहेलया यथा ध्रुवः संलग्नो दृश्यते तथा यष्टिर्धार्या। ततस्तदग्रान्मूलाच्च लम्बनिपातौ कार्यौ। भुवि लम्बनिपातयोरन्तरे यावन्त्यङ्गुलानि तावान् भुजः। एवं लम्बोच्चयोरन्तरे यावन्ति तावती कोटिः। यष्टिप्रमाणं कर्णः। सर्ववेधेष्वप्ययमेव विधिर्ज्ञेयः। ततोऽनुपातः। यद्यनेन बाहुनैतावती कोटिस्तदा द्वादशाङ्गुलेन किमिति फलं पलभा स्यात्।

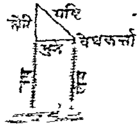
भाषाभाष्य।

यष्टि को ध्रुवाभिमुख इस प्रकार रखना जिसमें यष्टि के अग्र और मूल में ध्रुव एक समय में लगा हुआ दीख पडै। इसप्रकार वेध करके यष्टि के अग्र और मूल में लम्ब छोड़ना। दोनों लम्बों के मध्यकी भूमि भुज, लम्बों का अन्तर कोटि होती है। कोटि को बारह से गुणकर भुज का भाग देने से पलभा होती है।

उपपत्ति।

यष्टि से वेध करने पर उस के अग्र और मूल में जो लम्ब छोडे हैं उनका भूमि में जितने अंगुल अन्तर हों वह भुजरूप है। लम्बों का अन्तर कोटि और यष्टि कर्ण है।

क्षेत्र,



अब अनुपात किया इस भुज में यह कोटि मिलती है तब द्वादशांगुल कोटि में क्या ? फल पलभा होगी ॥ ४२ ॥

इदानीं वंशादिवेधमाह—

विद्ध्वैवं वंशतलं दृष्ट्युच्छ्रायाहताद्वाहोः ॥ ४३ ॥
कोट्याप्तलब्धं ज्ञेयं स्ववंशमध्ये महीमानम् ।
विद्ध्वाथो वंशाग्रं भूमानं कोटिसंगुणं भक्तम् ॥ ४४ ॥
दोष्णा वंशोच्छ्रायो दृष्ट्युच्छ्रायेण संयुतो ज्ञेयः ।

उदाहरणम् ।

पञ्चशक्राङ्गुला १४५ य यष्टिरष्टषष्टिर्दृगुच्छ्रयः ।
षट्करास्तलवेधो दोः कोटिः सप्तदशाङ्गुला ॥
अग्रवेधे रसेशा ११६ दोः कोटिस्तुरगकुञ्जराः ८७ ।
वंशस्य यस्य तन्मानं चात्मवंशान्तरं वद ॥

यष्टिः १४५ । दृगुच्छ्रायः ६८ । तलवेधे बाहुः १४४ । कोटिः १७ । अग्रवेधे बाहुः ११६ । कोटिः ८७ । अत्र तलवेधेऽग्रवेधे वा ध्रुववद्यष्ट्यग्रमूललम्बयोरन्तरभूर्भुजः । लम्बोच्छ्रायान्तरं कोटिः । एवं यथोक्तकरणेन लब्धमात्मवंशान्तरम् ५७६ । वंशोच्चयम् ५०० ।

अत्रोपपत्तिः । आत्मवंशान्तरभूमिर्भुजः । दृगुच्छ्रायः कोटिः । दृष्टिवंशमूलयोर्बद्धं सूत्रं कर्णः । एतत्त्र्यस्रानुसारमेव यष्ट्यावेधेन त्र्यस्रमुत्पद्यते । तत्र लम्बान्तरभूर्भुजः । लम्बोच्चयान्तरं कोटिः । यष्टिः कर्णः । अतोऽनेनानुपातः । यद्यनया कोट्यायं भुजो लभ्यते तदा दृगुच्छ्रायकोट्या क इति । फलमात्मवंशान्तरभूमिः । एवमग्रवेधेऽपि । एवं वंशमूलादुपरि दृष्ट्युच्छ्रायमितेऽन्तरे चिह्नं कल्प्यम् । तद्दृष्ट्योरन्तरे रेखा भूमानमिता स भुजः । चिह्नोपरिस्थं वंश-

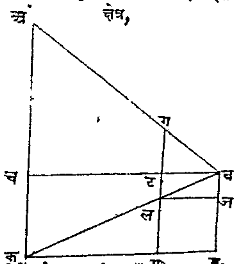
खण्डं कोटिः । दृष्टिवंशाग्रयोर्बद्धं सूत्रं कर्णः । एतत्त्र्यस्रानुसारमेव वेधत्र्यस्रं भवत्यतोऽनुपातः । यदि वेधभुजेन वेधकोटिर्लभ्यते तदा भूमितेन भुजेन केति । फलं चिह्नोपरितनवंशखण्डम् । तद्दृष्ट्युच्छ्रायेणयुतं सकलवेणुप्रमाणम् ।

भाषाभाष्य ।

इसी उक्त वेधविधि के अनुसार वास का मूल वेधकर भुजकोटि का ज्ञानकरके, भुजको वेधकर्ता की दृष्टिकी ऊँचाई से गुणकर कोटिका भागदेने से वेधकर्ता और वंशके मूलका, भूमिमें अन्तर होता है । अब, इसीप्रकार वासके अग्रभाग का (यष्टिसे) वेधकर भुज, कोटिका निश्चय करके, भूगत अन्तर को कोटिसे गुण-कर भुजका भाग देने से फल, बांसकी ऊँचाई होगी । इसमें वेधकर्ता की दृष्टिकी ऊँचाई जोडदेने से, पूरे बासकी ऊँचाई सिद्ध होगी ।

उपपत्ति ।

यहां पर आचार्य ने उदाहरण दिखलाया है । उससे उक्त विधि के अनुसार गणित करने पर बासकी ऊँचाई सहज में ही सिद्ध होजाती है । और उपपत्ति में जो क्षेत्रस्थिति लिखी है उसके अनुसार क्षेत्र का स्वरूप इस प्रकार है:-



यहां पर, अक=बासकी ऊँचाई, मव=दृष्टिकी ऊँचाई, वक=दृष्टि और बांसके मूलमें बँधा सूत्र । प्रथम तलवेध में, मक=भुज मव=कोटि और वक=कर्ण यह स्वाभाविक क्षेत्र होता है । अब यष्टिसे 'यष्ट्यग्रमूलसंस्थं-' इत्यादि उक्त विधिसे वेध करने पर व मा और लप लम्बों का अन्तर वज कोटि लज भुज और लव कर्ण होता है ।

अथ इस क्षेत्र के साथ व म क बड़े क्षेत्रका साजात्य है इसलिये अनुपात किया '—

वज जल यम ' मक। मक भुज हुआ, अर्थात् वेधकर्ता और वास की अन्तर भूमि हुई।

इसी प्रकार अग्रवेध में वास के मूल से दृष्टि की ऊँचाई के तुल्य अन्तर पर चिह्न 'च' करके भूमि के समानान्तर 'च' चिह्न से 'व' तक रेखा करनी, यह भुज होगा। च अ कोटि और व अ कर्ण होगा। अब यष्टि से अग्रवेध करने पर गप और वम लम्बोंकी अन्तर भूमि टव भुज, टग कोटि और वग कर्ण हुआ यह त्रिभुज पहिले त्रिभुज के सजातीय होता है, इसलिये अनुपात किया —

टव टग ' वच चअ; चअ चिह्नके ऊपर वास का टुकडा है, इसमें दृष्टिकी ऊँचाई चक जोडदेने से अक पूरा वास का मान सिद्ध हुआ ॥ ४३। ४४ ॥

अथ केवलाग्रवेधेनाह—

अग्रं विद्ध्वोर्ध्वस्थः पुनरुपविष्टश्च तद्विद्धचेत् ॥ ४५ ॥

निजभुजभक्ते कोटी तदन्तरहृतो दृगौच्यविश्लेषः।

भूमिर्वंशौच्यमतः पृथक् पृथक् पूर्ववज्ज्ञेयम् ॥ ४६ ॥

अत्र प्रश्नः।

ऊर्ध्वस्थस्य गृहादिभिर्व्यवहितस्याप्यग्रमात्रं सखे

वंशस्य प्रगुणस्य यस्य सुसमे देशे समालोक्यते ॥

अत्रैव त्वमवस्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं

मन्ये यन्त्रविदां वरिष्ठपदवी यातोऽसि धीयन्त्रवित् ॥४७॥

उदाहरणम्।

दृष्टयष्ट्योर्ध्वसंस्थेन वंशाग्रं विध्यता भुजः।

दृष्टश्चतुष्करोऽथान्ययष्ट्या खाङ्काङ्गुलः सखे ॥

निविष्टेन तथा कोटिरङ्गुलं वेधयोरपि।

आत्मवंशान्तरं ब्रूहि वंशोच्छ्रायं च वेधवित् ॥

ऊर्ध्ववेधे भुजः ९६। कोटिः १। उपविष्टवेधे भुजः ९०।

कोटिः १। अत्रेष्टौ दृगुच्छ्रायौ कल्पितौ ७२। २४। यथोक्तकरणेन

लब्धं भूमानं हस्ताः २८८० । वंशौच्च्ये च हस्ताः ३३ ।

अत्रोपपत्तिरव्यक्तकल्पनया । तत्रात्मवंशान्तरभूः । या १ । यष्ट्यूर्ध्ववेधभुजेन ९६ अनेनेयं कोटिर्लभ्यते तदा यावत्तावता किमिति । फलं पूर्ववद्दृगुच्छ्रायेण युतं जातं वंशमानम् । या १ रु $\frac{६९१२}{९६}$ । एवमुपविष्टवेधेन च वंशमानम् । या १ रु $\frac{२१६०}{९०}$ । एतौ समाविति समच्छेदीकृत्य छेदगमे शोधनार्थं न्यासः ।

या ९० रु ६२२०८०
या ९६ रु २०७३६० । समीकरणेन लब्धं भूमानाङ्गुलानि ६९१२० । वंशयोरत्रोत्थापितयोरुभयत्रापि वंशमानं सममेवाङ्गुलानि ७९२ । ततश्चैवं क्रियोपपद्यत इत्यर्थः ।

प्रभा ।

प्रश्नपद्ये, व्यवहितस्यार्थादन्तरितस्य, प्रगुणस्य प्रकर्षेण गुणोयत्र तस्य ऋजुवंशस्येत्यर्थः । वरिष्ठपदवीम्, अतिशयेन वर इति विग्रहे 'अतिशायन–' इत्यादिना इष्ठन् । प्रियस्थिरेति वरादेशः । तस्य पदवीं यदि यातोऽसि तदा वद । शेषं स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

अब केवल अग्र वेधसे बांसकी ऊँचाई सिद्ध करने की विधि कहते हैं । पहले खड़े होकर अग्र का वेध यष्टिसे करे फिर उसीका बैठकर वेध करें जो दोनों वेधों से कोटि उत्पन्न हो उसमें अपने अपने भुजोंका भाग देकर जो फल मिले, उसका अन्तर करके दृष्टिके ऊँचाइयों के अन्तर में भाग देना; फल वेधकर्ता और बांसका भूमिमें अन्तर होगा । फिर पहली विधिसे बांसकी ऊँचाई ज्ञात करनी चाहिये ।

प्रश्न :—हे मित्र ! एक समभूमि में ऊंचे सीधे बांसका मूल किसी घर आदिसे छिपा हुआ है, केवल उसका अग्र दिखलाई देता है । यदि तुम यहीं बैठकर उसकी ऊँचाई और यहां से अन्तर बतलाओ, तब, हम बीजगणितज्ञों में तुम को श्रेष्ठ मानें ।

उपपत्ति।

आचार्य के उदाहरणानुसार प्रथम वेधमें भुज ६६। कोटि १। द्वितीय वेधमें भुज ६० कोटि १। दोनों वेधमें दृष्टिकी उँचाई ७२। २४ कल्पनाकी गई है।

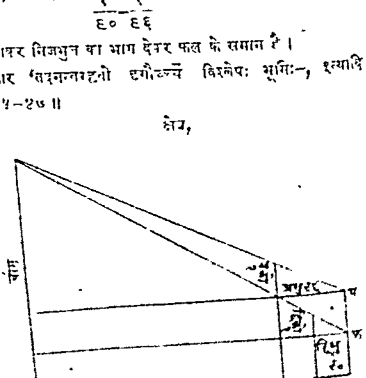
यहां पर, वेधकर्ता और बांसकी अन्तर भूमिका मान=य, कल्पना किया। प्रथम 'प' स्थान से उक्त विधिके अनुसार वेधकरके अनुपात किया:—

$६६ : १ :: य : \frac{य}{६६}$: तब, $\frac{य}{६६}+७२$=बांसकी उँचाई। फिर 'फ' स्थान से वेध करने पर;

$६० : १ :: य : \frac{य}{६०}$: तब, $\frac{य}{६०}+२४$=बांसकी उँचाई। अब, $\frac{य}{६६}+७२=\frac{य}{६०}+२४$। $\frac{य}{६०}-\frac{य}{६६}=४८$, अथवा, $\frac{६ य}{८६४०}=४८$। इसलिये, य=६६,१२० अंगुलात्मक भूमि का मान, वा २८८० हस्तात्मक मान हुआ। यह, $\frac{य}{६०}-\frac{य}{६६}$ $=७२-२४$; अथवा, $य=\frac{७२-२४}{\frac{१}{६०}-\frac{१}{६६}}$, यह, दृष्टिकी उँचाई अन्तर में कोटियों का अन्तर घटाकर निजभुज का भाग देकर फल के समान है।

इसप्रकार 'तदन्तरगतौ दृगौच्च्ये विश्लेषः भूमिः—, इत्यादि उपपन्न हुआ॥ ४५–४७॥

क्षेत्र,



अथ जलान्तर्वेधमाह—

एवं तोयेऽप्यौच्च्यं तत्र दृगौच्योनितं भवति।
किंवा यष्ट्या कोटी दृष्ट्युच्छ्रायौ जलान्तरे बाहू ॥ ४८ ॥

त्र प्रश्नः।

दूरस्थस्य न दूरगस्य यदि वादृष्टस्य दृष्टस्य वा
वंशस्य प्रतिबिम्बितस्य सलिले दृश्याग्रमात्रं सखे।
अत्रैव त्वमवस्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
त्वां सर्वज्ञमतीन्द्रियज्ञमनुजव्याजेन मन्ये भुवि ॥ ४९ ॥

उदाहरणम्।

दृष्टा चेत्त्र्यङ्गुला कोटिर्बाहुश्च चतुरङ्गुलः।
ऊर्ध्वस्थेनोपविष्टेन बाहुरेकादशाङ्गुलः ॥
कोटिरष्टाङ्गुला तोये वंशाग्रं विध्यता सखे।
ऽप्येकहस्तो दृगुच्छ्रायौ वंशौच्च्यं चान्तरं वद ॥

ऊर्ध्ववेधे कोटिः ३। भुजः ४। उपविष्टवेधे कोटिः ८। भुजः ११ दृष्ट्युच्छ्रायौ क्रमेण ७२। २४। लब्धमात्मवंशान्तरं हस्ताः ८८। वंशौच्च्यं हस्ताः ६२। अत्रोर्ध्ववेधेऽन्योपविष्टवेधे चान्या यष्टिरिति।

अत्रोपपत्तिः। अत्र भित्तेः सुसमे पार्श्वे तिर्यग्रेखा दीर्घा कार्या। किल जलसमा भूः। तत्रैकस्मिन्नेकान्तप्रदेश ऊर्ध्वरेखा कार्या। किल वंशः। वंशमूलादधोगामिनी वंशप्रमाणेनान्या रेखा र्या। तत्किल वंशप्रतिबिम्बम्। अथ भूरेखाया उपर्यन्यप्रान्ते च्छ्रितान्या रेखा कार्या। दृगुच्छ्रायात्प्रतिबिम्बवंशाग्रगामिनी रेखा कार्या। सा कर्णरेखा भूरेखायां यत्र लग्ना तत्रस्थे

जले वंशाग्रं द्रष्टा पश्यति । जलादुभयतो द्वे त्र्यस्रे भवतः । तत्र जलवंशमूलयोरन्तरं बाहुः । प्रतिबिम्बवंशः कोटिः । अधः कर्ण खण्डं कर्णः । अन्यदात्मजलान्तरं बाहुः । दृष्ट्युच्छ्रायः कोटिः । ऊर्ध्वकर्णखण्डं कर्णः । एते त्र्यस्रे परस्परानुमते । यष्टिवेधेन ये भुजकोटी ते अप्येतदनुसारे । अत उक्तं एवं तोयेऽपीति । किंत्वत्र यदौच्च्यमागच्छति तद् दृगौच्च्येन हीनं कार्यम् । प्रतिबिम्बितस्या धोमुखत्वाद्दृगौच्च्येन सहागच्छति । अतस्तदूनंकृतमिति सर्व- मुपपन्नम् ।

प्रभा ।

हे सखे ! यदि तस्यान्तरमुच्छ्रयं च वदसि, तदा त्वां भुवि अती- न्द्रियज्ञमनुजव्याजेन, इन्द्रियमतिक्रान्तमिति विग्रहे अत्यादय इति समासः । अतीन्द्रियं जानातीति, अतीन्द्रियज्ञः सचासौ मनुजश्च तद्व्याजेन तदीयच्छलेन भुवि सर्वज्ञं मन्ये ।

भाषा-भाष्य ।

अब जलके बीच मे खड़े हुए बांस या किसी वृक्षकी वेध विधि बतलाते हैं:- इसीप्रकार जल में भी बांस की ऊँचाई सिद्ध होजाती है । यहां पर दृष्टि की ऊँचाई घटाने से यथार्थ ऊँचाई होती है । अथवा यष्टि से वेध करने का प्रयोज नहीं है । यहां पर दृष्टि की ऊँचाई कोटी, जल में प्रतिबिम्बित बांस और वेधक के अन्तर मे दोनों भुज होते हैं ।

प्रश्न —हे मित्र ! दूर या पास, देखे वा न देखे जिस बांसका प्रतिबिम्ब जल पड़ा है उसका केवल अग्रभाग देखकर, यदि तुम यहीं बैठे हुए उसकी ऊँच और अपने से अन्तर बतला दो, तब तुमको पृथ्वीपर मनुष्यरूपमें सर्वज्ञ मानें

उपपत्ति ।

यहां पर आचार्य के उदाहरणानुसार खड़े वेधमें कोटि ३, भुज ४ । बैठे मे कोटि ८, भुज ११ क्रम से दोनों मे दृष्टि की ऊँचाई ७२ । २४ । नीचे लिखे क्षेत्र मे, अक बांस की ऊँचाई, क ग जलमे बांस का प्रति-

बांस के तुल्य गहराई=हय, बग=जल विस्तृति। प=प्रथम वेध स्थान और पं=द्वितीय वेधस्थान। बप और यपं दृष्टिकी ऊँचाई। ग=प्रतिबिम्बित बांस का अग्रभाग है।

प्रथम वेध में अनुपात से दृष्टिकी ऊँचाई,

४ : ३ :: बग : बप : आदि अन्त राशियों का गुणन मध्यराशियो के गुणन के समान होताहै। इसलिए समीकरण से यों हुआ—

$$३ \text{ बग} = ४ \text{ बप वा, बग} = \frac{४ \text{ बप}}{३}।$$

द्वितीय वेध में अनुपात,

$$११ : ८ :: \text{बग} : \text{बप} — ४८ \text{ अङ्गुल;}$$

$$\text{अथवा, } ८ \text{ बग} = ११ \text{ बप} — ५२८, \text{ अथवा, बग} = \frac{११ \text{ बप} - ५२८}{८};$$

$$\text{इस प्रकार, बग} = \frac{४ \text{ बप}}{३} \text{ और बग} = \frac{११ \text{ बप} - ५२८}{८}.$$

$$\therefore \quad \frac{४ \text{ बप}}{३} = \frac{११ \text{ बप} - ५२८}{८} \text{ अथवा, } ४ \text{ बप} = \frac{३३ \text{ बप} - १५८४}{८}$$

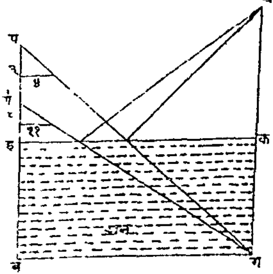
$$\text{अथवा, } ३२ \text{ बप} = ३३ \text{ बप} - १५८४, \text{ वा, बप} = १५८४$$

$\therefore$ १५८४−७२=१५१२ अङ्गुल=६३ हाथ=बांस की ऊँचाई। अब बग=जलकी विस्तृति भी सिद्ध होजाती है जैसा—

$$\text{बग} = \frac{४ \text{ बप}}{३} = \frac{१५८४ \times ४}{३} = २११ \text{ अङ्गुल} = ८८ \text{ हाथ हुए}$$

इसप्रकार समीकरणों के स्वरूपान्तरों से प्रश्नका उत्तर सिद्ध हुआ।

क्षेत्र,



किंवा यष्ट्येत्यस्योदाहरणम्।

षड्क्षैरसैरस्तुल्यान्यङ्गुलान्यथवा क्रमात्।

आत्मतोयान्तरं दृष्ट्वा वंशौच्च्यं चान्तरं वद॥

ऊर्ध्वस्थस्य जलान्तरम् ६६। उपविष्टस्य जलान्तरम् ३३। दृष्टुच्छायौ ७२। २४। लब्धं तदेव भूमानं हस्ताः ८८। वंशौच्च्यं हस्ताः ६३। इति धीयन्त्रम्।

भाषाभाष्य।

इस उदाहरण मे यष्टिसे वेधन करके केवल जलके अन्तरों को जानकर वांसकी उँचाई और अपने से उसका अन्तर सिद्ध किया है।

उपपत्ति।

नीचे लिखे हुए क्षेत्र में उदाहरण के अनुसार क्षेत्र का अवयव कल्पना किया—

कग=६६ अगुल, कद=३३, अक=७२, वक=२४ व=वेधकर्ता और वांसका अन्तर, य=दृष्टिकी उँचाई है। अब, कग : अक=जह : जअ, अथवा, ६६ : ७२= व : य, $= \frac{७२ व}{६६} = \frac{३ व}{४}$; इसलिए $\frac{३ व}{४} - ३$ = वांस की उँचाई।

फिर,

फद : वक : जद : जम, वा, ३३ : २४ : : व : य − ४८ $= \frac{२४ व}{३३} =$

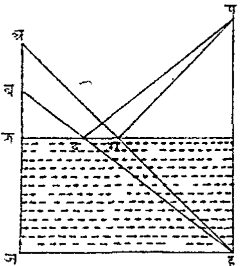
$\frac{८ व}{११}$, तब $\frac{८ व}{११} - १$ = वांसकी ऊँचाई।

$\frac{८ व}{११} - १ = \frac{३ व}{४} - ३$ वा, $२ = \frac{३ व}{४} - \frac{८ व}{११} = \frac{व}{४४}$;

∴ व = ४४ × २ = ८८, तब य $= \frac{३ व}{४} = \frac{३ \times ८८}{४}$ = ३ × २२ = ६६,

वांस की ऊँचाई सिद्ध हुई।

क्षेत्र,



इसप्रकार स्वरूपान्तर से प्रश्न उपपन्न हुआ। उक्त दोनों प्रश्न आपस में मिले हुए हैं। धीयन्त्र का विषय समाप्त हुआ। ४८। ४९ ॥

अथ स्वयं वहमाह—

लघुदारुजसमचक्रे समसुपिराराः समान्तरा नेम्याम् ।
किञ्चिद्वक्रा योज्याः सुपिरस्यार्द्धे पृथक् तासाम् ॥ ५० ॥
रसपूर्णे तच्चक्रं ह्याधाराक्षस्थितं स्वयं भ्रमति ।

ग्रन्थिकीलरहिते लघुदारुमये भ्रमसिद्धे चक्र अराः । किंविशिष्टाः । समप्रमाणाः समसुपिराः समतौल्याः समान्तरा नेम्यां योज्याः । ताश्च नद्यावर्तवदेकत एव सर्वाः किञ्चिद्वक्रा योज्याः । ततस्तासामाराणां सुपिरेषु पारदस्तथा क्षेप्यो यथा सुपिरार्धमेव पूर्णं भवति । ततो मुद्रिताराग्रं तच्चक्रमयस्काराणवद् ह्याधारस्थं स्वयं भ्रमति । अत्रयुक्तिः । यन्त्रैकभागे रसो ह्यारामूलं प्रविशति । अन्यभागे त्वाराग्रं धावति । तेनाकृष्टं तत्स्वयं भ्रमतीति ।

प्रभा ।

'आरा चर्मप्रभेदिका ।' इत्यमरः । शेषं स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

अच्छे काठ का खरादा हुआ एक चक्र बनाना उसकी परिधि में समान अन्तर से एकाकार तुल्य छिद्रवाले आरा लगाने । ये आरा एक तरफ कुछ झुके होवें। और इन आराओं के छिद्रों में इस प्रकार पारा छोड़ना जिसमें सब छिद्र आधे भरेजावें अर्थात् आधे खाली रहैं । बाद छिद्रों के मुखको अच्छी तरह बन्द करदेना। और इस चक्र को खराद की भांति दो आधार में पोयेहुए एक लोहदण्ड के बीच मे स्थिर करदेना तब यह स्वयं चक्कर खाता रहैगा ।

युक्ति यह है कि यन्त्र के एक तरफ पारा आरा के मूलमें जाता है और दूसरी तरफ आरा के आगे सरकता है । इस प्रकार आघात से चक्र का स्वयं भ्रमण होता है ॥ ५० ॥

अथान्यदाह—

उत्कीर्य नेमिमथवा परितो मदनेन संलग्नम् ॥ ५१ ॥
तदुपरि तालदलाद्यं कृत्वा सुपिरे रसं क्षिपेत्तावत् ।
यावद्रसैकपार्श्वे क्षिप्तजलं नान्यतो याति ॥ ५२ ॥
पिहितच्छिद्रं तदतश्चक्रं भ्रमति स्वयं जलाकृष्टम् ।

यन्त्रनेमिं भ्रमयन्त्रेण समन्तादुत्कीर्य व्यङ्गुलमात्रं सुपिरस्य वेधो विस्तारश्च यथा भवति ततस्तस्य सुपिरस्योपरि तालपत्रादिकं मदनादिना संलग्नं कार्यम् । तदपि चक्रं द्व्याधाराश्रितं कृत्वोपरि नेम्यां तालदलं विद्ध्वा सुपिरे रसस्तावत् क्षेप्यो यावत् सुपिरस्याधो भागो रसेन मुद्रितः । पुनरेकपार्श्वे जलं प्रक्षिपेत् । तेन जलेन द्रवोऽपि रसो गुरुत्वात्परतः सारयितुं न शक्यते । अतो मुद्रितच्छिद्रं तच्चक्रं जलेनाकृष्टं स्वयं भ्रमतीति ।

प्रभा ।

उत्कीर्य इत्यादि स्फुटमेव । मदनो मधूच्छिष्टम् । रसः पारदः ।

भाषाभाष्य ।

अथवा अच्छे काठ का खरादा हुआ चक्र बनाना और चारों तरफ उसकी

परिधि को खराद से दो अंगुल गहरी दो अंगुल चौडी करनी। और इस चौतरफे छेद को तालपत्र आदि किसी वस्तु से मोम आदि के सहारे बन्द करना। यत्न से तालपत्रको उखाड़कर उसके भीतर छेद के आधे हिस्से में पारा भरकर आधे में जल भरदेना। बाद छेदको तालपत्र से मजबूत बन्द करदेना। और इसको भी पहले 'स्वयवह यन्त्र' की भांति आधार पर रखना तब यह स्वयं भ्रमण करता रहैगा।

वस्तुशक्ति यह है कि छेद के एक भाग में पारा दूसरे में जल रहता है परन्तु जल पारे को दबाकर उसकी तरफ नहीं जासक्ता ॥ ५१। ५२॥

अथान्यदाह—

ताम्रादिमयस्याङ्कुशरूपनलस्याम्बुपूर्णस्य ॥ ५३ ॥
एकं कुण्डजलान्तर्द्वितीयमग्रं त्वधोमुखं च बहिः।
युगपन्मुक्तं चेत् कं नलेन कुण्डाद्वहिः पतति ॥ ५४ ॥
नेम्यां बद्ध्वा घटिकाश्चक्रं जलयन्त्रवत्तथा धार्यम्।
नलकप्रच्युतसलिलं पतति यथा तद्घटीमध्ये ॥ ५५ ॥
भ्रमति ततस्तत्सततं पूर्णघटीभिः समाकृष्टम्।
चक्रच्युतं तदुदकं कुण्डे याति प्रणालिकया ॥ ५६ ॥

ताम्रादि धातुमयस्याङ्कुशरूपस्य वक्रीकृतस्य नलस्य जलपूर्णस्यैकमग्रं जलभाण्डेऽन्यदग्रं बहिरधोमुखं चैकहेलया यदि विमुच्यते तदा भाण्डजलं सकलमपि नलेन बहिः चरति। तद्यथा। छिन्नकमलस्य कमलिनीनलस्य जलभृद्भाण्डे क्षिप्तस्य जलपूर्णसुषिरस्यैकमग्रं भाण्डाद्वहिरधोमुखं द्रुतं यदि ध्रियते तदा भाण्डजलं सकलमपिनलेनबहिर्याति। इदं कुक्कुटनाडीयन्त्रमिति शिल्पिनां हरमेखलिनां च प्रसिद्धम्। अनेन बहवश्चमत्काराः सिध्यन्ति। अथ चक्रनेम्या घटीर्बद्ध्वा 'जलयन्त्रवद्व्याधाराक्षसंस्थितं तथा निवेशयेद्यथा नलकप्रच्युतजलं तस्य घटीमुखे पतति। एवं पूर्णघटी-

भ्रमणं शीलां, भ्रमराणां समूहो भ्रामरं, यस्मिन् । भवतां चेतांसि कथमन्यथानि पीडारहितानि सन्ति । कामोद्दीपकत्वादिति भावः । इति एवं विधं मन्दमान्दोलिताः चालिताः ये चूतानामाम्राणां नूतना-घनाःसान्द्राः स्फाराः प्रचुराः स्फुरन्त्यःप्रकाशमानाःपल्लवाःकिसलयानि तैः। उद्वेल्लन्त्यः परितोवेष्टिता या नववल्लयोर्नूतनशाखामञ्जर्यस्तासु उच्चैः कलमव्यक्तं मधुरं यथास्यात्तथा कोकिलाः जपन्ति । शब्दायन्त इत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।

वसन्तजा वसन्तोद्भवा मल्लिकाः स्वकुसुमैः तदानीमुत्कर्षमाप्तैः मालतीं जातिं तदानीं मलिनामपकर्षमाप्तामवहसन्तीवेत्युत्प्रेक्षा । उप-वनमुद्यानकर्तृमलयानिलकम्पितैः किसलयैः पाणिरूपैः ताः कर्म भूता वसन्तजमल्लिका हास्यरूपादनयाद्विनिवारयतीवेत्युत्प्रेक्षा । समयवशेन सर्वः खलून्नतिमवनतिं च गच्छति न तत्रोपहासोयुज्यत इति मध्य-स्थस्य निषेधोन्याय्यः । द्रुतविलम्बितं छन्दः ।

भाषाभाष्य ।

हे पथिक, इस वसन्तऋतु में, जब कि खिलीहुई नवीन मल्लिका के सुगन्ध से मत्त भ्रमरगण चारों तरफ घूमरहे हैं, इस समय आप लोगोंका चित्त कैसे दुःखी नहीं है ? इस प्रकार वायुसे हिलाईहुई आमकी नई–घन पल्लव युक्त लताओं पर ऊंचेस्वर से मानो कोकिला अलाप रही है ।

इस वसन्तऋतु में उत्पन्न मल्लिका, अपने खिलेहुये फूलोंसे, मलिन मालती (चमेली) का मानो उपहास कररही है । मलयाचलकी वायु से कँपायेहुये पल्लवों से वनमल्लिकाओं को मानो मना कररहा है कि तुम चमेली को मत हँसो ॥ १।२॥

विहाय सौधं तृणकुड्यमण्डपे
प्रसिच्यमाने सलिलैः समन्ततः ।
शुचौ रमन्ते विरलं विलासिनः
प्रियाजनैः सीकरसेचनोन्मुखाः ॥ ३ ॥

निदाघदाहार्तिविघातहेतवे
वनाय कामोच्छ्रितचूतकेतवे।
व्रजन्ति वापीजलकेलिलालसाः
शुचौ रतिस्वेदगलज्जलालसाः ॥ ४ ॥

प्रभा।

विलासिनः सौधं राजसदनं प्रासादं वा विहाय तृणस्य उशीरादेः कुड्यं भित्तिर्यस्मिन् तादृशं यन्मण्डपं तस्मिन्। तृणरचितगृह इत्यर्थः शुचौ ग्रीष्मसमये। सीकरोजलकणः। निदाघोग्रीष्मस्तस्य या दाहार्तिस्तस्या योविघातोनाशः तस्य हेतुस्तस्मै। चूता एव केतवः पताकाः चूतकेतवः। काममत्यर्थमुच्छ्रिताः चूतकेतवो यस्मिन् तस्मै। वनाय वनं गन्तुम्। रत्या यः स्वेदो घर्मस्तस्य यद् गलत्स्रवज्जलं तेनालसा आलस्याभिभूताः। अतएव वापीजलक्रीडायामुत्सुका विलासिनो व्रजन्ति गच्छन्तीत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

ग्रीष्मकाल में विलासीगण, अपने उत्तम प्रासादों को छोड़कर चारों तरफ जलसे सिंचीहुई तृणकुटी में, जलक्रीडा करते हुए अपनी प्रियाओं के साथ विहार किया करते हैं।

इस ग्रीष्मकाल में बहुतसे विलासीगण, रतिश्रम से बहतेहुए पसीनों से आलस्ययुक्त होकर, ग्रीष्मशान्ति के लिए, आम के वृक्षरूप पताकाओं से भूषित वन को, जलविहार के लिए जातेहैं ॥ ३।४ ॥

मदनदहनखिन्नामागतेऽप्येत्यकाले
परिमलवहलानां मालतीनां नदीनाम्।
अदय दयित सिञ्चस्यात्मदृग्वारिणा किं
परिमलवहलानां मालतीनां न दीनाम् ॥ ५ ॥
उच्चैर्विरौति हि मयूरकुलं यदम्ब
मन्दं कदम्बमकरन्दविमिश्रितश्च।

वातः प्रवाति पतिरेति न तेन मन्ये
निर्घ्राणनिर्घृणविकर्णविहत्वमस्य ॥ ६ ॥
एवंविधं विरहिणी विरहेण खिन्ना
भिन्नाञ्जनच्छविघने गगने घनर्तौ ।
मत्वा प्रियं तमदयं हृदयं प्रविष्टं
ब्रूते सपेशलमलं परिहासमिश्रम् ॥ ७ ॥

प्रभा ।

अथ वर्षर्तुं वर्णयति । मदनदहनखिन्नामित्यादि स्वयमाचार्येणैवाग्रे व्याख्यातम् । हे अम्ब इति क्रीडासहकारिणीमुद्दिश्य सम्बोधनोक्तिः । साम्प्रतं मयूरकुलमुच्चैर्विरौति । कदम्बानां ये मकरन्दाः पुष्परसास्तैर्विमिश्रितो वातो मन्दं वाति । एवमुद्दीपककालेऽपि पतिर्न एति । तेनास्य निर्घ्राणनिर्घृणविकर्णविहत्वं मन्ये । निर्घ्राणत्वेनास्य कदम्बसौरभानवगमः । निर्घृणत्वं निर्दयत्वम् । विकर्णत्वेन मयूराणामालपश्रवणाभावः विहत्वं स्मृतिशून्यत्वम् । यदीमानि कारणानि नस्युस्तदा कथमस्मिन्वर्षर्तौ पतिर्मदन्तिकं नागच्छेदित्याशयः । एवंविधं विरहेण खिन्ना पीडिता विरहिणी घनर्तौ वर्षाकाले यस्मिन् भिन्नाञ्जनच्छविघने भिन्नं भेदं प्राप्तं यदञ्जनं तद्वच्छविः शोभा येषां तथाभूता घना मेघा गगने व्योम्नि तमदयं प्रियं हृदयप्रविष्टं मत्वा परिहासमिश्रं सपेशलमलं ब्रूते । पेशलं चारु । शेषं व्यक्तमेव ।

भाषाभाष्य ।

हे निर्दय प्रिय ! इस वर्षाकाल के आगमन में, जब कि नदियों में चारों तरफ मल बहरहा है, मालतिया फूल रही हैं और मानवावियों का कामोद्दीपन से मान भङ्ग होरहा है, ऐसे समय में कामाग्नि से सतायी दीन मुझ को अपने प्रेमाश्रुओं से क्यों नहीं आकर सींचते ? इस काल में मयूरगण ऊंचे स्वरसे आलाप करते हैं, कदम्ब पुष्प की सुगन्धियुक्त वायु मंद मंद चलरही है । तो भी पति विदेश

से नहीं आया । इस से मालुम होताहै उसके नाक, कान और दया नहीं है। यदि यह सब होता तो अवश्य उसको अनुराग उत्पन्न होता ।

इसप्रकार वर्षामें अञ्जन के समान मेघों से छाए हुए आकाश में विरह दुःख से पीड़ित विरहिणी, अपने निर्दयी पति को नानाविध हँसी मजाक की बातें कह रही है ॥ ५ । ७ ॥

स्वतनुजवनराज्या पुष्पवत्या श्लिषन्त्या
ह्यनुचितकृतसङ्गोऽस्मीति शैलोऽनुतप्तः ।
निशि शशिकरचञ्चन्निर्झरैरश्रुकल्पैः
शरदि हृदिजखेदस्वेदवान् रोदितीव ॥ ८ ॥

प्रभा ।

स्वतनुजवनराज्या स्वोत्पन्नवनपङ्क्त्या । पुष्पवत्या कुसुमविशिष्टया पुष्पं कुसुमं, स्त्रीरजश्च । सङ्गः संपर्कः भोगश्च । अश्रुकल्पैर्नयनाम्बुसदृशैः । शशिनः चन्द्रस्य ये कराः किरणाः तैः चञ्चन्तो मिश्रीभवन्तो ये निर्झराः शैलशतप्रवाहाः तैः । हृदि अन्तःकरणे जातो यः खेदः सहनायोग्यं दुःखं स एव स्वेदो घर्मोदकं तद्वान् । हृदिजेत्यत्र सप्तम्या अलुक् । रोदितीवेत्युत्प्रेक्षा ।

भाषाभाष्य ।

निज शरीर से उत्पन्न और पुष्प से सयुक्त, वनपङ्क्तियों के संयोग को अनुचित मानकर क्लेशित पर्वत, शरत्काल की रात्रिमें चन्द्रमा के किरणों से प्रकाशित झरते हुए निज जल से, हृदय दुःख-सूचक मानो आंसुओं को ही बहा रहा है ॥ ८ ॥

सहस्यकाले बहुशस्यशालिनीं
चितामवश्यायकमौक्तिकोत्करैः ।
प्रहृष्टपुष्टाखिलगोकुलाकुलां
विलोक्य हृष्यन्त्यधिकं कृषीवलाः ॥ ९ ॥

प्रभा।

सहस्यः पौषमासस्तस्य काले हेमन्तर्त्तावित्यर्थः। इलां पृथिवीं विलोक्य कृषीवला अधिकं हृष्यन्ति। किं विशिष्टामिलाम्। बहुशस्य-शालिनीं बहूनि यानि शस्यानि तैः शालते शोभत इति ताम्। अवश्याया नीहाराः त एव मौक्तिकानि तेषामुत्करैः समुदायैश्चितां व्याप्ताम् प्रहृष्टानि पुष्टानि अखिलानि गोकुलानि यस्याम्। इति हेमन्तवर्णनम्।

भाषाभाष्य।

हेमन्तऋतु में हिमके मोतियों के समान बिन्दुओं से व्याप्त नानाविध शस्यों से भूषित, और हृष्ट पुष्ट गोवृन्दों से पूर्ण भूमि देखकर, किसान अतिहर्षित हो रहे हैं॥ ६॥

अरुणनीलिममीलितपल्लव-
प्रचुरफुल्लसमुल्लसनैः श्रियम्।
वहति कांचन काञ्चनकाननं
नवतरां नितरां शिशिरागमे॥ १०॥
अपटुतिग्ममरीचिमरीचिभि-
र्नहि तथा शिशिरे शिशिरक्षतिः।
निशि यथोष्मलपीनघनस्तनी-
भुजनिपीडनतः स्वपतां नृणाम्॥ ११॥

प्रभा।

अथाचार्यः श्लोकद्वयेन शिशिरर्तुं वर्णयति। शिशिरागमे काञ्चन-काननं कचनार इति हिन्दीभाषायां प्रसिद्धो वृक्षस्तस्याननं वनं अरुणनीलिमा अरुण-नीलयोर्भावः। अरुणिमा, नीलिमेत्यर्थः। आभ्यां मीलिता मिश्रिता ये पल्लवाः तेषां प्रचुराणि भूयांसि फुल्लानि विकस्वराणि समुल्लासनानि संपदः तैः। अथवा अरुणनीलनिमीलितपल्लवम्, इति व्यस्तं वनविशेषणम्। कांचन अनिर्वाच्यां नवतरां

मतिनवीनां श्रियं शोभां नितरामत्यर्थं वहति धत्ते ॥ उष्मलौ उष्णता-विशिष्टौ पीवौ पुष्टौ घनौ मांसलौ स्तनौ यस्याः तस्या भुजनिपीडनतः बाहुवल्लिवेष्टनतः। शेषं स्पष्टम् ॥

भाषाभाष्य।

शिशिरऋतु में, नानाविध लाल और नीलवर्ण के पल्लवों से युक्त खूब फूलेहुए कचनार के वन, अपूर्व शोभाको धारण किएहुए हैं। इस ऋतुमें, सूर्य के आतप से वैसा जाड़ा नहीं जाता जैसा उष्ण और पीन कुचवाली रमणी को अङ्क में लेकर, रात्रिमें सोने से निवृत्त होताहै ॥ १० । ११ ॥

ऋतुव्याजवर्णनव्याजादीपदेषा प्रदर्शिता।
कविता तद्विदां प्रीत्यै रसिकानां मनोहरा ॥ १२ ॥

सरसमभिलपन्ती सत्कवीनां विदग्धा
नवरतरमणीया भारती कामितार्थम्।
न हरति हृदयं वा कस्य सा सानुरागा
नवरतरमणी या भारती कामितार्थम् ॥ १३ ॥

न भवति हतचित्तो वाचमाकर्ण्य रम्यां
परभृतसरसा ना कोमलां सत्कवीनाम्।
सततमुपगतानां साम्बुजैर्वा पयोभिः
परभृतसरसां ना कोमलां सत्कवीनाम् ॥ १४ ॥

त्रिदिवमधरयन्तस्तीरपङ्केन नाना
रुचिरसिकतया वा श्लेषिताङ्गैः सुवृत्तैः।
कृतिन इह रमन्ते रम्यसारस्वतीवे
रुचिरसिकतया वा श्लेषिताङ्गैः सुवृत्तैः ॥ १५ ॥

वर्षाकाले हृदयस्थमदयं दयितं प्रति विरहिणी किलैवं ब्रूते। हे दयित निर्दयास्मिन्नथागते काल एत्यागत्य किं न सिञ्चसि। काम्।

माइति माम् । कथंभूताम् । दीनां । केन । आत्मदृग्वारिणा स्वदृक्सलिलेन । कासां सम्बन्धिनि काले । नदीनां । कथंभूतानाम् । परिमलवहलानाम् । परि समन्तात् । मलवहलानाम् । न केवलं तासाम् । मालतीनामपि । परिमलवहलानामामोदवहलानाम् । न केवलं तासामपि । लतीनामिति । रतीनाम् । तासां च परिमलवहलानाम् । तत्र परस्य भावः परिमा । परिम्णो लवः परिमलवः । तं हरन्तीति परिमलवहराः । तासां परिमलवहराणाम् । रलयोर्वर्णयोरैक्यस्य श्लेषे तु गृहीतत्वात् । मानिनीनां मानिनां वा कामातुराणां मानभङ्गेन तुच्छत्वमापादयन्तीनां रतीनामित्यर्थः ॥

अथ कविवर्णनम् । का सत्कवीनां विदग्धा भारती वाणी कस्य हृदयं न हरति । अपि तु सर्वापि सर्वस्य । अनवरतरमणीया । सततं रम्या । किं कुर्वती । अभिलपन्ती । कम् । अमितार्थम् । असंख्यमर्थम् । किं विशिष्टम् । सरसम् । साच कस्य न हरति । किम् । अर्थं हृदयं वा । या । का । नवरतरमणी । अपूर्वसुरता युवती । किं विशिष्टा । भारती भरतसम्बन्धिनी नर्तकस्त्री । कथंभूता सती । कामिता । पुनः । किं विशिष्टा । सानुरागा । किं कुर्वती । सरसमभिलपन्ती । विदग्धा ।

कः ना नरः सत्कवीनां वाचमाकर्ण्य हृतचित्तो न भवति । किं विशिष्टाम् । अमलां निर्दूषणाम् । पुनः कथंभूताम् । सततं रम्याम् । पुनः किं विशिष्टाम् । परभृतसरसाम् । परभृतस्य कोकिलस्येव सरसां रसवतीम् । अथ द्वितीयोऽर्थः । के उदके वयः पक्षिणः सन्तश्च ते कवयश्च सत्कवयो हंसाद्या जलपक्षिणः । तेषां वाचं सततं रम्यामाकर्ण्य कः ना हृतचित्तो न भवति । किं

विशिष्टाम् । न अकोमलां । कोमलाम् । कथंभूतानां तेषाम् । उपगतानां तीरविलासिनामित्यर्थः । केषाम् । परभृतसरसाम् । कैः । पयोभिः । कथंभूतैः । साम्बुजैः । अथवा । उपगतानां नगरनिकटवर्तिनां सरसां सत्कसम्बन्धिनो वयः सत्कवयस्तेषाम् ।

अथ किमेवंविधयात्र ग्रन्थे प्राकृतिकानां गणकानामित्याशङ्क्योच्यते । नहि मन्दार्थमेव ग्रन्थ आरभ्यत इत्याह । इह कवीनां द्वे गती । इयमियं वा । एततरोऽयं श्लोकः । रमन्ते । के । कृतिनो विद्वांसः । क्व । रम्यसारस्वतौघे । सरस्वती नदी प्रवाहे । सरस्वत्याः सर्वगतत्वाद्गङ्गाद्या अपि सरस्वत्य उच्यन्ते । अत्र किं विशिष्टा उपलक्षिताः । कैः सुवृत्तैः रम्याचारैः पुनः कैः । आश्लेपिताङ्गैः । अवलिप्ताङ्गैः । केन । नदीतीरपङ्केन । न केवलं तेन । नानारुचिरसिकतया वा । किं कुर्वन्तः । तथा रमन्ते । अधरयन्तः अधरीकुर्वन्तः । किम् । त्रिदिवम् । अस्मादप्युपरितनं स्थानं वाञ्छन्तः । अथ द्वितीयोऽर्थः । नानारुच्या रसिकत्वं रसिकता तयेह रम्यसारस्वतौघे वाक्समूहे चतुरवचननिचये कृतिनो रमन्ते कैः कृत्वा । सुवृत्तैः श्लक्ष्णैः श्लोकैः मालिनीप्रभृतिभिः । किंविशिष्टैः । श्लेपिताङ्गैः । श्लेषोक्तियुक्तचरणैः । पादावृत्तिप्रभृतिभिः । किं कुर्वन्तःत्रिदिवमधरयन्तःत्रिदिवसुखादपि काव्यरतिसुखमधिकं मत्वेत्यर्थः । शेषं स्फुटम् ।

इति श्रीभास्करीये सिद्धान्तशिरोमणिवासनाभाष्ये
गोलाध्याये मिताक्षरे ऋतुवर्णनं समाप्तम् ।
अत्र ग्रन्थसंख्या ६० ॥

प्रभा।

एते श्लोका आचार्येण स्वयं विशिष्य व्याख्याता एव।
इति प्रभायां ऋतुवर्णनम्।

भाषाभाष्य।

यहां ऋतुवर्णन के बहाने कवियों की प्रीति के लिये यह रसिकोंका मन हरने वाली छोटी कविता दिखलाई गई है।

सत्कवियों की सरस और चतुर वाणी अनेक विध उत्तम भावों को प्रकाश करती हुई, किसके हृदय को नहीं हरती? अथवा नवीन रति में निपुण अनुरागवती, चतुर नटी, सरस गान करती हुई किसका मन नहीं हरती? सभी का हर लेती है।

सत्कवियों की सरस, निर्दूषण और कोकिल के समान मधुर वाणी, किसका चित्त नहीं हरती! अथवा कमलों से पूर्ण सरोवर में विहार करनेवाले हंस आदि पक्षियों के कोमल और मधुर शब्द सुनकर, किसका चित्त नहीं मुग्ध होता!

जैसे गङ्गाजल और उसकी रेणुका को पाकर स्वर्ग सुख को लोग तुच्छ समझते हैं। उसी प्रकार नानाप्रकार की रसिकता से, सरस्वती के सुन्दर छन्द और श्लेषपूर्ण उक्तियों में, विद्वान् लोग, स्वर्ग को तुच्छ मानकर रम जाते हैं।

ऊपर के तीनों श्लोक पादावृत्ति यमक हैं। इनका संस्कृत में अर्थ चमत्कार भाष्य में स्पष्टही है॥ १२। १५॥

भाषाभाष्य में ऋतुवर्णन समाप्त हुआ।

अथ प्रश्नाध्यायो व्याख्यायते।

तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनं तत्प्रशंसां चाह—

प्रौढिं प्रौढसभासु नैति गणकः प्रश्नैर्विना प्रायशो—
ऽनस्तान् वच्मि विचित्रभङ्गिचतुरप्रीतिप्रदानाय यान्।
आकर्ण्यापि सुवर्णवर्णरदनं वैवर्ण्यमेति स्फुटा—
त्तस्याखर्वसुगर्वपर्वतशिरःस्थो व्याधिन्दोऽत्र यः॥ १॥

पाट्याच बीजेन च कुट्टकेन
वर्गप्रकृत्या च तथोत्तराणि।
गोलेन यन्त्रैः कथितानि तेषां
बालावबोधे कतिचिच्च वच्मि ॥ २ ॥
प्रश्नार्थम्।

प्रभा।

गणकः प्रौढसभासु गोलगणितज्ञसमाजेषु प्रश्नैः कल्पनाविशेषजनितैरभिनवैर्विना प्रश्नज्ञानमन्तरा प्रायशः प्रौढिं तज्ज्ञानोत्कृष्टता न इति नाधिगच्छति। अतस्तान् प्रश्नान् विचित्रा नानाविधा या भङ्ग्यः प्रश्नोत्तररूपास्तासु ये चतुरास्तेभ्यः प्रीतिप्रदानाय वच्मि कथयामि। अहं ग्रन्थनिर्मातेत्यध्याहार्यम्। यान् प्रश्नानाकर्ण्यापि श्रुत्वापि सुवर्णवर्णवदनं सुवर्णकान्तिसदृशं मुखं क्षणात् प्रश्नश्रवणोत्तरकाल एव वैवर्ण्यं तदुत्तरदानासामर्थ्येन मालिन्यमप्रभत्वमितियावद् एति प्राप्नोति। कस्य प्राप्नोतीत्याकाङ्क्षायां तस्य, यः श्रोता गणकोऽत्र अखर्वो महान् यः कुगर्वः स्वगुणगौरवजनिताभिमानः स एव पर्वतस्तस्य शिरसि मस्तके प्रौढ्याप्रकर्षेणाधिरूढ आरोहणं कृतवानित्यर्थः। प्रथमं पाट्यादिविधिना यानि प्रश्नानामुत्तराणि कथितानि पूर्वाचार्यैर्ब्रह्मगुप्तादिभिः प्रदर्शितानि तेषां मध्येऽत्र बालावबोधनिमित्तं कतिचित्प्रश्नान् सोत्तरान् वच्मीत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

ज्योतिषी, प्रश्नज्ञान के विना अच्छे ज्योतिषियों की सभामें प्रगल्भ नहीं होता। इसलिए विविध प्रश्नोत्तर कल्पनाविशारदों के सतोष के लिए उन प्रश्नों को कहता हू। जिनको सुनतेही वडे दुरभिमान रूपी पर्वतके शिरपर पैलकर चढ़े हुए ज्योतिषियों की, सोना के समान उजली मुखकान्ति, मलिन होजाती है। पाटी बीज कुट्टक वर्गप्रकृति गोल और यन्त्रों से भिन्न प्रश्नों के उत्तर पूर्वाचार्यों ने कहे हैं। उन प्रश्नों से कुछ प्रश्न बालबोध के लिए यहा पर कहताहू ॥ १ । २ ॥

अथ बुद्धिमतः प्रशंसामाह—

अस्ति त्रैराशिकं पाटी बीजं च विमला मतिः ।
किमज्ञातं सुबुद्धीनामतो मन्दार्थमुच्यते ॥ ३ ॥

वर्गं वर्गपदं घनं घनपदं संत्यज्य यद्गण्यते
तत्त्रैराशिकमेव भेदबहुलं नान्यत्ततो विद्यते ।

एतद्यद्बहुधास्मदादिजडधीधीवृद्धिबुद्ध्या बुधै-
र्विद्वच्चक्रचकोरचारुमतिभिः पाटीति तन्निर्मितम् ॥ ४ ॥

नैव वर्णात्मकं बीजं न बीजानि पृथक् पृथक् ।
एकमेव मतिर्बीजमनल्पा कल्पना यतः ॥ ५ ॥

स्पष्टार्थम् ।

प्रभा ।

वर्गं तन्मूलं घनं तन्मूलं च त्यक्त्वा यद्गण्यते संख्यायते तद्भेद-बहुलं भेदैः स्वस्वरूपैर्बहुलमनेकविधं त्रैराशिकमेव ततोऽन्यन्न विद्यते तदन्तर्भूतं सर्वमित्यर्थः । एतद्यद्बहुधोक्तं तत्र हेतुमाह । अस्मदादिजडधीधीवृद्धिबुद्ध्या । वयमादिर्येषां तेऽस्मदादयस्ते च ते जड-धियो मन्दबुद्धयश्च तेषां धीर्मतिस्तस्या वृद्धिर्वर्धनं तद्विषये बुद्धिः तया । अस्मदादिजडधियां धीवृद्धिः स्यादिति बुद्ध्येत्यर्थः । बुधैः सदसद्विवेककुशलैः । विद्वच्चक्रचकोरचारुमतिभिः । विदुषां पण्डितानां चक्रं समूहः तस्मिन् चकोरा इव चकोरा अतिसुज्ञाः, तेभ्यः चारु रमणीया मतिर्येषां ते । पक्षिषु चकोराणामतिसुज्ञत्वप्रसिद्धिः । पट्-यति अवगमयतीति पाटी । पाटीति तन्निर्मितं पाटीरूपं रचितमित्यर्थः । सकलानां गणितभेदानां निरूपणमशक्यमिति स्वल्पा एव भेदाः प्रदर्शिताः । इत्थं त्रैराशिकस्यैव पाटी प्रतिपिरमितार्थमापवेषु प्रधानत्वेनाभ्युपगम इति वेदितव्यम् ।

वर्णात्मक यावत्तावत्कालकनीलकादिवर्णस्वरूपबीजमन्यस्तन्

। न चैकवर्णतन्मध्यमाहरणादिभेदैः परस्परं भिन्नानि बीजानि। तर्हि किमित्याह यतोऽनल्पामतिरेव एकं बीजं बहुविधा कल्पना समुदेति। मतिकल्पनावशादेव बीजस्यानेकविधत्वमित्यर्थः।

भाषाभाष्य।

त्रैराशिक गणित का भेद पाटी गणित और शुद्ध बुद्धि बीजगणित है। सुबुद्धियों को क्या नहीं मालुम है? वे सब जानते हैं। इसलिए मन्दबुद्धियों के लिए विशेष कहता हूं।

वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल छोड़कर जो कुछ गणित किया जाताहै वह नानाविध त्रैराशिक–भेद के सिवाय कुछ नहीं है। यह हमारे सदृश मन्दबुद्धियों की बुद्धि बढ़ाने की इच्छासे, सुज्ञ विद्वानों ने पाटीगणित की रचना की है। बीज का स्वरूप यावत्, कालक आदि वर्ण नहीं है और न एकवर्ण, मध्यमाहरण, भावित आदि भेद से बीज का अलग अलग स्वरूप है। केवल एक बुद्धि ही बीजगणित का स्वरूप है। जिससे अनेकविध कल्पनाएं हुआ करती हैं॥ ३।५॥

अथ प्रश्नानाह–

अहर्गणस्यानयनेऽर्कमासा–
श्चैत्रादिचान्द्रैर्गणकान्विताः किम्।
कुतोधिमासावमशेषके च
त्यक्ते यतः सावयवोऽनुपातः॥ ६॥

अयमस्य भङ्गश्च पूर्वं व्याख्यातमेव।

भाषाभाष्य।

हे गणक! अहर्गण के साधन में सौर मासों में चैत्रादि से गत चान्द्रमासों को विजातीय होने से कैसे जोड़दिया है? और अनुपात के सावयव होनेपर भी अधिमास और अवमशेष को क्यों छोड दिया है?

इस प्रश्नका उत्तर मध्यगति वासना में दर्शावधिश्चान्द्रमसोहि मास –, इत्यादि विधि से किया गयाहै॥ ६॥

अथान्यमाह–

चन्द्रश्चन्द्रगुणो रवी रविगुणश्चाङ्गारकोऽङ्गाहत–

स्तद्योगो गुणसंगुणान्सुरगुरोराश्यादिकात् पातितः।
शेषं चापरपर्ययोत्थखचरेणोनं युतं वा शनिः
स्यात् केऽन्ये भगणा वदेति तव चेदस्तिश्रमो मिश्रके ॥७॥

प्रभा।

स्फुटार्थोऽयं श्लोकः। चन्द्रगुणो रूपगुणित इत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

चन्द्रमा को एक से, सूर्य को बारह से और भौम को छः से गुणकर, फलका योग करके तीन से गुणा किए हुए राश्यादि गुरु में घटाकर शेष को किन ग्रहों के भगणोंमें जोड़ने वा घटाने से शनि सिद्ध होताहै ? उन भगणों को बतलाओ यदि मिश्रगणित में तुमने परिश्रम किया है, यह प्रश्न हुआ ॥ ७ ॥

अथास्य भङ्गः—

उद्देशकालापवदेवकार्यं
योगान्तराद्यं ग्रहपर्ययाणाम्।
दृष्टस्य चक्राणि तदूनितानि
तैरूनितं तत्क्रमशो विधेयम् ॥ ८ ॥

अज्ञातखेटः स्वमृणं कृतश्चे-
दज्ञातचक्राणि भवन्ति तानि।
कहाः प्रदेया अविरुद्धशुद्धौ
कहैश्च तद्यं कुदिनाधिकं चेत् ॥ ९ ॥

उदाहरणे ग्रहाणां यथा यथा योगोऽन्तरं वाभिहितं तथा तथा ग्रहयुगभगणानामपि कार्यम्। यदि शोध्यं न शुध्येत्तदा कुदिनानि दत्त्वा शोधयेत्। तथा गुणकैर्गुणने योगे च कृते यदि राशिः कुदिनाधिको भवति तदा कुदिनैरतद्यः। एवं योगान्तरादि यद्भवति तेन दृष्टग्रहस्य युगभगणा एकभोनाः कार्याः। अन्यत्र

तैर्भगणैस्तदूनं कार्यम्। एवं कृते प्रथमस्थाने यदवशेषं तेऽन्ये भगणा भवन्ति। यद्यन्यभगणा उदाहरणे धनं कृताः। यदि ऋणं कृतास्तदा द्वितीयस्थाने यदवशेषं तेऽन्यभगणा इति।

अत्रोपपत्तिः। यद्ग्रहाणां योगवियोगादिकं तत्तद्गुणभगणानां कृतम्। तथाविधैर्भगणैरहर्गणाद् ग्रहवत्फल आनीते तद्योगवियोगादिकमुत्पद्यते। यत्र शोध्यं न शुध्यति तत्र यत्कुदिनानि दत्तानि तत्रेयं युक्तिः। यैर्भगणैर्यादृशो ग्रहो राश्यादिको भवति तैरेव कुदिनाधिकैस्तादृश एव राश्यादिकः स्यात्। भगणशेषयोस्तुल्यत्वात्। किन्तु तद्भगणा अधिका आगच्छन्ति ते परित्यक्ताः। प्रयोजनाभावात्। उदाहरणं हि राश्यादि ग्रहाणामेव। अनयैव युक्त्या यत्र गुणनादिके कृते कुदिनाधिकत्वं दृश्यते तत्र राशिः कुदिनैस्तस्य इत्युक्तम्। अथैवं योगवियोगादिके ये भगणा जातास्तेऽन्यभगणैरूनाः सन्तो दृष्टग्रहभगणा भवन्ति। दृष्टभगणैरूना अन्यभगणा भवन्तीति विलोमविधिः। यदान्यभगणैर्युक्ताः सन्तो दृष्टभगणा भवन्ति तदा तैरेवोना दृष्टभगणा अन्यभगणा भवन्तीत्यर्थात् सिद्धम्।

अथ बालावबोधार्थं कल्पितभगणैरुदाहरणम्। तत्र रवेर्भगणास्त्रयः ३। चन्द्रस्य चत्वारः ४। भौमस्य पञ्च ५। गुरोः सप्त ७। शनेर्नव ९। कुदिनानि षष्टिः ६०। त्रयोविंशति २३ महर्गणं प्रकल्प्य साधिता ग्रहाः। र. १ । २१ । चं. ६ । १२ । मं. ११ । ० । गु. ८ । ६ । शु. ५ । १२ । अत्र द्वादशगुणोऽर्कः। एकगुणश्चन्द्रः षड्गुणो भौमः। र. ६ । १८ । चं. ६ । १२ । मं. ६ । ० । एषां योगः। १० । ० । अयं त्रिगुणगुरोर्विशोध्य

२४ । १८ । शेषम् २ । १८ । अथाज्ञातभगणज्ञानार्थं ग्रहयुगभ-गणानां यथोक्ते योगे वियोगे च कृते जातम् ११ । ० । एतच्छनि-भगणैर्नवभिरूनीकृतं जातावन्यभगणौ २ । यद्यन्यभगणा ऋणं तद्भगणद्वयसंभूतो ग्रहः ६ । ६ अस्मिन् पूर्वस्मात् २ । १८ शो-धिते जातः शनिः ५ । १२ । यद्यज्ञातः खेटः स्वं तदा शनिभग-णेषु ६ कुदिनानि ६० प्रक्षिप्यैकादश ११ विशोध्य जाता अन्यभगणाः १८ । एभ्यो जातो ग्रहः २ । २४ अनेन पूर्वशेषयुते जातःशनिः ५ । १२ ।

भाषाभाष्य ।

अब उत्तरकी रीति कहते हैं । प्रश्नकर्ता के कथनानुसार ग्रहभगणों का योग अथवा अन्तर करके फलको ज्ञात ग्रह के युग भगणों में एकस्थान में घटादेना और एक स्थान में उन भगणों कोही फल में घटाना । शेष अन्य ग्रह के भगण होंगे। यदि अन्य ग्रहका भगण उदाहरण में जोड़ा गया हो, तब प्रथम स्थान में जो शेष रहैगा वह अन्य ग्रह का भगण होगा । और यदि घटाया गया हो तब दूसरे स्थान में जो शेष बचैगा वह अन्य ग्रह का भगण होगा । यदि युगभगणों में फल घटाने पर न घट सकै तब उस शोधक राशि में कुदिनों को जोड़कर, फलको घटाना चाहिये। और जोड़ने किंवा घटाने बाद यदि राशि कुदिन से अधिक बचै तब उसको कुदिनों से तष्टित करदेना चाहिये ।

उपपत्ति ।

(१) यहां पर ग्रहों का योग अथवा अन्तर न करके यदि उन ग्रहों के युग भगणों कोही योग वा अन्तर किया जाय और उससे इष्ट अहर्गण द्वारा ग्रह के समान फल सिद्ध किया जाय तो भी ग्रहों का योग वा अन्तर गुणक और भाजक के तुल्य होने से, सिद्ध होजाता है । जैसा, $र + चं = \frac{करभ \times अह}{कवु} + \frac{कचभ \times अह}{कवु} =$ $(करभ + कचभ) \times \frac{अह}{ककु}$ । परन्तु यहां पर प्रश्न में भगणों ही का ज्ञान

इष्ट होने से केवल ग्रहोंके कल्प भगणों का ही योग आदि करने से प्रयोजन सिद्ध होजाता है। तात्पर्य यह है कि ज्ञात भगणसे जो ग्रह सिद्ध हुये हैं उनको इष्ट अङ्कों से गुण करके अज्ञात भगण–सम्बन्धि ग्रह का योग और अन्तर करने पर अन्य ग्रह होता है। तब अज्ञात भगण का ज्ञान अभीष्ट रहता है। उसके ज्ञान के लिये 'उद्देशकालापवत्–' इत्यादि विधि से इष्ट ग्रह भगणों का योग आदि करके फलको अन्य ग्रह भगण में विलोमविधि से जोडने घटाने से इष्ट ग्रह का भगण ज्ञात होता है। यह विषय भाष्य में स्पष्टही है।

अब प्रश्न के अनुसार गुणन आदि करने से दो पक्ष सिद्ध हुये.–

$$\left\{ \overline{गु\times घ}-(\overline{च\times अ}+\overline{र\times क}+\overline{म\times ग}) \right\} \pm प्र=शनि ।$$

यहा पर 'अ' 'क' आदि इष्ट गुणक सख्या के द्योतक कल्पना किये हैं। और 'प्र' अज्ञातभगण सम्बन्धि ग्रह का मान है। अब दोनों पक्षों को $\left(\frac{कलाकु}{इ कु}\right)$ इस से गुणा तो हुआ–

$$\left\{ गुभ\times घ-(\overline{चभ\times अ}+\overline{रभ\times क}+\overline{मभ\times ग}) \right\} \pm अज्ञातभगण,$$

=शनि भगण। अब कोष्ठक का मान 'फ' कल्पना किया तो दोनों पक्ष यों हुये–

फ ± अज्ञातभगण=शनिभगण यहा पर इष्टभगण शनिभगण है इस लिये उसको फल में जोडा घटाया तब हुआ–

फ–अज्ञातभगण=शनिभगण.

फ+अज्ञातभगण=शनिभगण.

पक्षान्तर नयन से,

फ–शनिभगण=अज्ञात भगण

शनिभगण–फ = अज्ञातभगण। इसप्रकार 'इष्टस्य चनाघि तदूनितानि, तैरूनितम्–' इत्यादि विधि उपपन्न हुई।

(२) इस विधि को आचार्य ने सुगमता से समझने के लिए उदाहरण मे दिखलाया है। उसका गणित भाष्य के अनुसार इस प्रकार है–

कल्पना किया।

रविभगण ३ ..
चन्द्रभगण ४ ..
भौमभगण ५ ... .

गुरुभगण ७........

शनिभगण ६........

कल्पकुदिन ६० ....

अथ प्रश्नानुसार |७×३-(४×१+३×१२+५×६)|=२१-(४+३६+३०)=२१-७०, २१ में ७० घट नहीं सकते इसलिए उस में ६० कल्पकुदिन जोड़ा=८१-७०=११ शेष बचा। अज्ञातभगण=भ कल्पना करने से उक्त विधि के अनुसार ११-भ=९ वा ११+भ=९ पक्षान्तरानयन से भ=११-९ वा, भ=९-११ दूसरे समीकरण में कुदिन जोड़कर घटाने से=६०+९-११=५८। इसप्रकार ज्ञात हुआ कि कल्प में अज्ञात ग्रहभगण २ वा ५८ हैं। अब, २३ अहर्गण मानकर राश्यादि ग्रह अनुपात से सिद्ध हुये—

			रा.		रा.
चन्द्र,	यदि ६० : ४ :: २३ :	६ । १२/६,	यह × १ =	६ .. १२/६,
रवि,	६० : ३ :: २३ :	१ । २४,	यह × १२ =	९ .. १८,
भौम,	६० : ५ :: २३ :	१ । ०	यह × ६ =	६ .. ०,
				यो.	१० .. ०
गुरु,	६० : ७ :: २३ :	८ । ६,	यह × ३ =	० .. १८
				यो.	१० .. ०
				शे०	२ .. १८

अज्ञातग्रह, ६० : २ :: २३ : ९ । ६ } शे. २।१८-९।६=श. ५।१२
६० : ५८ :: २३ : २ । २४ } शे. २।१८+२।२४=श. ५।१२

शनि, ६० : ९ :: २३ : ५ । १२

इसप्रकार २ और ५८ भगणों से ज्ञात ग्रह राश्यादि सिद्ध हुआ ॥ ८।९ ॥

अथान्यं प्रश्नमाह—

ये याताधिकमासहीनदिवसा ये चापि तच्छेपकै
तेषामैक्यमवेत्य यो दिनगणान् ब्रूतेऽत्र कल्पे गतान्।
संश्लिष्टस्फुटकुट्टकोद्भटवटुचुर्दण्डविद्रावणे
तस्याव्यक्तविदो विदो विजयते शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १० ॥

प्रभा ।

ये यत्संख्याका याताधिकमासहीनदिवसाः अहर्गणसाधने क्रियमाणे गताधिमासास्तथा हीनदिवसा अवमदिनानि ये चापि तच्छेषके तयोरधिमासावमयोः शेषके, तेषांचतुर्णामैक्यं योगमवेद्य विज्ञाय यो गणकः कल्पे गतान् कल्पादितो व्यतीतान् दिनगणान् सौरचान्द्रसावनभेदात्मकानहर्गणानत्र ब्रूते गणितद्वारा कथयति । तस्याव्यक्तविदः, अव्यक्तं बीजगणितं वेत्तीति विग्रहः । विदो विदुषः संश्लिष्टस्फुटकुट्टकोद्भटवटुक्षुद्रैणविद्रावणे, संश्लिष्टसंज्ञो यः स्फुटकुट्टकस्तत्रोद्भटः प्रगल्भो यो वटुः स एव क्षुद्रैणोऽल्पकायो मृगस्तस्य विद्रावणे पलायनकर्मणि शार्दूलविक्रीडितं सिंहवच्चेष्टितं विजयते सर्वोत्कर्षेण वर्तत इत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितमिति छन्दो नामापि सूचितम् ।

भाषाभाष्य ।

अहर्गण के साधन में जितने गत अधिमास और अवम हों उनका और उनके शेषों का योग जानकर जो गणक कल्पादि से सौर, चान्द्र, सावन अहर्गणों को गणित से बतलावे वह बीजगणितज्ञ पण्डित, संश्लिष्टस्फुटकुट्टक में उद्भट बालकरूपी क्षुद्रमृग को भगाने में सिंह के समान विजयी होता है ॥ १० ॥

अथास्य भङ्गः ।

छत्ताष्टाष्टिगोव्धयब्धिशैलामरर्तु-

द्विप ८६३३७४४९१६८४ घ्ने सशेषाधिमासावमैक्ये ।

भवेद्व्येकचान्द्राह १६०२९९८९९९९९ भक्तेऽवशेषं

गतेन्दुद्युराशिस्ततः सावनाद्यः ॥ ११ ॥

स्पष्टार्थम् ।

प्रभा ।

सशेषे स्वस्वशेषाभ्यां सहिते येऽधिमासावमे तयोरैक्यं तस्मिन् । इन्दुद्युराशिश्चान्द्राहर्गण इत्यर्थः । शेषं स्फुटम् ।

दिना। कथमस्य विषय इति चेत्। उच्यते। गतसौरादिनेभ्यो यावन्तोऽधिमासा यच्च शेषं गतचन्द्रदिनेभ्योऽपि तावन्त एव भवन्ति तावदेव चात्रशेषम्। अवमान्यवमशेषं च चन्द्रदिनेभ्य एव सिध्यति। अतस्तयोः शेषयोश्च योग उदाहृते युगाधिमासावमयोगो गुणो युगेन्दुदिनानि हरः। गतेन्दुदिनप्रमाणं यावत्तावत् १। तद्गुणेन गुणितं हरेण भक्तम्। तत्र लब्धिप्रमाणं कालकः १। तद्गुणितं हरं गुणकगुणिताद्यावत्तावतो विशोध्य जातं शेषम्। या २६६७५८५०००० का १६०२६६६००००००

एतदधिमासावमशेषैक्यम्। यो लब्धः कालकः १ स गताधिमासावमानामैक्यम्। तच्छेषे यदि क्षिप्यते तदा चतुर्णां योगः कृतो भवति। या २६६७५८५०००० का १६०२६६८६६६६६६। अस्य चतुर्णां योगस्योद्दिष्टयोगेन समीकरणे क्रियमाणेऽधिमासावमयोगो भाज्यः। व्येकेन्दुदिनानि हरः। उद्दिष्टयोग ऋणक्षेपः। एवं सति लाघवार्थं रूपशुद्धावाचार्येण स्थिरः कुट्टकः कृतः। सच कृताष्टाष्टीत्यादि।

प्रभा।

जिष्णुजो ब्रह्मगुप्ताचार्यस्तेन कृताच्छास्त्राद् ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तादित्यर्थः। ब्रह्मसिद्धान्तानुसारमधिमासावमच्छेषाणां युतिं विज्ञायेति तात्पर्यम्।

भाषाभाष्य।

अब उदाहरण दिखलाते हैं। ब्रह्मसिद्धान्त के अनुसार अधिमास, अवम, अधिशेष और अवमशेष का योग, ६४८४२६०००१७१ जानकर जो अहर्गण सिद्ध करेगा वह ब्रह्मसिद्धान्त को जाननेवाला है।

उपपत्ति।

(१) यहां पर उपपत्ति बीजगणित से की है। अधिमास आदि का ज्ञान होने से इनको इस प्रकार मान लिया:—

क च=कल्पचान्द्रदिन।

क अ=कल्पाधिमास।

क व=कल्पावमदिन।

ग अ=गताधिमास।

अं=अधिशेष।

ग व=गतावम दिन।

वं=अवम शेष।

च=गताधिमास+गतावम+अधिशेष+अवमशेष।

य=गतचान्द्रदिन।

अब अनुपात किया—

$$\text{क च : क अ :: य : ग अ} + \frac{\text{अं}}{\text{क च}};$$

$$\text{क च : क व :: य : ग व} + \frac{\text{वं}}{\text{क च}};$$

'एको हरश्चेद्गुणकौ विभिन्नौ—', इस रीति के अनुसार,

$$\text{क च (क अ + क व) :: य : ग अ + ग व} + \frac{\text{अं + वं}}{\text{क च}},$$

यहां पर यदि 'ग अ+ग व' इस लब्धि का मान 'क' कल्पना कर लिया जाय तो यों स्वरूप होगा, $\text{क} + \frac{\text{अं + वं}}{\text{क च}}$।

इसलिये,

(क अ+क व) य=क च×क+अं+वं, अब 'कच×क' घटा देने से शेष रहा।

(कअ+कव) य−कच×क=अं+वं; और क=ग अ+गव; शेष को लब्धि में जोड़ने से यों पक्ष हुये।

(कअ+कव) य−(कच−१) क=गअ+गव+अं+वं,=च।

पक्षान्तरानयन से

(क अ + कव) य – च = (कच — १) क

पूर्वोक्त अङ्क स्थापन से

(१५६३३०००००+२५०८२५५००००) य – ६४८४२६०००१७१
=(१६०२६६६००००००–१) क।

अब यहां पर कुट्टक का विषय हुआ। जैसा, कौन राशि कल्पाधिमास और कल्पावम के योग से गुणित, इष्ट द्युति से हीन एकोनचान्द्रदिन से भाजित शुद्ध है। यहां कुट्टक से जो गुणक सिद्ध होगा वह 'य' का मान होगा। उसीके साधन के लिए रूपशुद्धि में 'क्षेपं विशुद्धि परिकल्प्य–' इस सूत्र से स्थिर कुट्टक किया है। इस प्रकार रूप शुद्धि में 'कृताष्ट द्वि–' इत्यादि गुणक उत्पन्न होता है। वहां पर 'अभीप्सितक्षेपविशुद्धिनिघ्ने–' इत्यादि क्रिया करने में 'कृताष्टाष्टि–' आदि का गुणक सशेष अधिमास अवमयोगादि और भाजक एकोनचान्द्राह होता है।

(२) उदाहरण में भङ्ग के अनुसार गणित करके सब बातें सिद्ध की हैं। उस की सङ्गति इस प्रकार है –

∴ गअ + गव + चं + वं = ६४८४२६०००१७१ और क च =
१६०२६६६००००००

∴ $\frac{६४८४२६०००१७१ \times ८६३३७४४६१६८४}{१६०२६६६००००००}$ = ४६६४१६२२३३६ = लब्धि और १०३०० शेष।

∴ १०३०० ये गतचान्द्रदिन हुए।

अब अवम साधन के लिये अनुपात,

च च · क व   य   १६१ ग व और वं = २६७४२६००००००

∴ य = १०३००
वं = १६१
———————
१०१३९, शेष सावन अहर्गण।

अब इस से 'ग अ' के लिये अनुपात किया,

क च . क अ   य   १० ग अ और अ = ३८१००००००८० ; १०
अ = ३०० य,

∴ १०३००−३००=१००,०० गत सौराहर्गण। इस लिये २६ वर्ष, ६ मास और १० दिन कल्पगत हुए॥ १२॥

इदानीं महाप्रश्नमाह—

चक्राग्राणि गृहाग्रकाणि च लवाग्राणि ग्रहाणां पृथग्-
यानि स्युः कलिकाग्रकाणि विकलाग्राणीह धीवृद्धिदे।
चन्द्रार्कारगुरुज्ञभार्गवचलच्छायासुतानां तथा
पूर्वं सिद्धमहर्गणागमविधौ न्यूनाहशेषं च यत्॥ १३॥
षट्त्रिंशत्सहितानि तानि कुदिनैस्तष्टानि दृष्ट्वाग्रका-
ण्याचष्टे स्फुटकुट्टके पटुमतिः खेटान् दिनौघं च यः।
तं मन्ये गणिताटवीविचरत्प्रौढिप्रमत्ताखिल-
ज्योतिर्वित्करिकुम्भपीठलुठनप्रोत्कण्ठकण्ठीरवम्॥ १४॥

प्रभा।

यल्लुठनमितस्ततः सुखेन स्त्राङ्गविक्षेपस्तत्र प्रकर्षेणोत्कण्ठा यस्य तथा-भूतं कण्ठीरवं सिंहं तमहं मन्ये शङ्के इत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

चन्द्रमा, सूर्य, मङ्गल, बृहस्पति, बुध और शुक्र का शीघ्रोच्च और शनि इन प्रत्येक के क्रम से भगणशेष, राशिशेष, अंशशेष, कलाशेष, विकलाशेष और अहर्गण के साधन में जो अवमशेष रहता है इन सब छत्तीस शेषों को कुदिन से तष्टित करके जो शेष रहे उसको जानकर; जो स्फुटकुट्टक में चतुर गणक, अहर्गण और ग्रह बतलावे, उसको मैं गणितरूपी वन के उजाड़ करने से मदांध गणकरूपी गजोंके कुम्भरूप आसनपर लोटने को उत्कण्ठित सिंह समझताहूं॥१३।१४॥

अथास्य भङ्गः।

उद्दिष्टं कह(१५७७६१७५००) तष्टमम्बुधिहृतं शुध्येन्नचेत्तत्खिलं
लब्धंरामनखाद्रिलोचनरसत्र्यङ्काद्रि(२६३६२७२०३)निघ्नं ततः।
पञ्चाद्रित्रिनवाद्रिसागरयुगच्छिद्राग्निभिः(३६४४७६३७५) संभ-
जेच्छेषं स्याद्गुणको हरेण स युतो यावद्भवेदीप्सितः॥१५॥

अस्योदाहरणम्।

पञ्चत्रिंशदहो सखे दिविपदां चक्रादिशेषाणि या-
न्येषां सावमशेषमैक्यमपि यद्धीवृद्धिदे जायते।
तत्तष्टंकुदिनैःखखेषुभरत्रिच्छिद्रेन्द्र(१४६१२२७५००)तुल्यंगुरो-
रिन्दोर्वाह्नि कुजस्य वा वद यदा कीदृग्द्युपिण्डस्तदा॥१६॥

धीवृद्धिदे तन्त्रे ग्रहाणां चक्रादिशेषाणि मिलितान्यवमशेषयुतानिच १४६१२२७५००। एतानि किलोद्दिष्टानि चतुर्भिर्विभज्य लब्धं रामनखाद्रिलोचनरसत्र्यङ्काद्रिभिः २६३६२७२०३ संगुण्य पञ्चाद्रित्रिनवाद्रिसागरयुगच्छिद्राग्नि ३६४४७६३७५ भिर्विभज्य शेषमहर्गणो जातः खखाभ्रदिङ्मितः १०००। अयं जातः कुजदिने। द्विगुणे हरे क्षिप्ते जातः सोमवासरे ७८८६६८७५०। त्रिगुणे क्षिप्ते जातो गुरुदिने ११८३४४८१२५।

अत्रोपपत्तिरेको हरश्चेद्गुणकौ विभिन्नावित्यनेनैव । अत्र गुणकाविति द्विवचनमुपलक्षणार्थम् । तेन बहुगुणानामैक्यं गुणो भवति । अग्राणामैक्यमग्रम् । तद्यथा । रूपमहर्गणं प्रकल्प्य ग्रहाणां चक्रादिशेषाण्यानीय तेषामैक्यं युगावमयुतं भाज्यः कल्प्यः । कुदिनानि हरः । उद्दिष्टपञ्चत्रिंशच्छेषाणां योग ऋणक्षेपः । एषां भाज्यहारक्षेपाणां चतुर्भिरपवर्तः कृतः । ततो लाघवार्थं रूपशुद्धौ लब्धं रामनखाद्रीत्यादिस्थिरकुट्टकः कृतः ।

प्रभा ।

उद्दिष्टमित्यादि पञ्चत्रिंशदहो इत्यादि श्लोकद्वयं स्फुटार्थम् ।

भाषाभाष्य ।

इष्ट भगण आदि शेषों के योग को कुदिन से तष्टित करने के बाद, यदि चार से भाग देने पर शेष बचे तो वह प्रश्न अशुद्ध होता है, और चार के भाग देने पर शेष न रहे तो फल को २६३६२७२०३ से गुणकर ३९४४७६३७५ का भाग देना, शेष अहर्गण बचेगा । यदि अहर्गण से प्रश्नानुसार इष्टवार न मिले तो अहर्गण को भाजक (३९४४७६३७५) में जब तक इष्टवार न मिले तब तक जोड़ना चाहिए ।

प्रश्नः—हे मित्र ! धीवृद्धिद के अनुसार गुरुवार, सोमवार और भौमवार को सूर्यादि उक्त ग्रहों के भगणादि शेष और अवमशेष का योग कुदिन से तष्टित करने पर १४६१२२७५०० शेष रहता है, तब उक्त दिनों में अहर्गण क्या होगा ? ।

उपपत्ति ।

(१) 'चक्राग्राणि गृहाग्रकाणि—' इत्यादि प्रश्न के अनुसार ग्रहों के शेष इस प्रकार होते हैं:—

चं,	भशे.	राशे.	अंशे.	कलाशे.	विकलाशे.
र,	भशे.	,,	,,	,,	,,
मं,	भशे.	,,	,,	,,	,,
गु,	भशे.	,,	,,	,,	,,
बु,	शीभशे.	,,	,,	,,	,,
शु,	शीभशे.	,,	,,	,,	,,
श,	भशे.	,,	,,	,,	,,

यहा इष्ट अहर्गण से चन्द्र आदि उक्त प्रत्येक ग्रहों के अलग अलग भगण आदि पाच शेषो को सिद्ध करके उनका योग करने से पैंतीस शेषों का योग होता है । और उसी अहर्गण से उत्पन्न अवम शेष का योग करने से छत्तीस शेषोंका योग होता है । इस योग को धीवृद्धिद में पठित कुदिना से तष्टित करके शेषको जानकर अहर्गण और ग्रहका ज्ञान करना चाहिए।

यहा पर रूप अहर्गण कल्पना करके उक्त छत्तीस शेषोंको अलग अलग सिद्ध करके उनका योग करने पर ११८४०७१८८६००६६८ होता है। इसको धीवृद्धिद के कुदिन १५७७६१७५०० से तष्टित करने पर शेष २५६४००६६८ रहता है। यह शेष=अ। कुदिन=कु। इष्ट अहर्गण=य।

इस प्रकार, $\frac{२५६४००६६८}{१५७७८१७५००} = \frac{अ}{कु}$ =रूप अहर्गण में छत्तीस शेषों के योग को कुदिन से तष्टित करने पर शेष रहता है।

फिर अनुपात किया,

$१ \quad \frac{अ}{कु} \quad : य = \frac{अ \times य}{कु}$, यह कुदिन से तष्टित करने पर इष्ट शेष के समान होता है। यहा पर 'कु' का भाग देने पर लब्धि=क कल्पना किया तब ;

अ × य — कु × क=इष्टशेष=१४६१२२७५००=म। चारका अपवर्तन देने से हुआ,

६४८५०२४२ य—३६४४७६३७५ क=१४६१२२७५००=अ × य—कु × क=म= $\frac{अ \times य - म}{कु}$ =क। अब यहा पर रूप शुद्धि में स्थिर कुट्टक से गुणक सिद्ध करने से हुआ २६३६२७२०३ फिर 'अभीप्सितक्षेपविशुद्धिनिघ्ने इस विधि के करने पर $\frac{२६३६२७२०३ \times म}{कु} = \frac{२६३६२७२०३ \times म}{३६४४७६३७५}$ =य। यह अव्यक्त-इष्ट अहर्गण का मान सिद्ध हुआ।

पहिले अ × य — कु × क=म इस समीकरण में 'अ' और 'कु' में चार का अपवर्तन दिया गया है इस लिए 'म' मान भी चार से अपवर्त्य है। नहीं तो इष्ट

उदाहरण सिद्ध होजायगा। 'म' का मान 'उद्दिष्ट कहृतष्टम्—' है। इसप्रकार प्रश्नका भङ्ग उपपन्न हुआ।

'पञ्च त्रिंशदहो सखे—' इस उदाहरण का 'उद्दिष्टं—' इस भङ्ग के अनुसार गणित इसप्रकार होता है —

धीवृद्धिदके अनुसार एक युगमें छत्तीस शेषोंका योग १४६१२२७५०० होताहै।

$\therefore$ १४६१२२७५००÷४=३७२८०६८७५ और—

$\therefore \frac{३७२८०६८७५ \times २६३६२७२०३}{३६४४७६३७५}$=२७७४६५४७१ और शेष

१००००=अहर्गण के है।

$\therefore \frac{१००००}{७}$=१४२८; ४ शेष, अर्थात् १००००=अहर्गण, भौमवार के दिन सिद्ध हुआ क्योंकि युग शुक्रवार को आरम्भ हुआ है।

इसी प्रकार सोमवार को अहर्गण सिद्ध करने में इस १०००० अहर्गण में भाजक को जोड़ना चाहिए, जबतक शेष में ७ का भाग देने पर शेष ३ बचै।

$\therefore \frac{१०००० + ३६४४७६३७५ \times २}{७} = \frac{७८८६६८७५०}{७}$।

=११२६०६८२१,३ शेष=अहर्गण सोमवार के दिन सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार,

$\frac{१०००० + ३६४४७६३७५ \times ३}{७} = \frac{११८३४४८१२५}{७}$=१६६०६४०१७;

६ शेष=गुरुवार को अहर्गण सिद्ध हुआ। इसप्रकार वासनाभाष्य में लिखित गणित की सङ्गति होती है ॥ १५ । १६ ॥

इदानीं निरग्रचक्रादपि ग्रहादहर्गणमाह।

लिप्तार्धं दशयुग्भवन्ति विकलास्तासां वियोगस्त्रिगुण—
भागा भागदलं गृहाणि शशिनः खत्रीन्दवस्तद्युतिः।
दृष्टा चन्द्रदिने कदा वद पुनस्तादृक् च कान्याहनि
व्यक्ताऽव्यक्तविविक्तयुक्तिगणितं विद्वन् विजानासि चेत्॥ १७॥

प्रभा।

शशिनः लिप्तार्धमित्यादि सम्बन्धः। काव्याहनि शुक्रवासरे 'शुक्रो दैत्यगुरुःकाव्यः' इत्यमरः। व्यक्तं चाव्यक्तं च तयोर्या विविक्ता पवित्रा युक्तिः सैव गणितं चेत् विजानासि। शेषं स्फुटम्।

भाषाभाष्य।

चन्द्रमा की कला के अर्ध में दश जोडने से विकला के तुल्य होता है। और ा, विकलाके अन्तर मे तीन जोड देने से अश होता है। और अश का आधा ा के समान होता है। इन राशि, अश, कला और विकलाओं का योग १३० ा है। यह राश्यादि चन्द्र का योग सोमवार को यदि हुआ तो यही योग ार के दिन कब उत्पन्न होगा? यदि तुम पाटीगणित और बीजगणित में र हो तो बतलाओ ॥ १७ ॥

अस्य भङ्गः।

राश्यादेर्विकला दृढकुदिनगुणाश्चक्रविकलिकाभक्ताः।
शेपत्यागे लब्धं रूपयुतं भगणशेषं स्यात् ॥ १८ ॥
शेषोनहरो विकलाशेषं तस्मिन् कहाधिके ज्ञेयः।
स खिलः खेटस्त्वखिले विकलाशेषाद्युपिण्डो वा ॥ १९ ॥
दृढभगणा येन गुणाश्चक्राग्रोना दृढकहैः शुद्धाः।
सद्गुणो दृढकुदिनयुतस्तावद्यावदीप्सितो वारः ॥ २० ॥

उदाहरणम्।

ाग्रं शशिनः खखाभ्रगगनप्राणर्तुभूमि १६०००० हृतं
ुध्येचेन्न खिलं फलं कृतगुणाष्टाङ्गाहिनागा ८८६८३४ हृतम्।
ाग्न्यङ्कशराङ्कै ६५६३१३ अविभजेत्स्याच्छेपमङ्गांगण-
तानत्र हरं क्षिपेदभिमते यावद्भवेद्वासरे ॥ २१ ॥
जेप्तार्धं दशयुगित्यत्र लिप्ताप्रमाणं यावत्तावत् १ प्रकल्प्योक्त-
कृत्वाव्यक्तबीजक्रियया ज्ञातः शशी ११ । २२ । ५८ । ३६

अस्य भगणानां कुदिनानां चापवर्तः १६५०००० । दृढभगणाः ३५००२ । दृढकुहाः ६५६३१३ जातोऽहर्गणः २५७१५१ । अयं जातः शनिवासरे । द्विगुणे क्षेपे क्षिप्ते जातः सोमवासरे २१६६७७७ । पञ्चगुणे क्षिप्ते जातः शुक्रवासरे ५६६५०२६ । सप्तगुणे क्षिप्तेऽनेकधा सोमवासरे २१६६७७७ । वा ८८६३६६८ वा १५५५८१५६ इत्यादि । अथवा शुक्रवासरे ५६६५०२६ वा १२६८६२२० वा १६३८३४११ इत्यादि । एवमन्येषां ग्रहाणां स्थिरकुट्टकः कार्यः ।

अत्र वासना । भगणशेषं चक्रविकलाभिर्यदि गुण्यते कहै र्विभज्यते तदा विकलात्मको ग्रहो लभ्यते । शेषं विकलाशेषं स्यात् । अतो विलोमविधिना भगणशेषानयनम् । राश्यादेर्विकलाः १२७०७१६ । दृढकुदिनै ६५६३१३ र्गुणिताश्चक्रविकलाभि १२९६००० र्भक्ताः । लब्धम् ६३७६५८ शेषम् ३३१०४७ । शेषत्यागे लब्धं रूपयुतमतः कृतम् । यतोविकलाशेषं क्षिप्त्वा चक्रविकलाभिर्भाज्याः । तद्विकलावशेषमज्ञातम् । अथ विकलाशेषज्ञानमुच्यते । यदत्रावशेषं त्यक्तं तेनोनाश्चक्रविकला न पूर्यन्ते तास्तत्र क्षिप्त्वा यदि भागो ह्रियते तदा लब्धिः सरूपा लभ्यते । अतस्तदेव विकलाशेषम् । विकलाशेषेण कुदिनेभ्यो न्यूनेन भवितव्यम् । एवं यज्ज्ञातं तत्किञ्चिदधिकमपि भवति । तदसत् । उद्दिष्टग्रहस्य खिलत्वात् ।

भाषाभाष्य ।

राश्यादि चन्द्र का विकलापिण्ड करके दृढ अर्थात् अपवर्तित कुदिनों से गुण कर चक्रकला का भाग देकर जो शेष बचै उसको छोड़कर, लब्धि में एक जोड़ने से भगण शेष होताहै । छोड़ेहुए शेष को हर अर्थात् भाजक में घटादेने से विकला

शेष होताहै। यदि यह विकलाशेष दृढकुदिनों से अधिक हो तो प्रश्न अशुद्ध होगा और उसके अनुसार सिद्ध ग्रह खिल होगा। यदि अधिक न होगा तो विकलाशेप से अहर्गण सिद्ध (कुट्टक से) होगा। अथवा वह अहर्गण होगा जिस से दृढभगणों को गुणकर और चक्रशेष को उसमें घटा कर दृढकुदिनों का भाग देनेपर शेष न बचैगा। दृढकुदिनों को अहर्गण में तबतक जोड़ना चाहिए जबतक इष्टवार न सिद्ध हो।

उदाहरणः—चन्द्रमा के भगणशेष में १६५०००० का भाग देनेसे यदि शेष न रहै तो उदाहरण खिल नहीं होता। उस स्थिति में, चन्द्रके दृढ भगण शेप को ८८६८३४ से गुण कर और ९५६३१३ का भाग देने से शेष अहर्गण सिद्ध होता है। इस में भाजक को इष्टवार सिद्ध होने तक जोड़ना चाहिए।

उपपत्ति।

(१) 'लिप्तार्धं दशयुग्भवन्ति विकलाः—' इस उदाहरणके अनुसार चन्द्रका राश्यादि अवयव समीकरण से इसप्रकार सिद्ध होता है.—

कला=य, कल्पना किया। तब—

य+१०=विकला। इसका और कला का अन्तर तीन से युक्त य—

$\frac{\text{य}+२०}{२}+३$=अंश। इसका अर्ध

$\frac{\text{य}-\frac{\text{य}+२०}{२}+३}{२}$=राशि। इन चारों का योग एकसौ तीसके समान है

$$\text{य}+\frac{\text{य}+२०}{२}+\text{य}-\frac{\text{य}+२०}{२}+३+\frac{\text{य}-\frac{\text{य}+२०}{२}+३}{२}$$

$$=\text{य}+\frac{\text{य}+२०}{२}+\frac{\text{य}-१४}{२}+\frac{\text{य}-१४}{४}=१३०$$

$$९\ \text{य}-२=५२०=९\ \text{य}=५२२$$

$$\therefore \text{य}=\frac{५२२}{९}=५८।$$

इस से उक्त उदाहरण के अनुसार,

५८=कला।

$$\frac{५८+२०}{२}=३६=विकला।$$

५८—३६+३=२२=अंश।

$$\frac{२२}{२}=११=राशि।$$

इस प्रकार राश्यादि चन्द्र ११ रा। २२। ५८′। ३६″ सिद्ध हुआ।

(२) 'राश्यादेर्विकला.—' इसकी सङ्गति इस प्रकार है.—उक्त विधि से राश्यादि चन्द्र ११ रा। २२। ५८′। ३६″ यह ज्ञात हुआ है इसकी विकला ?२७०७१६″। और चक्र विकला १२९६०००″।

कल्पकुदिन=१५७७६१६४५००००

चन्द्रभगण=५७७५३३ इस १६५०००० संख्या से तष्टित करने पर

दृढकल्पकुदिन=६५६३१३

दृढचन्द्रभगण=३५००२०

अब अनुपात किया—

कंकु : कल्पभ :: अह : इष्टभगण,

$$\therefore \frac{कभ \times अह}{ककु}=इष्टभगण+\frac{भशे}{ककु}।$$

अथवा, दृकु : दृकल्पभ :: अह : इष्टभगण,

$$\therefore \frac{दृकभ \times अह}{दृकु}=इष्टभगण+\frac{भशे}{दृकु}।$$

यदि भगण शेष रहे और उस से ग्रह सिद्ध करना हो तो, यहां पर भगण शेष को चक्र विकला से गुण कर कल्पकुदिन का भाग देनेसे लब्धि विकलात्मक चन्द्रमा सिद्ध होगा। और शेष विकला शेष रहैगा।

यदि विकलात्मक चन्द्रमा से भगणशेष जानना हो तो विलोम विधि करनी चाहिये।

$\therefore$ $\frac{\text{चन्द्रविक} \times \text{कल्पकु}}{\text{चक्रविक}}$=भगण शेष।

यहां पर कल्पकुदिन दृढ अर्थात् अपवर्तित लेना चाहिए वह ६५६३१३ है। और चन्द्रमा का दृढ कल्पभगण ३५००२ है। इस लिए पूर्व विधि का रूप यों हुआ।

$$\frac{१२७००७१६ \times ६५६३१३}{१२६६००} = \frac{१२१५२०५०६६०४७}{१२६६०००} = ६३७६५८ \text{ लब्धि}$$

और शेष ३३१०४७ हुआ।

$\therefore$ ६३७६५८ फल
१ जोड़ देने से
६३७६५६=भगण शेष हुआ।

यहां पर विशेष यह है कि विकलाशेष दृढ कुदिन से सर्वदा अल्पही रहता है। इस लिए यदि केवल विकलात्मक ग्रह को दृढ कुदिन से गुणकर चक्रविकला का भाग दिया जाय तो लब्धि रूपोन भगण शेष होगी। और शेष चक्रविकला से कम रहेगा। और चक्रविकला में विकला शेष को घटा देने पर शेष पूर्व शेष के तुल्य होगा। इस लिए इन दोनों के योग करने पर चक्रविकला के तुल्य होने से नाश हो जानेपर लब्धि रूपोन होगी। इसकारण केवल विकलात्मकग्रह को दृढ कुदिनों से गुणकर चक्रविकला का भाग देने पर लब्धि में एक जोड़ने से भगण शेष होगा। इसीलिए कहा है 'शेषत्यागे लब्धं रूपयुतं भगणशेषं स्यात्।'

अब विकलात्मकग्रह को दृढकुदिनों से गुणकर चक्रविकला का भाग देने पर शेष और विकलाशेष का योग चक्रविकला के समान होता है इसलिए उस शेष को चक्रविकला में घटा देने से शेष विकलाशेष ही रहेगा। परन्तु विकलाशेष सदा दृढकुदिन से अल्प रहता है इसलिए यह भी अल्प ही रहेगा। नहीं तो उदाहरण खिल होगा।

इसकारण 'शेषोनहरो विकलाशेषं—' इत्यादि नियम से;

हर= −१२६६०००
शेष= −३३१०४७
$\overline{\text{९६४९५३}}$=विकलाशेष।

परन्तु यह विकलाशेष दृढकुदिन ९५६३१३ से अधिक होने से जो राश्यादि ११ । २२ । ५८′ । ३६″ चन्द्र सिद्ध हुआ है वह खिल है ।

(३) चन्द्रमा के भगण शेष से अहर्गण सिद्ध करनेके लिए 'चक्राग्रं शशिन' इत्यादि उदाहरण कल्पना किया गया है । कल्पना किया,

भ=भगणशेष ।

कं=१५७७९१६४५०००, कल्पकुदिन ।

च=५७७५३३००००००, चन्द्रभगण ।

अ=अहर्गण ।

तब अनुपात किया,

$$\text{क} : \text{च} :: \text{अ} : \text{इष्टभगण} + \frac{\text{भ}}{\text{क}} \text{। अथवा } \text{य} + \frac{\text{भ}}{\text{क}} \text{। इष्टभगण} = \text{य}$$

कल्पना कर लेने से ।

$$\therefore \text{च} \times \text{अ} - \text{क} \times \text{य} = \text{भ} :$$

इस समीकरण में 'च' और 'क' को उदाहरणानुसार १६५०००० से भाजित करना है इसलिए 'भ' को भी भाजित करना चाहिए नहीं तो उदाहरण खिल हो जायगा ।

इसलिए दोनों तरफ १६५०००० का भाग देने से हुआ;

३५००२×अ—९५६३१३×य=भं, वा चं×अ—कं×य=भं

अथ, चं×अ—कं×य=१ अथवा, ३५००२ अ—९५६३१३×य=१

∴ अ=८८६८३४; 'कृतगुणाष्टाङ्काहिनागाः । '

+ श्रीबापूदेवशास्त्री जी ने अपने शोधित शिरोमणि के टिप्पणी में ऊपर लिखे नियमों के अनुसार 'राश्यादिविकला—' इत्यादि भङ्गको परिवर्तित करके इसप्रकार लिखा है—

'राश्यादिशेषगुणा दृढकुदिनगुणाश्चक्रविकलाविभक्ताः ।
शेषाभावे विकलाशेषाभावोऽत्र विज्ञेयः ॥
यल्लब्धं तद्भगणोपरित स्याच्छेषमत्र तु ।
शेषाणि लब्धं रूपयुतं भगणशेषं स्यात् ॥
शेषोऽधिको विकलाशेषं तस्मिन् दृढकुदिनाभ्यधिके ।
ज्ञेयं स खिलं ... विकलामतोऽप्युपगम्य ॥
येनेष्टेन गुणकारश्चक्रविकलाविलिप्तिकामयुता ।
दृढकुदिनापवर्तितचक्रकला सा दृढकुदिनाप्तयुतिः ॥
क्रमतः पर्ययशेषं विकलाख्यं वा भवति ।
तस्माद्गुणात् पेटाद्दृढकुदिनगुणनेकधा स स्यात् ॥

इस लिए ६३७६५६×८८६८३४=८३१५४७८८१६०६ हुआ, इसमें ६५६३११३ का भाग देने से फल ८६६५५५ मिला और शेष २५७१६१ अहर्गण हुआ। यही वासनाभाष्य में अहर्गण लिखा है।

परन्तु भगणशेष ६३७६५६ में नियमानुसार १६५०००० इसका भाग नहीं लगता इसलिये उदाहरण खिल सिद्ध होता है। लेकिन आचार्य ने उक्त अहर्गण को शुद्ध माना है ॥ १८। २१ ॥

१—यदि उक्त प्रश्न—

'लिप्तार्धं शिवयुग्भवन्ति विकलास्तासां त्रियोगोऽब्धियुग्।
भागा भागदलं गृहाणि शशिन. कुनीन्दवस्तद्द्युति ॥'

यों कल्पना किया जाय तो उदाहरण शुद्ध होगा। जैसा—

$\text{य}=\text{क},\ \frac{\text{य}}{२}+११=\frac{\text{य}+२२}{२}=\text{वि},\ \text{य}-\frac{\text{य}+२२}{२}+४=\frac{\text{य}-१४}{२}=\text{अं},$

$\frac{\text{य}-१४}{४}=\text{रा}$, इनका योग एकसौ एकतीस के समान है।

$$\text{य}+\frac{\text{य}+२२}{२}+\frac{\text{य}-१४}{२}+\frac{\text{य}-१४}{४}=\frac{९\,\text{य}+२}{४}=१३१,$$

$$९\,\text{य}+२=५२४,\ ९\,\text{य}=५२४-२,\ ९\,\text{य}=५२२,\ \text{य}=\frac{५२२}{९}$$

=५८ कला। उत्थापन देने से राश्यादि चन्द्र सिद्ध हुआ $\overset{\text{रा}}{११}$।२२°।५८'।४०" इनका योग १३१ है।

'राश्यादेर्विकला—' इस नियम के अनुसार चन्द्रकी विकला दृढकुदिनों से गुणित चक्रविकलाओं से भक्त हुई

$$\frac{१२७०७२०\times९५६३१३}{१२९६०००}=\frac{१२१५२०६०५५३६०}{१२९६०००}$$

लब्धि=९३७६५८ शे १२८७३६० इस शेष को हर में घटाने से शेष

$$\begin{array}{r} १२९६००० \\ \underline{१२८७३६०} \\ ८६४० \end{array}$$

यहां विकला शेष ८६४० दृढकुदिन ९५६३११ से न्यून है इस कारण उदाहरण शुद्ध है ॥

अथ खिलोदाहरणम् ।

राशयः खं ० लवाः पञ्च ५ कलाः षड्वर्गं ३६ संमिताः ।
विकला गोभुवो १९ नेदृङ्मध्येन्दुरुदये क्वचित् ॥ २३ ॥

चं० । ५ । ३६ । १९ । अतो राश्यादेर्विकला इत्यादिके कृते शेषं सप्तविंशतिः२७। शेषोनहरो विकलाशेषमिदम् १२९५९७३। अस्मिन् दृढकुहाधिके ज्ञातः खिलः खेटः । ईदृशश्चन्द्रो मध्यम औदयिको न कदाचिद्भवतीत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

सूर्योदय के समय में मध्यम राश्यादि चन्द्र ०। ५ । ३६' । १९" कभी नहीं होसकता ।

'राश्यादेर्विकला.–' इत्यादि विधि से गणित करनेपर शेष २७ होता है इसको हर में घटादेने से विकला शेष १२९५९७३ सिद्ध होता है । परन्तु यह शेष दृढ कुदिन ९५६३१३ से अधिक है इसलिए यह उदाहरण खिल है ॥ २३ ॥

एवमनेकधा खिलत्वं कुट्टकविषयमभिधायेदानीं वर्गप्रकृतिविषयमाह ।

स्याद्यस्मिन्नधिमासशेषककृतिर्दिग्घ्नी सरूपा कृति-
र्व्येका शेषकृतिर्हता च दशभिः स्यान्मूलदा वा यदा ।
काले कल्पगतं तदा वदति यस्तत्पादपद्मं बुधाः
सेवन्ते बहुधा प्रमेयवियति भ्रान्ता भ्रमन्तोऽलिवत् ॥२३॥

उद्दिष्टं कुट्टके तज्ज्ञैर्ज्ञेयं निरपवर्त्तनम् ।
व्यभिचारः क्वचित्क्वापि खिलत्वापत्तिरन्यथा ॥ २४ ॥

स्पष्टार्थम्। अस्य वर्गप्रकृत्याभङ्गः। तत्राधिमासशेषप्रमाणं याव-त्तावत्। अस्य कृतिर्दिग्घ्नी सरूपा जाता। याव १० रू १ । इष्टं ह्रस्वमित्यादिना जाते ह्रस्वज्येष्ठमूले ६ । १९ । वा २२८।७२१

अत्र ह्रस्वं यावत्तावन्मानं तदेवाधिमासशेषम् ६। वा २२८।
अथ द्वितीयोदाहरणेऽधिमासशेषप्रमाणं यावत्तावत् १। अस्य
कृतिर्व्येका दशहृता च जाता याव $\frac{1}{10}$ रु $\bar{1}$। अस्य मूलप्रमाणं
कालकः १। अतः कालकवर्गसमीकरणे शोधने च कृते जातं
प्रथमपक्षमूलम्। या १। परपक्षस्यास्य काव १० रू १। वर्ग-
प्रकृत्यामूले जाते ते एव ६। १६ वा २२८। ७२१ अत्र कनिष्ठं
कालकमानं ज्येष्ठं यावत्तावन्मानं तदेवाधिमासशेषम्। १६ वा
७२१। अतः कल्पगतानयनं कुट्टकेन। तत्राधिमासा भाज्यः।
रविदिनानि हारः। अधिमासशेषं पद्कमितमृणक्षेपः। ननु कथा
मयं क्षेपः। अत्र भाज्यभाजकयोर्लक्षत्रयेणापवर्तनं तत्तु नास्य
क्षेपस्येति खिलत्वापत्तिः। सत्यम्। अत उक्तंमुद्दिष्टं कुट्टके तज्ज्ञैरि-
त्यादि। अतो लक्षत्रयेणापवर्तने कृतेऽधिमासशेषं पद्दृष्टम्। अत-
कुट्टकेन ज्ञातं कल्पगतं चतुर्भिरूनानि त्रयोविंशतिशतवर्षाणि
२२६६। तथा गतमासाः ६। पद्तिथयश्च ६।

प्रभा।

प्रमेयो वस्तुभूतार्थः स एव वियदाकाशः तस्मिन् भ्रान्ताः संदिहानाः,
अलिवद्भ्रमन्त इतस्ततोऽटन्तो बहुधा सेवन्ते भजन्ति। तज्ज्ञैःकुट्टकग-
णितकोविदैः क्वचित्तत्प्रसङ्गे निरपवर्तनं ज्ञेयमर्थात् भाज्यहारक्षेपाणां
मध्ये क्षेपको नापवर्त्यः। परन्तु येन छिन्नौ भाज्यहारौ न तेन क्षेपश्चै-
त्तद्दुष्टमुद्दिष्टमेव, इति नियमेन कुत्रचिद् क्षेपेऽपवर्तनराहित्याद् व्य-
भिचारः खिलत्वापत्तिश्च जायते। अत्राचार्यैः क्षेपकोनापवर्तितः किन्तु
दृढएवाङ्गीकृतः। परं नैष नियमः सर्वत्र प्रभवतीति ज्ञेयम्।

भाषाभाष्य।

अधिमासशेष के वर्गको दश से गुणकर फलमें एक जोड़ने से कम वर्ग हो-
जायगा? अथवा कव अधिमासशेष के वर्ग में एक घटाकर दशका भाग देने पर

फल मूलप्रद होगा ? यह स्थिति कितने कल्पगत वर्षों में होगी ? इसका उत्तर जो कहता है उसके चरणकमल की, प्रमेयरूपी आकाश में भ्रम में पड़कर भ्रमर की भांति भ्रमण करतेहुए विद्वान्लोग अनेकप्रकार से सेवा करते हैं।

कुट्टकविशारदों को कुट्टक गणित के प्रसङ्ग में (यहांपर) क्षेपक में अपवर्तन नहीं देना चाहिए। परन्तु अपवर्तन न देने से गणित में कहीं व्यभिचार कहीं खिलता की आपत्ति होती है।

यहांपर अभिप्राय यह है कि भाज्य हार और क्षेप में केवल भाज्य हार ही में अपवर्तन देना क्षेप में न देना, उसको दृढ भाज्यहार-सम्बन्धि मानलेना चाहिए परन्तु भाज्यहार और क्षेप इन तीनोंको किसी एकही अङ्क से तष्टित करना चाहिए, नहीं तो 'येन छिन्नौ भाज्यहारौ न तेन क्षेपश्चैतदुष्टमुद्दिष्टमेव।' इस नियम से क्षेपक खिल होजायगा। पर आचार्य ने क्षेपको दृढ मानकर उसमें अपवर्तन नहीं दिया। पर यह नियम सर्वत्र नहीं होता इसीलिए आचार्य ने खिलत्वापत्ति लिखीहै।

उपपत्ति।

१-इस के पहले कुट्टक विषयक प्रश्न थे, अब वर्गप्रकृति के प्रश्न दिखलाते हैं।

अधिमास शेष = अ, कल्पना किया, तो प्रश्नानुसार,

$$१० अ^२ + १ = ज^२,$$ मान लिया।

यह वर्गप्रकृति का विषय है, इस में प्रश्न होता है-किस संख्या के वर्ग को दश से गुणकर फल में १ जोड़ने से मूल मिलता है ?

क्षेपक में 'इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन वा भजेत्।' इत्यादि विधि से कनिष्ठ, ज्येष्ठ का साधन किया।

प्रकृति=१० क्षेप=१

इष्ट = य = ३ मानने से,

$$कनिष्ठ = \frac{२ य}{१० - य^२} = \frac{२ \times ३}{१० - ९} = ६ = अ$$

$$\therefore \quad ज्येष्ठ = \sqrt{१० अ^२ + १} = \sqrt{३६१} = १९ = ज.$$

$$\therefore \quad अधिमास शेष = ६$$

इस प्रकार सिद्ध कनिष्ठ = ६ ज्येष्ठ = १९ क्षेप = १ से भावना द्वारा दूसरे कनिष्ठ और ज्येष्ठ २२८। ७२१ हुए।

२—दूसरे प्रश्न में, प्रश्न के अनुसार—

$\frac{अ^2 - १}{१०}$ = $ज^2$, अथवा $अ^2$ = १० $ज^2$ + १, यह भी पूर्व के समान ही है। भेद इतना है कि कनिष्ठ ज्येष्ठ का मान और ज्येष्ठ कनिष्ठ का होगा।

∴ अ = १६ वा ७२१;

पूर्वविधि से अधिमास शेष = ६, इस के साधनार्थ अनुपात यह है—

∵ कसौ : क अधि ∵ : इसौ, वा अ : ज + $\frac{६}{कसौ}$

∴ क अधि × अ = कसौ × ज + ६;

या, ज = $\frac{क अधि × अ - ६}{कसौ}$। यहां कुट्टक का विषय हुआ। अर्थात् कल्पाधिमास को किस गुण से गुणकर, उस में अधिमास शेष को घटाकर, कल्प सौर दिन का भाग देने से निःशेष होता है। यहां जो गुण आवेगा वही इष्टसौर दिन और लब्धि गताधिमास होंगे।

∴ भाज्य = क अधि, = १५९३३००००० } यहां भाज्य और
हार = कसौ, = १५५५२०००००००० } हार में ३०००००
शेप = अधिशे, = −६ } तीन लाख का अपवर्तन देकर दृढ़ किया है, पर उसका क्षेप में न लगने से उसको अपवर्तित नहीं किया, यही खिलता का विषय है। तीनों एकही से अपवर्तित होने चाहिएं।

इसप्रकार—

दृढभाज्य = ५३११.

दृढ़हार = ५१८४०००.

इनका पूर्व स्वरूप में उत्थापन देने से हुआ—

ज = $\frac{५३११ अ - ६}{५१८४०००}$; अब कुट्टक गणित से इष्टसौर दिन ज्ञात हुए। वर्ष = २२६६, मास = ६, तिथि ६। यही सब आचार्य के उदाहरण का गणित है।

आचार्य कमलाकर ने तत्त्वविवेक की शेष वासना में इस विषय का विचार और भास्कराचार्य के अभिमत कनिष्ठ-ज्येष्ठ साधन की वासना भी उदाहरण पर दिखलाई है॥ २३–२४॥

इदानीं देशविशेषमुद्दिश्य पलांशप्रश्नानाह—

प्राच्यामुज्जयिनीपुरात्कुपरिधेस्तुर्येऽशके यत्पुरं
तस्मात्पश्चिमतोऽपि तावति ततोऽप्यन्यत्पुरारेर्दिशि।
नैर्ऋत्यां यदतोऽपि तेषु नगरेष्वाचक्ष्व मेऽक्षांशकान्
गोलक्षेत्रविचक्षणक्षणमिदं संचिन्त्य चित्ते मुहुः ॥ २'

प्रभा।

कुपरिधेर्भूपरिधेस्तुर्यांशके चतुर्थांशके नवत्यंशान्तर इत्यर्थः। पुर
शिवस्तद्दिश्यैशान्याम्। इदं क्षणं मुहुरसकृच्चित्ते सञ्चिन्त्य वि
तेषूक्तदिग्वर्तिषु नगरेष्वक्षांशकान् पलांशानाचक्ष्व कथयेत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

अब देशस्थिति बतलाकर अक्षांशप्रश्न करते हैं:—उज्जयिनी से पूर्व में
अंशपर कोई नगर है और वहीं से पश्चिम में नव्वे अंशपर कोई नगर है,
पूर्व में जो नगर है उससे ईशानकोण में नव्वे अंशपर और पश्चिम में जो न
है उससे वायुकोण में नव्वे अंशपर कोई नगर है। हे गोलक्षेत्रचतुर! कुछ देर अ
चित्त में इन प्रश्नों को खूब विचारकर, उक्त नगरों में अक्षांश बतलाओ ॥ २५

अस्य भङ्गः।

दिग्ज्यापलभाक्षुण्णे त्रिज्यार्कहृते च बाहुकोटिज्ये।
अपमृतियोजनलवजे तदन्तरं दक्षिणे भागे ॥ २६ ॥
ऐक्यं सौम्ये भूमेर्व्यस्तं पादाधिकेऽपसरे।
रविगुणमक्षश्रवसाभक्तं तच्चापमक्षांशाः ॥ २७ ॥

अत्र तद्देशवशेन दिशो ज्ञेयाः। न स्वदेशवशेन। अत्र प्र
प्रश्नेऽपसारयोजनलवा नवतिः ९०। तद्दोर्ज्या त्रिज्या ३४३८
कोटिज्या पूर्णम् ०। दिग्ज्यादोर्ज्ययोर्घातः पूर्णम् ०। कोटिज्या
लभयोर्घातश्च पूर्णम् ०। एते त्रिज्ययार्केश्च यथाक्रमं हृते तया

शून्ये एव० । ०। तयोर्योगे वियोगे वा शून्यमेव ०। एतद्विगुण-मक्षश्रवणहृतं शून्यमेव। अतो यमकोटिपत्तने शून्यं पलांशाः ०। अथ द्वितीयप्रश्नेऽप्येवं शून्यं पलांशाः। अतो यमकोटेः प्रतीच्यां लङ्कैव। अथ तृतीयप्रश्ने दिग्ज्या २४३१। इयमपसारदोर्ज्यया त्रिज्यामितया गुणया त्रिज्यया च भाज्या। अत इयमेव २४३१। लङ्कायां पलभापूर्णम् ०। तद्गुणार्कहृता च कोटिज्यापूर्णम्। तयोर्योगस्तादृश एव २४३१। इयमर्कगुणा लङ्काक्षकर्ण १२ हृता विकृतैव २४३१ दोर्ज्या। अस्याश्चापं पलांशाः ४५। यत्रैते पलांशास्तत्र पलभा १२। पलकर्णश्च १६। ५८। १४।

अथ चतुर्थप्रश्ने सैव दिग्ज्या २४३१। तथैवोक्तविधौ कृतेऽविकृतैव। किंतु इयमर्कगुणाक्षकर्ण १६। ५८। १४ हृता। अस्याश्चापं पलांशाः ३०।

प्रभा।

अपसृतिरपसरणमेकस्थानादपरस्थानगमनं तस्या ये योजन लवा-स्तदुत्पन्ने बाहुकोटिज्ये क्रमेण दिगंशानां ज्यया पलभया गुणे त्रिज्यया द्वादशाभिर्हृते भक्ते भूमेर्दक्षिणे भागे नगरस्थितौ लब्धफल-योरन्तरं सौम्ये भागे ऐक्यं च विधेयम्। पादाधिके नवत्यंशाधिकेऽप-सरेतु व्यस्तं पूर्वोक्तया विपरीतं विधेयम्। एवमानीतफलं रविगुणमक्ष-श्रवसा पलकर्णेन भक्तं तच्चापमक्षांशाः स्युः॥

भाषाभाष्य।

उज्जयिनी से जिस नगर का अक्षांश निश्चय करना हो वह उस से जिस दिशा मे जितना हटा हो उस अन्तर को अपसार योजन करते हैं। अपसार योजनों का अंश करके उस की भुजज्या और कोटिज्या सिद्ध करना। फिर दोनों को क्रमसे दिगंशज्या और पलभा से गुणकर त्रिज्या और द्वादश का भाग देना। यदि इष्ट

नगर दक्षिणदिशा में स्थित हो तो फलों का अन्तर करना और उत्तर में हो तो योग करना चाहिये। यदि अपसारयोजन ९०° नव्वे अंश से अधिक हों तो उक्त फलों का दक्षिणदिशा में योग और उत्तरदिशा में अन्तर करना चाहिये। इस प्रकार अन्तर को सिद्ध करके उसे द्वादश से गुणकर पलकर्णका भाग देने से फल इष्ट नगरमें अक्षांश सिद्ध होते हैं।

यहां आचार्य ने वासनाभाष्य में चारों प्रश्नों का उदाहरण दिखलाया है उसके अनुसार गणित इस प्रकार है:—

कल्पना किया,

द=दिगंश।

अ=दो नगरों का अंशात्मक अन्तर।

प=इष्ट नगर की पलभा।

क=अक्षकर्ण।

अं=किसी दूसरे नगर का अक्षांश।

अब 'दिग्ज्यापलभाघुणे—' इत्यादि विधि से—

$$\text{ज्या अं}=\left(\frac{\text{ज्या अ}\times\text{ज्या द}}{\text{त्रि}}\pm\frac{\text{कोज्याअ}\times\text{प}}{१२}\right)\times\frac{१२}{\text{क}}।$$

अब प्रथम प्रश्न में द=०°, अ=९०°, प=५ अंगुल, उज्जयिनी में। और $\text{क}=\sqrt{१२^२+५^२}=१३$।

$$\therefore \text{ज्या अं}=\left(\frac{३४३८\times०}{३४३८}\pm\frac{०\times५}{१२}\right)\times\frac{१२}{१३};$$

$$=(०\pm०)\times\frac{१२}{१३}=०;$$

$\therefore$ अं=०=अक्षांश यमकोटि में सिद्ध हुआ।

(२) दूसरे प्रश्न में, द=०°, अ=९०°, प=० अंगुल यमकोटि में। इसलिये क=१२;

$$\therefore \text{ज्या अं}=\left(\frac{३४३८\times०}{३४३८}\pm\frac{०\times०}{१२}\right)\times\frac{१२}{१२};$$

$$=(०\pm०)\times\frac{१२}{१२}=०;$$

$\therefore$ अं = ० = अक्षांश लङ्का में सिद्ध हुआ।

(३) तीसरे प्रश्न में, द = ४५̊, अ = ६०̊, प = ० लङ्का में इसलिये क = १२ :

$$\therefore \text{ज्या अ} = \left(\frac{\text{३४३८} \times \text{२४३१}}{\text{३४३८}} + \frac{\text{०} \times \text{०}}{\text{१२}} \right) \times \frac{\text{१२}}{\text{१२}}$$

$$= (\text{२४३१} + \text{०}) \times \text{१} = \text{२४३१} : \text{ यही दिग्ज्या है ।}$$

इसका चाप करना ।

$$\therefore \text{अ} = \text{४५}' = \text{अक्षांश हुये ।}$$

(४) चौथे प्रश्न में, द = ४५̊, अ ६०̊, प = १२ अंगुल, इसलिये क = $\text{१२}\sqrt{\text{२}}$:

$$\therefore \text{ज्या अ} = \left(\frac{\text{३४३८} \times \frac{\text{३४३८}}{\text{२}}}{\text{३४३८}} \sqrt{\text{२}} \;\text{ऽ}\; \frac{\text{०} \times \text{१२}}{\text{१२}} \right) \times \frac{\text{१२}}{\text{१२}\sqrt{\text{२}}}$$

$$= \left(\frac{\text{३४३८}}{\text{२}} \sqrt{\text{२}} \;\text{ऽ}\; \text{०} \right) \times \frac{\text{१}}{\sqrt{\text{२}}} = \frac{\text{३४३८}}{\text{२}} ;$$

$$\therefore \text{अ} = \text{३०}^\circ = \text{अक्षांश सिद्धहुआ ॥ २६–२७ ॥}$$

अथान्यदुदाहरणम् ।

क्षितिपरिधिषडंशे प्राचि धारानगर्या—
त्रिनयनदिशि यद्वा पत्तने चाग्निभागे ।
कथय गणक तत्र क्षिप्रमक्षांशकान् मे
क्षितिपरिधितृतीयेऽथांशके तत्र तत्र ॥ २८ ॥

धारायामक्षप्रभा ५ । पलकर्णः १३ । अत्रापसारयोजनलवाः षष्टिः ६० । तद्दोर्ज्या २६७७ । कोटिज्या १७१६ । दिग्ज्यायाः प्राच्यायामभावः । तस्माद्भुजज्या पूर्णमेव । अतःकोटिज्या पलभागुणा अक्षकर्णा १३ सा। फलस्य चापमक्षांशाः । एवं प्राच्यां गतस्याक्षांशा० ११ । ५ । ० ईशानदिशं गतस्य दिग्ज्या २४३१ । दोर्ज्या दिग्ज्यागुणा त्रिज्याभक्ता कार्या । कोटिज्यातु पलभा ५ गुणा द्वादशभक्ता कार्या । तयोर्योगो द्वादशगुणः पलकर्ण १३ हृतः फलस्य चापमक्षांशाः ४६ । १८ । २४ । ईशान्यां गतस्य ।

एवमाग्नेय्यांच २१ । ५४ । ३४ । अथ त्र्यंशेऽपसारे लवाः १२० । एषां दोर्ज्या कोटिज्ये एते एव २९७७ । १७१९ । यथोक्तकरणेन जाताः प्राच्यां पलांशाः ११ । ५ । ० । ऐशान्याम् २१ । ५४ । ३४ । आग्नेय्याम् ४६ । १८ । २४ ।

अत्रोपपत्तिः । गोले खस्वस्तिकादिंन्द्रादिक्चिह्नोपरि दृङ्मण्डलं निवेश्यम् । तत्र खस्वस्तिकं स्वस्थानं कल्प्यम् । ततोऽपसारलवाग्रे दृङ्मण्डले पुरचिह्नं कार्यम् । ध्रुवात्पुरचिह्नोपरि नीयमानं वृत्ताकारं सूत्रं यत्र विषुवन्मण्डले लगति तत्पुरचिह्नयोरन्तरं तस्मिन् पुरे पलांशाः । अथ तज्ज्ञानार्थमुपायः । अपसारयोजनलवानां दोःकोटिज्ये कृते दिग्लवानां च दिग्ज्या । ततोऽनुपातः । यदि त्रिज्यामितया दोर्ज्यया दिग्ज्याभुजो लभ्यते तदापसारलवज्यया किमिति । फलं पुरसममण्डलयोरन्तरं याम्योत्तरं ज्यारूपम् । स भुजः । पुरविषुवद्वृत्तयोर्यावदन्तरं तावतैवान्तरेण सर्वत्र विषुवद्वृत्तादुत्तरतोऽन्यत् स्वाहोरात्रवृत्तं निवेशनीयम् । तस्य क्षितिजेन सह यत्र संपातस्तत्प्राच्यपरयोरन्तरमग्रा । यत्रोन्मण्डले लग्नं तत्प्राच्यपरयोरन्तरं पलांशाः क्रान्तिरूपाः । अथ तज्ज्ञानार्थमपसारलवानां कोटिज्या । स पुरचिह्नाल्लम्बःशङ्कुः । स पलभया गुणयो द्वादशभक्तो जातं शङ्कुतलम् । उत्तरगोल उत्तरभुजस्य शङ्कुतलस्य च योगेऽग्रा भवति । तदन्यथान्तरे कृते सत्यग्रा । अतो वैपरीत्येन क्रान्तिः । तदर्थमनुपातः । यदि पलकर्णे द्वादशकोटिर्लभ्यते तदाग्रया किमिति । फलं क्रान्तिज्यारूपाक्षज्या । अतस्तच्चापमक्षांशा इत्युपपन्नम् । भूमेः पादाधिकेऽपसरेऽतो व्यस्तं यतो विषुवद्वृत्तमधः सममण्डलादुत्तरतः ।

भाषाभाष्य।

धारा नगरी से पूर्वदिशामें भूपरिधि के छठे भागपर कोई नगर है, ईशान कोण और अग्नि कोण में भी छठे भाग पर नगर है। अथवा ये तीनों नगर उक्त दिशाओं में भूपरिधि के तीसरे भाग में स्थित हैं। हे गणक! इन नगरों में अक्षांश बतलाओ।

(१) पहले लिखेहुए प्रश्नों के समान इन प्रश्नों के भी उत्तर 'दिग्ज्या पलभा घुण्णे-, इत्यादि विधि से होते हैं। यहाभी कल्पना किया, द=०, अ=६०, प=५ धारा की इसलिये क=१३ अत 'दिग्ज्या पलभांघुणे-, से यह स्वरूपहुआ,

$$\text{ज्या अं}=\left(\frac{\text{ज्या अ}+\text{ज्याद}}{\text{त्रि}}\pm\frac{\text{को ज्या अ}\times\text{प}}{१२}\right)\times\frac{१२}{\text{क}}$$

फिर उदाहरणानुसार गणित करने से हुआ—

$$\text{ज्या अं}=\left(\frac{२९७७\times ०}{३४३८}+\frac{१७१९\times ५}{१२}\right)\times\frac{१२}{१३};$$

$$=\frac{१७१९\times ५}{१२}\times\frac{१२}{१३}=\frac{८५९५}{१३}=६६२\ \frac{९}{१३}$$

$\therefore$ अं = ११। १५′। १″ अक्षांश धारानगरी से पूर्व नगर में हुआ।

(२) दूसरे प्रश्न में द = ४५, अ ६०, प = ५, क = १३.

$$\therefore \text{ज्या अं}=\left(\frac{२९७७\times २४३१}{३४३८}\times\frac{१७१९\times ५}{१२}\right)\times\frac{१२}{१३};$$

$$=\frac{१९२९९१०९}{७४४९}=२६०४\ \frac{१९१३}{७४४९};$$

$\therefore$ अं = ४९। १८′। २४″ अक्षांश, धारा नगरी से ईशान कोण में ४५°। अपमार योजन पर सिद्ध हुआ।

(३) प्रश्न में, द = ४५°, अ ६०°, प = ५ क = १३.

$$\therefore \text{ज्या अं}=\left(\frac{२९७७\times २४३१}{३४३८}\ \text{s}\ \frac{१७१९\times ५}{१२}\right)\times\frac{१२}{१३};$$

$$=\frac{९५४९२३९}{७४४९}=१२८१\ \frac{७०७०}{७४४९}।$$

$\therefore$ अं=२१। ५४′। ३४″। अक्षांश, धारानगरी मे ईशान दिशा में वर्त्तमान नगर में सिद्ध हुआ।

(४) चौथे प्रश्न में, उक्त तीनों स्थानों को अपनी अपनी दिशा में भूपरिधि के तीसरे भागपर १२०° अपसार योजनों पर माना है।

यहां, ज्याश्र=ज्या१२०°=ज्या६०°=२९७७। को ज्याश्र=को ज्या १२०°=-ज्या ३०°=-१७१९। को ज्याद=०, प=५ और क=१२.

$$\therefore \text{ज्याश्च} = \left(\frac{२९७७+०}{३४३८} \pm \frac{१७१९+५}{१२}\right) + \frac{१२}{१३}.$$

$$= ६६२\frac{८}{१३}.$$

∴अं=११°। १५′। ०″ यह अक्षांश सिद्ध हुआ।

१२०° इतने अपसार योजन पर ईशान और अग्निकोणस्थित नगरों में पूर्व तुल्यही अक्षांश सिद्ध होंगे। इसलिये पूर्व दिशा में ११°। ५′। ०″। ऐशानी में २१°। ५४′। ३४″ आग्नयी में ४६°। १८′। २४″ ये अक्षांश सिद्ध होते हैं।

(२) 'दिग्ज्यापलभागुणाे–' इस विधि की उपपत्ति इसप्रकार है।

नीचे लिखे क्षेत्र में 'स' समध्य, गअह क्षितिज रेखा, 'ध्रु' ध्रुव., 'प' पुरचिह्न, 'सपन' पुरगत दृङ्मण्डल, 'सप' अपसार योजन 'अच' दिग्ज्या, 'पक' पुरक्ष अक्षांश 'प' विन्दु की क्रान्ति।

इस पुर के अक्षांश को सिद्ध करनेके लिए अनुपात किया

त्रिज्या : अच :: सप : भुज; पुर और सममण्डल के बीच में हुआ।

$$\therefore \text{भुज} = \frac{\text{अच} \times \text{सप}}{\text{त्रि}};$$

पुर और विषुवद्वृत्त का जितना अन्तर है उतने ही अन्तर पर विषुवद्वृत्त से उत्तर दूसरा अहोरात्रवृत्त की कल्पना करना, यह वृत्त जहां क्षितिज में सपात करे वहां से प्रान्त्य पर बिन्दुतक अग्रा और उन्मण्डल सम्पात से उक्त बिन्दु तक क्रान्तिरूप अक्षांश होता है। इस अक्षांश के ज्ञान के लिए अपसार योजनों की कोटि करने से पुरचिह्न से लम्बरूप शंकु हुआ। इससे शङ्कुतल के लिये अनुपात किया।

१२: पल :: शं, या, कोज्याग्प : शंकुतल।

$$\therefore \text{शंकुतल} = \frac{\text{पल} \times \text{को ज्याखप}}{१२}.$$

उत्तरगोल में, उत्तर भुज और शङ्कुतल के योग से अग्रा होती है अन्यथा अन्तर से होती है।

$$\therefore \text{अग्राज्या} = \frac{\text{ज्याअच} \times \text{ज्याखप}}{\text{त्रि}} \pm \frac{\text{पल} \times \text{कोज्याखप}}{१२}।$$

इससे क्रान्ति के लिये अनुपात किया।

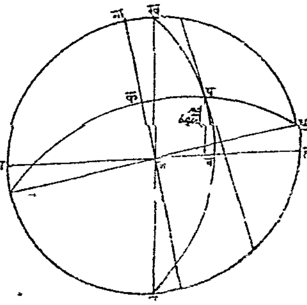
पक : १२ ∵ अग्राज्या : क्रांज्या = पक।

$$\therefore \text{ज्यापव} = \frac{१२ \times \text{अग्राज्या}}{\text{पक}} = \frac{१२\left(\frac{\text{ज्याअच} \times \text{ज्याखप}}{\text{त्रि}} \pm \frac{\text{पल} \times \text{को ज्याखप}}{१२}\right)}{\text{पक}}$$

इसप्रकार 'द्विज्यापलभाकुगुणे त्रिज्यार्कहृते च बाहुकोटिज्ये।' इत्यादि विधि उपपन्न हुई।

यदि अपसार्योजनांश ९० से अधिक होंगे तो पु चिह्न क्षितिजके नीचे होगा; व भुजकी दिशा में विपर्यय होगा। इसलिए धन ऋण के चिह्न बदल जायगे ॥ ९८ ॥

क्षेत्र.



अथोक्तानपि प्रश्नानेकीकर्तुमाह ।

मित्र मित्रस्त्रिनेत्रस्य दिश्युद्गमं
यातिं यत्र त्रिनेत्रर्क्षमध्यस्थितः ।
तत्र मे तान्त्रिकाक्षुण्णमक्षप्रभां
क्षिप्रमाचक्ष्व दक्षोऽसि गोले यदि ॥ २६ ॥

प्रभा ।

हे मित्र तान्त्रिक, मित्रः सूर्यस्त्रिनेत्रस्य शिवस्य दिश्यैशान्यां त्रिनेत्रर्क्षमार्द्रा तन्मध्यस्थितो यत्र देशे उदयं याति तत्र मे अक्षुण्णमक्लेश यथास्यात्तथा अक्षप्रभां पलभां क्षिप्रं सत्वरमाचक्ष्व कथय। शेषं स्फुटम्।

भाषाभाष्य ।

हे मित्र, गोलविशारद! जिस देश में सूर्य आर्द्रा नक्षत्र के मध्य में ईशान दिशा में उदय हो, उस देश मे पलभा क्या होगी? यदि तुम गोलगणित में चतुर हो तो विना खेदके शीघ्र उत्तर कहो।

उपपत्ति ।

इस प्रश्न में आर्द्रानक्षत्र के मध्य में सूर्य को माना है इससे क्रान्ति का ज्ञान हुआ। और ऐशानी दिशा से दिग्ज्या ज्ञात हुई। यहा दिग्ज्याही सूर्यकी अग्रा है। इसलिए सूर्य की अग्रा=ज्या ४५=२४३१'। आर्द्रानक्षत्र के मध्य भुजांश ७३।२०' कीज्या=३२६२'।६"।४०" और सूर्यकी परमक्रान्तिज्या=१३९७'

अथ अनुपात किया,

त्रि : ज्या २४ :: ज्या ७३।२०' इष्टक्रान्तिज्या।

और,

अग्राज्या : क्राज्या :: त्रि : लं ज्या,

∴ अग्राज्या : ज्या २४ :: ज्या ७३।२०' : लंज्या

$$\therefore \text{लंज्या} = \frac{\text{ज्या २४} \times \text{ज्या ७३।२०'}}{\text{अग्राज्या}} = \frac{१३९७ \times ३२६२'।६''।४०''}{२४३१}$$

$$= १८६१।५०''।४८''' = \text{ज्या ३३।२३'।३७''}$$

अबकि अक्षांश ५६ । ३६′ । २३″ हों तब अक्षांशज्या=२८७०′ । १३″ इस लिए अनुपात किया,

लंज्या अक्षज्या द्वा पलभा ।

अथवा

१८६१′ । ५१″ २८७०′ । १३″ १२

$$\therefore \text{पलभा} = \frac{१२ \times (२८७०' । १३'')}{१८६१' । ५१''} = १८ \frac{१३}{६०}$$ अंगुल सिद्ध हुई ॥२६॥

एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भिर्यत्रोदितोरविः ।
मासैरस्तमयं याति तत्राक्षांशान् पृथग्वद ॥ ३० ॥

प्रभा ।

यत्र देशे रविरेकद्वित्र्यादि मासैरुदितः सन् पश्चादस्तमयं याति तत्र पृथगक्षांशान् वदेत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

जिन देशों में सूर्य एक, दो, तीन, चार, पाच और छ मास तक उदित रह कर अस्त होता है, वहा कितने अक्षाश होंगे ?

उपपत्ति ।

जहा पर मिथुनार्ध के आगे वर्तमान सूर्यकी उत्तर क्रान्ति लम्बाश से अधिक होगी वहा एक मास सूर्य उदित रहेगा अर्थात् एक मास का दिन होगा । और मिथुनादि के आगे स्थित सूर्यकी क्रान्ति जहा लम्बाश से अधिक होगी-वहा दो मास का दिन होगा । और वृषार्ध के आगे सूर्यकी क्रान्ति जहा लम्बाश से अधिक हो वहा तीन मास का दिन होगा । यों वृषादि की क्रान्ति लम्बाधिक मे चार मास का दिन । इसीप्रकार जहा मेषार्ध के आगे वर्तमान सूर्यकी क्रान्ति लम्बाश से अधिक होगी वहा पाच मास का दिन और मेषादि की क्रान्ति लम्बाश से अधिक मे छ मास का दिन होगा ।

इसप्रकार मिथुनार्ध क्रान्ति के समान लम्बाशों को नव्वे में घटा देने से जो शेष बचे उतने अक्षाश जिस देश मे होग वहा एक महीने का दिन होगा ।

इस नियम के अनुसार,

अथवा ६७=१ मास का दिन
,, ६६=२ ,,
,, ७३=३ ,,
,, ७८=४ ,,
,, ८४=५ ,,
,, ६०=६ ,,

यह विषय पहले त्रिप्रश्नवासना में भी आचुका है ॥ ३० ॥

द्युज्यकापमगुणार्कदोर्ज्यका-
संयुतिं खखखबाणसंमिताम् ।
वीक्ष्य भास्करमवेहि मध्यमं
मध्यमाहरणमस्ति चेच्छ्रुतम् ॥ ३१ ॥

द्युज्यापक्रमभानुदोर्गुणयुतिस्तियुग्धृताप्त्याहता
स्याद्यो युतिवर्गतो यमगुणात्सप्तामरा ३३७ प्तोनिता ।
नागाद्र्यङ्कदिगङ्का ६१०६७८ पदमतस्तेनाद्य ऊनो भवे-
द्व्यासार्धेऽष्टगुणाब्धिपावकमिते क्रान्तिज्यकातो रविः ॥ ३२ ॥

भाषाभाष्य ।

प्रश्नः- यदि तुम मध्यमाहरण गणित विधि को जानते हो तो द्युज्या, क्रान्तिज्या और सूर्य की भुजज्या का योग ५००० इतना जानकर, मध्यम सूर्य बतलाओ ।

उत्तर – द्युज्या, क्रान्तिज्या और सूर्यकी भुजज्या के योग को चार से गुणकर फलमें पंद्रह का भाग देने से लब्धि की आद्य संज्ञा है । फिर योग के वर्ग को दो से गुणाकर फल में ३३७ का भाग देकर लब्धि को ६१०६७८ में घटा कर शेष का मूल पूर्व सिद्ध आद्य में घटा देना, शेष ३४३८ व्यासार्ध में क्रान्ति होगी । इससे सूर्य का ज्ञान करना चाहिए ।

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतिमहीजीवाग्रकाणां युति-
र्दृष्टा खाग्निरपञ्चखेचरमिता पत्राङ्गुलाक्षप्रभे ।

देशे तत्र पृथक् पृथग्गणक ता गोलेऽसि दक्षोऽक्षज-
क्षेत्रक्षोद विधौ विचक्षण समाचक्ष्वाविलक्षोऽसि चेत्॥३३॥
क्रान्तिज्या विबुधाक्षभारविहतेस्तुल्यां प्रकल्प्यापराः
कुश्राग्रासमशङ्कुतद्धृतिमहीजीवा अभीष्टास्ततः।
भाद्यास्तद्युतिभाजिताः पृथगथ प्रोद्दिष्टयुत्या हता
उद्दिष्टा खलु तद्युतिः पृथगिमा व्यक्ता भवन्ति क्रमात्॥३४॥

प्रभा।

महीजीवा कुज्या । अक्षजक्षेत्राणां यः क्षोदः प्रत्यवयवविचार यो विधिस्तस्मिन् । अविलक्षो विस्मयावेशरहित इतियावत् ।

भाषाभाष्य।

प्रश्न – हे विचक्षण ! यदि तुम अक्षक्षेत्रों के विचार में निपुण हो तो जिस देश पांच अङ्गुल पलभा है वहां क्रान्तिज्या, समशङ्कु, तद्धृति, कुज्या और अभा का ग ६५०० जानकर इन अवयवों को अलग अलग बतलाओ ।

उत्तर.– पलभा और द्वादश के गुणनफल को क्रान्तिज्या मानकर अनुपात से अभा, समशङ्कु, तद्धृति और कुज्या सिद्ध करके इनका योग करना । फिर अलग इनको ज्ञात योगसंख्या से गुणकर इस योगका भाग देने से सब अलग अलग स्फुट होजाते हैं ।

उपपत्ति।

पलभा=५ अङ्गुल ।

क्रान्तिज्या=५×१२=६०

अनुपात किया,

पलभा . अक्षक : : क्राज्या : समशङ्कु

अथवा,

५ : १२ : : ६० : समशङ्कु$=\frac{१२\times६०}{५}$१५६

फिर अनुपात किया,

द्वा : अचक : : समश : तद्धृति $=\frac{१५६\times१३}{१२}=१६६$

द्वा : पलभा : : कांज्या : कुज्या $=\frac{६०\times५}{१२}=२५,$

और,

द्वा : अचक : : क्रांज्या : अग्राज्या $=\frac{६०\times१३}{१२}=६५.$

इसलिए अनुपात किया—

इन सब फलों के योग में यदि क्रान्तिज्या आदि मिलती है तो इष्ट योग में क्या ?

अथवा,

४७५ : ६० : : ६५०० : १२००=क्रान्तिज्या.

इसी प्रकार,

४७५ : १५६ : : ६५०० : ३१२०=समशङ्कु.

४७५ : १६६ : : ६५०० : ३३८०=तद्धृति.

४७५ : २५ : : ६५०० : ५०० =कुज्या.

४७५ : ६५ : : ६५०० : १३००=अग्रज्या.

इस प्रकार सब अवयव अलग अलग सिद्ध होवे हैं ॥ ३३–३४ ॥

अग्रापमज्याक्षितिशिञ्जिनीनां
योगं सहस्रद्वितयं विदित्वा ।
पृथक् पृथक् ता गणक प्रचक्ष्व
रूढा सगोले गणिते मतिश्चेत् ॥ ३५ ॥

प्रभा ।

क्षितिशिञ्जिनी कुज्या । 'मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः ।' इत्यमरः रूढा प्रसिद्धा । शेषं स्फुटम् ।

भाषाभाष्य ।

हे गणक ! यदि तुम्हारी बुद्धि गोल और गणित में खूब प्रसिद्ध हुई हो तो अग्रा, क्रान्तिज्या, कुज्या का योग दो हजार जानकर प्रत्येक को अलग अलग कहो ।

उपपत्ति।

यहां भी पलभा=५

इसलिए पूर्व विधि के अनुसार,

क्रान्तिज्या=६०

अग्राज्या=६५

कुज्या=२५

योग=१५०

अब यहां पर उद्दिष्ट योग २००० है, इसलिए पूर्वविधि के अनुसार सिद्ध हुआ।

१५० : ६० : : २००० : ८०० =क्रान्तिज्या,

१५० : ६५ : : २००० : ८६६$\frac{२}{३}$=अग्राज्या,

१५० : २५ : : २००० : ३३३$\frac{१}{३}$=कुज्या,

इस प्रकार सब अवयव अलग अलग सिद्ध हुए॥ ३५॥

आस्तां तावत् सगोलः सुगणक गणितस्कन्धबन्धप्रसिद्धः
सिद्धान्तो लग्नसिध्यै किमिति बत कृतस्तत्र तात्कालिकोऽर्कः।
नाडीषष्ट्या द्युरात्रं दशपलयुतया भानवीयं किलाद्यो
लग्नं तात्कालिकार्कात् प्रवद किमधिकं तद्युरात्रे पलोने॥३६॥

प्रभा।

हे सुगणक! गणितस्कन्धस्य यो बन्धः शरीरं तेन प्रसिद्धः सिद्धान्तः सगोलस्तावदास्ताम्। अयमाशयः लग्नं तात्कालिकार्कात्साध्यते तन्नाक्षत्रघटीभिरेव कर्तव्यमुदयानां नाक्षत्रत्वात्। सूर्यसावनमध्ये नाक्षत्रघटीषष्टिर्दशपलयुक्ता भवति। केवल साधितं लग्नं तात्कालिकार्कादधिकम्।

भाषाभाष्य।

हे सुगणक! गणितस्कन्ध के देहरूप से प्रसिद्ध सिद्धान्त गोलसहित रहो, यह कहो कि लग्नसाधन में सूर्य को तात्कालिक क्यों किया गया है? नाक्षत्र साठ घड़ी में दश पल जोड़कर सौर दिन के वश में लग्न सिद्ध करने

से तात्कालिक सूर्य से अधिक और दश पल हीन करके लग्न सिद्ध। तात्कालिक सूर्य के समान क्यों होता है ?।

उपपत्ति ।

इस प्रश्न के उत्तर के लिए त्रिप्रश्न वासना के 'लग्नार्थमिष्टघटिका य सावना स्युः-, इसका विषय समझना चाहिये ॥ ३६ ॥

नाक्षत्रा उत सावनास्तनुकृतौ नाड्योऽथ चेत् सावना
नाक्षत्रा उदया कथं विसदृशास्ताभ्यो विशोध्या वद ।
नाक्षत्रा यदि तद्दुरात्रसदृशे काले गतेऽर्काधिकं
किं लग्नं न समं ततो दिनकरस्तात्कालिकः किंकृतः॥३७॥

भाषाभाष्य ।

लग्नके साधन में जो घडी है वे सावन हैं अथवा नाक्षत्र हैं ? यदि सावन हैं तो उनमें राशियों के नाक्षत्र-उदय विजातीय कैसे घटाए गये हैं ? और यदि नाक्षत्र है तो सावन अहोरात्र तुल्यकाल में लग्न तात्कालिक सूर्य से समान न होकर अधिक क्यों होता है ? तब लग्नसाधन में तात्कालिक सूर्य करने का क्या प्रयोजन है ?

उपपत्ति ।

यह प्रश्न भी 'लग्नार्थमिष्टघटिका -, इत्यादि विषय के आलोचन से स्पष्ट होजाता है ॥ ३७ ॥

पञ्चाङ्गुला गणक यत्र पलप्रभा स्यात्
तत्रेष्टभा नवमिता दशनाडिकासु ।
दृष्टा यदा वद तदा तरणिं तदास्ति
यद्यस्ति कौशलमलं गणिते सगोले ॥ ३८ ॥

भाषाभाष्य ।

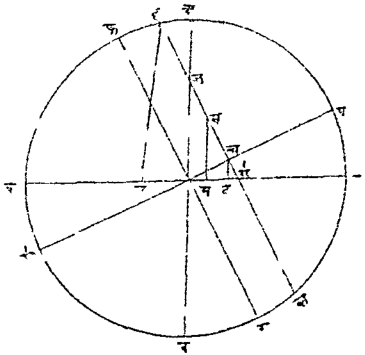
हे गणक ! जिस देश में पलभा पाच अङ्गुल है वहां दश घड़ी दिन व्यतीत होनेपर इष्टच्छाया नव अङ्गुल की उपलब्ध हुई तो सूर्य का भुजांश क्या होगा ? यदि तुमारा गोल और गणित में पूरा कौशल है तो कहो ।

उपपत्ति।

इस प्रश्न का उत्तर गणिताध्याय के त्रिप्रश्नाधिकार में 'इष्टान्त्यकाद्युनतकाल मौर्वीम्', इत्यादि विधिसे लिखा है। यहा पर उसीके अनुसार उत्तर लिखाजाता है —

नीचे लिखे क्षेत्र में 'अरदन' स्थानीयमध्याह्नवृत्त है, 'कमन' क्षितिज है, 'अ', खमध्य है, प और प' उत्तर–दक्षिण ध्रुव है। 'अमद' समवृत्त, फमग' विषुवद्वृत्त, पमप' उन्मण्डल, 'हचल' अहोरात्रवृत्त, 'स' सूर्य और चर, सम, हन क्षितिज रेखापर लम्ब है।

क्षेत्र,



और 'ह' विन्दु पर होने से हृति होगी और जब 'स' विन्दु 'च' विन्दु मे होगा उस समय कुज्या होगी।

इष्टहृति को त्रिज्यावृत्त में परिणत करने से इष्टान्त्या होती है। परन्तु जब 'स' विन्दु 'ह' विन्दु के समान होता है उस समय केवल अन्त्या ही होती है। इस प्रकार ऊपर लिखे हुए अवयवों से नीचे लिखा स्वरूप सिद्ध होता है—

(१) इष्टहृति = फला ± कुज्या,

(२) इष्टान्त्या = सूत्र ± चरज्या,

(३) हृति = द्युज्या ± कुज्या,

(४) अन्त्या = त्रिज्या ± चरज्या.

यहा पर धन और ऋण की व्यवस्था गोलक्रम से जानना चाहिए। अब इष्ट समय में इष्टहृति आदि साधन करने का प्रकार यों है—

दिनार्ध में नतकाल को घटा देने से शेष उन्नतकाल बचता है। इस में गोल के क्रमसे चरज्या जोडने और घटा देने से सूत्र होता है। इसको द्युज्या से गुण कर त्रिज्या का भाग देने से फल फला होती है। फिर ऊपर लिखे नियम से इष्टहृति आदि स्पष्ट हैं।

अब प्रश्न का उत्तर सिद्ध करते हैं—

द्वादशाङ्गुलशङ्कु की छाया के वर्ग को द्वादशवर्ग १४४ में जोडकर मूल लेना फल छायाकर्ण होगा। इस से महाशङ्कु के लिए अनुपात किया—

छाक १२ त्रि महाशङ्कु अथवा सूर्य की उन्नतांशज्या।

फिर अनुपात किया,

१८ अक्षक महाश = इष्टहृति.

और, द्यु इष्टह त्रि = इष्टान्त्या.

इष्टअ इष्टह . त्रि = द्यु = $\frac{\text{इष्टह} \times \text{त्रि}}{\text{इष्टान्त्या}}$.

इस रूप म 'इष्टह' का पूर्वस्वरूप लेने स द्युज्या, $\frac{\text{अक्षक} \times \text{मश} \times \text{त्रि}}{\text{१८} \times \text{इष्टान्त्या}}$ = द्युज्या। इस लिए 'इष्टान्त्यकामुन्नतकालमौर्वीम्—' इत्यादि उपपन्न हुआ।

अब इस द्युज्या से क्रान्तिज्या, चरज्या सिद्ध करके फिर इष्टान्त्या का साधन

करना क्योंकि उन्नतकाल को कल्पित-इष्टान्त्या मान लियागया है। इस लिए असकृत्कर्म से इष्टान्त्या साधन करने से ठीक होगी। इसकी युक्ति गणिताध्याय में इस प्रश्न के उत्तर में स्पष्ट लिखी है। यों जब वास्तव इष्टान्त्या का ज्ञान हो जायगा तब ऊपर लिखी विधि से फिर द्युज्या और उस से क्रान्तिज्या चर आदि सिद्ध करके सूर्यका ज्ञान सुगमता से होजायगा ॥ ३८ ॥

दिनकरे करिवैरिदलस्थिते
नरसमा नरभापरदिङ्मुखी।
भवति यत्र पटो पुटभेदने
कथय तान्त्रिक तत्र पलप्रभाम् ॥ ३९ ॥

प्रभा।

वैरमस्यास्तीति वैरी। करिणो वैरी सिंहः, तस्य यद्दलमर्धं तत्र स्थिते। सिंहराश्यर्धस्थिते दिनकर इत्यर्थः। नरभा द्वादशाङ्गुलशङ्कुच्छाया नरसमा शङ्कुसमानदीर्घा। पुटभेदनं नगरं 'पत्तनं पुटभेदनम्।' इत्यमरः। शेषं व्यक्तमेव।

भाषाभाष्य।

हे गोलविशारद! जिस देश में सिंहराशि के अर्ध में वर्तमान सूर्य की द्वादशाङ्गुल शङ्कु की पश्चिमाभिमुख छाया शङ्कु के समान लम्बी होती है वहा पलभा क्या होगी।

उपपत्ति।

इस प्रश्न का उत्तर गणिताध्याय के त्रिप्रश्नाधिकार में 'त्रिज्यार्कघात द्युतिकर्ण स्यात्।, इत्यादि विधि से लिखा है।

यहा पहले छाया ज्ञात होने से छायाकर्ण का भी ज्ञान हुआ। अब शङ्कुके लिये अनुपात किया –

रा,

छाक १२ त्रि : महाशङ्कु समशङ्कु सूर्य को सिंहराशि के अर्ध में ४। १५

मानाहै, इसलिये उससमय की क्रान्तिज्या=६८७'।४८, और ४५=२४३१' समशङ्कुज्या है।

$\therefore$ (२४३१')² – (६८७'।४८")² = (तद्धृति–कुज्या)²

अथवा,

५६०१७६१–६७५७४६=४६३४०१२,

$\therefore$ तद्धृति–कुज्या= $\sqrt{४६३४०१२}$ =२२२१'।१५"

क्योंकि तद्धृति–कुज्या=कोटि, क्रान्तिज्या=भुज और समशङ्कु=कर्ण है। इससे पलभा के लिये अनुपात किया।

कुज्योनतद्धृति : क्रांज्या : : १२ : पलभा;

अथवा,

२२२१'।१५ : ६८७'।४८ : : १२ : पलभा=५$\frac{१}{२}$ इतनी सिद्धहुई ॥ ३६॥

मार्तण्डः सममण्डलं किल यदा दृष्टः प्रविष्टः सखे
काले पञ्चघटीमिते दिनगते यद्वा नते तावति।
केनाप्युज्जयिनीगतेन तरणेः क्रान्तिं तदा वेत्सि चे-
न्मन्ये त्वां निशितं सगर्वगणकोन्मत्तेभकुम्भाङ्कुशम्॥४०॥

प्रभा।

मार्तण्डः सूर्यः। निशितं शाणोद्धृतं सगर्वा ये गणकास्त एव मत्तेभास्तेषां ये कुम्भाः गण्डस्थलानि तेषु अङ्कुशं त्वां मन्य इत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

किसी उज्जयिनीनिवासी ने सूर्योदय से पांच घड़ी दिन बीते अथवा मध्याह्न के बाद पांच घड़ी दिन गये सूर्य को सममण्डल में प्रवेश करता हुआ देखा; उस समय यदि तुम सूर्य की क्रान्ति जान सको तो हम तुमको अभिमानी गणकरूपी हाथियों के कुम्भों पर नुकीला अङ्कुश मानें।

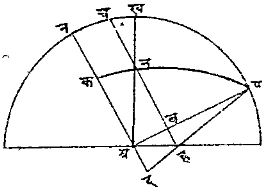
उपपत्ति।

इस प्रश्न का उत्तर गणिताध्याय के त्रिप्रश्नाधिकार में 'या स्याद्रवेरुन्नतकाल-

जीवा-' इत्यादि विधि से लिखा है। उसी के अनुसार यहां पर उत्तर दिखलाया जाता है:—

(१) पहले उन्नतकालज्या को तद्धृति कल्पना करके उससे शङ्कु साधन के लिए अनुपात किया—

क्षेत्र,



प क : द्वा :: तद्धृ : समशङ्कु$=\frac{१२ \times \text{तद्धृति}}{१३}$=अन; इससे 'अब' अर्थात् क्रान्तिज्या के लिए अनुपात—

पक : पलभा : : अन : अब$=\frac{\text{पलभा} \times \text{अन}}{\text{पक}}$=क्रान्तिज्या।

इस क्रान्तिज्या से चर आदि सिद्ध करके इष्टहृति सिद्ध करना चाहिये। क्योंकि पहले उन्नतकालज्या को तद्धृति कल्पना करके क्रान्तिज्या सिद्ध की गई है इसलिये वह स्थूल है।

ऊपर के क्षेत्र में चर=अद और उन्नतज्या=अक के है। अब 'अथोन्नतादून-युताच्चरेण-' इस विधि से,

कद-अद=कअ=सूत्र, यह त्रिज्यावृत्तीय है इससे धुज्यावृत्तीय कला के लिए अनुपात किया—

त्रि : कश्र : द्यु · नव=कला ;

इसी प्रकार 'न ह' का भी अनुपात से साधन करना । तब, नव + वह=नह= तद्धृति का दूसरा मान हुआ । यों असकृत्कर्म से तद्धृति का साधन करके क्रान्तिज्या सिद्ध करना । फिर अन्त में अनुपात करना कि कल्पित हृति में यह क्रान्तिज्या मिलती है तो साधित हृति में क्या ?

अथवा,

हन · अन . · हर्न अर्थ ; यों यथार्थ क्रान्तिज्या सिद्ध होगी ।

(२) दूसरे प्रश्न में पाच घडी नतकालमें सूर्य का समगण्डल प्रवेश कल्पना कियागया है । इसका उत्तर 'तदा नतज्या–' इत्यादि विधि से होता है । वह इस प्रकार है—

कल्पना किया,

$$\text{न}=\text{नतकाल},\ \therefore\ \text{त्रि}^{२}-\text{न}^{२}=\text{सूत्र}^{२},$$

$$\text{क}=\text{क्रान्तिज्या}\ \therefore\ \text{त्रि}^{२}-\text{क}^{२}=\text{द्युज्या}^{२}.$$

त्रि　सूत्र : : द्य　कला,　　　कला=कुज्योनतद्धृति के है । यहां 'वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्च ।' इसके अनुसार,

$$\text{त्रि}^{२}\ .\ \text{सूत्र}^{२}\quad \text{द्युज्या}^{२} : \text{कला}^{२}=\frac{(\text{त्रि}^{२}-\text{न}^{२})\,(\text{त्रि}^{२}-\text{न}^{२})}{\text{त्रि}^{२}}\ ।$$

कला=कोटि, क्रान्तिज्या=भुज, समशङ्कुकर्ण, इस अक्षक्षेत्रसे अनुपात किया –

$$\text{द्वा}^{२}\quad \text{पलभा}^{२} : \text{कला}^{२}\ .\ \text{क}^{२}$$

$$\therefore = \frac{\text{पलभा}^{२}}{१२^{२}}\times\text{कला}^{२}=\frac{२५}{१४४}\times\frac{(\text{त्रि}^{२}-\text{न}^{२})(\text{त्रि}^{२}-\text{क}^{२})}{\text{त्रि}^{२}}=\text{क}^{२}.$$

अथ,

$$\text{त्रि}^{२}-\text{न}^{२}=८८६४८८३$$

$$२५\ (\ \text{त्रि}^{२}-\text{न}^{२}\ )=२५\times८८६४८८३=२२१६२२०७५$$

$$\text{और}\ १४४\ \text{त्रि}^{२}=१४४\ (\ ३४३८\ )^{२}=१७०२०५७५३६$$

$$\therefore\ \frac{२२१६२२०७५\ (\ \text{त्रि}^{२}-\text{क}^{२}\ )}{१७०२०५७५३६}=\text{क}^{२}$$

$$\text{त्रि}^{२} - \text{क}^{२} = \frac{१७०२०५७५३६}{२२१६२२०७५} = \text{क}^{२} = ७\tfrac{२}{३}\ \text{क}^{२},$$ आसन्न में।

$$\therefore २६\ \text{क}^{२} = ३\ \text{त्रि}^{२} : \text{क}^{२} = \frac{३\text{त्रि}^{२}}{२६} = १३६३८२८$$

और $\text{क} = \sqrt{१३६३८२८} = ११६८ = \text{ज्या}\ १६^{\circ} । ५१'$

इसप्रकार क्रान्तिज्या के ज्ञान से सूर्य का भी ज्ञान सुगम है ॥ ४० ॥

मार्तण्डे सममण्डलं प्रविशतिच्छाया किलाष्टयङ्गुला
दृष्टाष्टासु घटीषु कुत्रचिदपि स्थाने कदाचिद्दिने।
अर्कक्रान्तिगुणं तदा वदसि चेदक्षप्रभां तत्र च
त्रिप्रश्नप्रचुरप्रपञ्चचतुरं मन्ये त्वदन्यं न हि ॥ ४१ ॥

भाषाभाष्य।

किसी स्थान में किसी दिन सममण्डल प्रवेश में आठ घड़ी दिन बीते सूर्यकी सोलह अङ्गुल की छाया ज्ञात हुई है तो उस स्थान में क्रान्तिज्या और पलभा क्या होगी? यदि यह तुम बतलाओ तो, त्रिप्रश्न-विषयक नानाविध-प्रपञ्च में चतुर तुम्हारे समान दूसरा हम न मानें।

उपपत्ति।

इस प्रश्नका उत्तर गणिताध्याय के त्रिप्रश्नाधिकार में 'अत्रापि साध्योन्नतकालजीवा-' इत्यादि विधि के अनुसार लिखागया है। वह इस प्रकार है:-

यहां महाशङ्कु साधन करना चाहिए।

$(१६)^{२} + (१२)^{२} = (२०)^{२}$; इसलिए सोलह अङ्गुल छाया सम्बन्धी समच्छायाकर्ण २० हुआ। इससे अनुपात किया,

२० : १२ :: ३४३८ : २०६२' । ४८'' यह महाशङ्कु हुआ। अब उन्नतकाल आठ घड़ी की ज्या को तद्धृति=२६५५ कल्पना करके अनुपात किया;

$२०६२' । ४८'' : २६५५ :: १२ :$ पलकर्ण $\frac{२६५५ \times १२}{२०६२\frac{४}{५}}$ इसप्रकार पलकर्ण जानकर पलभा भी ज्ञात हुई। अब क्रान्तिज्या के लिए अनुपात,

पलक : पलभा : : समश = क्रान्तिज्या ।

परन्तु यह क्रान्तिज्या स्थूल सिद्ध हुई है। इससे द्युज्या, कुज्या चर आदि सिद्ध करके 'अथोन्नतात्–' इत्यादि विधि से कला सूत्र सिद्ध करके इष्टहृति लाना, फिर पलकर्ण और क्रान्तिज्या का साधन करना। इसप्रकार असकृत्कर्म से वास्तव क्रान्तिज्या का ज्ञान होता है ॥ ४१ ॥

यत्र क्षितिज्या शरसिद्ध २४५ तुल्या
स्यात्तद्धृतिस्तत्त्वकुरामसंख्या ३१२५ ।
तत्राक्षभार्कौ गणक प्रचक्ष्व
चेदक्षजक्षेत्रविचक्षणोऽसि ॥ ४२ ॥

भाषाभाष्य ।

हे गणक ! यदि तुम अक्षक्षेत्रों में चतुर हो तो २४५ कुज्या और ३१२५ तद्धृति को जानकर पलभा और सूर्य को कहो।

उपपत्ति ।

इस प्रश्न का उत्तर गणिताध्याय में 'कुज्योनतद्धृतिहृता—' इत्यादि प्रकार से है. वह यों है–

पलभा=य

$$य : १२ \quad २४५ : क्रान्तिज्या = \frac{२९४०}{य^२}, \text{ अब कुज्योनतद्धृति सिद्ध}$$

करके अनुपात किया,

$$य \quad १२ \quad \frac{२९४०}{य} = तद्धृति - कुज्या = \frac{३५२८०}{य^२}.$$

परन्तु, तद्धृति–कुज्या=३१२५–२४५=२८८०.

$$\therefore २८८० = \frac{३५२८०}{य^२} \text{ और } य^२ = \frac{३५२८०}{२८८०} = \frac{४९}{४}.$$

$$\therefore य = \frac{७}{२} = ३\tfrac{१}{२} = पलभा ।$$

अब क्रान्तिज्याके लिये अनुपात किया।

$$३\tfrac{१}{२} \quad १२ \quad २४५ \quad ८४० = क्रान्तिज्या ।$$

इससे पूर्व विधि के अनुसार सूर्य का ज्ञान सुगम है ॥ ४२ ॥

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं कुज्योनितां वीक्ष्य यो
विंशत्यश्वरसैः ६७२० मितामथपरांपट्च्यङ्कचन्द्रैः १६६० मिताम् ।
कुज्याग्रापभशिञ्जिनीयुतिमिनं वेत्यग्रभां चापि तं
ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ वन्दे परं भास्करम् ॥ ४३ ॥

प्रभा ।

ज्योतिर्विद एव कमलानि तेषां योऽवबोधनविधिः प्रकाशकरणं तस्मिन् । परं श्रेष्ठं भास्करं सूर्यं मन्ये इत्यर्थः ।

भाषाभाष्य ।

क्रान्तिज्या समशङ्कु और तद्धृति के योग में कुज्या को घटाकर शेष ६७२० जानकर और कुज्या, अग्रा और क्रान्तिज्या का योग १६६० जानकर सूर्य और क्रान्तिज्या को जो बतलावे, गणकरूपी कमलोंके प्रकाश करने में उस सूर्य को मैं प्रणाम करता हूं ।

उपपत्ति ।

इस प्रश्न का उत्तर गणिताध्याय में 'क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुति कुज्योनिता या तया ।' इत्यादि प्रकार से कियागया है, वह इस तरह है:—

क्रान्तिज्या
समशङ्कु
तद्धृति–कुज्या } =६७२०, यह तीन कोटियोग है ।

और, कुज्या
अग्राज्या
तद्धृति–कुज्या } =१६६०, यह तीन भुजयोग है ।

अब अनुपात किया,

कोटियोग : भुजयोग :: १२ : पलभा ।

अथवा,

$$६७२० : १६६० :: १२ \quad \frac{१६६०\times१२}{६७२०}=२\frac{१}{४}$$

इस प्रकार, कुज्या, अग्रा और क्रान्तिज्या एक क्षेत्र के अवयव और पलभा, पलकर्ण और द्वादश जानकर किसी एक अवयव का ज्ञान सुगम है ।

$$\text{पलकर्ण}=\sqrt{(१२)^२+(\tfrac{७}{२})^२}=\sqrt{\tfrac{६२५}{४}}=\tfrac{२५}{२}$$

अब,

द्वादश=१२
पलभा=३½
पलकर्ण=१२½
} =२८ इन तीनों भुजों का योग हुआ।

इससे अनुपात किया—

२८ : १२ :: १९६० : ८४०= क्रान्तिज्या।

इस प्रकार सब अवयव अलग अलग ज्ञात होजाते हैं। क्रान्तिज्या से विलोम विधि से सूर्यका ज्ञान भी सुगम है ॥ ४३ ॥

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं कुज्योनितां वीक्ष्य यः
पूर्णाऽब्यब्धिमहीमिता१४४०मथपरां खाभ्राष्टभूसंमिताम्१८००
अग्राज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं वेत्यक्षभार्कौ च तं
ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ वन्दे परं भास्करम् ॥४४॥

भाषाभाष्य।

क्रान्तिज्या, समशङ्कु और तद्धृति के योग में कुज्या को घटाकर शेष १४४० जानकर और अग्राज्या, समशङ्कु और तद्धृति का योग १८०० जानकर पलभा और सूर्य को जो वतलावे, गणकरूपी कमलों के प्रकाश करने में उस सूर्य को मैं प्रणाम करता हूं।

उपपत्ति।

यह प्रश्न पहले प्रश्न के समानही है। इस का उत्तर गणिताध्याय में 'क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिः कुज्योनिताद्यो हृता।' इत्यादि प्रकार से होता है। यहां पहला योग कोटियों का है, दूसरा कर्णों का है। इससे पहले के समान अनुपात किया—

कोटियोग : कर्णयोग : : द्वा : पलकर्ण;

अथवा,

१४४० : १८०० : : १२ : १५; अब अक्ष कर्ण से पलभा ज्ञात हुई,

$$\text{पलभा}=\sqrt{(१५)^२-(१२)^२}=\sqrt{८१}=९$$

इससे अग्राज्या, समशङ्कुज्या और तद्धृति का ज्ञान सुगम है। ये तीनों अव यव एकही अक्षक्षेत्र के हैं ॥ ४४ ॥

यत्र त्रिवर्गेणमिता पलाभा
तत्र त्रिनाडीप्रमितं चरं स्यात्।
यदा तदार्कं यदि वेत्सि विद्वन्
सांवत्सराणां प्रवरोऽसि नूनम् ॥ ४५ ॥

प्रभा।

सवंत्सरं तज्ज्ञानोपयोगि शास्त्रं वेत्तीति सांवत्सरः। अण्। गणक इत्यर्थः। तेषां प्रवरः श्रेष्ठः नून निश्चयेनासीत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

जिस देश में पलभा नव है, वहा जब तीन घडी के तुल्य चर हो उस समय सूर्य क्या होगा? यदि यह कहो तो तुम निश्चय से ज्योतिषियों में प्रवीण हो।

उपपत्ति।

इस प्रश्नका उत्तर गणिताध्याय में 'चरघ्नकार्भाभिहृति —' इत्यादि विधिसे है कल्पना किया, क=क्रान्तिज्या।

तब, १२   ९   क   कुज्या $=\frac{३}{४}$ क

फिर, $\sqrt{त्रि^{२} - क^{२}}$ = द्युज्या; इसलिए अनुपात किया,

त्रि   द्युज्या   चरज्या   कुज्या.

चरज्या = ज्या ३ घडी = ज्या १८° = १०६२′।

$\therefore$ कुज्या $=\frac{द्युज्या \times चरज्या}{त्रि}$, अथवा, $\frac{\sqrt{त्रि^{२}-क^{२}} \times १०६२}{त्रि} = \frac{३}{४}$ क

इससे क्रान्तिज्या और उससे विलोम विधि से सूर्य का ज्ञान सुगम है ॥ ४५ ॥

याम्योदक्समकोणभाः किल कृताः पूर्वैः पृथक्साधने
यास्तद्दिग्विवरान्तरान्तरगता या प्रच्छकेच्छावशात्।
ता एकानयनेन चानयति यो मन्ये तमन्यं भुवि
ज्योतिर्विद्वदनारविन्दमुकुलप्रोल्लासने भास्करम् ॥ ४६ ॥

प्रभा।

ज्योतिर्विदां वदनान्येवारविन्दमुकुलानि तेषां यत्प्रोल्लासनं तस्मिन्। तमन्यं भुवि भास्करं रविं मन्ये इत्यर्थः।

भाषाभाष्य।

पूर्वाचार्यों ने सूर्य की मध्याह्न छाया, सममण्डल छाया और कोणवृत्त छायाओं का साधन भिन्न भिन्न प्रकारों से किया है; परन्तु इनका साधन एकही प्रकार से जो करे उसको, ज्योतिषियों के मुखरूपी कमल कलिकाओं के विकास करने में भूमि में दूसरा सूर्य मानें।

उपपत्ति।

आचार्य ने छाया साधन गणिताध्याय के त्रिप्रश्नाधिकार में 'पलप्रभाव्यास॰ दलेन निघ्नी।' और 'व्यासार्धवर्गः पलभा कृतिघ्नः।' इन दो प्रकारों से किया है। वहीं उपपत्ति लिखी जायगी ॥ ४६ ॥

दृष्टेष्टभां योऽत्र दिगर्कवेदी
छायाद्वयं वा प्रविलोक्य दिग्ज्ञः।
वेत्यक्षभामुद्धतदैववेदि-
दुर्दर्पसर्पप्रशमे स ताक्ष्यः ॥ ४७ ॥
भाद्वयस्य भुजयोः समाशयो-
र्व्यस्तकर्णहतयोर्यदन्तरम्।
ऐक्यमन्यककुभोः पलप्रभा
जायते श्रुतिवियोगभाजितम् ॥ ४८ ॥

प्रभा।

उद्धता ये दैववेदिनो गणकास्तेषां यो दुर्दर्पः स एव सर्पः तस्य यत्प्रशमनं तस्मिन् ताक्ष्यों गरुडः सोऽस्तीत्यर्थः। समाशयोस्तुल्य-दिशोः। अन्यककुभोरन्यदिशोः। शेषं स्फुटम्।

भाषाभाष्य।

प्रश्नः— इष्टच्छाया दिशा और सूर्य को अथवा दिशा और दो छायाओं को जान

कैर जो पलभा बतलावे, उद्धत ज्योतिषियों के गर्वरूपी सर्प के नाश में वह गरुड के समान है।

उत्तर –दोनों छायासम्बन्धि–भुजों को छायाकर्णों से उलटा गुणना अर्थात् प्रथम भुज को द्वितीयकर्ण और द्वितीयभुज को प्रथम कर्ण से गुणा करना। फिर दोनों भुजों का तुल्य दिशामें अन्तर और भिन्न दिशामें योग करके फलमें दोनों छायासम्बन्धि–कर्णों के अन्तर का भाग देना, फल पलभा होगी।

उपपत्ति।

इस प्रश्न का उत्तर गणिताध्याय में उदाहरण देकर लिखा है। वह सब यथा स्थान दिखलाया जायगा। यहां सक्षेप से लिखा जाताहै।

प्रक = प्रथम छायाकर्ण.

प्रभ = प्रथमभुज.

द्विक = द्वितीयछायाकर्ण.

द्विभ = द्वितीयभुज,

अब अनुपात किया–

$$\text{प्रक} : १२ \quad . \text{त्रि} = \frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{प्रक}} = \text{प्रथम महाशङ्कु}।$$

$$\text{द्विक} . १२ \quad . \text{त्रि} = \frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{द्विक}} = \text{द्वितीयमहाशङ्कु}।$$

इसी प्रकार

$$\text{प्रक} \quad \text{प्रभ} \quad \text{त्रि} = \frac{\text{प्रभ} \times \text{त्रि}}{\text{प्रक}} = \text{प्रथम त्रिज्यावृत्तीय भुज}।$$

$$\text{द्विक} \quad \text{द्विभ} \quad \text{त्रि} = \frac{\text{द्विभ} \times \text{त्रि}}{\text{द्विक}} = \text{द्वितीय त्रिज्या वृत्तीय भुज}।$$

इसलिए,

$$\frac{\text{प्रभ} \times \text{त्रि}}{\text{प्रक}} \mp \frac{\text{द्विभ} \times \text{त्रि}}{\text{द्विक}}$$

अब 'शङ्कन्तरहृत् पलभा–' इस विधि से,

$$\frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{द्विक}} - \frac{१२ \times \text{त्रि}}{\text{प्रक}} = \frac{\text{प्रभ} \times \text{द्विक} \mp \text{द्विभ} \times \text{प्रक}}{\text{प्रभ} - \text{द्विक}} =$$

लभा; इस प्रकार 'भाद्यस्य भुजयो –' इत्यादि प्रकार उपपन्न हुआ॥ ४७।४८॥

अन्नाभां तरणिं दिशो युगगतं मासं तिथिं वासरं
यः कूपोद्धृतवन्न वेत्ति सहसा पृष्टो दिगर्कादिकम्।
ब्रूहीत्याशु परैः कथं स कथयत्यस्योत्तरं वक्ति यो
वन्दे तच्चरणावमुष्य गणकाः के वा न सेवापराः॥४६॥

भाषाभाष्य।

जैसे कूप से किसी को बाहर निकालने पर जल्दी में उस से पूछने पर वह पूर्व-पश्चिम नहीं जानता, वैसेही जो पलभा, सूर्य, दिशा, युगमान, मास, तिथि, दिन आदि नहीं जानता वह लोगों के जल्दी पूछने पर कैसे कह सकता है। परन्तु जो इसका उत्तर कहता है उसके चरणों को प्रणाम है। उसकी सेवा में सभी गणक-गण तत्पर रहते हैं।

उपपत्ति।

यह प्रश्न यन्त्राध्याय के 'आद्यन्तशङ्कुशिरसोः–' इत्यादि विशेष संबन्धी है। वह इस प्रकार है:–

ध्रुवकी ऊँचाई अक्षांश होता है। यन्त्र से मध्याह्न में सूर्यका नतांश सिद्ध करके उसमें अक्षांश का संस्कार करके क्रान्ति का ज्ञान करना। उससे विलोम विधि से सूर्य का भुजांश सिद्ध करना फिर 'भार्धाच्च्युतः सभार्धो भगणात्पतितो-ऽङ्घ्रिचरणानाम्।' इत्यादि क्रमसे सूर्य ज्ञात होताहै। वर्ष चरण का ज्ञान सूर्याक्रान्त नक्षत्र से होताहै। दिशा का ज्ञान ध्रुव से स्पष्ट है। इस प्रकार प्रतिदिन मध्याह्न में स्पष्ट सूर्य का ज्ञान करना। अद्यतन और श्वस्तन स्पष्टों के अन्तर में स्पष्ट सूर्यकी गति होती है। इस तरह स्पष्टगति का ज्ञान करके जिस दिन गति अति-अल्प हो उस दिन जितना स्पष्ट सूर्य हो वही उच्च समझना चाहिए। परमा-धिक और परमाल्प गतियों का योगार्ध मध्यम गति होती है। स्पष्ट सूर्य से विलोमविधि से मध्यम-सूर्य का ज्ञान करना। फिर 'राश्यादेर्विकलाः–' इत्यादि विधि से विकलाशेष से अहर्गण का ज्ञान होता है। अहर्गण से वार और विलोम-विधि से कल्पगत-वर्षों का ज्ञान होताहै। इस प्रकार पहले कहीहुई-विधियों से सब विषयों का ज्ञान करना चाहिए॥ ४६॥

वंशस्य मूलं प्रविलोक्य चाग्रं
तत्स्वान्तरं तस्य समुच्छ्रयं च।
यो वेत्ति यष्ट्यैव करस्थयासौ
धीयन्त्रवेदी वद किं न वेत्ति ॥ ५० ॥
ऊर्ध्वस्थस्य गृहादिभिर्व्यवहितस्याप्यग्रमात्रं सखे
वंशस्य प्रगुणस्य यस्य सुसमे देशे समालोक्यते।
अत्रैव त्वमवस्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
मन्ये यन्त्रविदांवरिष्ठपदवीं यातोऽसि धीयन्त्रवित् ॥ ५१ ॥
दूरस्थस्य न दूरगस्य यदि वाऽदृष्टस्य दृष्टस्य वा
वंशस्य प्रतिबिम्बितस्य सलिले दृष्ट्वाग्रमात्रं सखे।
अत्रैव त्वमवस्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
त्वां सर्वज्ञमतीन्द्रियज्ञमनुजव्याजेन मन्ये भुवि ॥ ५२ ॥

प्रभा।

एते श्लोकाः प्रथमं यन्त्राध्याये व्याकृता एव।

भाषाभाष्य।

इन प्रश्नों का अर्थ और उत्तर पहले यन्त्राध्याय में आचुका है ॥ ५०।५२ ॥

तिग्मांशुचन्द्रौ किल सायनांशौ
चतुर्द्विराशी च विपातचन्द्रः।
गृहाष्टकं तत्र वदाशु पातं
धीवृद्धिदं त्वं यदि वोत्सि गोलम् ॥ ५३ ॥
ग्रुक्रायनांशोऽष्टशतं शशी चे-
दशीतिरर्को द्विशती विपातः।

चन्द्रस्तदानीं वद पातमाशु
धीवृद्धिदं त्वं यदि वोबुधीपि ॥ ५४ ॥
असंभवः संभवलक्षणेऽपि
स्यात्संभवोऽसंभवलक्षणे किम् ।
पातस्य सिद्धान्तमिह प्रचक्ष्व
चेत्क्रान्तिसाम्ये प्रसृता मतिस्ते ॥ ५५ ॥
भागोनयुक्तं त्रिभ $^{२}_{२६}$ । $^{३}_{३}$ मर्कचन्द्रौ
चेत्सायनांशौ च विपातचन्द्रः ।
भागद्वयोनो भगण $^{१}_{१}$ $^{१}_{२}$ स्तदानीं
पातं वद त्वं यदि वोबुधीपि ॥ ५६ ॥
यातेऽपि पाते क्वचिदेष्यलक्ष्म
गम्येन गम्यं वद चित्रमत्र ।
यत्संभवासंभववैपरीत्यं
सांवत्सराचार्य विचार्य नूनम् ॥ ५७ ॥
एते प्रश्ना व्याख्याता एव ।

भाषाभाष्य ।

सायन सूर्य और चन्द्र क्रम से ४ और ३ राशि है और निरयण चन्द्र का राशि है । इस स्थिति में यदि तुम धीवृद्धिद तन्त्र को भलीभांति जानते हो तो पात अर्थात् सूर्य-चन्द्र का क्रान्तिसाम्य बतलाओ ।

जब सायनचन्द्र का अंश १०० और सूर्य ८० अंश हो एवं निरयणचन्द्र २०० अंश हो तो पात की स्थिति कहो ।

जब पात का संभव होता है तब असंभव क्यों होजाता है (लल्लाचार्य के मत से) और जब असंभव का लक्षण होता है तब उसका संभव क्यों होजाता है (यह भी उक्त आचार्य के मत से) इस लिये यदि तुम्हारी बुद्धि पातविषय में पैनी हो तो उसका ठीक नियम कहो ।

५७ जब सायन सूर्य और चन्द्र २ । १६ और ३ । १ हों और निरयणचन्द्र ११ । २८ हो उस समय पात स्थिति, यदि जानते हो तो कहो ।

धीवृद्धिद तन्त्र में, किसी स्थान में गतपात की स्थिति में भावी पात लिखा है और जहां वास्तव में हुआ है वहां आगे होना माना है । यह बड़ा आश्चर्य है । इस लिए हे गणक ! इस संभव और असंभव की विपरीतता को खूब विचारकर कहो ।

उपपत्ति ।

इन प्रश्नों का विषय गणिताध्याय के पाताधिकार में लिखा जायगा । क्योंकि पातविषय का विचार वहीं विस्तार से हो सकेगा ॥ ५३ । ५७ ॥

इदानीं सिद्धान्तग्रथनकालमाह—

रसगुणपूर्णमही १०३६ समशकसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः ।
रसगुण ३६ वर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः ॥ ५८ ॥

भाषाभाष्य ।

मेरा जन्म १०३६ शक में हुआहै और छत्तीसवर्ष की अवस्था में मैंने सिद्धान्तशिरोमणि को बनाया है ॥ ५८ ॥

इदानीं विद्वज्जनानुनयादनौद्धत्यप्रतिपादनद्वारेणात्मनः प्रागल्भ्यं प्रार्थयन्नाह—

गणितस्कन्धसंदर्भोऽदभ्रदर्भाग्रधीमतः ।
उचितोऽनुचितो यन्मे धाष्टर्यं तत्क्षम्यतां विदः ॥ ५९ ॥

गणितस्कन्धस्य संदर्भो नाम रचनाविशेषः । असावदभ्रदर्भाग्रधीमत एवोचितः । मूलप्रदेशादुपरि यानि पुष्टानि दीर्घाणि दर्भपत्राणि असावदभ्रस्तस्याग्रं यथा तीक्ष्णं तथा यस्य गतिस्तीक्ष्णा अभेद्यमपि प्रमेयं भित्त्वान्तः प्रविशति । तथाविधस्य गणितस्कन्धप्रबन्ध उचितः । अनुचितो मे तथापि कृतः । तद्धाष्टर्यं हे विद्वज्जना गणकाः । क्षम्यताम् ।

भाषाभाष्य ।

कुशाग्रबुद्धियों को गणितविषयक निबन्ध लिखना उचित है। इससे जो मेरे से अनुचित बनपड़ा हो उसे हे विद्वानो ! आपलोग क्षमा कीजिये ॥ ५६ ॥

इदानीमाद्यदूषणापराधं परिहरन्नाह–

ये वृद्धा लघवोऽपि येऽत्रगणका बद्धाञ्जलिं वच्मि तान्
क्षन्तव्यं मम तैर्मया यदधुना पूर्वोक्तयो दूषिताः
कर्तव्ये स्फुटवासनाप्रकथने पूर्वोक्तिविश्वासिनां
तत्तद्दूषणमन्तरेण नितरां नास्ति प्रतीतिर्यतः ॥ ६० ॥

स्पष्टम् ।

भाषाभाष्य ।

बड़े और छोटे सब ज्योतिषियों से अञ्जलि बांधकर मेरी प्रार्थना है कि मैंने जो प्राचीनों के मतों का अपने ग्रन्थ में खण्डन किया है उसके लिए वे मेरे को क्षमा करेंगे । क्योंकि पूर्वमतानुयायियों को बिना प्राचीनों के दोष दिखलाये नवीन उपपत्ति-विषय में विश्वास नहीं होता ॥ ६० ॥

आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने
नानासज्जनधाम्नि विज्जडविडे शाण्डिल्यगोत्रो द्विजः ।
श्रौतस्मार्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः
साधूनामवधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूडामणिः ॥ ६१ ॥

तज्जस्तच्चरणारविन्दयुगलप्राप्तप्रसादः सुधी–
मुग्धोद्बोधकरं विदग्धगणकप्रीतिप्रदं प्रस्फुटम् ।
एतद्व्यक्तसदुक्तियुक्तिबहुलं हेलावगम्यं विदां
सिद्धान्तग्रथनं कुबुद्धिमथनं चक्रे कविर्भास्करः ॥ ६२ ॥

केचित्पिपठिषन्त्येनं प्रश्नाध्यायं हि केवलम् ।
तदर्थं लिखिता अत्र प्रश्नाः प्रागगदिता अपि ॥ ६३ ॥

प्रश्नानमून् प्रपठतो गणकस्य गोल-
कन्दोल्लसत्सरलयुक्तिशतप्रवालैः ।
प्रश्नोत्तरार्थपरिचिन्तनवारिसिक्त-
मूलामला मतिलता समुपैति वृद्धिम् ॥ ६४ ॥

स्पष्टार्थम् ।

इति श्रीमहेश्वरोपाध्यायसुतभास्कराचार्यविरचिते सिद्धान्त-
शिरोमणिवासनाभाष्येमिताक्षरेगोलाध्यायःसमाप्तः ।
अत्र गोलाध्याये ग्रन्थसंख्या २१०० ।

प्रभा ।

ऋग्यजुःसामाख्यास्तिस्रो विद्या यस्येति त्रिविद्यः । ततः स्वार्थे अण् । अथवा तिस्रो विद्या अधीते वेद वा । तदधीतेत्यादिनाण् । सुधीनां मुग्धानां चोद्बोधकरम् । विदग्धाश्चतुरा ये गणकास्तेषां प्रीतिप्रदम् । व्यक्ता प्रस्फुटा या सदुक्तिः शोभनालङ्कारविशिष्टा वाणी युक्तिश्च ताभ्यां बहुलम् । हेला विलासादिक्रिया तयावगम्यम् । गोल एव कन्दः, उल्लसन्ति सरलयुक्तिशतान्येव प्रवालानि, तैः । प्रश्नोत्तरार्थानां यत्परिचिन्तनं विचारस्तदेव वारिजलं तेन सिक्तमूला अमला निर्दूषणा मतिलता बुद्धिलता वृद्धिं समुपैति प्राप्नोति । वृद्धिशब्दोऽत्रमङ्गलार्थक इति ।

ज्योतिर्व्याकृतिसाहितीचतुरता षड्दर्शनोद्भासिता
तत्तद्भावरसस्फुरत्सुकविता यस्यास्ति ख्यातिं गता ।
अम्बापादपरायणो जयपुरीपाठालयाध्यापको
भूयो भाति द्विवेद्युपाख्यजनको दुर्गाप्रसादः सुधीः ॥ १ ॥
तत्सूनुरल्पधिषिणो गिरिजाप्रसादः
संचिन्त्य नैकमतसंमथितार्थतत्त्वम् ।

वेदाङ्गगोधरणिसंमितविक्रमाब्दे
भाषासुभाष्यसहितामकरोत्प्रभां ताम् ॥ २ ॥
साकेतपश्चिमदिशाभरणायमाना
भ्राजिष्णुसाम्बशिवमन्दिरमञ्जुगर्भा ।
नानाद्रुमव्रततिवंशमनोभिरामा
सा भाति पण्डितपुरी मम जन्मभूमिः ॥ ३ ॥

भाषाभाष्य ।

सह्यपर्वत के निकट, वेदाध्यायी और नानाविध सज्जन पुरुषों से भूषित विज्जडविड=नामक स्थान में शाण्डिल्यगोत्रीय ब्राह्मण, श्रुति और स्मृति शास्त्र के विचार में चतुर, नाना विद्यानिधान, साधुश्रेष्ठ, दैवज्ञमुकुटमणि एक महेश्वर नामक विद्वान् थे।

उनका पुत्र, उन्हीं के चरण प्रसाद से, विद्वान् और मूढ़ों को बोधदायक, चतुर ज्योतिषियों को सन्तोषप्रद, स्पष्ट, अच्छी उक्तियों और युक्तियों से पूर्ण, विद्वानों को अल्पश्रम साध्य, और कुबुद्धियों का मथनरूप यह सिद्धान्त निर्माण भास्कर कवि ने किया है।

कोई लोग इस प्रश्नाध्याय को ही पढ़ेंगे, इस विचार से पहले कहे प्रश्नों को भी यहां लिखा है।

इन प्रश्नों को पढ़नेवाले ज्योतिषियों की, गोलरूपी कन्दों के नानाविध, सुन्दर, सरल युक्तिरूप प्रवालों (कोमल पल्लवों) से, प्रश्नोत्तर–विचाररूप जल से सींची हुई शुद्ध बुद्धिलता खूब वृद्धि को प्राप्त होती है ॥ ६१ । ६४ ॥

भाषाभाष्य में गोलाध्याय समाप्त हुआ।

संवत् १९६४ चैत्रबदि २ गुरुवार; ता० २० मार्च, सन १९०८,

अथ ज्योत्पत्तिः ।

आचार्याणां पदवीं ज्योत्पत्त्या ज्ञातया यतो याति ।
विविधां विदग्धगणकप्रीत्यै तां भास्करो वक्ति ॥ १ ॥

प्रभा ।

विदग्धाश्चतुरा ये गणकास्तेषां प्रीत्यै ।

भाषाभाष्य ।

बिना ज्योत्पत्ति का विषय जाने आचार्यपदवी नहीं प्राप्त होती; इसलिए अनेक भांतिकी ज्योत्पत्ति को, चतुर गणकों के सन्तोष के लिए भास्कर कहता है ॥ १ ॥

इष्टाङ्गुलव्यासदलेन वृत्तं
कार्यं दिगङ्कं भलवाङ्कितं च ।
ज्यासंख्ययाप्ता नवतेर्लवा ये
तदाद्यजीवाधनुरेतदेव ॥ २ ॥
द्वित्र्यादिनिघ्नं तदनन्तराणां
चापे तु दत्त्वोभयतो दिगङ्कात् ।
ज्ञेयं तदग्रद्वयबद्धरज्ज्वो-
रर्धं ज्यकार्धं निखिलानि चैवम् ॥ ३ ॥

प्रभा ।

यावतीज्या विधातुमिष्टास्तत्संख्यया चतुर्विंशत्यादिरूपयेत्यर्थः । तत्र आद्यजीवाधनुः स्यात् । एतदेव द्वित्र्यादिभिर्निघ्नं तदनन्तराणां जीवानां धनुः स्यात् । चापे तु दत्त्वोभयत इत्यादिना अर्धज्यारूपं दर्शितम् । एवं निखिलानि ज्यार्धानि स्युः ।

भाषाभाष्य ।

इष्ट अङ्गुल के तुल्य व्यासार्ध से वृत्त बनाकर उस में दिशाओं को अङ्कित

करके, ३६० अंशों को अङ्कित करना। ज्यासंख्या का नब्बे अंश में भाग देने से लब्धि प्रथम-ज्या का धनु होता है। इसको दो, तीन आदि इष्ट संख्याओं से, गुणने से आगे के धनुष होंगे। दिक् चिह्न के दोनों ओर वृत्त में धनु तुल्य खण्ड कल्पना करके उनके अग्र में रस्सी बांधकर उसका अर्ध इन ज्याओं को समझना चाहिए। इसीप्रकार सब ज्याएं सिद्ध होती हैं॥ २। ३॥

अथान्यथा वा गणितेन वच्मि
ज्यार्धानि तान्येव परिस्फुटानि।
त्रिज्याकृतिर्दोर्गुणवर्गहीना
मूलं तदीयं खलु कोटिजीवा॥ ४॥
दोःकोटिजीवारहिते त्रिभज्ये
तच्छेषके कोटिभुजोत्क्रमज्ये।
ज्याचापमध्ये खलु योऽत्र बाणः
सैवोत्क्रमज्या सुधियात्र वेद्या॥ ५॥

प्रभा।

जलवत्समीकृते महीतले विलिखिते महीयसि वृत्ते पूर्वगणना प्रकारेण अवगतानि धनूंषि ज्यार्धानि सूक्ष्माण्येव। पुनरेतानि गणितेनापि साध्यन्ते तत्रानेके प्रकाराः। शेषं स्पष्टम्।

भाषाभाष्य।

अब दूसरी विधि से इन्हीं ज्याओं को गणित द्वारा कहता हूं। त्रिज्यावर्ग में भुजज्यावर्ग घटाकर मूलकोटिज्या होती है। त्रिज्या में भुजज्या और कोटिज्या घटा देने से शेष कोटिज्या और भुजज्या की उत्क्रमज्या रहती है। ज्या और चाप के बीच में जो बाण के तुल्य अन्तर रहता है उसी को उत्क्रमज्या जानना चाहिए॥ ४। ५॥

त्रिज्यार्धं राशिज्या,
तत्कोटिज्या च षष्टिभागानाम्।
त्रिज्यावर्गार्धपदं,
शरवेदांशज्यका भवति॥ ६॥

प्रभा।

राशिज्या त्रिंशदंशानां जीवा स्यात्। तत्कोटिज्या षष्टिभागानां जीवा स्यात्। शेषं स्पष्टम्।

भाषाभाष्य।

त्रिज्या का आधा एक राशि ३०ं की ज्या होती है और उसकी कोटिज्या साठ अंश की होती है। त्रिज्यावर्ग के आधे का मूल पैंतालीस अंश की ज्या होती है।

उपपत्ति।

(१) ३०° ज्या=य,

त्रि–य=६०° उत्क्रमज्या, 'त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेर्दलस्य–' इत्यादि विधि से,

$$\frac{त्रि^2 - य \times त्रि}{२} = य^2 = त्रि^2 - य \times त्रि = २\,य^2;$$

समशोधन करनेसे $त्रि^2 = २\,य^2 + य \times त्रि$; पक्षों को आठ से गुणकर त्रिज्यावर्ग जोड़ने से हुआ—

$$९\,त्रि^2 = १६\,य^2 + य \times त्रि\,८ + त्रि^2,$$

$\therefore \sqrt{९\,त्रि^2} = ३\,त्रि$, और $\sqrt{१६\,य^2 + य \times त्रि\,८ + त्रि^2} = ४\,य + त्रि$,

$\therefore$ ३ त्रि = ४ य + त्रि = ४ य= २ त्रि = त्रि $\frac{१}{२}$ इस लिए 'त्रिज्यार्ध राशिज्या।' उपपन्न हुआ।

(२) अथवा 'क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूलात्–' इत्यादि विधि से

$$त्रि^2 - य^2 = ज्या^2\,६०$$

$$त्रि - य = उत्क्रमज्या\ ६०$$

इन दोनों के वर्ग,

$त्रि^2 - २\,य \times त्रि + य^2$, और $त्रि^2 - य^2$; इन का योगार्ध करके राशिज्यावर्ग के साथ समीकरण के लिए न्यास;

$$\frac{२\,त्रि^2 - २\,य \times त्रि}{४} = य^2 = २\,त्रि^2 - २\,य \times त्रि = ४\,य^2$$

समशोधन करके पक्षों को चार से गुणाकर त्रिज्यावर्ग जोड़ दिया;

$$९\,त्रि^2 = १६\,य^2 + ८\,य \times त्रि + त्रि^2$$

$\therefore \sqrt{९\,त्रि} = ३\,त्रि$। और $\sqrt{१६\,य^2 + य \times त्रि\,८ + त्रि^2} = ४\,य + त्रि$;

∴ ३ त्रि = ४ य + त्रि; फिर इनका समीकरण करने से त्रि $\frac{१}{२}$ = ज्या ३०° के सिद्ध हुआ।

(३) 'त्रिज्यावर्गार्धपदं शरवेदांशज्यका भवति।' इस की उपपत्ति यों है— क्रमज्या और उत्क्रमज्या ४५ की त्रिज्या के समान होती है, इसलिए 'क्रमोत्क्रमज्या–' इत्यादि रीति से—

त्रि^{२} + त्रि^{२} = २ त्रि^{२}; 'वर्गेण वर्ग गुणयेत्' से $\frac{२ त्रि^२}{४}$ =

$\sqrt{\frac{२ त्रि - २}{४}} = \frac{त्रि^२}{२}$; उक्त प्रकार उपपन्न हुआ ॥ ६ ॥

त्रिज्याकृतीषुघातात्त्रिज्याकृतिवर्गपञ्चघातस्य।
मूलोनादष्टहृतान्मूलं षट्त्रिंशदंशज्या ॥ ७ ॥

भाषाभाष्य।

त्रिज्यावर्ग को पांच से गुणकर फल में, त्रिज्यावर्ग वर्ग और पांच के गुणन फल के मूलको घटाकर, आठ का भाग देकर फिर मूल लेना, फल छत्तीस अंश की ज्या होगी।

उपपत्ति।

'त्रिज्याकृतीषुघातान्मूलम्–'इत्यादि वक्ष्यमाण रीति से अठारह अंश १८° की ज्या यह होती है, $\sqrt{\frac{५ त्रि^२ - त्रि}{४}}$; इसको त्रिज्या में घटा देने से ७२° अंश की उत्क्रमज्या होती है,

∴ $\frac{५ त्रि - \sqrt{५ त्रि^२}}{४}$ = उज्या ७२°, इससे 'त्रिज्योत्क्रमज्यानिहते–' इसके अनुसार,

$\frac{५ त्रि^२ - \sqrt{५ त्रि^४}}{८}$ = ज्या ३६°

अथवा,

ज्या १८ = $\frac{\sqrt{५ त्रि^२ त्रि}}{४}$ अब त्रिज्या भुजज्यहतिहीनयुक्, इस विधि से,

त्रि × भु = $\frac{\sqrt{५ त्रि^४ - त्रि^२}}{४}$

$$त्रि^2 - त्रि \times भु = \frac{५ त्रि^2 - \sqrt{५ त्रि^4}}{४}$$

$$\frac{त्रि^2 - त्रि \times भु}{२} = \frac{५त्रि^2 - \sqrt{५त्रि^4}}{८}$$

$$\frac{त्रि - \sqrt{त्रि \times भु}}{२} = \sqrt{\frac{५त्रि^2 - \sqrt{५त्रि^4}}{८}} = ज्या\ ३६^\circ ।$$

गजहयगजेषु ५८७८ निघ्नी त्रिभजीवा वायुतेन १०००० संभक्ता।
षट्त्रिंशदंशजीवा तत्कोटिज्या कृतेषूणाम् ॥ ८ ॥

प्रभा।

तत्कोटिज्या कृतेषूणां चतुःपञ्चाशद्भागानां जीवा स्यादिति संबन्धः॥

भाषाभाष्य।

त्रिज्या को ५८७८ से गुणकर फल में १०००० का भाग देने से प्रकारान्तर से छत्तीस अंश की ज्या होती है। ३६ अंशों की कोटिज्या ५४ अंशकी ज्या होती है।

उपपत्ति।

(१) यहां आचार्य ने त्रिज्या १०००० कल्पना की है। अब अनुपात होता है कि—

$$१०००० : ५८७८ :: इष्टत्रि : \frac{त्रि \times ५८७८}{१००००} = ३६ ज्या।$$

यह प्रकार पहले जो ३६ ज्या सिद्ध हुई है उसी से सिद्ध होता है। पहले का स्वरूप यह है—

$$\sqrt{\frac{५त्रि^2 - \sqrt{५त्रि^4}}{८}} = त्रि\sqrt{\frac{५ - \sqrt{५}}{८}}$$; यहां करणी गत मूल लेने से

$\sqrt{५} = २.७६२५८६$, इस में ८ का भाग देने से लब्धि $= .३४५३२३$

$\therefore$ ज्या $३६ = त्रि\sqrt{.३४५३२३} = त्रि \times .५८७८ = \frac{त्रि \times ५८७८}{१००००}$; यह उपपन्न हुआ।

(२) यहां गणित का विस्तार इस प्रकार है—पहले सिद्ध हुई छत्तीस अंश ३६ ज्या यह है, $\frac{\sqrt{५ त्रि^2 - \sqrt{५त्रि^4}}}{८}$ यहां त्रिज्या के स्थान में १०००० कल्पना करने से—

$१००००^2 \times ५ = १०००००००० \times ५ = ५०००००००००$ ।

और, $१००००^4 \times ५ = १०००००००००००००००० \times ५$ इसका मूल लेने से और शेष ५२५४००७६० त्याग करने से।

हुआ $\sqrt{५००००००००००००००००} = २२३६०६७९७ = \sqrt{५त्रि^4}$;

और $५०००००००० — २७६३९३२०३ = \sqrt{५त्रि^2 - \sqrt{५त्रि^4}}$

$\therefore २७६३९३२०३ \div ८ = ३४५४९१५० = \frac{\sqrt{५त्रि^2 - \sqrt{५त्रि^4}}}{८}$,

फिर मूल लेने से और मूल शेष २६६ का त्याग करने से; $\sqrt{३४५४९१५०} = ५८७८$ । अब इससे ऊपर लिखा अनुपात करने से, $\frac{त्रि \times ५८७८}{१००००}$ यह सिद्ध हुआ। इस प्रकार 'गजहयगजेषुनिघ्नी–' इत्यादि विधि उपपन्न हुई ॥ ८ ॥

त्रिज्याकृतिपञ्चघातान्मूलं त्रिज्योनितं चतुर्भक्तम् ।
अष्टादशभागानां जीवा स्पष्टा भवत्येवम् ॥ ९ ॥

भाषाभाष्य ।

त्रिज्यावर्ग को पांच से गुणकर मूल लेना, फिर उससे त्रिज्या में घटाकर चार का भाग देना फल अठारह अंश की ज्या होती है।

उपपत्ति ।

(१) यहां पर यदि ज्या १८° = य तब २ य = ज्या ३६ के होता है। इस से अनुपात किया—

त्रि : २ य : : २ य : त्रि–२ य, इस प्रकार दो पक्ष सिद्ध हुए,

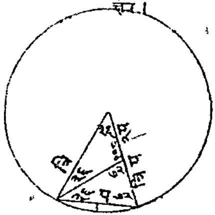
$४ य^2 = त्रि^2 - २ त्रि \times य$ समशोधन से $४ य^2 \times २ त्रि \times य = त्रि^2$, पक्षों को चार ४ से गुणकर त्रिज्यावर्ग जोडने से,

$$१६ य^२ + ८ त्रि \times य + त्रि^२ = ५ त्रि^२$$

$$\therefore \sqrt{१६ य^२ + ८ त्रि \times य + त्रि^२} = ४ य + त्रि, \text{ और } \sqrt{५ त्रि^२}$$

फिर इनका समशोधन करने से हुआ—

ज्या $१८^\circ = \frac{\sqrt{५ त्रि^२} - त्रि}{४}$; इस प्रकार 'त्रिज्याकृतीपुत्रगतान्मूलं—' इत्यादि प्रकार उपपन्न हुआ।



(२) अथवा प्रकारान्तर से

ज्या १८ = य, त्रि–य = उज्या ७२, इससे 'त्रिज्योत्क्रमज्या निहतेर्दलस्य—' इस विधि से छत्तीस अंश की ज्या का वर्ग हुआ—

$\frac{त्रि^२ - त्रि \times य}{२}$; प्रकारान्तर से ३६ अंश के ज्यावर्ग के लिये आगे लिखे क्षेत्र के अनुसार अनुपात, त्रिज्याकर्ण में कोटिज्या कोटि तो द्विगुण भुजज्या कर्ण में क्या ? $\left(\frac{को \times २ य}{त्रि}\right)^२ =$ ज्या$^२ ३६^\circ$; और को ज्या$^२ =$ त्रि$^२ -$ य^२, इस लिये 'वर्गेण वर्ग गुणयेद् भजेच' इस नियम से कोटिज्या वर्ग को ४ य^२ से गुणकर त्रि^{२} का भाग देकर पहले पक्ष के साथ समीकरण के लिये न्यास—

$$\frac{त्रि^२ - त्रि \times य}{२} = \frac{४ य^२ \times त्रि^२ - ४ य^४}{त्रि^२}$$

समच्छेद और छेदगम करने से

$$त्रि^४ - त्रि^३ \times य = ८ य^२ \times त्रि^२ - ८ य^४$$

पञ्चान्तरानयन से

$$\text{८ य}^{४} - \text{८ य}^{२} \times \text{त्रि}^{२} = \text{त्रि}^{३} \times \text{य} - \text{त्रि}^{४}$$

मूल के लिये आठ से गुणकर, $\text{१६ य}^{२} \times \text{त्रि}^{२} + \text{९त्रि}^{४}$, इसको जोड़ने से $\text{६४ य}^{४} - \text{४८ य}^{२} \times \text{त्रि}^{२} + \text{९ त्रि}^{४} = \text{१६ य}^{२} \times \text{त्रि}^{२} + \text{८ य} \times \text{त्रि}^{३} + \text{त्रि}^{४}$

'स्वमूले धनर्णे' इस नियम से मूलहुए

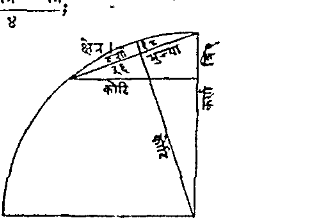
$$\sqrt{\text{६४ य}^{४} - \text{४८ य}^{२} \times \text{त्रि}^{२} + \text{९ त्रि}^{४}} = \text{८ य}^{२} - \text{३ त्रि}^{२}$$

$$\sqrt{\text{१६ य}^{२} \times \text{त्रि}^{२} + \text{८य} \times \text{त्रि}^{३} + \text{त्रि}^{४}} = -\text{४ य} \times \text{त्रि} - \text{त्रि}^{२}$$

इनका फिर पञ्चान्तरानयन से

$\text{८य}^{२} + \text{४य} \times \text{त्रि} = \text{२त्रि}^{२}$ इनको दो से गुणकर त्रिज्यावर्ग जोड़कर मूल लिया- $\sqrt{\text{१६य}^{२} + \text{८य} \times \text{त्रि} + \text{त्रि}^{२}}\ \text{४य} + \text{त्रि}$, और $\sqrt{\text{५त्रि}^{२}}$ = इनका समशोधन करने पर सिद्ध हुआ—

$$\text{* ज्या १८} = \frac{\sqrt{\text{५ त्रि}^{२}} - \text{त्रि}}{\text{४}};$$



इस प्रकार उक्त प्रकार उपपन्न हुआ ॥ ९ ॥

क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूला—
दलं तदंशकशिञ्जिनी स्यात् ।

* यह [illegible] सिद्धान्ततत्त्वविवेक और [illegible] में है । [illegible]

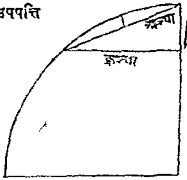
त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेर्दलस्य
मूलं तदर्धांशकशिञ्जिनी वा ॥ १० ॥

भाषाभाष्य।

क्रमज्या और उत्क्रमज्या के वर्गयोग के मूल का आधा अर्धांशज्या होती है। अथवा त्रिज्या और उत्क्रमज्या के गुणन के आधे का मूल, अर्धांशज्या होती है।

उपपत्ति।

(१) इस क्षेत्र में उपपत्ति स्पष्ट प्रतीत होती है।

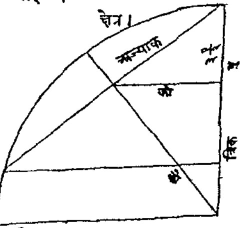


(२) दूसरे प्रकार में अनुपात किया—

त्रिक अज्याभु अज्याक . उत्क्रमज्या $\frac{1}{2}$; हर लब्धि का गुणन भाज्य राशि के समान होता है।

$\therefore$ त्रि $\times$ उज्या $\frac{1}{2}$ = अज्या^{2}

$\sqrt{\text{त्रि} \times \text{उज्या} \frac{1}{2}} = \sqrt{\text{अज्या}^2}$ = अज्या।



इस प्रकार 'त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेर्दलस्य।' इत्यादि प्रकार उपपन्न हुआ ॥ १० ॥

तस्याः पुनस्तद्दलभागकानां
कोटेश्च कोट्यंशदलस्य चैवम् ।
अन्यज्यकासाधनमुक्तमेवं
पूर्वैः प्रवक्ष्येऽथ विशिष्टमस्मात् ॥ ११ ॥

भाषाभाष्य ।

इसी प्रकार अर्धज्या का भी अर्ध करके ज्यासाधन करना । और कोटिज्या का भी अर्धज्या आदि साधन करना चाहिए । इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने इष्टज्या से अन्यज्याओं की साधन विधि कही है । परन्तु अब इस से विशिष्ट विधि कहताहूं ॥ ११ ॥

त्रिज्याभुजज्याहतिहीनयुक्ते
त्रिज्याकृती तद्दलयोः पदे स्तः ।
भुजोनयुक्तत्रिभखण्डयोर्ज्ये
कोटिं भुजज्यां परिकल्प्य चैवम् ॥ १२ ॥

प्रभा ।

त्रिज्या—भुजज्ययोर्या आहतिः तया हीनयुक्ते त्रिज्याकृती त्रिज्यावर्गौ तद्दलयोः तदर्धयोः पदे मूले क्रमेण भुजेन ऊनयुक्तत्रिभखण्डयोर्ज्ये स्तः । कोटिज्यां भुजज्या परिकल्प्य पुनरेवं क्रिया कार्या ।

भाषाभाष्य ।

त्रिज्यावर्ग में त्रिज्या और भुजज्या के घात को एक स्थान में जोड़कर दूसरे स्थान में घटाकर मूल लेने से, क्रम से भुज सहित और रहित त्रिज्याकी अर्धज्या होती है । इसी प्रकार भुजज्या के स्थान में कोटिज्या मानकर कोटि की अर्धज्या सिद्ध करना चाहिए ।

उपपत्ति ।

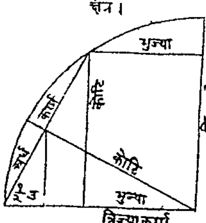
(१) नीचे लिखे क्षेत्र के साथ अनुपात किया—यदि त्रिज्या में अर्धज्या मिलती है तो द्विगुणार्धज्या में क्या ? फल उत्क्रमज्या $\frac{२ \text{ अर्धज्या}^{२}}{\text{त्रि}}$ = उज्या

प्रकारान्तर से उत्क्रमज्या = त्रि—भुज्या = उज्या । इस लिए दोनों का समीकरण से पक्ष हुए—

२ अर्धज्या^{2}=त्रि $-$त्रि $\times$ भु ; इनमें दो का अपवर्तन देकर मूल लिया—

$\sqrt{\text{अर्धज्या}^2}$ = अर्धज्या = $\sqrt{\frac{\text{त्रि}^2 - \text{त्रि} \times \text{भु}}{2}}$। यहां 'त्रिज्याभुजज्याहृतिहीना त्रिज्याकृति।' इत्यादि अंश उपपन्न हुआ।

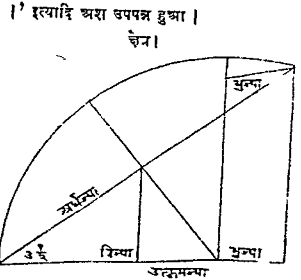
क्षेत्र।



(२) नीचे लिखे क्षेत्र के अनुसार अनुपात किया-त्रिज्या कर्ण में अर्धज्या भुज तो द्विगुण अर्धज्याकर्ण में क्या? $2\frac{\text{अर्धज्या}^2}{\text{त्रि}}$=उज्या प्रकारान्तरसे उत्क्रमज्या त्रि$-$भु। इसप्रकार दो पक्ष सिद्ध हुए २ अर्धज्या^{2}=त्रि^{2} $+$ त्रि$\times$भु; इन में दो का अपवर्तन देकर मूल लेने से हुआ—

$\sqrt{\text{अर्धज्या}^2}$=अर्धज्या=$\frac{\sqrt{\text{त्रि}^2 + \text{त्रि} \times \text{भु}}}{2}$, इसलिए 'त्रिज्याभुजज्याहृतिका त्रिज्याकृति।' इत्यादि अश उपपन्न हुआ।

क्षेत्र।



इस प्रकार दोनों क्षेत्रों से मिलकर पूरा श्लोक उपपन्न हुआ ॥ १२ ॥

यद्दोर्ज्ययोरन्तरमिष्टयोर्य-
स्कोटिज्ययोस्तत्कृतियोगमूलम् ।
दलीकृतं स्याद्भुजयोर्वियोग-
खण्डस्य जीवैवमनेकधा वा ॥ १३ ॥

भाषाभाष्य ।

इष्टभुजज्या और कोटिज्याओं के अन्तर का मूल लेकर उसका आधा करना, इसप्रकार भुजों के अंतरार्ध की ज्या होगी । ऐसेही अनेक प्रकारों से जीवाएं सिद्ध होती हैं ।

उपपत्ति ।

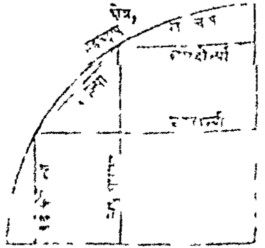
नीचे लिखे क्षेत्र के अनुसार–

$(\text{दृद्दो}-\text{लदो})^2 + (\text{लको}-\text{दृको})^2 = ४\ \text{अर्धज्या}^2$

$\therefore \sqrt{(\text{दो अं})^2 + (\text{को अं})^2} = २\ \text{अर्धज्या},$

दोनो पक्षों में दो का अपवर्तन दिया तो सिद्ध हुआ

$\text{अर्धज्या} = \dfrac{\sqrt{(\text{दो अं})^2 + (\text{को अं})^2}}{२}$, इसलिए 'यद्दोर्ज्ययोरन्तरमिष्टयोः—' इत्यादि विधि उपपन्न हुई ॥ १३ ॥



दोः कोटिजीवाविवरस्य वर्गो
दलीकृतात्तस्य पदेन तुल्या ।
स्यात्कोटिदोर्विवरार्धजीवा
वक्ष्येऽथ मूलग्रहणं विनापि ॥ १४ ॥

भाषाभाष्य ।

भुजज्या और कोटिज्या के अन्तर वर्ग के मूल के समान कोटिज्या और भुजज्या के अन्तरार्ध की ज्या होती है । आगे बिना मूल के ही यह विधि कहताहूं ।

उपपत्ति ।

नीचे-लिखे क्षेत्र में,

प्रथम दोर्ज्या=दो, प्रथम कोटिज्या=को;

द्वितीय दोर्ज्या=दो', द्वितीय कोटिज्या=को';

अब सूत्र के अनुसार,

$(\text{को}'-\text{दो})^2 + (\text{को}-\text{दो}') = ४ \text{ अर्धज्या}^2$;

यहांपर, $(\text{को}'-\text{दो})^2 = (\text{को}-\text{दो}')^2$;

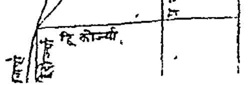
$\therefore (\text{को}'-\text{दो}')^2 = ४ \text{ अर्धज्या}^2$ 'वर्गेण वर्गम्–' इत्यादि विधि से अर्ध करने से हुआ–

$$\text{अर्धज्या}^2 = \frac{(\text{को}'-\text{दो}')^2}{२};$$

$$\sqrt{\text{अर्धज्या}^2} = \frac{\sqrt{(\text{को}'-\text{दो}')^2}}{२} ।$$

$$\therefore \text{ज्या}\frac{(\text{कोट्यंश}-\text{भुजांश})}{२} = \frac{\sqrt{(\text{को}'-\text{दो}')^2}}{२}.$$

क्षेत्र ।



इस प्रकार 'दो कोटिजीवाविवरस्य–' इत्यादि विधि उपपन्न हुई ॥ १४ ॥

दोर्ज्याकृतिर्व्यासदलार्धभक्ता
लब्धत्रिमौर्व्योर्विवरेण तुल्या ।
दोःकोटिभागान्तरशिञ्जिनीस्या-
ज्ज्यार्धानि वा कानिचिदेवमत्र ॥ १५ ॥

भाषाभाष्य ।

भुजज्या के वर्ग में त्रिज्याका भाग देकर लब्धि और त्रिज्या के अन्तर के समान भुज कोटिकी अन्तराशज्या होती है । इस प्रकार कितनी एक ज्या सिद्ध होती हैं ।

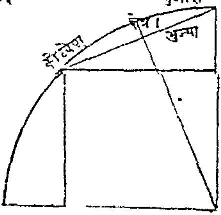
उपपत्ति ।

नीचे लिखे क्षेत्र में, अनुपात किया—

त्रि : भुज्या : भुज्या २ = $\frac{\text{भुज्या}^2}{\text{त्रि}}$, इस में दो का अपवर्तन

दिया, $\frac{\text{भुज्या}^2}{\text{त्रि}\frac{1}{2}}$,

$\therefore \sqrt{\frac{\text{भुज्या}^2}{\text{त्रि}\frac{1}{2}}}$—त्रि=भुज कोटिकी अन्तराश ज्या के समान हुआ ।



इस लिये उक्त विधि उपपन्न हुई ॥ १५ ॥

स्वगोङ्कपुपडंशेन६५६६वर्जिता भुजशिञ्जिनी।
कोटिज्या दशभिःक्षुण्णा त्रिसप्तेषु५७३विभाजिता ॥ १६ ॥
तदैक्यमग्रजीवा स्यादन्तरं पूर्वशिञ्जिनी।
प्रथमज्या भवेदेवं पष्टिरन्यास्ततस्ततः ॥ १७ ॥
व्यासार्धेऽष्टगुणाव्ध्यग्नितुल्ये स्युर्नवतिर्ज्यकाः।
कोटिजीवा शताभ्यस्ता गोदन्ततिथि१५३२९भाजिता ॥ १८ ॥
दोर्ज्या स्वाद्र्यङ्कवेदांश ४९७ हीना तद्योगसंमिता।
तदग्रज्या तयोश्चापि विवरं पूर्वशिञ्जिनी ॥ १९ ॥
तत्त्वदस्रा नगांशोना २२४।५१ एवमत्राद्यशिञ्जिनी।
ज्यापरंपरयैवं वा चतुर्विंशतिमौर्विकाः ॥ २० ॥
चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये मिथः कोटिज्यकाहते।
त्रिज्याभक्ते तयोरैक्यं तच्चापैक्यस्य दोर्ज्यका ॥ २१ ॥
चापान्तरस्य जीवा स्यात्तयोरन्तरसंमिता।
अन्यज्यासाधने सम्यगियं ज्याभावनोदिता ॥ २२ ॥
समासभावना चैका तथान्यान्तरभावना।
आद्यज्याचापभागानां प्रतिभागज्यकाविधिः ॥ २३ ॥
या ज्यानुपाततः सेष्टव्यासार्धे परिणाम्यते।
आद्यदोःकोटिजीवाभ्यामेवं कार्या ततो मुहुः ॥ २४ ॥
भावनाः स्युस्तदग्रज्या इष्टे व्यासदले स्फुटाः।
स्थूलं ज्यानयनं पाट्यामिह तन्नोदितं मया ॥ २५ ॥

इति ज्योत्पत्तिः।

भाषाभाष्य।

इस प्रकार ज्या कोटिज्या का साधन करके अब भावना से प्रत्यश ज्या का

प्रकार लिखते हैं:-भुजज्या में उसका $\frac{१}{६५६६}$ भाग घटाना और दशगुनी कोटिज्यामें ५७३ का भाग देना, इन दोनों फलों का योग अगिली ज्या होती है अर्थात् यह एक अंश की भुजज्या होगी। और पहली ज्या एक अंश की ज्या होती है यह साठ कला के तुल्य होती है। इसी प्रकार आगे की ज्या सब सिद्ध होती हैं। इस प्रकार में ३४३८ त्रिज्या कल्पना करके नब्बे अंश तक प्रत्येक अंश की ज्या सिद्ध होती है। कोटिज्या को सौ से गुणकर फल में १५२२ का भाग देना और भुजज्या का $\frac{१}{४६७}$ अंश घटा देना, इस प्रकार फल आगेकी ज्या होगी (यह ज्या ३०$\frac{३}{४}$ इतने चाप की होती है प्रथम चापज्या से अधिक होती है) दोनों के अन्तर से गतज्या ज्ञात होती है। यहां प्रथमज्या (अर्थात् ३०$\frac{३}{४}$ अंश ज्या) २२४$\frac{५}{६}$ के समान होती है। (२२५ के नहीं होता जैसा कि साधारण रीति से कही गई है) इसी नियम से चौबीस अंशों की ज्याएं सिद्ध होती हैं।

दो इष्ट चापों की भुजज्याओं को उसकी कोटिज्याओं से गुणकर त्रिज्या का भाग देना, फलों का योग करने से चापों की योगज्या और अन्तर से अन्तरज्या होती है। इस विधि को ज्याभावना कहते हैं, अन्य ज्याओं के साधन में यह ज्याभावना उपयुक्त होती है।

यह विधि दो प्रकार की है, पहली समासभावना कहलाती है (यह चापों की योग ज्यासाधनार्थ है) और दूसरी अन्तरभावना कहलाती है (यह चापों की अन्तरज्या के लिये है)। पहले जो ज्या सिद्ध हुई हैं उन से प्रत्यंशज्या सिद्ध करनी चाहिये। ज्या को व्यासार्ध में परिणामन करने से इष्टज्या होतीहै। प्रथमज्या और कोटिज्या से भावना द्वारा अन्यज्या इष्ट व्यासार्ध में सिद्ध होती हैं। पाटीगणित अर्थात् लीलावती में ज्यासाधन स्थूल रीति से लिखा है इसलिये यहां उसका फिर निरूपण नहीं किया गया है।

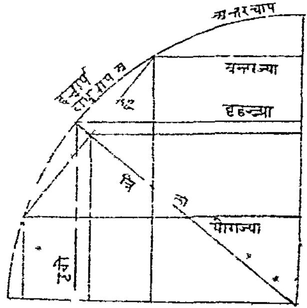
उपपत्ति।

'चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये—' इत्यादि विधि से,

$$\frac{\text{इ ज्या}\times\text{ल को}}{\text{त्रि}}+\frac{\text{लज्या}\times\text{इ को}}{\text{त्रि}}=\text{योग ज्या};$$

$$\frac{\text{इ ज्या}\times\text{ल को}}{\text{त्रि}}-\frac{\text{ल ज्या}\times\text{इ को}}{\text{त्रि}}=\text{अन्तरज्या},$$

क्षेत्र।



यहां पर लघुचापांश=१ ज्यासाधन के लिए इसकी कला की तो हुई ६० अब 'तत्त्वाश्विभक्ता असव कला वा।' इत्यादि प्रकार से ६० यह ज्या सिद्ध हुई यह लघुज्या है।

अब,

३४३८=त्रि, इस लिए–

११८१६८४४=त्रि^{2}

<u>३६००=लज्या^{2};</u>

११८१६२४४=त्रि^{2}–लज्या^{2} ;

$\therefore$ ३४३७$\frac{1}{2}$=लको=$\sqrt{(\text{त्रि}^2-\text{लज्या})}$ स्थूल रूप से हुआ।

अब 'चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये–' इत्यादि विधि से,

$$\frac{\text{बृज्या}\times ३४३७\frac{1}{2}}{३४३८}+\frac{६०\times \text{बृको}}{३४३८}=\text{योगज्या।}$$

$$\frac{\text{बृज्या}\times ३४३७\frac{1}{2}}{३४३८}=\frac{\frac{\text{बृज्या}\times ६८७५}{२}}{३४३८}=\frac{\text{बृज्या}\times ६८७५}{६८७६}.$$

यहां अनुपात किया—

६८७६ त्रिज्या में, ६८७५ लको, तो ६५६१ त्रिज्या में क्या ?

$\therefore \frac{\text{६८७५} \times \text{६५६६}}{\text{६८७६}} = $ ६५६८ सिद्ध हुई। इसलिए पहले जो योगज्या का स्वरूप था वह यों हुआ—

$$\frac{\text{बृज्या} \times \text{६५६८}}{-\text{६५६६}} + \frac{\text{६०} \times \text{बृको}}{\text{३४३८}} = \text{योगज्या}$$

। यहां दूसरे स्वरूप में छ का अपवर्तन देने से योगज्या का रूप इसप्रकार हुआ—

$$\text{बृज्या} - \frac{\text{१}}{\text{६५६६}} + \frac{\text{१०} \times \text{बृको}}{\text{५७३}} = \text{योगज्या},$$

$$\text{और, बृज्या} - \frac{\text{१}}{\text{६५६६}} - \frac{\text{१०} \times \text{बृको}}{\text{५७३}} = \text{अन्तरज्या}.$$

इसलिए 'स्वगोऽङ्गेषुपडंशेन–' 'कोटिज्या दशभिः क्षुण्णा त्रिसप्तेषु विभाजिता तदैक्यमग्रजीवा स्यादन्तरं पूर्वशिञ्जिनी।' यह प्रकार उपपन्न हुआ।

'कोटिजीवा शताभ्यस्ता–' इत्यादि दूसरे प्रकार की संगति इसप्रकार है—

$$\frac{\text{बृज्या} \times \text{लको}}{\text{त्रि}} + \frac{\text{लज्या} \times \text{बृको}}{\text{त्रि}} = \text{योगज्या},$$

$$\frac{\text{बृज्या} \times \text{लको}}{\text{त्रि}} - \frac{\text{लज्या} \times \text{बृको}}{\text{त्रि}} = \text{अन्तरज्या}.$$

यहां लघुचापांश= ३।४५ इसकी ज्या = २२४।५६ और कोटिज्या = ३४११।

$$\therefore \frac{\text{बृज्या} \times \text{३४३१}}{\text{३४३८}} + \frac{\text{बृको} \times \text{२२४।५६}}{\text{३४३८}} = \text{योगज्या}।$$

अनुपात किया—

३४३८ : ३४११ :: ४६७	२२४।५६ : ३४३८ :: १००
$\frac{\text{३४३१} \times \text{४६७}}{\text{३४३८}} = \text{४६६}.$	$\frac{\text{३४३८} \times \text{१००}}{\text{२२४।५६}} = \text{१५२६}.$

$$\frac{\text{बृज्या} \times \text{४६६}}{\text{४६७}} + \frac{\text{बृको} \times \text{१००}}{\text{१५२६}}$$

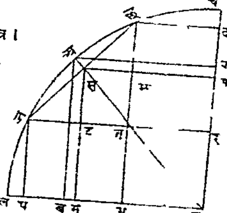
$$\frac{\text{बृज्या}}{\text{त्रि}} \frac{\text{१}}{\text{४६७}} + \frac{\text{बृको} \times \text{१००}}{\text{१५२६}}$$

$$\text{बृज्या} \times \text{[illegible]} - \frac{\text{बृको} \times \text{१००}}{\text{१५२६}}$$

इसलिए 'कोटिजीवा शताभ्यस्ता गोदस्रतिथिभाजिता । दोर्ज्या स्याद्रयङ्ग-वेदाशहीना–' इत्यादि प्रकार उपपन्न हुआ।

'चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये–' इत्यादि विधि की उपपत्ति श्रीबापूदेव शास्त्री कृत इसप्रकार है:–

क्षेत्र।



यहां पर, च अ बड़े चाप की ज्या=अक, कोटिज्या=अब । द्विगुण लघुचाप=छज, इसका आधा छ अ =अज= लघुचाप लघुज्या = छस = सज।

अब, 'घज' रेखा द्विगुण लघुचाप की पूर्णज्या है। इसके 'स' मध्य बिन्दु से सफ, सम रेखा क्रमसे अक और अर रेखाओं के समानान्तर करना। यदि 'च अ' बृहच्चाप में अज तुल्य लघुचाप जोड दिया जाय तो चज चापैक्य होता है, इसकी ज्या 'जर' रेखा और कोटिज्या 'जप' रेखा होती है। अब यदि 'चअ' तुल्य बृहच्चाप से 'छअ' लघुचाप को घटा दिया तो अन्तरचाप 'छच' के तुल्य बचा। इसकी ज्या छद रेखा और उसकी कोटिज्या छम रेखा करना।

अब गअक और गसफ जात्यत्रिभुज 'ग' कोण के तुल्य होने से सजातीय हैं। इससे अनुपात किया–ग अ त्रिज्या तुल्य कर्ण में यदि अक बृहच्चापज्या भुज है तो ग स लघुचाप कोटिज्या कर्ण में क्या ? यों 'सफ' रेखा सिद्ध हुई। यहां अस रेखा लघुचाप की उत्क्रमज्या रूप है, इसलिये इसको त्रिज्या में घटाने से सग रेखा लघुचाप कोटिज्या के तुल्य सिद्ध हुई। और गसफ जात्य सछक्ष के सजातीय है। क्योंकि छसग कोण ९० है इसमें यदि गसफ कोण घटा दिया जाय तो शेष क्षसछ कोण सगफ कोण के समान रहा, क्योंकि यह कोण '९०– गसफ' कोणके तुल्य है। इसप्रकार यहां कोटि और कर्ण के सपात से उत्पन्न कोण समान सिद्ध हुए। गसफ त्रिभुज में फग कोटि गस कर्ण है। इस कर्ण के सपात में उत्पन्न सगफ कोण के तुल्य क्षसछ कोण है, वहां सक्ष तुल्य कोटि और सछ कर्ण है, अर्थात् छक्ष के तुल्य भुज हुआ। इसलिये गसफ जात्य के सजातीय छमक्ष जात्य हुआ। यह गअर के भी सजातीय है। अब अनुपात किया।

गअ त्रिज्या तुल्य कर्ण में यदि कग बृहच्चाप कोटिज्या कोटि है तो छस लघुचा ज्या कर्ण में क्या ? यों सभ रेखा लब्ध हुई। इनको पहले सिद्ध की हुई सफ रेर में घटाने स भ फ रेखा बाकी रहती है जो छद चापान्तर ज्या के तुल्य है ! औ यहां छसभ, सजट, त्रिभुज समान बनते हैं; इस कारण इनके भुज समान हैं छस=सज, छभ=सट सभ=जट। अब सफ रेखा के तुल्य टर रेखा में स रेखा के तुल्य जट रेखा जोड देने से जर रेखा चापैक्य की ज्या सिद्ध हुई।

अब चाप के अन्तर और ऐक्य के कोटिज्या के लिये अनुपात किया–ग त्रिज्याकर्ण में यदि अग बृहच्चाप कोटिज्या कोटि है तो सग लघुचाप–कोटिज्याक मे क्या ? यों सम रेखा लब्धहुई। गअ त्रिज्याकर्ण में यदि अक बृहच्चापज्या भुज तो छस लघुज्या कर्ण में क्या ? यों छभ रेखा प्राप्त हुई। इसको सम रेखा तुल्य भम रेखा में जोड देने से छभ रेखा चापान्तर की कोटिज्या सिद्ध हुई और सम रेखा में छभ रेखा के तुल्य सट रेखा को घटा देने से टम रेखा तुल्य जप रेखा चौपक्य की कोटिज्या सिद्ध हुई। इससे 'चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये– इसप्रकार की उपपत्ति लघुक्रिया से उपपन्न हुई। उक्त प्रकार की उपपत्तियों क समारोह सिद्धान्ततत्त्वविवेक के स्पष्टाधिकार में देखो ॥ १६–२५ ॥

उक्ता संक्षेपतः पूर्वं ज्योत्पत्तिः सुगमा च सा।
सविशेषाधुना तत्र विशेषाद्विवृणोम्यतः ॥ १ ॥

तत्र तावदाचार्याणां पदवीमित्यादिश्लोकपञ्चकं सुगमम् अत्र गणितेन ज्याज्ञानार्थं मूलभूतज्याचतुष्कसिद्धप्रकारमेवाह तत्प्रकारो हि बीजगणितक्रियया। त्रिज्यार्धं राशिज्येत्यादि त्रिज्यार्धेन १७१९ तुल्या त्रिंश३०दंशानां ज्या भवति। तस्या कोटिज्या षष्टि६०भागानाम्। त्रिज्यावर्गार्धपदं पञ्चचत्वारिंश दंशानां४५ज्या भवति।

अथ त्रिज्यावर्गात् पञ्चगुणात् त्रिज्याकृतिवर्गपञ्चघातस्य मूलेन हीनादष्ट = हृतात्पदं षट्त्रिंशदंशानां ज्या।

अथवा गजहयगजेषु ५८७८ निघ्नी त्रिज्यायुतेन १००००

का षट्त्रिंशदंशानां ज्या स्यात्। इति गणितलाघवम्। तत्कोज्यार्धं चतुष्पञ्चाशदंशानां ज्या।

तथा त्रिज्यावर्गस्य पञ्चगुणस्य मूलं त्रिज्याहीनं चतुर्भक्तं सदशदशभागानां ज्या भवति। तत्कोटिज्यार्धं तद्द्विसप्ततिभागानाम्।

अतोऽन्यथा साधनमाह। क्रमोत्क्रमज्येत्यादि। कोटिज्योना त्रिज्या भुजस्योत्क्रमज्या स्यात्। भुजज्योना त्रिज्या कोट्युत्क्रमज्या स्यात्। भुजक्रमज्योत्क्रमज्ययोश्च वर्गयोगपददलं भुजांशानामर्धस्य ज्या स्यात्। अथवा त्रिज्योत्क्रमज्याघातदलस्य मूलं तदर्धांशकशिञ्जिनी स्यादिति क्रियालाघवम्।

एवमुत्पन्नज्याया अपि कोटिज्या सा तत्कोटिभागानाम्। ततः पुनरेवमन्यास्तदर्धांशकज्याः साध्याः। कोटेश्चैवमन्याः। तद्यथा। यत्र चतुर्विंशतिर्ज्यास्तत्र त्रिज्यार्धमष्टमं=ज्यार्धम्। तत्कोटिज्या तु षोडशम् १६। शरवेदांशज्या द्वादशम् १२। अथाष्टमात्तदर्धांशप्रकारेण चतुर्थम् ४। तत्कोटिज्या विंशम् २०। एवं चतुर्थाद्द्वितीयं २ द्वाविंशं च २२। द्वितीयादाद्यं १ त्रयोविंशं च २३। विंशतितमाद्दशमं १० चतुर्दशं च १४। दशमात्पञ्चमं ५ एकोनविंशं च १६। द्वाविंशादेकादशं ११ त्रयोदशं च १३। चतुर्दशात् १४ सप्तमं ७ सप्तदशं च १७। अथ द्वादशात् षष्ठं ६ मष्टादशं च १८। षष्ठात् ६ तृतीय ३ मेकविंशं च २१। अष्टादशान्नवमं ६ पञ्चदशं च १५। त्रिज्याचतुर्विंशमिति। एवं किल पूर्वैरन्यज्यासाधनमुक्तम्।

इदानीं विनाप्युत्क्रमज्ययाभिनवप्रकारेणाह। त्रिज्याभुजज्याहतीत्यादि। त्रिज्याभुजज्याघातेन त्रिज्याकृतिरेकत्रोनान्यत्र युता।

द्वे चार्धिते। तयोर्मूले। आद्यं भुजोनखाङ्कांशानां दलस्य ज्या द्वितीयं भुजाढ्यखाङ्कांशानां दलस्य। एवमतोऽप्यन्याः। तद्यथा अष्टमात्षोडशं १६ ज्यार्धम्। षोडशाच्चतुर्थं ४ विंशं च २०। चतुर्थाद्दशमं १० चतुर्दशं च १४। एवं सर्वाण्यपि।

प्रकारान्तरमाह। यद्दोर्ज्ययोरन्तरमित्यादि। इष्टदोर्ज्ययोर्यदन्तरं कोटिज्ययोश्च यत्तयोर्वर्गैक्यमूलस्य दलं भुजयोरन्तरार्धस्य ज्या भवति। एवमन्ययोरन्यान्याः। यथैका किल चतुर्थी ४। अन्याष्टमी ८ दोर्ज्या। ताभ्यां द्वितीया २ सिध्यति। द्वितीयाचतुर्थीभ्यां प्रथमे १ त्यादि।

तथा दोःकोटिज्ययोरन्तरवर्गदलस्य मूलं दोःकोटिभागान्तरार्धस्य ज्या स्यात्। यथाष्टमी ८ दोर्ज्या। षोडशी १६ कोटिज्या। ताभ्यां चतुर्थी ४ स्यादित्यादि।

अथ मूलग्रहणक्रियया विनापि दोःकोटिभागान्तरज्यानयनमाह। दोर्ज्याकृतिरित्यादि। दोर्ज्यावर्गस्त्रिज्यार्धेन भक्तः। तस्य त्रिज्यायाश्च विवरं दोः कोट्यन्तरस्य ज्या स्यात्। कानिचिदेवमत्र ज्यार्धानि साध्यानि। तद्यथा। यत्र किल त्रिंशज्ज्यार्धानि तत्र त्रिज्यार्धं दशमम् १०। तत्कोटिज्या विंशतितमम् २०। शरवेदांशज्या पञ्चदशम् १५। षट्त्रिंशदंशज्या द्वादशम् १२। तत्कोटिज्या अष्टादशं १८ ज्यार्धम्। अष्टादशभागानां ज्या षष्ठम् ६। तत्कोटिज्या चतुर्विंश २४ मिति। क्रमोत्क्रमज्या
द्वित्यादिना पूर्वोक्तप्रकारेण दशमात् पञ्चमम् ५
पञ्चविंशम् २५। एवं द्वादशात् षष्ठं ६ = ... ं =
तृतीयं ३ सप्तविंशं २७ च। अष्टादशा ... भे

एतान्येवानेन प्रकारेण सिध्यन्ति नान्यानि । अत्र उक्तं कानि-
चिदेवमत्रेति । यद्दोर्ज्ययोरन्तरमित्यादिप्रकारेण । अतोऽत्र पञ्चम-
५ मेका दोर्ज्या नवम ९ मन्या । आभ्यां यद्दोर्ज्ययोरन्तरमित्या-
दिना प्रकारेण भुजयोरन्तरार्धस्य ज्योत्पद्यते । तच्च द्वितीयं २
ज्यार्धम् । तत्कोटिज्याष्टाविंशम् २८ । आभ्यां क्रमोत्क्रमज्या कृति-
योगमूलाद्दलमित्यादि प्रकारेणाद्यं १ चतुर्दशं १४ च । एवमन्या-
श्चतुर्दश सिध्यन्ति ।

अथ ज्याभावना । सा च द्वेधा । एका समासभावना । अन्या-
न्तरभावना । तदर्थमाह । स्वगोऽङ्गेषुपडंशेनेत्यादि । यत्र किल व-
सुत्रिवेदाग्नि ३४३८ तुल्या त्रिज्या नवतिश्च ज्यार्धानि तत्र ता-
वदुच्यते । तत्र मूलभूतज्याना मध्ये काचनेष्टा भुजज्या तत्कोटि-
ज्या च पृथक् स्थाप्या । भुजज्या स्वनवपडिषुरस ६५६९ विभा-
गेन रहिता कार्या । कोटिज्या तु दशगुणा त्रिसप्तपञ्चभि ५७३ र्भा-
ज्या । तयोरैक्यं तदग्रज्या । अन्तरं पूर्वज्या स्यात् । यथा त्रिज्यार्धं
त्रिंशत्संख्याकं ज्यार्धम् ३० । ततः समासभावनयैकत्रिंशत्संख्यम्
३१ । तस्माद्द्वात्रिंशत्संख्यमित्यादि । अन्तरभावनयात्वेकोनत्रिंश
२९ मष्टाविंश २८ मित्यादि । पूर्णं दोर्ज्यां कोटिज्यां त्रिज्या च
प्रकल्प्य प्रथमं १ खण्डमेवं षष्टिः ६० स्यात् ।

अथ यदि सैव त्रिज्या चतुर्विंशतिर्ज्यार्धानि तदर्थमाह । कोटि
जीवाशताभ्यस्तेत्यादि । अत्रापि त्रिज्यार्धमष्टमं ८ ज्यार्धं सा
भुजज्या । षोडशं १६ कोटिज्या सा कोटिज्या शतगुणा गोदस्र-
वेधि १५२९ भाजिता । या तु दोर्ज्या सा तु निजेन सप्ताङ्गवेदा-
१४६७ शेन हीना कार्या । यदि तयोरैक्यं क्रियते तदा नवमं ९

द्वे चार्धिते । तयोर्मूले । आद्यं भुजोनखाङ्कांशानां दलस्य ज्या द्वितीयं भुजाढ्यखाङ्कांशानां दलस्य । एवमतोप्यन्याः । तद्यथा अष्टमात्षोडशं १६ ज्यार्धम् । षोडशाच्चतुर्थं ४ विंशं च २० । चतुर्थाद्दशमं १० चतुर्दशं च १४ । एवं सर्वाण्यपि ।

प्रकारान्तरमाह । यद्दोर्ज्ययोरन्तरमित्यादि । इष्टदोर्ज्ययोर्यदन्तरं कोटिज्ययोश्च यत्तयोर्वर्गैक्यमूलस्य दलं भुजयोरन्तरार्धस्य ज्या भवति । एवमन्ययोरन्यान्याः । यथैका किल चतुर्थी ४ । अन्याष्टमी ८ दोर्ज्या । ताभ्यां द्वितीया २ सिध्यति । द्वितीयाचतुर्थीभ्यां प्रथमे १ त्यादि ।

तथा दोःकोटिज्ययोरन्तरवर्गदलस्य मूलं दोःकोटिभागान्तरार्धस्य ज्या स्यात् । यथाष्टमी ८ दोर्ज्या । षोडशी १६ कोटिज्या । ताभ्यां चतुर्थी ४ स्यादित्यादि ।

अथ मूलग्रहणक्रियया विनापि दोःकोटिभागान्तरज्यानयनमाह । दोर्ज्याकृतिरित्यादि । दोर्ज्यावर्गस्त्रिज्यार्धेन भक्तः । तस्य त्रिज्यायाश्च विवरं दोःकोट्यन्तरस्य ज्या स्यात् । कानिचिदेवमत्र ज्यार्धानि साध्यानि । तद्यथा । यत्र किल त्रिंशज्यार्धानि तत्र त्रिज्यार्धं दशमम् १० । तत्कोटिज्या विंशतितमम् २० । शरवेदांशज्या पञ्चदशम् १५ । षट्त्रिंशदशज्या द्वादशम् १२ । तत्कोटिज्या अष्टादशं १८ ज्यार्धम् । अष्टादशभागानां ज्या षष्ठम् ६ । तत्कोटिज्या चतुर्विंश २४ मिति । क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूलादित्यादिना पूर्वोक्तप्रकारेण दशमात् पञ्चमम् ५ । तत्कोटिज्या पञ्चविंशम् २५ । एवं द्वादशात् षष्ठं ६ चतुर्विंशं २४ च । षष्ठात् तृतीयं ३ सप्तविंशं २७ च । अष्टादशान्नवम ९ मेकविंशं २१ च ।

ज्यार्धं भवति। यद्यन्तरं तदा सप्तमं ७ स्यात्। एवं समासभावनया नवमाद्दशमं १० दशमादेकादश ११ मित्यादि। तथान्तरभावनया सप्तमात् षष्ठं ६ षष्ठात् पञ्चम ५ मित्यादि। एवं प्रथमं १ सप्तांशोनतत्त्वदस्रमितं भवति। अथवा पूर्णं० दोर्ज्यां त्रिज्यां च कोटिज्यां प्रकल्प्य साध्यते तथापि तदेव। ततः समासभावनया द्वितीयादीन्यखिलानि भवन्ति। अथवा त्रिज्यां दोर्ज्यां प्रकल्प्य पूर्णं कोटिज्यां च प्रकल्प्य साध्यते तदा त्रयोविंश २३ मुत्पाद्यते तस्मादन्तरभावनया द्वाविंशम् २२। ततोऽप्येकविंशम् २१। एवमखिलान्यपि निष्पद्यन्ते।

अथ भावनामाह। चापयोरिष्टयोरित्यादि। इष्टयोश्चापयोर्ये दोर्ज्ये ते कर्मभूमौ स्थाप्ये। तयोरधस्तात्कोटिज्ये च। ततः प्रथमकोटिज्या द्वितीयदोर्ज्यया गुण्या। ततो द्वितीयकोटिज्या प्रथमदोर्ज्यया गुण्या। द्वे अपि त्रिज्यया भाज्ये। फलयोः समासश्चापैक्यभुजस्य ज्या भवति। अन्तरं चापान्तरस्य ज्या भवति। इयं सिद्धज्यातोऽन्यज्या साधने वासना। तद्यथा। तुल्यभावनया प्रथमज्यार्धस्य प्रथमज्यार्धेन सह समासभावनया द्वितीयम् २ द्वितीयस्य द्वितीयेनैवं चतुर्थं ४ मित्यादि। अथ तुल्यभावनया। द्वितीयतृतीययोः समासभावनया पञ्चमम् ५। अन्तरभावनया प्रथमं स्यादित्यादि।

अथेष्टज्यामार्धे ज्याज्ञानार्थमाह। आद्यज्या चापभागानामित्यादि। यावद्भिरंशैरेका ज्या लभ्यते त आद्यज्या चापांशाः प्रतिभागज्यकाविधिरिति। त्रिसप्तपञ्चाभि ५७३ भक्तेत्यादिना प्र... कारेणैकभागस्य ज्यामानीय तद्भावनातो भागद्वयस्यैवं ते